ॐ

श्री जगदीश्वरी विजयते

चारण

अखिल-भारतीय-चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक-मुखपत्र



सत्य अभय स्वातंत्र्य उपासक,—सिखा मरण-जीवन का मर्म।
क्षात्रधर्म-उद्बोधक चारण,—रहा सदा साधक युगधर्म॥

वर्ष १] विजया—दशमी विक्रम सम्वत् १९९५ [अङ्क १

जगन्माता से

मा !

कहते हैं, तेरी स्तुति शिव ब्रह्मादिक करते हैं। फिर, मैं कहूं कि मैं भी तेरी स्तुति करुं तो कितना पागलपन है ?

तथापि इतनी सी प्रार्थना तो सुन लेना मा !

रहे विराजी हृदय में, मङ्गलदा तव मूर्ति।
अभिनव नित उन्नत रहे, सेवा हित तन स्फूर्ति॥

हां यह तो ठीक किन्तु मा ! तू अन्नपूर्णा है; और तेरे असंख्य परिश्रमी बच्चे दाने २ को क्यों तरसते हैं ?

और वे वलि के मूक पशु ! क्या उनकी तू मा नहीं, जगदम्बा ?

तू जगदीश्वरी भी है; तो तेरे साम्राज्य में यह भाई २ की गलातराशी क्यों ? यह अंधेर !

देवि ! दया कर के जरा समझा दे;—तेरी गति लखी न परै !



आत्मनिवेदन



अखिल भारतीय चारन सम्मेलन के उदेश्योंकी पूर्ति के लिये उसके द्वारा एक मासिक मुखपत्रको निकाला जाना. सम्मेलनके तीसरे अधिवेशन (वि. सं. १९८३ पुष्कर) में जरूरी समझा गया और स्वर्गीय ठा. किशोरसिंहजी वारहट M. R. A. S. (London) स्टेट हिस्टोरियन पटियाला (पंजाव)के सिपुर्द यह काम किया गया ! उन्होंने वडी योग्यतापूर्वक " चारन " मासिक-पत्रका सम्पादन आरंभ किया; वि. सं. १९८५ के प्रारंभ में " चारन " का प्रथम अंक निकला और अंत में ग्यारहवां अंक. सम्पादक महोदय पटियाला नरेश की सेवा में थे. अतः फुरसत न मिलने से ये. ग्यारह अंक भी ठीक समयपर नहीं निकलते रहे और उक्त कारन से ही वे वारहवां अंक तक भी न निकाल सके और पत्रका प्रकाशन वंद हो गया.

सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन में चौथे अधिवेशनका निमंत्रण मारवाड की ओर से था किन्तु मारवाडी बन्धु करोव दश वर्षतक अपने यहां अधिवेशनकी आयोजन न कर सकें ! जब सम्मेलन का अधिवेशन ही खडाई में पडा हुआ था तो " चारन " के संचालन की योजना का विचार कैसे हो सक्ता था !

आखिर, संवत् १९९४ के चैत्र मास में जोधपुर में चौथा अधिवेशन हुआ. और " चारन " के प्रकाशन का सवाल सामने आया ही ! पहिले का तजरवा होते हुए भी इस कार्य के योग्य ठा. किशोरसिंहजी जैसा अन्य कोई जाति में न होने से, फिर उन्हीं के सिपुर्द यह काम किया गया ! किन्तु अत्यंत खेद है, अपनी वीमारी व खास कर प्रथम कहे हुए कारण से इस निश्चय के वाद छः मास तक वे एक अंक भी न निकाल सके और गत शरत् पौर्णिमा को सारी जाति को निराश्रय करके इस संसार से विदा हो गये ! ! !

उपरोक्त दुर्घटना से " चारण " के प्रकाशन की वात स्वभावतः सम्मेलन के पांचवें अधिवेशन पर जा पडी ! पांचवां अधिवेशन गत ज्येष्ठ कृष्ण ७, ८, ९, को राजकोट (काठियावाड.) में हुआ और उस में तै पाया की " चारण " मासिक रूप में नहीं, त्रैमासिक रूपमें निकाला जाय और केवल हिन्दी में ही नही उसका कुछ भाग गुजराती का हो जिसका सम्पादन सुढेरा (गुजरात) निवासी गढवी श्री. खेतसिंहजी मिश्रण करें. और हिन्दी भागका सम्पादन इन पंक्तियों के लेखक-को सौंपा जाय, और सहकारी रहें भंवर शुभकर्णजी एम. ए. एल. एल. बी. !

× × × × ×

यह एक, अजीव सा निश्चय था कि जिस कार्य के लिये अपनी जाति के अद्वितीय विद्वान को उपयुक्त समझा गया उसी कार्य के लिये साधाण सक्षरा

व्यक्ति को योग्य मान लिया। और इस से भी अजीब यह बात मालूम हो सक्ती है कि इस निश्चय को स्वीकार कर लेने का साहस लेखकने कैसे कर लिया !

निश्चय ही लेखक के लिये यह साहस एक विडंवना होती. यदि वह अपने को इस कार्य के योग्य समझ कर उसे स्वीकार करता ! किन्तु बात एसी नही ! जैसे, किसी और को जब तक सम्मेलन का प्रधानमंत्रित्व स्वीकार न हुआ उसने, सम्मेलन के प्रारंभ से लेकर गत अधिवेशन तक अपना नाम उक्त पदके लिये देने में सम्मेलन की आज्ञा को मान दिया वैसे ही इस वार वहुत अनुनय विनय के साथ इस कार्य के लिये अपनी असमर्थता प्रकट करने पर भी जब सम्मेलन संचालकोंकी सर्वसम्मत यही आज्ञा रही तो लेखक को शिर झुका लेने के सिवाय और कोई मार्ग नजर नही आया !

इस वस्तुस्थिति में भी पाठक यदि आशा करेंगे कि उन्हें वैसे ही गवेषणा-पूर्ण लेख, मौलिक विवेचन, मार्मिक टिप्पणियें एवं काव्यकलापूर्ण कवितायें सम्पादककी ओर से पढने को मिलें जैसी कि उन ग्यारह अंको में हैं तो उन्हें अवश्य ही निराशा का सामना करना पडेगा किन्तु यदि विद्वान् जाति हितैषियों ने सतत सहयोग दिया और श्री जगदम्बा की दया रही तो यथाशक्ति इस प्रयत्न में कोई कमी न की जायगी कि "चारण" उपरोक्त, प्रभाव के होतेहुए भी कुछ उपयोगी व मनोरंजक सिद्ध हो ! अपने इस वचन के प्रमाण में यह अंक ही पाठकों के सामने है !.



सम्मेलन का पांचवां अधिवेशन



अखिल भारतीय चारण सम्मेलन का पांचवां अधिवेशन निश्चित अवधि पर गत ज्येष्ठ कृष्ण ७, ८ व ९ को राजकोट (काठियावाड) में वडी धूमधाम से करने में गुजराती वंधु सफल हुए, अध्यक्ष महोदय को रेल्वे स्टेशन पर उन के साथीयों सहित पुष्पहार पहिना कर राजकीय वग्धी में विठला वाजे गाजे के साथ जुलूस वना कर उन्हें अपने निवासस्थान पर ले जाना, खुले अधिवेशन में आम लोगों का इतनी वडी तीदाद में प्रेमपूर्वक शामिल होना. चारणोतर विद्वानों के चारण जाति की महत्ता एवं उपयोगिता पर कविता एवं भाषन होना और श्रीमान् राजकोट नरेश की ओरसे ही सम्मेलन में आने वाले प्रतिनिधियों के लिये भोजन आदि की सब व्यवस्था का होना. एसी वातें थी जो पहिले के अधिवेशनों से अद्वितीय थीं ! स्वागत समिति का प्रबंध भी सराहनीय था, और सराहनीय था स्वयंसेवकों का प्रेमपूर्ण सेवाभाव !

पूर्वकथित बातों में जैसे यह सम्मेलन अद्वितीय रहा वैसे और कुछ बातों में भी यह अद्वितीय ही रहा; जैसे—विषय निर्वाचिनी समिति में किसी विषय का व्यवस्थित रूप से निर्णय न होना, जो प्रस्ताव पास हुए उनके बनाने एवं उनके महत्व की ओर उदासीनता, प्रांतीय कार्यकर्ताओं की प्रांतीय कार्यसंलग्नता के कारण सम्मेलन कार्य को गौणता प्राप्त हो जाना। इस अंतिम बात के लिये अधिकांश सम्मेलन प्रेमी बहुत उद्विग्न रहे थे। वे यह देख कर खिन्न से होते थे कि सम्मेलन के लिये एकत्रित लोगोंसे सम्मेलनके कार्यालय खर्च, प्रचारकार्य, व उसके मुखपत्र और रिपोर्ट छपवाने के लिये अत्यावश्यक धन-संग्रह के लिये तो लोगों से अपील करने का भी विरोध किया जाय और उन्हीं लोगों को प्रेरणा कर हजारों रुपये प्रांतीय कार्य के लिये इकट्ठे कर लिये जायें! किन्तु वातावरण को अशान्त न करने और परस्पर सहयोगमें अड़चन पैदा न होने देने के ख्याल से उन्हों ने अपने मन को समझा लिया कि उस प्रांत को जहां सम्मेलन हो रहा है, सम्मेलन के बहाने से कुछ लाभ होता है तो वह सम्मेलन को तो अभीष्ट ही होना चाहिये। परन्तु इसका अनिष्ट परिणाम यह हुआ कि आज सम्मेलन के पास राजकोट अधिवेशन की रिपोर्ट छपवाने लायक भी पैसे नहीं हैं, फिर और जरूरी कार्यों की तो बात ही कहां!

× × × × ×

प्रांतीय कार्यकर्ताओं की इसी मनोवृत्ति के कारण श्री चारण हितवर्द्धक-सभा जैसी जमी हुई प्रांतीय सभा होते हुए भी उन्हें सम्मेलन से संबंध बनाये रखने के लिये "बृहत्-गुजरात-चारण-सभा" का ढांचा खड़ा करना पड़ा। सम्मेलन कार्यकर्ताओंकी समझ में अबतक न आया कि प्रांतीय कार्यकर्तागण चा. हि. सभा को ही सम्मेलन से संबंधित प्रांतीय सभा मान लेने में इतने क्यों चौंक पड़े थे! शायद वे भयभीत से थे कि हितवर्द्धक सभा के इकट्ठे किये हुए पैसों पर कभी सम्मेलन अपना अधिकार न कर ले। किन्तु इसका कारण? खैर। उन्होंने जो ठीक समझा किया और सम्मेलनने भी उसे मान लिया। अब देखा चाहिये बृहत्-गुजरात-चारण-सभा सम्मेलन के अंगस्वरूप होकर वास्तवमें कुछ करती है या एकठ की सभा मात्र सिद्ध होती है।

× × × × +

अध्यक्ष महोदय का भाषण उतना प्रेरक व आकर्षक नहीं मालूम हुआ जितना होनेकी आशा थी। इसका कारण यह भी हो सकता है कि भाषण तय्यार करने का समय बहुत कम मिला था। वाल्टर कृत कमेटी के प्रबंध में इतने विस्तार से कहा गया कि जिनका इस सवाल से निकटका संबंध था वे राजस्थानी प्रतिनिधि भी उकता गये थे।

सम्मेलन के अध्यक्ष का चुनाव या यों कहें कि पसंदगी प्रायः ऐन वक्त

पर हुआ करती है और ऐसी हालत में अध्यक्ष जल्दी २ में जो कुछ उस समय सुझ पडता है लिख कर सुना देते हैं ।

× × × × ×

स्वागताध्यक्ष का भाषण अति संक्षिप्त था और शायद रिवाज पूरा करने की दृष्टि से ही लिखा पढा गया था. अतः उसमें किसी जातीय प्रश्न पर कुछ भी विवेचन सुनने को नहीं मिला ।

× × × × ×

सम्मेलन में कृपापूर्वक सहयोग देनेवाले चारणेतर प्रमुख सज्जनों में श्री राजकोट नरेश के अनुज श्रीमान् प्रद्युम्नसिंहजी महोदय, राजकोट नरेश के दीवान दरबार सा. वीरावाला के सुपुत्र श्री. भोजवाला, श्रीमान् पंडित कृष्णकान्तजी मालवीय एम. एल. ए. सम्पादक "अभ्युदय" (प्रयाग), श्रीमान् गंभीरसिंहजी साहिब ए. डी. सी. भावनगर नरेश, श्रीमान् डो. त्र्यंबकलालजी नंदकेश्वरजी दवे एम. ए. पी. एच. डी. प्रिंसिपाल, धर्मेन्द्र कॉलेज (राजकोट), श्रीमान् झवेरचंदजी मेघाणी सम्पादक "फुलछाब" एवं जन्मभूमि, कविश्वर श्री. पंडित त्रिभुवनभाई व्यास (राजकोट), "शारदा" संपादक श्रीमान् गोकुलदासजी रायचुरा एवं सुरत के संगीत मास्टर श्री. वसन्त के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

× × × × ×

श्री. पं. मालवीयजी का भाषण चारण जाति को राष्ट्रीय सन्देश के रूपमें इतना स्पष्ट और उग्र था कि राजस्थानी प्रतिनिधि कहते सुने गये कि एक तो यह भी रियासत है जहां इस प्रकारका भाषण विना किसी विघ्नबाधा के हो रहा है और एक हमारी तरफकी रियासतें हैं जहां अधिकारी, साधारण से साधारण सार्वजनिक हलचल को शंका और भय की दृष्टि से देखते है और उसे दबा देनेमें ही राज्यका हित समझते हैं ।

× × × × ×

प्रिंसिपाल दवे साहिबने प्रतिदिन अधिवेशन के पूरे समय तक अपनी उपस्थिति से सम्मेलन की शोभावृद्धिकी और दो दिन विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देने की भी कृपा की । एक दिन चारण जाति की प्राचीनता बतानेवाला व्याख्यान था और दूसरे दिन के व्याख्यान में चारण जाति को ब्राह्मण जाति के समकक्ष सिद्धकर दोनों जातियों की कर्तव्य समता के साथ उनके कार्यक्षेत्र भिन्न २ होनेका विवेचन बडे विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया था । आपने बतलाया था कि ब्राह्मण सर्वोपरि वर्ण है और उसका एक कर्म दान लेना भी माना गया है । यदि दान लेना नीच कर्म होता तो ब्राह्मण का यह कभी कर्म न माना जाता । बात यह है कि किसीकी प्रशंसा इस भावना से करके कि वह कुछ दे या दान देने के लिये किसी को प्रोत्साहित करके उस से कुछ लेना अधमता है और यह वृत्ति त्याज्य है । किन्तु किसी के गुणों पर मुग्ध हो कर अथवा किसी के हितकर वा उपकारी

कार्य के उपलक्ष्य में कृतज्ञता भाव से यदि कोई श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक सादर कुछ दे तो वह तो दान लेने वाले के गौरव ही को अधिक सूचित करता है। ब्राह्मण एवं चारण ऐसे दान के पात्र होते थे।" आगे चलकर आपने कहाथा कि:- अच्छी बात है चारण भी वकील वैरीस्टर बन रहे है, डोक्टर व माजिस्ट्रेट बन रहे हैं, किन्तु इस के साथ ही मैं उन लोगों से प्रार्थना करूंगा कि ये सब बनने के साथ आप अपने चारणपन को न खो दें। डोक्टर आप हों, लेकिन चारण भी बने रहें। आप मेजीस्ट्रेट या वकील वैरिस्टर हों या समय के प्रवाह के साथ आप भी औरों की तरह और सब कुछ हों परन्तु चारण तो आप रहें ही। समाज को आपकी जरूरत आ पडी है—यदि आप उसे पूरी कर सके। कितनी भावपूर्ण, प्रेमपूर्ण सम्मति है यह! क्या यह आशा करना अधिक होगा कि जिनके लिये ये शब्द हैं वे उनके मर्म को समझ तदनुसार अपना जीवन बनायें गे?

× × × × ×

श्री. गोकुलदासजी रायचुरा संपादक "शारदा" (गुजराती) का चारण जाति-प्रेम उनके व्यवहार से प्रति पल प्रकट होता था। वे यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए प्रतीत होते थे कि चारण जाति में भी कुछ ग्रेज्युएट हैं, वकील हैं, और मेजिस्ट्रेट भी हैं। उन्होंने अपनी पत्रिका में प्रकाशित करने के लिये वहां उपस्थित ग्रेज्युएटों का फोटो भी लिवाया था।

× × × × ×

और श्री. मेघाणीजी का व्यक्तित्व और व्याख्यान? श्री मेघाणी नाटे करके, मजबूत ढांचे के मेघाणी अपनी खद्दर का पोशाक में किसी शहरी की अपेक्षा ग्रामीण ही अधिक जँचते हैं। पहली मुलाकात में उन्हें देखते ही शायद ही कोई मांप सके कि इस व्यक्ति में इतनी प्रतिभा और इतना जोश होगा! उन्होंने जब अपना व्याख्यान शुरू किया तो बडी धीमी आवाज से। परन्तु वह बढी और इतनी बढी कि मानो किसी शेर की गर्जना हो रही हैं। मेघाणी का व्याख्यान क्या था स्वयं एक काव्य था। उनकी वह धाराप्रवाही भाषण शैली भावानुरूप कभी मंद और कभी तीव्र और बीच २ में चारण कवियों की प्राचीन कविता—श्रोतास्वि-नियों का सहयोग प्राप्त करती हुई एक प्रबल सरिता वेग के समान थी जिस में बहकर श्रोतागण बेसुध से हो हो जाते थे। और कभी कभी तो वक्ता स्वयं ही भावावेश में बेसुध हो जाते से मालूम होते थे। यही तो कारण था कि जिस समय वीररस का वर्णन होता श्रोता जोश में आते और करुणरस के वर्णन से उन के हृदय द्रवित होने लगते थे। चारण जाति के प्रति मेघाणीजी की श्रद्धा, उनका प्रेम और इस जाति के उत्कर्ष के लिये उनकी अभिलाषा तो शब्दोंद्वारा प्रकट करने की वस्तु नहीं। उन्होंने भाषण के प्रारंभ में ही कह दिया था कि चारण काव्य का रस तो मेरे रक्त में घुलामिल गया है। इसी से मेघाणीजी जब कोई डिंगल कविता बोलते तो यह नहीं मालुम होता था कि कोई चारणेतर बोल

श्री किशोर-स्मारक-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

विद्वद्वर्य स्व० ठाकुर किशोरसिंहजी वार्हस्पत्य, स्टेट हिस्टोरियन-पटियाला गवर्नमेंट, चारण जाति के समुज्ज्वल रत्न थे। आपने संमेलन के मुखपत्र 'चारण' का कुशल संपादन करके चारण जाति ही नहीं, इतिहास-संसार की भी महान् सेवा की है। आप सार्वदेशिक ख्याति के व्यक्ति और इतिहास के उद्भट विद्वान् थे। आपके राजपूत-इतिहास संबंधी सर्वथा मौलिक, गवेषणापूर्ण एवं चिंतनीय विचारों पर भारतीय और विदेशी इतिहासकार मंत्रमुग्ध हैं।

आपका हिन्दी, गुजराती, अपभ्रंश, संस्कृत, पाली, प्राकृत, मागधी आदि भाषाओं पर अद्वितीय अधिकार था। आप अंग्रेजी एवं इतर भाषाओं के विद्वान ही नहीं, डिंगळ भाषा और साहित्य के विशेषज्ञ और उत्कृष्ट कवि थे। आपके स्वर्गवास से चारण जाति ही नहीं, राजस्थान की महान् हानि हुई है, जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में होनी कठिन है। चारण जाति के सभ्यों तथा राजस्थानियों का कर्तव्य है कि स्व० विभूति की स्मृति चिर-स्थायी बनाने के लिये वे कुछ ठोस कार्य करें। अतः, अखिल भारतीय चारण-संमेलन और राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी (कलकत्ता) ने निश्चय किया है कि सम्मिलित रूप से उनकी पुण्य स्मृति में एक स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय। उस ग्रन्थ में उनके संस्मरण और विविध लेखों तथा कविताओं का संग्रह भी रहे।

ठाकुर साहब के परिचितों, मित्रों और गुणानुरागियों से निवेदन है कि वे उनके संबंध में अपने संस्मरण, श्रद्धांजलियाँ तथा लेख-कविता आदि निम्नलिखित किसी एक पते पर शीघ्र भेजने की कृपा करें।

उक्त निश्चय को सफल बनाने के लिये प्रत्येक चारण और चारणेतर सभ्य से विनम्र प्रार्थना है कि वह इस पुनीत कार्य के लिये यथायोग्य [illegible] आर्थिक सहायता भी करें। ता० १-६-'३९

भवदीय

शुभकर्ण कविया
[illegible]-अ० भा० चा०-संमेलन
[illegible] की हवेली, जोधपुर

रघुनाथप्रसाद सिंहानिया
मंत्री-राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी
७३ ए, चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता

रहा हो । मेघाणीजी गुजराती के ख्यातनामा बेजोड राष्ट्रीय कवि और यशस्वी पत्र संपादक हैं । उन्होंने जब अपनी " लाडकवाया " नामकी कविता सुनाई तो श्रोता मंत्रमुग्ध से हो गये थे ।

× × × × ×

पं. व्यासजीने बडे ही प्रेम से तीनों दिन सम्मेलन में सहयोग दिया था । प्रथम दिन उन्होंने " धन्य हो धन्य सौराष्ट्र धरणी " नामक अपनी मनोहर कविता सुनाई थी । दूसरे दिन " ऊठ चारण ऊठ त्हारी ऊंघने अलगी करी " नामक कविता मधुर वाणी से सुना कर चारण समुदाय को प्रोत्साहित करने के साथ ही आभारी बना दिया था । इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित इस कविता को पढकर पाठक देखें कि चारण जाति के प्रति इस ब्राह्मण हृदय का कितना विशुद्ध प्रेम है । अधिवेशन के अंतिम दिन सुनाई हुइ " वनवासी पोपटजी तमने बंधन केम गमे " कविता भी बडी भावपूर्ण और उद्बोधक थी ।

× × × × ×

उपरोक्त महानुभावों के अतिरिक्त पूर्वकथित क्षत्रिय महानुभावों के पदार्पण से सम्मेलनकी बहुत शोभावृद्धि हुई थी । क्या ही अच्छा होता ये सज्जन भी चारण जाति के प्रति अपने मनोभावों का शाब्दिक परिचय भी उपस्थित जनता के सामने प्रदान करते । उन के मौनावलंबन से इस अवसर पर गोहिल कुलभूषण मेजर जोरावरसिंहजी साहिब (भावनगर) की अनुपस्थिति कइयों को बहुत खटकी थी ।

× × × × ×

इस सब वर्णन के साथ राजकोट की प्रगतिशील जनता के सम्मेलन-सहयोग का जिक्र न करना अनुचित होगा । सम्मेलन के दिनों में ही राजकोट में श्री. पं. कृष्णकान्तजी मालवीय की अध्यक्षता में आर्यभाषा सम्मेलन हो रहा था । लेखक एक दिन कुछ समय के लिये उसमें जा सका था । अतएव कहा जा सकता है कि उक्त सार्वजनिक सम्मेलन से भी बहुत अधिक उपस्थिति से राजकोट के नरनारीयों ने चारण सम्मेलन में सहयोग दे कर चारण जाति के प्रति अपने प्रेम का परिचय दिया था । हो सकता है इस के लिये प्रेरक कारण "मेघाणी" व " काग " के व्यक्तित्व ही प्रधान हों ।

× × × × ×

सम्मेलन के अंतिम दिन सूरत के प्रसिद्ध संगीत मास्टर श्री वसन्त ने अपने शुभागमन द्वारा सम्मेलन में गायनवादन की जो कमी थी उसे दूर कर अपनी हारमोनियम बजाने की कम्मालियत के साथ राष्ट्रीय गायनों से रस बरसा दिया था ।

× × × × ×

उपरोक्त चारणेतर महानुभावों के अतिरिक्त सम्मेलन में कुछ सजातीय भी ऐसे थे जो विशेष उल्लेखनीय हैं । भावनगर राज्य के मजादर ग्राम निवासी

भक्तकवि श्री दुलाभाई भायाभाई काग का नाम इन में सर्व प्रथम आता है। काग जन्म जात कवि हैं और इस अंग्रेजी कथन के सत्य सिद्ध करते हैं—Poets are born not made (कवि पैदा होते हैं, वनाये नहीं जाते)। चालीस वर्ष से भी कम आयुका यह स्वाभाविक कवि अपने सतेज नेत्र व काली जटा दाढी वाली प्रांजल मुखमुद्रा का प्रभाव दर्शक के हृदय पर यकायक डालती है और जिस समय उस मुख में से वाणी की सुधाधारा वहती है तो चारों और जीवन और आनन्दओतप्रोत हो जाता है। कविवर काग ने कहने लायक कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की है अतः कोई पुस्तकी विद्वान् चाहे तो उनकी कविता को काव्य एवं साहित्य के सूक्ष्म नियमों द्वारा कुछ त्रुटिपूर्ण भी शायद करार दे सके। किन्तु इस भक्तकवि के भावपूर्ण शब्दों में वह जादू है कि इसके लिये वह समय ही नहीं देता और कागवाणी को सुनने वालों के मुख से एकवार तो वाह २ ही निकलवा देता है। और यदि ऐसा नहीं होता है तो उन्हीं प्राचीन शब्दों में कह देना पडेगा—स योगी ह्यऽथवा पशुः।

जिन चारणों ने समयानुकूल साहित्य रचना का प्रयत्न किया है या जो ऐसा करना चाहते हैं उन लोगों की श्रेणी में श्री. कागका नाम सर्वोपरि रहेगा! जो कोइ काग रचित "कृष्ण प्रेरित कागवाणी" पुस्तक पढेगा या उसके वाद रची हुई उनकी कविता यें सुनेगा वह इस कथन को सच माने विना न रहेगा। श्री काग की काव्यकृति वतलाती है कि चारणो! यदि तुम्हें प्रकृत कवि होने का अभिमान है या तुम्हें कविता करने का शौक ही है तो ऐसी कविता करो जिस से मानव समुदाय का, अपने देश व समाज का या उस क्षत्रिय जाति का ही, जिसे तुम अपनी चिरसंगीनी मानते हो उसका, कुछ सच्चा हितसाधन हो सके अथवा तुम्हारा ही आत्मकल्याण हो।

क्या ही अच्छा हो कविवर काग अपने राष्ट्रभाषा (हिन्दी) के अभ्यास को कुछ वढाने और उसके द्वारा अपनी मातृभाषा (गुजराती) में की हुई कविता का लाभ अन्य भाषाभावी लोगों को पहुँचाने में भी समर्थ हों।

× × × × ×

सम्मेलन में काग की कविता को उन्हीं के ढंग से सफलतापूर्वक सुनने वाले श्री मेरुभाइ लीला के पूज्य पिता वयोवृद्ध श्री मेवाणंदभाइ भी उपस्थित थे जिनकी सत्तरवीं वर्षगांठ पर श्री माननीय कन्हैयालाल मुन्शी (गृह सचिव वम्वई गवर्मेन्ट) प्रमुख वम्वई के प्रसिद्ध साहित्यिकों—ने वडा सत्कार किया था। खेद है, वे उन दिनों रुग्ण थे अतः सम्मेलन में कुछ सुना न सके। किन्तु इस कमी को उनके सुपुत्र ने मालूम नहि होने दिया। मेरुभाई की शैली—कविता बोलनेकी और विवेचन की, इतनी मधुर व आकर्षक है कि अफ्रीका प्रवासी गुजराती-भाइयों ने उन्हें अफ्रीका में वुलाया जहां दो तीन महीने रह कर कई सभाओं में अपने व्याख्यानों से लोगों को आनन्दित व प्रोत्साहित किया था!

× × × × ×

उपरिकथित दोनों सज्जनों के अलावा जिन लोगों ने काठियावाड गुजरात के चारण समाज में समाज सुधार की कुछ भावना और विद्याकी तरफ अभिरुचि उत्पन्न करने का सफल प्रयत्न किया है उनमें से जो लोग सम्मेलन में सम्मिलित हुए उनमें श्री. शंकरदानजी देथा राज्यकवि लींवडी, श्री. ठारणभाइ महडु राज्यकवि वला, श्री. रामदानजी टापरिया राज्यकवि मूली, श्री. पिंगलशी पायक वी. ए. एल एल. वी., श्री खेतसिहजी मिश्रण मूढेरा, श्री. हरदाभाइ नरेला राज्यकवि भावनगर एवं श्री जीवणलालजी वरसडा भादरवा, आदि सज्जनों ने सम्मेलन को सफल वनानेमें भरसक कोशिश की थी और उसकी कार्यवाही में सानुराग भाग लिया था।

श्री. शंकरदानजी का जातिप्रेम एवं सेवाभाव तो यहां तक है कि उनके सामने जाति हितके किसी खर्च का सवाल आता है तो जहां तक उनसे हो सकता है वे खुद उसे हला कर देना चाहते हैं। इसका प्रत्यक्ष परिचय तव हुआ जव सम्मेलन के मुखपत्र का छपाइ का प्रश्न सामने आया। पैसे का सवाल सामने आते ही जव सव चुपसे थे, तव यही उदारचेता थे जिन्होंने इस त्रैमासिक को छपवानेका भार अपने सिर सहर्ष लिया था. और यह वात किया कि पत्रका वार्षिक आय से यदि खर्चकी पूर्ति न हुइ तो एक सौ रूपये तक तो स्वयं भर देंगे।

× × × × ×

सौराष्ट्री वंधुओं की उदारता एवं पारस्परिक प्रीति जहां प्रत्यक्ष थी, सम्मेलनमें उनका हुक्काप्रेम भी उतना ही प्रकट था। कैसा ही महत्वपूर्ण विषय क्यों न चल रहा हो, कैसा ही प्रभावशाली व्याख्यान क्यों न हो रहा हो. कैसी ही मार्मिक कविता क्यों न सुनाई जा रही हो, रवडकी लंवी नलीवाले चांदी मँढे हुए हुक्केकी गुड २ और उसका धुँआ तो वंद होने की चीज न थी। इस तरह सुधारक सभामें व्यसन का प्रदर्शन यही सूचित करता है कि गुजराती वंधुओंमें इस तरह हुक्का पीना अव भी शायद प्रतिष्ठा की वात समझी जाती है। उनके इस व्यवहार से लेखक को अपने प्रपितामह सूरतरामजीका हुक्काप्रेम याद आ गया था। संयोगवश वे भी काठियावाड में वहुत रहे थे और प्रसिद्ध ग्रंथ "प्रवीनसागर" के रचयिताओं में से एक थे। जव वे मेवाड में वापस आये तो उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा सुनकर तत्कालीन श्री. महाराणा साहिवने उन्हें अपने पास बुलवाना चाहा। किन्तु हुक्केको दरवार में स्थान मिलनेका सवाल आने पर उन्होंने कह दिया कि काठियावाड के वडे २ राजा महाराजा मुझे अपने हाथों से हुक्का पिलाते हैं और यहां यह खयाल है तो मुझे दरवार में जाना मंजूर नहीं। लेकिन अव वह जमाना गया। हुक्का प्रेमीयों को समझना चाहिये कि सभ्यसंसार कम से कम

ऐसे अवसरों पर तो, इस प्रकार के व्यसनप्रदर्शन को हिकारत की निगाह से ही देखता है।

× × × × ×

सम्मेलन का अधिवेशन राजस्थान में हो और गुजरात काठियावाड के वंधु उस में शरीक हों एवं अधिवेशन गुजरात काठियावाड में होने पर जो राजस्थानी वंधु उसमें शरीक हों उनका सम्मेलन प्रेम वास्तव में सराहनीय है। इतने दूर दराज की सफर का कष्ट व खर्च विना सच्चे जाति प्रेम के वर्दाश्त नहीं किया जा सकता। इन में भी वे लोग अधिक प्रशंसा व आदरके पात्र हैं जो आर्थिक असुविधा होते हुए भी सम्मेलन में सहयोग देते हैं। उन धनी मानियों को ऐसे लोगों के स्मरण मात्र से लज्जित होना चाहिये जो जाति हित के निमित्त इतना भी नहीं कर सकते।

× × × × ×

राजस्थानी वन्धुओं में सम्मेलन पदाधिकारियों के अतिरिक्त ठा. आइदानजी वारहठ बी. ए. एल. एल. बी. (मथाणिया), ठा. जयकरणजी वारहठ बी. ए. एल. एल. बी. (कृष्णावटी), ठा. सत्यदेवजी आढा बी. ए. एल. एल. बी. (पांचेटिया), ठा. उदयराजजी उज्वल, ठा. सा. प्रतापसिंहजी महियारिया (टींटोडा), ठा. लादुसिंहजी वारहठ (मोरटहका) ने सम्मेलन की कार्यवाही में सोत्साह भाग लिया था। ठा. जयकरणजी का भाषण व ठा. आईदानजी का निवंध लोगों को वहुत पसंद आया था। इसी तरह ठा. उदयराजजी व ठा. लादुसिंहजी की भाषणशैली लोगों को वहुत ही प्रिय हुई थी।

× × × × ×

इस वार सम्मेलन में प्रस्तावों का तांता नहीं वँधा और एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ. वे प्रस्ताव ही किस काम के जिन पर अमल न हो सके। अव-तक के अधिवेशनोंमें सम्मेलन ने इतने आवश्यक प्रस्ताव पास कर रक्खे हैं कि उनको अमल में लाने के लिये ही सम्मेलन एवं जातिप्रेमियों को वर्षों का समय चाहिये।

× × × × +

प्रचार एवं जलसे की दृष्टि से यह अधिवेशन वहुत ही सफल रहा। आगामी अधिवेशन के लिये सम्मेलन को मेवाड की ओरसे ठा. सा. प्रतापसिंहजी महियारिया ने निमंत्रित किया है और वडे आनन्द उत्साह के वातावरण में श्री. कृष्णकुमार चारण विद्यालय के तीन छात्रों द्वारा स्वर्गीय ठा. सा. किशोरसिंहजी रचित "वही हम हैं चारण सन्तान, किया जिन भारतका उत्थान" कविता के

गीत मधुर गान के साथ सम्मेलन का पांचवां अधिवेशन जगदम्बा के जयघोश में सानन्द समाप्त हुआ।

× × × × ×

इस वर्णन के श्रीमान् राजकोट नरेशकी उदारता का आभार माने विना समाप्त करना हृदय स्वीकार नहीं करता। उनकी महती उदारता—के कारण ही स्वागत समिति सम्मेलन के इस सफलता के साथ सम्पन्न कर सकी थी। जगदम्बा ऐसे उदारचेता नरेश्वर के चिरायु करे।

तब और अब.

(लेखक –ठाकुर केसरीसिंहजी बारहठ, कोटा,)

अव (वर्तमान) को तो सब ही जानते हैं, परन्तु सहज जिज्ञासा होती है "तव" कव? मेरा 'तव' से मतलब, न ब्रह्मा या वावा आदम के जमानेसे है, न युगात्मक पौराणिक कालसे, न पुरातत्व वेत्ताओंके आदि मध्य कालात्मक पाषाणी क्षेत्रसे, मेंने जवसे होश सम्हाला, संसारकी गति विधिपर स्वतंत्र मनन करनेकी शक्ति प्राप्तकी, तवसे अर्थात् अवसे पचास वर्ष वीते तवसे; और यदि वाल्यकालकी धुंधली स्मृतियांभी लेलूं तो साठ साल वीतनेको आये, तवसे, अथवा यों कहूं कि प्रत्येक व्यक्ति अपने वृद्ध आप्तजनकी आपवीती घटनाओं और उनके स्वानुभवोंसेभी अपने अनुभवके समानही परिचित रहता है और विशेषकर मेरे स्वर्गीय पितृश्री (वारहट कृष्णसिंहजी) तो राजपूतानेमें अपने समयके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एवं अनेक राजा महाराजाओंके विश्वस्त मंत्री रहचुके हैं; उन्होंने अपने जीवन-कालमें अनेक उलट फेर देखे थे, केवल देखेही नहीं किन्तु उनमें काम किया; और उनका लिखा हुआ अपना जीवनचरित्र–"वारहट कृष्णसिंहका जीवनचरित्र और राजपूतानाका अपूर्व इतिहास" (जो वास्तवमें राजचरित्रोंके गुप्त रहस्योंके कारण अपूर्व है) नामसे लिखित ग्रंथ–मेरे सामने है, अतः कहसकता हूं कि मेरे अनुभवका क्षितिजभी ९०, अंशवाले आकाशके समान नव्वे (९०) वर्ष तक पहुंचता है, तव से अव तक जो कुछ देखा, अनुभव किया और भुक्ता. एवं परिस्थितियोंमें परिवर्तन होते हुए कौनसा दृश्य किस रूपमें सामने आगया, यही संक्षेपमें वताना इस लेखका उद्देश्य है। इस संक्षेपमेंभी अन्तर्जातीय घटनाओंको छोड़देताहूं, क्योंकि अभी अपने घरही को देखना है। यहां मेरा लक्ष्य स्वयं अनुभूतिपर है अतः सहजही मेरे विषयका प्रधानक्षेत्र राजस्थान अर्थात् देशीराज्य होजाता है; उसमें भी जहांतक हो वैयक्तिक वातोंको छूना नहीं चाहता। इस समय मेरा कार्य केवल सामुहिक भावों एवं परिस्थितियोंके परिवर्तनोंको और उनके क्वचित् कारणोंको सामने रखदेना है। अच्छा हुआ या वुरा, इस पर निर्णय देनेकी चेष्टा फिर कभीके लिये सुरक्षित है।

विचार है, क्रमशः इन विषयोंपर लिखा जाय, यथा:— (१) सार्वजनिक भावना (२) राजाका व्यक्तित्व. (३) राजा और बृ. गवर्नमेन्ट. (४) शासन. (५) राजाओंका पारस्परिक संबंध. (६) राजा और बृटिशभारत. (७) राजा और सरदार व माफीदार (८) राजा और प्रजा. (९) सरदार और प्रजा. (१०) हिन्दु मुसलमान. (११) राजपूत और चारणजाति ।

सार्वजनिक भावना.

मनुष्य विश्वासका दास है; "योयच्छ्रद्धः स एवसः" [गीता]। जो जैसा विश्वास करता है वह वैसाही बन जाता है. जो सिद्धांत व्यक्तिके लिये है वही समाजके लिये है, क्योंकि व्यक्तियोंकी समष्टिका नामही समाज है। जब कोई व्यक्ति या समाज या देश परिस्थितियोंके वश अपने आपको निर्बल पराधिन और अनधिकारी मानलेता है तो फिर उस दलदलसे दूसरा कोइ उसका उद्धार नहीं करशकता, यदि कदाचित् कोइ महान शक्ति उसे ऊंचे आसन पर बैठाभीदे तबभी वह वहां ठहर नही शकता। जब कोइ प्रतिभाशाली, विभूतिसम्पन्न व्यक्ति प्रादुर्भूत होता है। (यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्–गीता) वह महान विभूति, शक्ति–क्रांतिकारीके रूपोंमें कभी कृष्ण, बुद्ध, अरस्तु, प्लेटो, कान्फ्यूशस, ईसा, जरथोस्त, मुहमद आदि अनेक नामोंसे और फिर दयानंद, मेजिनी, तिलक, सुनूयात्सेन, लेनिन आदि रूपोंमें आई और महात्मा गांधीके रूपमें इस समयभी जिव्हा और लेखिनीसे मानवजातिके हृदयको हिला रही है। वह अदम्य शक्ति कहां कब और किन नामरूपोंमें आचुकी और आवेगी कौन गिना शकता है "कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी" ऐसाही असाधारण व्यक्ति जब देशकालानुसार अग्रपूजा लेनेके योग्य आगे बढता हैं, रूढ अंधःकारको भेदकर नवीन आलोक बताता हैं तो समाज हिचकते हिचकते उसका अनुगमन करने लगता हैं और सफलताकी प्रतीतियां उस नेताको आदर्शके आसनपर बैठा देती हैं। जब वह अपने सिद्धांत और कार्यको समाज धारणकी सद्बुद्धिसेही सही ईश्वरीय आदेश अथवा प्राकृतिक नियमके नामसे पुष्ट कर देता हैं तो वह जनताके लिये राजपथ बनादेता है। फिर जब उसी सिद्धांत और कार्यके पोषणमें वैसेही या उसी सिद्धांतके अनुयायियोंका समय समयपर पुनरावर्तन होता रहता है। और वे विविधशास्त्र, इतिहास, कथानक आदिसे जनभावनाको परिपोषित करते रहते हैं तो समाज उन भावनाओमें रंगजाता हे, इतनाही नहीं किंतु अपनी भावी पीढियोके लियेभि उस रंगकी आनुवंशिक धारा बहादेता हैं। वह श्रद्धा विश्वास का प्रवाह फिर सहज बदलनेका नहीं; क्योंकि "गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः" मेडिया धसानही सामान्य समाजका स्वभाव हैं। उपरोक्त अटल सिद्धांत धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक प्रत्येक क्षेत्रमें अच्छी या बुरी किसीभी दशामें अपना कार्य करता रहता है। उत्थान और पतनके दो विरुद्ध किनारोंका भी एकही मूल हैं यह "विश्वास"

यह सब होते हुए भी प्रकृति संसारका चक्र कभी स्थिर नहीं रहता. यह सत्य हैं कि वह इतना धीरे अपना कार्य करता है कि उसकि गति सहजमें नहीं जानी जाती। विश्वासपर चिपके रहनेवाले मानव स्वभावकोभी "वायुर्नाव मिवाम्भसि" जलमें स्थिर पडी हुइ नावको वायु धीरे धीरे कहींकी कहीं लेजाता है के अनुसार यद्यपि प्रतित होता है कि हम अपने स्थान परही हैं, परंतु देशकालकी नवीन टक्कर जव सचेत करतीहै तव भान होता हैं कि हम कहांथे अेार कहां आगये। इसीका नामहै सहज क्रांति। संसारमें कोइ कार्य सहसा नहीं होता। इस क्रान्ति परिवर्तनकी अमोघ गति संसारमें कारणरुपसे, कुछ आगे पीछे, कितु समानभावमें चलतीही रहती है। प्रत्येक क्रान्तिके वीज अलक्ष्यरुपसे लक्ष्यमेंही पोपण पाते रहते हैं और विपाक अवस्थामें, तीव्र कर्मानुष्ठानमें अवतरित होकर परिणामके सुख दुःखमें प्रतिफलित होता हैं।

एक वह समयथा जव जनताके हृदयमें यह दृढ भावना जमी हुइथी कि "नराणां च नराधिप:" राजा इश्वरहीका रुप हैं, राजा मार सकता है, तार सकता है। राजाका अधिकार अवाध अेार असीम है। पृथ्वी राजाकी है; इसपर हमारा रहना, इससे कमाखाना अेार जीना, केवल राजाकी कृपासे हैं राजाके हितमें मर मिटना अपने लिये स्वर्गका द्वार खोलना है। यदि एकांतमेंभी कोइ राजाके कर्म पर कटु आलोचना करता तो विद्वान अेार मूर्ख सवहीको समानरुपसे इतना अखरता कि वक्ताको फटकार देनेकी शक्ति न होती तो स्वयं वहांसे उठजाते। यह भी नहीं कि उस समय राजाके लोभ, व्यभिचार, क्रूरता, कृतघ्नताके दोष प्रजाके सामनेन आतेहों। किंतु, लोग जानकरभी यही कहते कि राम राम अच्छा अच्छा राजा होकर ऐसा क्यों करते हैं। फिरभी, अपवाद छोडकर, विद्रोह भावना तो नहीं ही उठती, कदि कोई किसी को यह कह देता कि ऐसा किया वा ऐसा न किया तो तुझे दरवार (यद्यपि दरवार शब्द राजाके सभाभवनका वाचक है परंतु राजपूतानामें स्वयं राजाकोही दरवार कहनेकी रूढी है) की आण-सपथ-हैं या दुहाई है, मजाल नहीं कि कोइ उस आणका उल्लंघन कर सके। परंपरागत संस्कारोसे राजाकी महत्ता और राजभक्ति वाल्यकालहीसे लोगोंके हृदयमें जड जमाये हुएथी। इसके लिये न किसी स्कूलकी आवश्यकता थी न किसी प्रोपेगेंडाको, जनतामें इसी प्रकारकी ईश्वरदत्त राजसत्ताकी भावनासे एक विचित्र राजभक्तिका शून्य प्रवाह वहा जा रहाथा और वही प्रवाह इन राजाओं और राज्योंके अस्तित्वमें फौलादी वुनियाद रहा हैं।

रूढीप्रदत्त इस राजभक्तिकी भावनाको एक सामान्य उदाहरणसे जान सकते हैं। प्राय: ६० वर्षकी-मेरे वचपनकी स्मृतिकी वात है। जव जव राजाकी सवारी निकलनेका दिन होता तो दूर देहातों तक जनतामें राजदर्शनकी उत्कट इच्छा लहरासी जाती (जैसाकि इस समय महात्मा गांधीजी और राष्ट्रपतिके लिये होता हैं) सवारी के समय प्रत्येक घर खाली होकर राजपथ ठस जाता! ज्योंहो हाथी घोडा या

खासा महायानमें सवार होकर राजा सामनेसे गुजरते तो उस समय आवाल वृद्ध नरनारीके हृदयमें अकृत्रिम राजभक्तिका स्रोत उमड पडता। बच्चोंको गोदीमें लेकर जानेवाले, अपने प्यारे बच्चोंको जमीन पर उतार कर आप जमीनतक झुक कर प्रणाम करते और बच्चोंसेभी वैसाही कराते, देखा हैं, भीडके कारण राज पथ तक न पहुंचने वालि स्त्रियां, दूर गलिमें खडी खडी, ज्योंही छत्र चामर देखतीं वडी भक्तिसे बलैयां लेतीं, मालिककी चिरायुके लिये विविध प्रार्थना इश्वरसे करतीं।

किंतु समयने करवट वदली, प्रजापर अपने वैभव प्रदर्शनसे आतंक और आकर्षण स्थापन करनेवाली जलूसकी वे सवारियां तो आज भी होती हैं। पलटन, रिसाले, वैंड आदि साधन वढकर चटक मटक भी पहिलेसे कुछ अधिक ही हुइ हैं; परन्तु वह वात नही, लोग अवभी देखने तो जाते हैं, किंतु कौतूहल उसीढंगका है जो एक तमाशा देखनेमें होता है सवारीमें चलने वाले उमरावों सरदारो आदिके निस्तेज चहेरे, मुरझाये दिल, स्वांगसी पोशाक और घेडोकी सुस्ती स्वतःसिद्ध करती है की वे वेगारमें पकडे हुवे हैं, वोझा ढो रहे है, मुसलमानोंके ताजिया जलूसमें फिरभी शोकोत्सवकी झलक आजाती है, उतनीभी अव राजाओकी सवारीमें नहीं, समझदार लोगतो इन तमाशवीनोके जमघटमें जानाभी पसंद नही करते। अभी कुछ अरसे पहिले ऐसीही सवारी (जूलूस) में शरीक न होने पर एक वडे राज्यके चीफ जस्टीसने उस राज्यके एक उमरावके सामने प्रसंगवश कहाथाःकि लोग तमासा देखने जाते हैं और हम अपनेको तमाशा नहीं वनाने चाहते आदि। यही सोचकर जोधपुरके भूतपूर्व मुसाहिव आला म. रा. सर प्रतापसिंहजीने जोधपुरमें सवारियोका निकालनाही वंद करदिया किंतु लोगोंके विचारसे वे घाटे में ही रहे, क्योंकि इन तमाशोंकी असलियत समझनेवालोंकी संख्या अवभी सामान्य वुद्धिकी जनतामें कमही है, प्रभाव न सही, फिरभी राष्ट्रीय उत्सवोमें राजा प्रजाके सहयोग जन्य आमोदकी लहर किसी अंशमें एक दुसरेको आत्मीयभावके निकट पहुंचाती ही है जो कि राज पक्षके लिये भी स्पृहणीय है और प्रजा भी अपने राष्ट्रीय उत्सवोमें जीवन समझती है!

पहिले यह धारणा सर्वत्र ही काम कर रहीथी कि राजाके विना राज्यका रहना और मानव समाजका शांति पूर्वक चलना असंभवहो है; शरीरमें प्राणो के समान ही देशके लिये राजाकी आवश्यकता है। पृथ्वीके प्रायः समस्त भाग कुछ रुपांतरसे कभी इसी भावनाके लीला क्षेत्रथे। परंतु परिवर्तनशील प्रकृतिने पुराने पाठोंके पन्ने वदल दिये और सिखाया कि राजाकी आवश्यकता नहीं। प्रजा जनता स्वयं अपने उपर राज्य कर सकती है। लोकतन्त्र ही पूर्ण शक्ति सुख और शान्तिका निकेतन हैं। यदि जनता अपनी इच्छासे किसीको अपना राजाभी रखेतो वह स्वच्छन्द मालिकहोकर नहीं, किन्तु प्रजाकृत नियमोंके आधीन प्रतिष्ठित सेवकके नाते रह सकता है। समता स्वतन्त्रता और वन्धुत्व प्रत्येक मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार है, आदि। इस नूतन

लहरको सात समुद्रभी न रोक सके, उससे भारतभी अछुता न रहा। संयोगोंनेभी प्रकृतिका साथ दिया। इस्ट इण्डिया कंपनी-चन्द विलायती व्यापारियोंके गुट्ट-ने शासन चलाकर बृटिश भारतीय जनताकी उस पुराने पाठकी धारणाको तोड वहाइ। किंतु राजपूताने की प्रजा लोकतंत्रके स्पष्ट वातावरणसे दूर थी। आज कलके शब्दोंमें राजपूतानेका वह अंधेरा युग राजाओंके लिये गनीमत था।

जिस लहरके सामने हजारो कोसकी दूरीभी तुच्छथी वह पडोसमें या यों कहें, हमारे घरके द्वारपर आकर कुंठीत कैसे होती। फिरभी बृटीश भारत और राज-स्थानमें अन्तर बनाही रहा है और वह है राजा और प्रजाका सान्निध्य और तजन्य आत्मीयभाव-अपनापन-के संस्कारोंका अस्तित्व, इतना सचहैकि लोगोंके हृदयमें घुसकर टटोलने पर वह धर्मसम्पुट राजभक्ति तो अब शायदही कहीं मिलेगी, जबानी जमाखर्च दूसरी बात है.

प्रेम और प्रभाव, ये दो भाव शिला ये राज सत्ताकी बुनियादमे प्रधान है। उनमेंसे प्रेमतो राजा और प्रजाके स्वार्थमे जबसे एकता मिटी तभीसे गया, "प्रभाव" भी गया। उधर बृटिश भारतसे भी गया, इधर देशी राज्योंसे भी गया, बृटिश भारतसे जानेका कारण हैं. समय समय पर कियेगये असत्य वादोंका घटस्फोट असत्य सदा निर्बलताका प्रतीक होताही है-एवं साम्राज्य शाहीका, अपनी निःशस्त्र तथापि अहिंसा और सत्यके बलसे बलीमान प्रजापर घोर दमनका नाच बताकर थक बेठना और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओंमें दृढ़ नीतिपर विवश होना। इधर देशी राज्योंमें कारण हुआ, स्वराज्यकी भावनाका अखंड भारतमें समान रुपसे फैलते जानेके अतिरिक्त, अनेक राजा महाराजा साम्राज्य सत्ताके द्वारा-नौकरशाहीकी इच्छा पर-राज्यच्युत, अधिकार च्युत करा दिये जाते और अंग्रेज अधिकारियोंके आनेपर उन्हे रिझानेके लिये की जानेवाली दौडधूपको प्रत्यक्ष देखनेसे प्रजाके हृदयमें प्रथम कल्पित राजाओंका वह स्वतंत्र एवं समर्थ रूप न रहना इसके लिये राजालोग सिर्फ उतनेही दोषी है जितनाकि घुडदौडकी शिकार (Pig sticking) मे सूअरको अपनी रकावके नीचे घुसनेका मोका देकर स्वयं माराजाने वाला शिकारी सवार। फिरभी यदि राजगण देश कालानुसार दूरदर्शितासे प्रेम सहित अपनी प्रजाके साथ जनहित मूलक सत्य व्यवहार करेंतो राज्योंका जीवन बढनेकी आशा रखी जा सकती हैं! अभीतक उन्होने अपनी प्रजाके विश्वास और आत्मीय भावनाको सर्वथा खो नही दिया है! कोटाके वर्तमान महाराव उम्मेद सिंहजी एवं ऐसेही कुछ अन्य नरेश इस क्षण तक इसके प्रमाण है!

—क्रमशः

चारण-वाणी

चारणों की स्फुट कविता अधिकांश व्यक्तिगत ही सुनने में आती है। यही क्यों, जिस काल की चारण-कविता प्राप्त होती है उस काल की अधिकांश अन्य जातीय कविता भी कदाचित् व्यक्तिगत ही मिलेगी। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि चारणोंने अन्य विषयों पर कविता की ही नहीं। और जो व्यक्तिगत कविता की गई है, वह भी प्रायः वीर और वदान्य व्यक्ति के लिये ही की गई है जिस के श्रवण या पाठ से लोगों के चित्तमें इन मानवोचित दो गुणों के प्रति अभिरुचि उत्पन्न होती है। आज भी महात्मा गांधी एवं वीराग्रणी जवाहरलालजी आदि लोक नायकों की व्यक्तिगत कविता कर के कई चारणेतर कुशल काव्यलेखक अपनी प्रतिभा का परिचय देते हैं और इससे जन समुदायका हित ही साधन होता है। यह सब होते हुए भी आजकल शिक्षित जनता किसी व्यक्ति का यशोगान सुनने या पढने की अपेक्षा किसी स्वतंत्र विषय पर की गई कविता को अधिक रुचि से पढती या सुनती है। अतः हमारा विचार है कि "चारण" में "चारण-वाणी" नामक एक स्तम्भ रहे जिसमें चारणों की वे अच्छी कवितायें जो व्यक्तिगत नहीं हैं, छपती रहें। इस प्रकार चारणों की एसी कविता का एक अच्छा संग्रह हो जाने की आशा है। जब एसी कविता इस प्रकार पर्याप्त उपलब्ध हो जायगी तो उसे पुस्तक रूप में छपवाया जा सकेगा जिस से लोक रंजन लोकहित के साथ ही उन कवियों की स्मृति भी सुरक्षित हो जायगी। किन्तु यह तभी संभव है जब वे सब सज्जन जिनके पास कुछ कविता संग्रह हो उसे टटोलें और उसमें से ढूंढ २ कर एसी कविता स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजने का कष्ट स्वीकार करें। आशा है हमारा यह विचार सबको पसंद आवेगा और आगामी अंक के लिये एसी कविता की हमें कमी न रहेगी। साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि कविता के साथ ही कविका नाम शाखा व गांव तथा हो सके तो कुछ जीवन वृत्तान्त भी भेज देने की कृपा की जाय।

इसी अंक से कुछ एसी कविता जो कदाचित् कहीं छपी नहीं है उस से हम "चारण-वाणी" का प्रारंभ करते हैं।

ओपाजी आढाकी कविता

ओपाजी आढा की कविता जितनी सरल है उतनी ही प्रासादिक एवं भावपूर्ण है। प्रायः इनकी कविता पारलौकिक ही सुनने में आती है। किन्तु कुछ छप्पय और "त्याग" लेने वालों को मीठी चुटकी लेता हुआ एक उपदेश प्रद "गीत" भी सुना है, इस से अनुमान होता है कि उन्होंने कुछ सामायिक काव्य

रचना भी की होगी। अतः जिन सज्जनों के पास ओपाजी की बनाई हुई जो भी कविता हो वे कृपा कर भेज दें। हमारे पास उनके केवल दस-बीस "गीत" हैं। किन्तु उनकी कुछ 'तुकों' या शब्दों के अर्थ ठीक २ समझ में नहीं आते इसलिये जिनके पास "गीत" ही हों वे गीत भी स्पष्ट अक्षरों में लिख कर भेज दें ताकि कहीं पाठभेद से भी अर्थ की स्पष्टता संभव हो। अन्यत्र प्रकाशित तीन "गीतों" में भी पहले गीत के तीसरे 'दोहे' के प्रथम दो चरण, चौथे 'दोहे' का अंतिम चरण, पांचवे का दूसरा व तीसरा चरण और आठवें "दोहे" का प्रथम चरण, संदिग्ध अर्थ का है, अतः डिंगल के जानकार महानुभाव या इन चरणों को शुद्ध जानने वाले सज्जन इन चरणों के अर्थ को या आगे भी ऐसे संदिग्ध अर्थ को स्पष्ट कर देने अथवा अशुद्ध को शुद्ध कर भेजने की कृपा करेंगे तो उनका आभार माना जायगा।

ओपाजी के वंशज या और कोई सरदार ओपाजी का जीवन वृत्तांत उनके जन्म एवं स्वर्गवास की प्रामाणिक तिथियों सहित सविस्तार लिख भेजेंगे तो बड़ी कृपा होगी।



चारण-वाणी

परम हरिभक्त स्व. श्री. ओपाजी आढा (पेशुवा-सिरोही) कृत—

गीत

१

दुलभ देह पाई भमे भाटके घणा दिन, हर समर हर समर म फर हूलो।
कपट रा मूळ अन्तर तणा काळिया, भाळिया तिके दिन कई भूलो ॥ १ ॥

वसैं ग्रभवास दस मास ऊंधे वदन, भेटतो दने मळ-मूत्र भेळा।
अवरके नीसरूं तरे कहतोइ यूं, वीसरूं नहीं हर नमख वेळा ॥ २ ॥

जां नरां पाळिया सँकट विखमी जिके, मनख रा पामिया जनम मीठा।
नीत रा झवरका याद आवे नहीं, दूधरा टवरका नीठ दीठा ॥ ३ ॥

पांतरे गयो दुख, खीर पीधां पहल, हां करै हमैं तूं धान हलियो।
पांखियो दूध, रोटा करै पछाडें, मनख थी चोर जिम लाभ मळियो ॥ ४ ॥

नार परणूं नवी करूं मंदर नवां, आथ जोडे रहूं क्रोध आडे।
आणसी अरोहतो जणे इम ओरड़ी, गोरड़ी तणे कस नेम गाडे ॥ ५ ॥

सवारथ चढारो भूल सजियो नहीं, अढारो सवारथ कीध आंधे ।
चोळ रंग हुओ अंतर तणो चापड़ो, वापड़ो नत नवी आस बांधे ॥ ६ ॥
कठे गो बाप ने गयो दादो कठे, खड़ग जमराण रै जको खूटा ।
उयां बीती जका थने दन आवसी, फोड़ मत हिया री हियाफूटा ॥ ७ ॥
कसी कोइ म कीजो कोय अवगुण कदे, बुहां वैठां तजो वात वस री ।
"ओप किव" कहै मरदां! प्रभू ओळखो, मानखो सुधारो होय मसरी ॥८॥

२

मूठी जीत लो जमारो नरां! काय ग्रहो काठी मूठी;
पुन्न किया गांठी मूठी साबतो प्रमाण ।
मोटो धणी याद करो भूटी बातां लागो मती;
मूठी धूळ तणीं थांरी देह रो मँडाण ॥ १ ॥

हीर चीर हेमतार घड़ी में बिराणा होसी;
लाखां द्रव धंधो सब हाथी घोड़ा लांठ ।
धंधे भूठै लागा नरां! भार रा कहावौ धणी;
गार रा मणा रै लागी वायरा री गांठ ॥ २ ॥

हूं करूं हूं करूं करे गाढा टेढ़ा कई हालो;
नमेख में गाढा टेढ़ा करै दीनानाथ ।
मेदनी आकाश दोलूं काळ तणा डाढा मोटा;
हेळ मात्र गंदी काया साड़ा तीन हाथ ॥ ३ ॥

वेग[1] तेग धपाड़ो जिमाड़ो कहै सारी दुनी;
मीठा वोलो सांई भजो राखो मोटा मन्न ।
जाय आया बांधी मूठी खूटी मूठी परा जासो;
"ओपो आढो" कहै नरां! बांटो मूठी अन्न ॥ ४ ॥

---

१ "देग" (होना चाहिये) —प्रकाशक, "चारण"

३

मन जाणै चढ़ूं हाथियां माथै, खुर धासंतां जनम खुवै ।
नर री चींती बात न होवे, हर री चींती बात हुवै ॥ १ ॥

मन जाणै पदमण हूं माणूं, गो बंद बांधै पथरे गळै ।
मांडण हारे लेख मांडिया, मेटण वालो कवण मळै ॥ २ ॥

यूं जाणै पकवान अरोगूं, धापर मिळै न लूको धांन ।
हचियो खाय काय हींचोळा, भोळा रे रचियो भगवान ॥ ३ ॥

दिल में जाणै पांव दवाऊं, औरां रा पग दावै आप ।
कळपै कसूं कसूं मन कोपै, प्राणी लेख तणो परताप ॥ ४ ॥

चित्त में जाणै हुकम चलाऊं, हुकम तणै वस नार न होय ।
सांमा चा[1] लेख लिख्या उण सांई, काचा करण न दीसै कोय ॥ ५ ॥

धापै मन वैठां धोळाहर, तापै सूनो ढूंढ तठै ।
आदू रीत असी है "ओपा"। कुटी लिखी सो महल कठै ! ॥ ६ ॥

(क्रमशः)

अपने समय के सुप्रसिद्ध विद्वान्, कवि एवं इतिहास वेत्ता स्व. कविराजा
वांकीदासजी आशिया (जोधपुर) कृत—

गीत

१

वस राखो जीभ कहै इम "बांको", कड़वा बोल्यां प्रभत कसी ।
लोह तणी तरवार न लागै, जीभ तणी तरवार जसी ॥ १ ॥

भाई ! अगे अगेरे भारथ, हेकण जीह प्रभाव हुआ ।
मन मिळियोड़ा जिके माढुवां, जीभ करै खिण मांह जुवा ॥ २ ॥

---

१ साचा (होना चाहिये) —प्रकाशक, "चारण"

मैला मनख वचन रै माथै, बात वणाय करै विसतार ।
बैठ सभा विच मूंढा बारै, बचन काढणौ सोच विचार ॥ ३ ॥

मन में फेर धणो री माळा, पकड़ै नहँ जमदूत पलौ ।
मिळै नहीं बकणै सूं माया, भाया ! कम बोलणो भलौ ॥ ४ ॥

२

नहँ पंचां जाय लाकड़ी नांकै, घणौ जोर सजगीर घणा ।
चरचा करै कचेड़ी चढ़िया, नीर ऊतरै तिकां नरां ॥ १ ॥

वणज-बँभौ हळ-हांसल विगड़ै, कुवद कमाई जगत कहै ।
झगड़ो लागौ जिकां भूंपड़ां, रगड़ौ तलवां तणौ रहै ॥ २ ॥

महियंळ कुशळ पराये मूंढै, सूंक हंमेस बांटणी सेस ।
कजिया रौ कीजै मुँह काळौ, कजिया में नित नवा कलेस ॥ ३ ॥

राखै संप जिके धन राखै, "बांको" आखै साच वधी ।
न्याव निवेड़ौ तिके निवेड़ो, राज चढयां के तणी रधी ॥ ४ ॥

३

कुण जाय जिकण ठाली कोटड़ी, खान पान नहँ लियै खवर ।
जिण ग्वाड़ी देखर जग जावै, करवौ पावै कोड कर ॥ १ ॥

डोंवी पौळ दीसती डाकण, रोटी देण तलाक रही ।
फळसौ दीसै घणौ फूटड़ौ, पोखीजै जिण माँह पही ॥ २ ॥

आयां मिळै नहीं अन आदर, धवळहरां अळगा सूं धोक ।
क्यावर रा भूंपा कांटाळा, लै विसराम बटाऊ लोक ॥ ३ ॥

रोटी–राव–खाटलौ राली, मिळियां राखौ नकौ मणा ।
गाम धणी तो पाछै गणियै, घर रा धणियां रंग घणा ॥ ४ ॥

स्व. कविवर आशिया जवानसिंहजी (मेंगटिया-मेवाड) कृत—

मनहर

१

होकर प्रमादवश मानै या न मानै तोहू,
जानै जिय जैसी कहै, झूंठ न प्रचार का ।
शासन विहित लोक लाज सौं ग्रहित सदा,
पक्षपात रहित, व्है सहित विचार का ॥
आदि अवसान मध्य नेक सब कहैं नर,
एकहू न होय जामें वेल अनाचार का ।
सेवक का काम यही उचित सलाह देना,
करना कराना सो तो काम सरकार का ॥ १ ॥

२

उचित अनुचित को राखत विचार वड़े,
स्यार छांडि, सिंह वार करत करीन पै ।
सेस सहै भार, वारि जरै वड़वागनि तैं,
तदपि प्रहारत ना विपति परीन पै ॥
निवल न गाहैं, राहैं चलत स्वधर्म धीर,
युद्ध को उमाहैं वीर सवल अरीन पै ।
नृपति कुलीन, मन करैं ना मलीन कदा,
आश्रितन-दीन की जमीन उदकी न पै ॥ १ ॥

कविरत्न ठाकुर केसरीसिंहजी वारहठ (कोटा) कृत—

शुभेच्छु चावुक-स्पर्श

(वर्तमान राजाओंको लक्ष्य करके)

सोरठा

अवधी अव ओछीह; सोचीजै सह भूपत्यां !
पड़गी पख पोचीह; नीत सलोची नहँ रखी ॥ १ ॥

भावार्थ

भूपतियो ! सोचिये, समय कम रह गया है। आपका पक्ष निर्बल हो गया है क्योंकि आपने अपनी नीति को लोचदार (परिस्थिति अनुसार) नहीं रक्खी ॥ १ ॥

साझ्यो बणकां साज; रजवट बट खोवे रधू ।
रहसी नहँ ये राज; आज लगा जिण विध रह्या ॥ २ ॥

आपने राजपूती शान को खोकर बनियापन का रूप सज लिया है; परन्तु अबतक जिस प्रकार रहे वैसे अब ये राज्य नहीं रहेंगे ॥ २ ॥

दुख सह झेले देह; प्रजा पूत सम पाळता ।
(अब) झूंट प्रपंच सजेह; लूटीजै घर ही लखो ॥ ३ ॥

आप ही देखिये; पहले सब तरहके दुःख अपने शिर लेकर प्रजाका पुत्रवत् आप पालन करते थे और अब झूंठ एवं प्रपंचों के द्वारा उसके घर लूटे जाते हैं ॥ ३ ॥

हो न पराया, हेत; राजां यो घर राजरो ।
खाण लगा क्यूं खेत; वाड रूप वणिया रह्या ॥ ४ ॥

आप गैर नहीं हैं, इसलिये कहते हैं कि राजाओ ! यह घर आप ही का है । आप जिस खेत के वाडरूप बने रहे थे उसीको क्यों खाने लगे हैं ? ॥ ४ ॥

पग पग जरवां पीट; नीठ आज लग यूं निभी ।
पण अब परजा दीठ; खुली मींट संकर किना ॥ ५ ॥

पैर २ पर जूते खाकर भी अब तक ज्यों त्यों कर प्रजा आपके साथ निभती रही । परन्तु अब उसका ज्ञानचक्षु शंकरकी पलक के समान खुल गया है ॥ ५ ॥

परजा जितै अजाण; महिप हालिया मन-मतै ।
वरतै मिन्त प्रमाण; पँदरह वरसां पूतड़ो ॥ ६ ॥

प्रजा जब तक अबोध थी, आप लोग मनमाने चलते रहे। लेकिन, ख़याल रखिये, होशियार होने पर तो पुत्र के साथ भी मित्र के समान व्यवहार करना उचित होता है ॥ ६ ॥

निरभै हित निरभेळ; जे नर चाहै राज रो।
बस चुगलां इण वेळ; जेल मांह पटको जिकां ॥ ७ ॥

जो लोग बिना किसी लाग लपेटके निर्भय होकर राज्य का हित-साधन चाहते हैं, उनको आप चुगलखोरों की बातों में आकर जेल में ठूंस देते हो ॥ ७ ॥

नभ सोभा निरखाय; ऊंचा नेणां आप रा।
(पण) अब जहाज अथड़ाय, आगे भाळो अधपत्यां ! ॥ ८ ॥

आपकी ऊंची निगाहें, ऊपर आकाश की शोभा देख रही हैं; किन्तु अधिपतियो ! जरा आगे देखो, आपका जहाज अब टकरानेवाला है ॥ ८ ॥

ऊपर रै आधार; पग समेट झूलै पड़्या।
की जाणै करतार; (कद) खसक पड़ै खतिया कड़ा ॥ ९ ॥

ऊपरके सहारे के बलपर आप पैर सिकोड़ कर झूले में पड़े हुए हो, लेकिन जिन जंग खाये हुए कड़ों के भरोसे पर आप हो, वे ईश्वर जाने, न मालूम कब खिसक पड़ेंगे—कुछ पता है ? ॥ ९ ॥

जीवन अहळो ज़ाय; सहल सिकार सलाम में।
मांटी मौज उडाय; परजा बिलखै पेट नै ॥ १० ॥

आपकी जिन्दगी दुआ-सलाम, सैर-सपाटे और शिकारमें बरबाद हो रही है, जोरावर लोग मौज उडा रहे हैं, और उधर प्रजा उदर-पूर्ति के लिये बिलख रही है ॥ १० ॥

हुकमत गी पर हात; घर में खूणै घालिया।
बालक भी या बात; जाण चुक्या जग माँहिने ॥ ११ ॥

अब यह बात बच्चे तक जान चुके हैं कि आपकी हकूमत लोगों के हाथ में चली गई है और आप अपने ही घर के कोने में बिठा दिये गये हो ॥ ११ ॥

हाथ्यां बैठ हगाम; किना करै कठपूतलीं ।
देखीजै बिन दाम, अजब तमाशो आज रो ॥ १२ ॥

आजकल हाथियों पर सवार होकर जो आपके जुलूस निकलते हैं, वे लोगों की निगाह में कठपुतली के खेल के समान हैं, और विना पैसों का तमाशा ख़याल किया जाता है ॥ १२ ॥

दोहा

साद प्रजारो सींवियो; फिट कानूनां फांस ।
ज्वालामुख ज्यूं जाणजे; सो धुँधवायो सास ॥ १३ ॥

वाहियात कानूनों में फांस कर आपने प्रजा की आवाज को सीं तो दिया है; परन्तु ध्यान रखना, वह घुटा हुआ श्वास ज्वालामुखी साबित होगा ॥ १३ ॥

कै जंगल रणवास कै; कै उडतां आकास ।
जाय जमारो राज रो; म्हांके प्रजा निसास ॥ १४ ॥

आपका जीवन जंगल में, जनाने में या आकाश-विचरण में बीतता है और प्रजा यह देखर कर निःश्वास छोड़ती है! ॥१४॥

रूस-चीन-जरमन-तुरक; आदि हुता पतसाह ।
वे सिंहासण कित गया; सोचीजै नरनाह ॥ १५ ॥

नरपतियो! जरा सोचो, रुस, चीन, जर्मनी और टर्की आदि देशो में जो शाहंशाह थे उनके सिंहासन आज कहां हैं? ॥ १५ ॥

परजा ही पलटाविया, अणचींत्या बिन फौज ।
काल्ह जिके धर गंजता; आज मिळै नहँ खोज ॥१६॥

कल तक जो पृथ्वी को रौंद रहे थे उनके तख्तों को प्रजाने ही अकस्मात् और विना फ़ौज़-फांटे के बदल दिये और आज उनका पता भी नहीं है! ॥ १६ ॥

समै पलटतां जेज नहँ; जठै प्रजा जुँझलाय ।
धर-धूजण वस की चलै, पळ में महल ढहाय ॥१६॥

जहां प्रजा झुंझला उठती है तो समय को बदलते देर नही लगती। भूकम्प होने पर क्या किसीका कुछ वश चल सकता है–क्षणभर में महल ढह पडते हैं! ॥१६॥

सुखी समृद्ध ब्रिटानिया; जॉरज-सुतने जोय ।
ऊहिज मारग आदरौ, सुख री नींदां सोय ॥१७॥

खूब सुख निद्रा ले लेनेके वाद अवतो आपको भी उचित है कि आप समृद्ध और सुखी ब्रिटैनके जॉर्ज-तनयको देखो और उसी मार्ग को ग्रहण करो। ॥१७॥

आछा कामां ऊधमौ; धणियां ! निज धन रास ।
नहँ तो नेड़ा आवणा; महल मजूरां वास ॥१८॥

स्वामियो! अपनी धन-राशिको उत्तम कामों में खुले दिल से खर्च करो वरना इन महलों में मज़दूरों के निवास के दिन नज़दिक प्रतीत होते हैं। ॥१८॥

सोरठा

पितु-सम ताजी प्रीत; कर राजी परजा करण ।
निभ जाभी सुध नीत; है वाजी हातां हणा ॥१९॥

पिता के समान अभिनव प्रीति से प्रजा को खुश करनेके लियेआप शुद्ध उत्तम नीति का अवलम्बन करो तो अव भी वाजी आपके हाथ में है ॥१६॥

नर सुख गाफल नींद; जाणूं कड़वौ जागणो ।
(पण) वेलां चँवरी बींद; जोग हुवै जंभेड़णो ॥२०॥

जानता हूँ कि गफ़लतकी नींद के सुख में मनुष्य को जगाना वहुत बुरा मालूम होता है। किन्तु क्या सभी नहीं जानते कि लग्न-समय पर तो दूल्हे को झटके देकर भी जगाना पडता है! ॥२०॥

खत्रवट मांहे खोट; देखे दुख पावै दुसह ।
(जंद) चारण चुभती चोट; हिरदै सबदां री हणै ॥२१॥

चारण आपके हृदय पर तभी अपने शब्दों की चुभती हुई चोट पहुँचाता है जब उसे आपके क्षात्र-धर्म में कमी नजर आती है और उससे उसको असह्य वेदना होती है। ॥२१॥

नृप ! नहँ व्हो नाराज, स्वीकारे सत सांपरत ।

आखी ईहग आज, हित री वातां हेत थी ॥२२॥

राजाओ ! नाराज मत हो जाना। प्रत्यक्ष सत्य को स्वीकार करके ही आपके लाभकी बातें आज प्रेमके वश हो चारण ने कह दी हैं। ॥२२॥

स्तुति

निबल के बल हो श्री जगदम्ब ।

अशरणशरण अधन के धन हो आरत के अवलम्ब ।

करे अकंटक जन, नसि वंकट संकट के निकुरम्ब ॥

निबलके.... .... ॥१॥

दुखी देव लखि सदय पधारे मारे शुम्भ निशुम्भ ।

आरतजन पै करुणा धारे, हारे क्लेश कदम्ब ॥

निबलके.... .... ॥२॥

दुय कर करैं कहा, जब रक्षक बाहू बीस प्रलम्ब ।

है विलम्ब सुमिरन में राउर, करुणा में न विलम्ब ॥

निबलके.... .... ॥३॥

तव सुदृष्टि में विघ्न कि व्यापैं, हे जननी हेरम्ब !
पालहि का न पतित पावन व्रत "अक्षय" हित अविलम्ब ॥

निवलके.... .... ॥४॥

—आर्यकुमार अक्षयसिंह रत्नू, अलवर

कविवर ठा० सा० श्री किशोरसिंहजी के स्वर्गवास पर शोकोद्गार

(१)

[कवित]

कारक स्वजातिन की सेवा को अथाक कर्म,
धोरी पुरातत्त्व-रथ धारक धुरा गयो ।
ध्वांत में स्वतंत्र मंत्रदायक महीपन कौं,
दीपक समीर काल तंत्र में दुरा गयो ।
गौरव 'हमीर ज्ञाति युवक-जनितृ[1] वनि,
शत्रुजीत उन्नति को अंकुर स्फुरा गयो ।
अकारण मित्र श्री किशोर प्रतिभा[2] को चित्र,
चिंतामणि चारण चरित्र को युरा गयो ॥१॥
पुहुमि प्रसिद्ध सिद्ध करिकै दिखायो जिन,
क्षत्रिय-समाज मध्य राज पटियाला पुर ।
जाके बल विपुल विकास भो स्वजातिन को,
उलट[3] अरातिन कौं सैल जिमि साल्यो उर ।

१–उत्पादक । २–प्रतिक्षण नया नया प्रकट करनेवाली बुद्धि । ३–विरुद्ध उठकर ।

काव्य-कृति कोविंद 'हमीर' श्रीकिशोर वर्य,
नीक[1] निरभीक[2] स्थिर धी[3] के धुर्य[4] कीन तुर[5]।
टूटयो आज ज्ञाति-धनु-रौदा[6] हाय! काल-रूप,—
हस्थिन के हौदा चढि सौदा गो सभा में सुर ॥२॥
—निवेदक, कवि श्री हमीरदानजी लाखाजी मोतीसर,
पालणपुर.

(२)

[कवित]

जाति पथ-उन्नति सुधारक सिधार गयो,
हाहाकार! भयो, परी दिल में दरार है।
आज सोक-सिंधु महँ बूड़िगो समाज निज
नाव को तरैया हाय! गयो नाक-द्वार है।
मरुधर-मेवार औ ढुंढार-कच्छ-काठीवार—
वासी चारनन-तन झरत अँगार हैं।
'जैमल' स्वजाति को करेजो हो किसोर कवि,
ताहि छीन कीनी ईस! क्रूरता अपार है ॥ १ ॥
नागर सभा को हो सुसागर धी-साहित को
कैवट कुसल हुतो जाति के जहाज को।
चारनन-तारक प्रचारक त्यैां 'चारन' को
तम को नसावन बचैया कुल-लाज को।
दिल दरियाव पाज सर इतिहासहू को
पंडित प्रखर त्यैां करैया देस-काज को।
"जैमल" जगत-स्वामी! व्हैके गुन-ग्रामी तैंने
काहे कियो अंत वा किसोर कविराज को! ॥२॥
—निवेदक, श्री जयमलदानजी शिवदानजी पायक,
लोंद्राणी (कच्छ)

१-श्रेष्ट। २-निर्भिक-भयरहित। ३-बुद्धि। ४-धारण करनेवाले। ५-शीघ्र। ६-प्रत्यंचा।



स्व. कविवर ठाकुर किशोरसिंह जी सा. सौदा, एम. आर. ए. एस.
भूतपूर्व संपादक, "चारण"

जन्म	मृत्यु
विक्रम संवत् १९३६	विक्रम संवत् १९९४
आश्विन शुक्ल १४	आश्विन शु. पूर्णिमा
शाहपुरा (मेवाड) में	**पटियाला (पंजाब) में**
	सहसा हृदय की गति रुक जानेसे.

[श्री खेतसिंहजी मिश्रण के बंधु-कृत्य से]



लाडकड़ो वर

रचयिता

भक्तकवि दूलाभाई भायाभाई काग

बहु क्रोड़ कुमार जुवान थया,
नहीं घंटी छोडावणहार थया;
हवे हाली शके नहीं हाथड़िया.
ग्रही मात नी वात विचार करी,
वर राज हज़ार तैयार थया;
सुणी मांडवड़ा नी ज्यां सामगरी,
लगनो लखिया पछीं नासी गया. ॥ १ ॥

वरवा तणां भीषम नीम ग्रह्यां,
एणे मात हिते बहु दुःख सह्यां;
एनां हाड ने चांम घसाइ रह्यां.
बळती दळती जेइ मावड़ली,
एना आतम ने सळगावी रह्यां;
जणनारी ना मात ने कारणिये,
न सहाय एवां अपमान सह्यां. ॥२॥

वर पांत्रीस कोड़ नो तारक छे,
भुव भार अपार उतारक छे;
सत धारक पाप संहारक छे.
निज शिश नुं श्रीफल हाथ लीधुं,
शरणाई ने ढोल ना शोर थया;
पतितो तणो पावन आ नवशा*,
एणे पीठी-नां केसरियां करियां. ॥३॥

एने पोंखण काळ तणा गण छे,
एनो मांडवड़ो ए महा रण छे.

---

*આ શબ્દ ફારસી ભાષાનો છે, એનો અર્થ વરરાજા થાય છે.

तलवारो तणा एने तोरण छे.
जानीवास तणा ए उतारा तणी,
महेमानीमां जेल तणां घर छे;
ललकारो सहु एनां गीतड़ियां,
हिंद मात नो लाडकड़ो वर छे. ॥४॥

दिन रात धखेल हती तपती,
एणे कैंक नमावी दीधा नृपति;
एवी नाळ जंजाळ कराळ हती.
भयकार मुखे विकराळ हती,
झगती जम आंख शी जामगरी;
एवी तोपने मोढड़े बाथ भरी,
पछी हाकल दागववानी करी. ॥५॥

सळगे एवी दारुनी शेरी हती,
एमां आग लगारेक झेरी हती;
भेळी वायुना कोप नी ले'री हती.
वर कैंक थया पण भागी गया,
नभ मंडल मां एनी झाळ गई;
निरखी मन मोहन मूरतीओ,
उतपात नी आग ओलाइ गई ! ॥६॥

एक काळनो थाळ त्यां पीरसियो,
विष वाळो कंसार ए खाइ गयो;
पछीं पेटड़िया मां पचावी गयो.
सुखकारी हती ने कुमारी हती,
हती नामे स्वतंतरता सुंदरी;
एने मोहनी मोहननी प्रगटी,
वरमाळ हसी कंठ मांय धरी. ॥७॥



स्वागत



(कर्ता : आर्यकुमार अक्षयसिंहजी रत्नू—अलवर)

समागत स्वागत चारण—पत्र ॥

बहुत बिछुड़े, अब फिर पगु धार ।
सँभालो निज भुज भार—सुधार ॥
तुम्हीं इस युग के महदाधार ।
करो हम पतितों का उद्धार ॥

चाहते हम तो छाया—छत्र । समागत स्वागत चारण—पत्र ॥ १ ॥

समझ कर गन्ता देश विदेश ।
प्रकाशित करते दूरन्देश ॥
वही पूरा कर दो उद्देश ।
जाति जागृति का शुचि संदेश ॥

कृपा कर पहुँचा दो सर्वत्र । समागत स्वागत चारण—पत्र ॥ २ ॥

तुम्हारा वह किशोरपन रंग ।
ले गया वह किशोर ही संग !
जमेगा तो भी कुछ तो ढंग ।
छिड़ेगा उन्नति—कथा प्रसंग ॥

इसीसे उत्सुक " अक्षय " अत्र । समागत स्वागत चारण—पत्र ॥ ३ ॥



हम "चारन" कैसे हैं ?

(लेखक : शंकरदान जेठीभाई देथा, लींबड़ी)

कवित

क्रीतपूत-कृत्रिम-कुक्षत्रि व्याल—जाल वाकें,
अति दुःखकारी हम लगे उरगारी हैं।
क्षात्र-धर्म-पथ के पथिक शुद्ध क्षत्रिन कें,
संजीवनी-मंत्र जैसे हम सुखकारी हैं।
शंकर भनंत जाके अंतर में निरंतर,
सुर—गुरु जैसे हम पूज्य—प्रिय भारी हैं।
ऐसे देव-अंशी जो विशुद्ध राज-वंशी ताके,
पुनित—पुराने हम चारन पुजारी हैं॥ १ ॥

सम्वाद

श्री० अलवरेन्द्रकी महती उदारता

(लेखक : आर्यकुमार अक्षयसिंहजी रत्नू, मंत्री, अलवर राज्य चारण-मण्डल)

श्रीमान् महाराजाधिराज श्री. सवाई तेजसिंहजी वीरेन्द्र शिरोमणि अलवरेंद्र देव पहिले से ही चारण जाति पर परम प्रेम रखते हैं। सिंहासनारोहण के पश्चात् श्रीमान् ने बलदेवदानजी कविया (सेवापुरा), जयसिंहजी कविया, करनीदानजी देथल (नेतड़वास) व रामसिंहजी रत्नू (थमावली) आदि सज्जनों को उत्तमोत्तम पदों पर राज्यसेवा में नियुक्त करने की अनुकम्पा कर अपने उस प्रेम का विशेष परिचय प्रदान किया है और ता. २२-५-३८ को श्रीमान् चिरंजीवी महाराज कुमार साहिब के शुभ जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में होने वाले दरबार में कँवर बलदेवदानजी कविया को ५०) मासिक की वेतनोन्नति प्रदान की एवं इन्हें तथा बारहठ बलवन्तसिंहजी आदि चार स्थानीय महानुभावों को पुरस्कारादि से सम्मानित किया गया है।

इसी शुभ प्रसंग पर की गई चारण—छात्रालय की स्थापना की प्रार्थना पर स्वीकृति फरमाई गई और छात्रालय बनाने के लिये रघुाजत बोर्डिंग हाउस के

पासकी भूमि प्रदान फरमा रहे हैं और छात्रवृत्तियों आदि सहायता के लिये उदार विचार होकर श्रीमान् के करकमलों से इस छात्रालय के शिलान्यास एवं समय पर इसके उद्‌घाटन का पुण्यप्रसंग शीघ्र आनेकी आशा है।

श्री. नरुवंशावतंस का यह परोपकारपूर्ण कार्य स्वर्णाक्षरों से उल्लेखनीय होगा और इसके लिये अलवरीय चारण जाति सदा आभारी रहेगी।

श्री. अलवरेन्द्र का चारण-प्रेम अपने राज्य के चारणों तक ही सीमित नहीं है प्रत्युत समस्त चारण जाति के प्रति वही उदारतापूर्ण भाव है। इसका प्रमाण हमें श्रीमान् के उक्त प्रसंग पर जोधपुर के श्री उमेद-चारण-छात्रालय को ५००) की सहायता प्रेषित करने से वखूबी प्राप्त होता है।

जगदम्बा ऐसे उदारचेता प्रजा-प्रिय नरेश्वर को सपरिवार सुखी एवंचिरायु रक्खे।

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय, उदयपुर

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय का उद्‌घाटन श्रीमान् आर्य-कुल-कमल-दिवाकर के कर-कमलों द्वारा गत वर्ष हुआ और राजकीय सहायता भी प्रदान की गई। छात्रालय-फंड में इस समय करीव २ वारह तेरह हजार रुपये हैं जिनमें से दश हजार तो सूद पर राज्य की मारफत दिये हुए हैं और शेष दो तीन हजार रुपये खेमपुर ठा. करणीदानजी दधिवाडिया के पास विना व्याज पड़े हुए हैं (?) छात्रालय की स्थायी मासिक आय कुल मिलाकर कम से कम अस्सी नव्वे रुपये होगी और खर्च पचास का। ऐसी हालत में मासिक वचत का छात्रों के भोजन की फीस में कमी करने के लिये उपयोग में लाने को उक्त ठाकुर साहिब को कई वार कहा गया क्योंकि छात्रालय का प्रबंध आजकल इन्हींके हाथमें है और रुपये पैसे भी इन्हींके पास। परन्तु न मालूम क्यों इस आवश्यक्ता की ओर वे जान बूझ कर भी ध्यान नहीं दे रहे हैं। विना भोजन फीस में कमी किये छात्रों की तादाद नहीं वढेगी और फलतः छात्रालय का लाभ जैसा हो सकता है न होगा। क्या, खेमपुर ठा. सा. अपने कर्तव्य को समझ कर अपनी ज़िम्मेवरी को पूर्ण करेंगे?

—जानकार

"श्री करनी चरित्र" छप गया

"चारण" के स्वर्गीय सम्पादक विद्वद्वर्य ठा. किशोरसिंहजी सौदा द्वारा सम्पादित योग माया श्री करनीजी की जीवनी छप गई है। मूल्य २॥) ढाई रुपये, पता—मैनेजर, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, ७३, ए चासा धोवा पाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता।

चारण जातिका प्रथम कर्तव्य

(लेखक: ठाकुर भगवती प्रसाद सिंहजी, वीसेन, राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी, कलकत्ता)

चारण जाति का साहित्य हिन्दू मात्र को एक अपूर्व देन है—हिन्दी भाषा की वह वहुत ही उज्वल सम्पत्ति है। हिन्दी में जिस चीज़की कमी है-वह उसकी पूर्ति कर सकता है। परन्तु तो भी हम उसकी चमक से प्रकाशमान न हो सके, यह विधि की विडम्वना नहीं तो क्या है? आज जिसके मन में जो आता है वह

चारण जाति और उसके साहित्य के विषय में मनमाना लिख मारता है—परन्तु, उन्हें रोकने वाला कोई नहीं ।

चारण जाति राजस्थान में मालदार है—लाखोंकी जागीर उसके पास है—करोडों का साहित्य उसकी गोदमें है—अरबों के काव्यरत्न राजस्थानकी धूलि में लिपटे पड़े हैं—पर तो भी वह दैन्य की प्रमाद निद्रा के खुर्राटे ले रही है। किन्तु समय जागने का है, एकदम उठ कर खड़े हो जानेका है-सोने का नहीं।

राजस्थान का राजनैतिक वातावरण बदल रहा है—दिन पर दिन उसमें नये नये परिवर्तन हो रहे हैं—नाना प्रकार के नये नये कानून गढ़े जा रहे हैं—न जाने किस समय क्या हो जाय ? हमें समय रहते सावधान हो जाना चाहिये। समय का भरपूर उपयोग कर लेना ही हमारा धर्म है ।

जागीरें किसीको मुफ्त में नहीं मिलीं—उनकी कविताओं, उनकी सलाहों और उनके बलिदानों का परिणाम ये जागीरें हैं। जागीरों के साथ उनकी अमर कीर्ति—गाथा गुंथी हुई है। पर आज परिस्थिति दूसरी है—जमाना रंग बदल रहा है—न वे राजा हैं और न वह परिस्थिति ही है। जागीरों का स्थायित्व नष्ट होता जा रहा है। साथ ही चारण जाति के सपूत अपनी साहित्य रूपी जागीर को भी रुला रहे हैं। उनकी मनोवृत्ति आज उसे दीमकों का ग्रास बना रही है—वे उसे कोठरियों में बंद किये बैठे हैं !

इस समय ज़रूरी था—आवश्यकता थी कि वे अपने साहित्य का भण्डार संसार के लिये खोल देते—उस के प्रकाश से सारे संसार को चमत्कृत करते। पर, गति दूसरी ही ओर है। चारण सम्मेलन की बैठकें हो रही हैं—चारण जाति में भी जागृति के चिह्न दिखाई पड़ने लगे हैं—पर प्रस्तावों, भाषणों के सिवा होता क्या है ? सामाजिक सुधारों की ओर ही ध्यान दिया जा रहा है—पर उससे हमारा क्या होगा ? हमारे सामने इस समय सबसे बड़ा सवाल है अपनी रक्षा करनेका—अपनी धनराशी बटोरनेका—अपनी अमूल्य निधि को नष्ट होने से बचा लेने का। चारण जाति के लिये एक ही कार्य है—चारण-सम्मेलन का सबसे आवश्यक कर्म भी एक ही है—वह है-धनाभाव से चाहे प्रकाशन अभी न हो सके पर अपने साहित्य का एक विशाल संग्रहालय निर्माण करना। साहित्य इस जाति के जीवन की रीढ है—इसकी स्थिरता ही इसका जीवन है। इसके बिना जाति का भावी जीवन अंधकार में ही समझना चाहिये।

आशा है, सम्मेलन के पदाधिकारी इस ओर ध्यान देंगे और अपने कार्यकी गति को इस ओर मोड़ कर अपने समाज के नष्ट होते हुए अक्षय भण्डार को बचाने में कृतसंकल्प होंगे।

[लेखक महोदय सम्मेलन की रिपोर्टों को पढ़ेंगे तो उन्हें ज्ञात होगा कि सम्मेलन का ध्यान इस आवश्यक कार्य की ओर आकृष्ट है किन्तु धन-जनाभाव से विशेष कुछ हो नहीं रहा है। "चारण" में "चारण-वाणी" नामक एक स्थायी स्तम्भ रखना भी इसी दिशामें एक प्रयास है। क्या, हम आशा करें कि लेखक महोदय के सत्परामर्श से सहमत होकर प्रत्येक जातिहितैषी इस संबंध में अपने हिस्से की ज़िम्मेवरी पूरी करेगा ? —सम्पादक]

અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલન (રાજકોટ)નાં સંસ્મરણો

(વિવિધ પત્ર-પત્રિકાઓમાં નીકળેલ લેખો, સમાચારો અને નોંધો)

[૧] સંશોધન વગર ધૂળ ખાતું ચારણી સાહિત્ય

ચારણ કોમના સંસ્કાર રક્ષજો !

શ્રી દૂલા ભગત

અખિલ હિંદ ચારણ સંમેલન રાજકોટમાં તા. ૨૧-૨૨-૨૩ના રોજ મળે છે. તેના પ્રમુખ શ્રી દૂલા ભગત એક સુકવિ છે.*

બાર વર્ષ પર એને પહેલ વહેલા પિછાન્યા. ત્યારેય એ ઇશ્વરના ઉપાસક કવિ હતા. રંગેઢંગે ખેડૂત હતા. ગ્રામ્ય જનતાના સલાહકાર, રંજનકાર, નવા વિચારો દેનાર 'બ્રાહ્મણ' હતા. અને શુદ્ધ અજાચીવ્રતના ધારનાર હતા.

બાર વર્ષે એને આજે ફરીવાર તપાસું છું. આજે એને રાજા મહારાજાઓ શોધે છે. એના વાણી પ્રહારો સુણવા તલસે છે, ને એને હજારોનું દાન દઇ કૃતાર્થ બનવા ઝંખે છે, છતાં દૂલા ભગત તો એના એ રામ, નિરભિમાની અજાચીજ છે.

ઢોંગી નહિ. સાચા અજાચી છે. ગ્રામ્ય રંગઢંગના એવા ને એવા પ્રેમી છે, ગ્રામ્ય જનતાના વધુ સમર્થ દોરવનાર બન્યા છે, ને એની ઇશ્વરોપાસક કવિતાએ આજે રાષ્ટ્રોપાસનાની રેલમછેલ વહાવી છે. નૂતન યુગના એ સ્વાભાવિક પ્રીછણહારે ગુજરાતી કાવ્યમાં અનોખી કલ્પનાઓ, ઉપમાઓ ને ભાવનાઓ ઊતારી છે.

એની કવિતાના પ્રેરક ગરવા ગાંધીજી છે. ચારણ કોમના નવ જાગરણનો એને નાદ લાગેલ છે. આતમ જ્ઞાનથી ભરેલી એની મેઘનાદીલી વાણીને એ મહેલોથી ઝુંપડાં સુધી વગર ભેદે વિણ સંકોચે અને બહોળા હાથે પીરસ્યે જાય છે.

એમની દોરવણી હેઠળ ચારણ સંમેલન એક કામ તો અવશ્ય કરે; ચારણી સાહિત્યની પ્રાચીન હસ્તપ્રતોના ઢગલાને ઢગલા કવિરાજોના ઘરોમાં કુથા ખાય છે. એનું વેળાસર સંશોધન સંપાદન કરાવો. ગુજરાતી ભાષા પર મહાન ઉપકાર થશે.

ચારણકોમ આજે બહુ વગોવાઇ છે. વિના કારણ વધુ પડતી બદબોઇ એ કોમની થાય છે. પ્રત્યેક કોમ જ્યાં કર્તવ્યભ્રષ્ટ બની છે ત્યાં આ બાપડી એકલીને કાં દંડીએ ?

તેમ એ કોમને એવી સ્થિતિમાં પણ કાં મૂકીએ, કે જેથી એનો વિદ્યાધનનો વારસોજ નષ્ટ થાય ? ચારણી કોમનો એ પુરાતન સંસ્કાર ન ઉચ્છેદીએ. એનો એક જૂથ તરીકે મુખ્ય વ્યવસાય વિદ્યોપાસનાનો, સાહિત્યોપાસનાજ ટકી રહે. બેશક એ ઉપાસના યુગરંગો ધારણ કરે તેવી કોશીશો કરવી ઘટે છે. એને રાજાઓની સ્તુતિ અથવા ભિક્ષા ત્યજાવીને પછી સંસ્કાર હીનતાના આજે સળગતા વેરાનમાં ધકેલી દેવાથી શો લાભ ?

—શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણી

('ફૂલછાબ' તા. ૨૦-૫-૩૮ ના અંકમાંથી ઉધૃત)

---

*અગાઉથી સંમેલનના પ્રમુખનો નિર્ણય થયોજ નહોતો. શ્રી મેઘાણીએ કોઇના કહેવાથી કે અનુમાનથી શ્રી દૂલા ભગત પ્રમુખ થવાના છે, એવું લખ્યું છે. બાકી રાજકોટ સંમેલન શ્રી ભગતજીની કૃપાથીજ ભરાયું હતું. તેમને લીધેજ રાજકોટ સ્ટેટ તરફથી બધી વ્યવસ્થા થઇ હતી.

તંત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.

[૨] ગુજરાતનાં અઠવાડિક આંદોલનો.

ચારણોની નવ દૃષ્ટિ

રાજકોટ મુકામે અખિલ હિંદ ચારણ સંમેલન મળ્યું હતું. ટોળાંશાહીના રોગથી મુક્ત રહેલા એ સંમેલનમાં ચારસોથી વધુ ચારણો હાજર નહોતા. જે હતા તે વીણાઇ વીણાઇને આવ્યા હતા. એમના સંમેલનમાં મને ચારણોના નવયુગી સંસ્કારનું દર્શન થયું. વેદકાળ જેટલી પુરાતન વિદ્યાતિષ્ઠતાના એ વારસદારો પોતાની અત્યારની સ્થીતિથી લજ્જિત હતા. રાજસ્તુતિનો રસ તેમને રહ્યો નથી. નૂતન રાષ્ટ્રભાવથી નીતરતી પોતાના નવોદિત કવિઓની વાણીપર તેઓ મુગ્ધ હતા. તેમની આંખો નવી સાહિત્ય વાટ તરફ મંડાઇ ચૂકી છે. તેમને આડંબર અને શબ્દ બનાવટ અણગમતી થઇ છે. તેમને સ્વભાવિક ઉર્મિનો નાદ લાગ્યો છે.

સંમેલનના રાત્રિએ ભરાતા દાયરામાં મેં તેમની કવિતાનું નવસર્જન દીઠું પુરાતન કવિતાનાં બળો તેમના રસ અને અભ્યાસની વાત બનેલાં જોયાં.

રજપૂતાનાના શિક્ષિત યુવાનો

પાંચેક હતા. રજપૂતાનાથી આવેલા નવયુવાન ચારણો બી. એ. અને એમ. એ. એલ એલ. બી. સુધી પહોંચેલા તેઓ પોતાના સાહિત્યની જુદી જુદી દિશાપર ' થેસીઝ નિબંધ ' લખી લખી ઉપાધિ મેળવી ચૂકેલા હતા. તેમનામાં સમતોલ અને શરમાળ વિદ્વતા દીઠી. ચારણી સાહિત્યનો સંસ્કાર તેમનામાં એવી જુક્તિથી વ્યાપી રહ્યો હતો કે જેવી જુક્તિથી મેંદીના પાંદમાં લાલી વસેલી હોય છે. સોરઠી લોક કથાઓ તેમજ કાવ્યો દુહાઓનાં રાજસ્થાની પાઠાંતરો તેમને જિહ્વાગ્રે હતાં. એ નોખા નોખા પાઠોની મેળવણીમાંથી એક નૂતન આત્મીયતા નીપજતી હતી.

રાષ્ટ્રભાવનાને લડાવનારી જીભો

રાત્રિના દાયરામાં રાષ્ટ્રભાવની નૂતન લોકકવિતા રેલાવનારા એ ત્રણ ' પાતળી જીભો-વાળા ' સોરઠી ચારણોનાં નામતો નથી ભૂલવા જેવાં. દૂલા ભગત, મેરૂભા અને ખેતસિંહ મીસણની ત્રિપુટી વ્યાસપીઠ પર પોતાના પરજિયા કંઠોની મિલાવટ કરીને શા લાડકોડથી રાષ્ટ્રભાવનાં રમ્ય, ભયાનક, નાજુક તેમજ વિરાટ સ્વરૂપોને રમાડતા હતા !

" ડોસાજીની નોબત્યું વાગે છે,
" લીલાં લીલાં માથડાં માગે છે,
" સૂતેલાં માનવી જાગે છે. "

એ ગાંધી ગીતના ઝળકતા શબ્દો સાંભળી, વિરાટની આભ પાતાળ અને દિગ્પાળપર પથરાતી કલ્પના નિહાળી તમે નવિન ગુર્જરો જરૂર પ્રસન્ન થશો, કેમકે એમાં બનાવટ નહોતી. એમાંથી પણ ગાંધીજી વિષેની છેલ્લી કલ્પના :

શિષ કપાવે ને દેહ વેરાવે,
લૂંટાવે ઘરબાર;

એ બધુંજ વાણિયાઓ ભૂતકાળની તવારીખમાં કરતા આવેલ છે (સગાળશા વગેરે), પણ એકજ વાણિયો કદાપિ નહિ કરે :

વાણિયો કે દિ'ય નમતી ધારણ,
નહિ તોળે તલભાર.

એવી એવી કલ્પના ગૂંથણીમાં ગાંધીજીના રાજકારણનું એક ચમત્કૃતિમય અને ચોટદાર સ્વરૂપ ઊભું થતું હતું. વર્તમાન રાષ્ટ્રભાવનાની એક પણ દૂષિત રેખા એમાં નહોતી જડતી.

ગાયક ત્રિપુટિ

આ ત્રણે જણા ભેળા ગાતા, વચ્ચે વચ્ચે પ્રત્યેક ભાવને પ્રકાશિત કરવા માટે અનેક અન્ય કવિતા–દીપકો ધરતા હતા. માર્મિક ગદ્યનાં મોતી મઢતા હતા. દાયરો એકદીલ બનીને હલમલી જતો હતો. કોઇપણ શિષ્ટ સંમેલનને રસબોળ બનાવે તેવી આ ‘ કવિતા કહેણી અને કંઠ ’ની સંપૂર્ણ મિલાવટ હતી. જનસમૂહને ડોલાવવાના શાબ્દિક ખેલોમાં ફસાઇ જવાની આજે જ્યારે બડી દહેશત ઉભી થઇ છે, ત્યારે બીજી બાજુ આ શબ્દાડંબરી લેખે હીણાયેલી ચારણી કવિતા નૂતન અર્થ ગાંભીર્ય ને કેટલી આસાનીથી ધારણ કરી રહી છે ! એ કવિતામાં તેમજ એ કવિતા પ્રત્યેના ચારણી સમૂહ–પ્રેમમાં એક મહાન્ વાતની પ્રતીતિ થઇ પડી છે કે, કુરુચિ તેમાં નહોતી; પ્રશસ્તિ રસ પ્રત્યે અણગમો હતો; નિર્મળ માનવ પ્રેમ હતો.

એને ‘મીશનરીઓ’જ બનાવજો

આ ચારણોનું સ્થાન આપણા સમાજની નવરચનામાં ક્યાં છે ? તેમના એક જાતિ તરીકેના વિદ્યા વારસાને ભોગે કશોજ જીવન–પલટો ન થવો જોઇએ એમ હું માનું છું. વિદ્યાનો સંસ્કાર વર્ષો જૂનો વડલો છે; એને ઉચ્છેદીને એને સ્થાને આપણે જે રોપશું તેની ઘટા બંધાતાં કેટલીવાર લાગવાની ? એ આખી જાતિ વિદ્યાનીજ ‘ મીશનરી ’ રહે તેવો પ્રબંધ શું મુશ્કીલ છે ?

આફ્રિકા જઈ આવેલા મેરૂભા

તાજેતરમાંજ એમાંના એક જોદ્ધાર ગાયક, ગળું જેનું પાતાળફૂટ જળ વાવડી જેવું છે તે ગઢવી મેરૂભા, આફ્રિકાના નોતર્યા એ દરિયાપારને દેશ લાગટ ત્રણ મહીના સુધી શહેરે શહેરે લોક સાહિત્ય સંભળાવી આવ્યા, અને આપણાં દેશપાર બાંધવ જનોએ એ મેરૂભાની વાણી દ્વારા જન્મભૂમિનું સંસ્કાર દૂધ પીધું. આફ્રિકામાં તેમજ આપણી અન્ય વસાહતોમાં અત્યારે કોણ કોણ જાય છે ? સંસ્થાઓના ફંડફાળા કરનારાઓ, વકીલો, વ્યાપારીઓ, પ્રચારકો, ચળવળીઆઓ. નથી જતાં કેવળ સંસ્કારના પ્રતિનિધિઓ, નથી જતા કેવળ શાયરો, ગાયકો, કથાકારો, સરસ્વતીના સંદેશવાહકો. જઇને ઝટ ઝટ ફંડફાળા આટોપી પાછા વળી આવનારાઓથી શું વળે ! આ મેરૂભા, આ દૂલા ભગત, અને એના સંસ્કારોના અનુગામી એકસો ચારણ પુત્રો હિંદ તેમજ હિંદ બહારની ગુર્જર વસાહતે વસાહતે ઘૂમી વળે ત્યાં પેઢાન પેઢીનાં પ્યાસી પડેલાં સ્ત્રીઓ, બાળકો અને ધંધાર્થી પુરૂષોને દેશનાં દીલ ખોલંડાં કંઠસ્થ કરાવતા પરિભ્રમણ કરે, એ શું એક મહાન્ જરૂરિયાત નથી ?

એ કંઠોને ન ગૂમાવશો.

આજે આપણી પાસે તૈયાર તાલીમ બદ્ધ કંઠો ક્યાં છે ? ગળાં આપણાં ખોખરાં બોલે છે. આપણી તળપદી ભાવનાઓને સજીવન કરનારી સ્વર–શક્તિઓનો નાશ ન કરશો સુધારણાને નામે એનો ઉચ્છેદ ન આચરજો એનું જીવની જેમ જતન કરજો.

શ્રી. ઝવેરચંદ મેઘાણી

(‘ જન્મભૂમિ ’ (દૈનિક) તા. ૨૬–૫–૩૯. ‘ કલમ અને કિતાબ ’ શિર્ષકમાંથી)

[૩] ચારણ સંમેલન, રાજકોટ.

રાજકોટમાં ગયા અઠવાડિયામાં એક સાથે બે સમારંભો થયા. એક ચારણ સંમેલનનો અને બીજો હતો આર્ય સંમેલનનો.

'ચારણ' શબ્દની સાથેજ વાતો, દુહા અને રાજપૂત યુગની ઝાંખી થવા માંડે. એ રીતે ચારણી સંમેલનનું આકર્ષણ અજબ હતું. ખુદ સ્વાગત પ્રમુખની ગુલબારી પાઘડી આપણી ગત પેઢીના પહેરવેશની વાતો કરતી હોય એવું લાગે. આ બધા જૂના અને રંગબેરંગી પહેરવેશ પાછળ નવા યુગનો પ્રાણ ધબકતો થયો છે, એતો રહેતાં રહેતાં ખબર પડી.

ચારણ કોમનું ઐક્ય

સ્વાગત પ્રમુખશ્રી રામદાનજીના ભાષણમાં સંમેલનનો હેતુ અને લક્ષ્યબિન્દુ સ્પષ્ટ તરી આવતાં હતાં. તેમણે જણાવ્યું કે ચારણ કોમ રાજસ્થાની હિંદ, એટલે મુખ્યત્વે રાજપૂતાના અને કાઠિયાવાડમાં છે. તેમની વચ્ચે ભાષા અને ભૂગોળનું અંતર ગમે તેટલું હોય પણ સાંસ્કૃતિક અંતર નથી; બલ્કે ઐક્ય છે. એટલે સમસ્ત ચારણ કોમ પોતાનાં જુદાં જુદાં અંગો સાથે સહકાર સાધે એ જરૂરી છે. એ સહકારનું દૃષ્ટાંત આપતાં કહ્યું કે સદાવ્રતો અપાતાં હોય ત્યાં વ્યક્તિગત સાધુઓને લોટ કે પાશેર ખીચડી મળે, પણ સો પચાસ સાધુઓ કોઇ મહંતના નેતૃત્વ નીચે ગામમાં દાખલ થાય તો તેમને પાકાં સીધાં મળે.

જોગેંદ્ર જેવા પ્રમુખ

એવા એક આગેવાન તરીકે સંમેલનના પ્રમુખસ્થાને રાજપૂતાનાના રાષ્ટ્રભક્ત ચારણયોગી ઠાકોરશ્રી કેસરીસિંહજી હતા. તેમનું વ્યક્તિત્વ પણ પ્રબળ હતું. ચારણો તેમના પ્રત્યે આદરબુદ્ધિથી જોતા હતા. તેમનું કૃશ છતાં નિર્મળ, ગુલાબી ઝાંય પાડતું શરીર, ભગવું પહેરણ, ટૂંકું ધોતિયું, ઉઘાડા પગ અને માથે રેશમી લાંબા કેશ સૌ કોઇનું આકર્ષણ હતાં.

આ વ્યક્તિત્વ પાછળ તેમણે રાષ્ટ્રકાજે આપેલો ભોગ હતો એ વસ્તુ તો તેમની ઓળખાણ આપનાર એક મારવાડી ચારણ કવિએ કહી ત્યારે ખબર પડી. એક ષડ્યન્ત્ર કેસમાં તેમને ૨૦ વરસની સજા થયેલી. તેમના જુવાન પુત્રનું કોઇક ક્રાંતિકારી ચળવળમાં ભાગીદારી લેવાના સંશય તળે જેલમાં કમોત થઇ ગયું. શાહપુરા (મેવાડ)માં આવેલો તેમનો હજારેનો ગરાસ જપ્ત કરવામાં આવ્યો, મકાનો જપ્ત થયાં, પણ જેલમાંથી પાંચ વરસ પછીજ તેમનો છૂટકારો થઇ ગયો. ત્યારથી તેમનું નિસ્પૃહ જીવન શરૂ થયું.

રાજપૂતાનાના આજે એ લોકસંમાનિત પુરુષ છે. તેમણે ભાષણને બદલે થોડા ઉદ્‌ગારોજ કાઢયા એમ કહીએ તો અવાસ્તવિક નહિ ગણાય. તેમાંના કેટલાક આ રહ્યા: "હું તો એકાંતવાસમાં રહેવા માગું છું, પણ મારી પાસે જ્ઞાતિનાં કાર્ય માટે એક વર્ષ આપવાની માગણી થઇ; અને મારે તાબે થવું પડયું. પણ એટલેથી તમારી ફરજ પૂરી થતી નથી. તમે મને મદદ આપશો તોજ હું માથે નાંખેલો બોજો ઉપાડી શકીશ."

× × ×

સભાનો પ્રાથમિક વિધિ શરૂ થયા પછી મસલત સમિતિ રચાણી. તેમાં ગુજરાત, કાઠિયાવાડ તથા રાજપૂતાનાના પ્રતિનિધિઓ ચૂંટાયા. સમિતિમાં મુખ્ય ચર્ચા જુનું 'ચારણ'

માસિક શરૂ કરવા અને તેના સ્થાપક સ્વ૦ કિશોરસિંહજીનું સ્મારક રચવાની વાત હતી. કિશોરસિંહજી પ્રમુખના નાના ભાઇ હતા, અને પ્રસિદ્ધ પુરૂષ અને ઇતિહાસકાર ગણાઇ ગયા છે. કહે છે કે સૌરાષ્ટ્રના શ્યામજી કૃષ્ણવર્માને ઉદેપુરનું દીવાનપદ અપાવનાર તેઓ હતા.* રજવાડી પોશાકમાં શોભતા રાજપૂતાની ચારણ યુવકોએ આ ચર્ચામાં ઠીક ભાગ લીધો, પણ પ્રમુખે તો એવા સ્મારકકાર્યને વ્યક્તિગત રીતે સહુ ભાઇઓ ઊપાડે અને સંસ્થા ઉપર તેનો ભાર ન પડવો જોઇએ, એમ કહી ચર્ચા સમેટી લીધી.

જાગૃત બનતા ચારણો

પાછળથી જાણવા મળ્યું કે, 'ચારણ' માસિક શરૂ થશે, એમાં પણ કોમનાં દૂષણો ન પેસવા પામે એ માટે જે દલીલો થઇ તેતો ચારણોને પોતાની અવનતિનું કેટલું ભાન છે, પોતાનામાં યુગપલટો કરવા કેટલા ઇંતેજાર છે તે બતાવનારી હતી. તે બતાવવા જુના સંસ્કાર અને નૂતન કેળવણીનો પણ સંગ્રામ જણાયો.

રાજપૂતાનામાંથી આવેલા કેટલાક ચારણો તો બી. એ. અને એમ. એ. થયેલા હતા. અહીંના કરતાં ત્યાં ચારણોને રાજ્યાશ્રય ઓછો મળતો હોય એમ લાગ્યું. કદાચ એટલાજ કારણે ત્યાં સ્વાશ્રયી બનવા તેઓ આટલી ઉપાધિ મેળવતા થયા હશે. તેઓ બધા વિદ્વાનો હતા, સંશોધકો હતા, સ્વ. કિશોરસિંહજીના શિષ્યો પણ હતા. પણ દૂલા ભગત કહે છે તેમ ચારણ પાસે કંઠ, કવિત્વ અને વકતૃત્વ હોવાં જોઇએ એટલા પ્રમાણમાં ઉત્તરના ચારણોમાં જોવા ન મળ્યાં. આપણા દૂલા ભગત, ગઢવી મેરૂભા, ઠારણભાઇ, રામદાનજીભાઇ, ખેતસિંહજી વગેરેને સાંભળ્યા પછી ચારણી કાવ્યશક્તિનો ખ્યાલ આવે.

ડાયરો જોઇ લ્યો !

સંમેલનનો રંગ કોઇ સભા કરતાં ડાયરા જેવો વિશેષ લાગે. ત્યાં ખુરશી વગેરે નહોતું. એક મોટો શમિયાનો ઉભો કરેલો. જમીન ઉપર જાજમ અને ગાદલાં બીછાવેલાં. ડાયરામાં કસુંબા તો નહોતા ઘોળાતા પણ હોકા ન હોય તો વાતાવરણ લૂખ્ખું સૂકુંજ લાગે ને? એટલે તે પણ પ્રમુખની પાસેજ ગગડતો હતો. અને ડાયરો હોય ત્યાં ગગડયા વગર રહે નહિ! ખુદ માજી વાઇસરોય કર્ઝનના દરબારમાં પણ જુનાગઢ નવાબ હોક્કો ગુડગુડાવ્યા સિવાય રહી શકયા નહોતા. કર્ઝન રાતો પીળો થયો પણ ત્યાં કરે શું? તેણે પણ કાઠી રજવાડાંનો ડાયરો જમાવ્યો હતો.

ડાયરાની મઝા

આવા ડાયરામાં ભાષણો કરતાંય વાતો અને આજુબાજુ થતા મર્મો સાંભળવાની મઝા છે. પ્રો. દવેનું ભાષણ ચાલતું હતું ત્યારે એક ભાઇ ઊંચી ડોક કરીને તે સાંભળવા લાગ્યા. આ જોઇ એક ચારણથી ન રહેવાયું. તેણે ઠાવકું મોં રાખી તરતજ કહ્યું ભાઇ, આ તો સભા છે. આમાં સાંઢિયા જેવી ડોક કરીને કોઇની આડે આવવું એ રીત ન કહેવાય.

---

* અહીં ખબરપત્રી મહાશયની ભૂલ થાય છે. ઠાકુરશ્રી કિશોરસિંહજીએ નહિ, પરંતુ ઠાકુરશ્રી કેસરીસિંહજીએ જયારે તેઓ મહારાણા ઉદયપુરના સલાહકાર તરીકે ઉદયપુરમાં હતા, ત્યારે પોતાના જેવા ક્રાંતિવાદી વિચારો ધરાવતા શ્યામજી કૃષ્ણવર્માને ઉદયપુરનું દીવાનપદ અપાવ્યું હતું. —તંત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.

સંમેલનમાં બીન ચારણ વક્તાઓને પણ બોલવાની તક આપવામાં આવી હતી, તેમાં પ્રો. દવેનું ભાષણ ગમી જાય એવું હતું. તેમના ભાષણમાં કોઇની ઉપેક્ષા નહોતી. તેમણે કહ્યું કે, ભણેલા અને ઉપલા વર્ગના માણસો સંસ્કૃત ભાષા વાપરે છે, અને આમવર્ગ પ્રાકૃતભાષા બોલે છે, તેવીજ રીતે કાવ્યમાં પિંગળના ઉપાસકો સંસ્કૃત જનતાને પહોંચી શકે અને ડિંગળના ભક્તો–ચારણો આમ જનતા સુધી પહોંચાડી શકે છે.

આજના રાષ્ટ્રભાવી ચારણો

ચારણ એટલે રાજાઓના ખુશામતખોરજ સમજાય. પણ અહીં એ ભ્રમ ભાંગી જાય એવું હતું. રજવાડાંઓ પ્રત્યે એક પણ શબ્દ ખુશામત કે વાહ વાહનો ન મળે, એટલુંજ નહિ પણ શ્રી દૂલા ભગત અને મેરૂભા જેવા કવિઓએ તો તેમને હળવા ચાબકા માર્યા હતા, અને ચારણો તો પોતાના એ માનસ–દૂષણને હર પળે કાઢી નાખવા તૈયાર હોય એમ જણાતું હતું. તેનું સ્થાન અણીશુદ્ધ રાષ્ટ્રભાવનાએ લીધું હતું, પણ એનું વાહન તો ચારણી સાહિત્ય રહ્યું છે. એ તો દૂલા ભગતે ‘ગાંધી તારી દીકરી’ ગાઇ બતાવ્યું ત્યારે તો સહુને પ્રતીતિ થઇ.

તેમનાં આનંદ અને ખુમારી

એ સાહિત્યના બીન ચારણી સંશોધકો અને ઉપાસકો પ્રત્યે પણ ચારણોનું પોતાના જાતભાઇ જેટલું મમત્વ બંધાતું હતું એ પણ અહીં જોવા મળ્યું.

રાજપૂતાનાના ચારણોને પણ શ્રી ઇસરદાસજી જેવા કવિ વિષે શ્રી. મેઘાણીએ પૂછેલા બારીક પ્રશ્નોથી તેમના સાહિત્યમાં આટલે સુધી બીજાઓ પણ રસ લઇ રહ્યા છે એ જોઇ તેઓ આનંદ અને ખુમારી અનુભવતા હતા અને એ સાથે સહુ ચારણો વીખરાયા.

—‘ફુલછાબ’ના ખાસ ખબરપત્રી તરફથી.

(‘ફુલછાબ’ તા. ૨૭–૫–૩૮ ના અંકમાંથી ઉધૃત)

[૪] શારદા પુત્રોનું સંમેલન

(લેખક: રા. રા. ગોકુળદાસ દ્વારકાદાસ રાયચુરા, તંત્રી ‘શારદા’)

ચારણ ચોથો વેદ, વણ પઢિયો વાતું કરે;
ભાખે આગમ ભેદ, જેને જીભે જોગણી.

× × × ×

ચારણ, સતીને ગંગજળ, ઇંદ્ર સભા અનુમાન;
કરે કપૂરે કોગળા, શિર બ્હેકે લોબાન.

Charans are born poets; Poetry is their sacred inheritance. They have the poet in their souls and their hearts are ever green haunts of the poetie music.

Kedarnath Tewari, M.A., LL. B.

કાઠિયાવાડને આંગણે તા. ૨૧ મી મે ૧૯૩૮નો દિવસ વર્ષો સુધી યાદગાર રહેશે. એ દિવસે કાઠિયાવાડના પાટનગર રૂપે ઓળખાતા રાજકોટમાં શ્રી અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનની બેઠક ઠાકૂર શ્રી કેસરીસિંહજી જેવા સમર્થ ચારણના અધ્યક્ષસ્થાને મળી હતી. અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનનું આ પાંચમું અધિવેશન ગુજરાત, કાઠિયાવાડ, કચ્છ અને મારવાડના સંસ્કારી ચારણોની હાજરીથી સહુ કોઇનું લક્ષ્ય ખેંચતું હતું. આ સંમેલનનું પ્રથમ અધિવેશન પુષ્કરરાજમાં, બીજું દેશણોકમાં, ત્રીજું પુષ્કરરાજમાં અને ચોથું જોધપુરમાં મળેલ. જોધપૂરના એ સંમેલનમાં કાઠીઆવાડ તરફથી કાઠિઆવાડી ચારણોના પ્રાણસમા શ્રી પિંગળશીભાઇ પાયક, શ્રી ગઢવી મેરૂભા મેઘાણંદ તથા શ્રી ખેતસિંહજીએ આમંત્રણ આપેલ. એ આમંત્રણ આપનારાઓને પણ આ અધિવેશન આટલું બધું સફળ થશે, એમ એ વખતે લાગતું નહોતું. પણ તા-૨૧-૨૨-૨૩ એ ત્રણ દિવસો કાઠિઆવાડના ચારણો માટે અભિનંદનીય હતા, એટલુંજ નહિ પણ રાજકોટની જનતાને એ દિવસો સદૈવ યાદ રહેશે. સંમેલનો તો રાજકોટને આંગણે ઘણાય ભરાય છે અને ભરાશે, પણ શારદા પુત્રોનું આ સંમેલન તો કાઠિઆવાડને આંગણે એક ભવ્ય પ્રસંગ હતો. ચારણોની જન્મભૂમિ મારવાડ. મારવાડથી તેઓ કચ્છમાં આવ્યા અને ભૂજની વ્રજભાષાની પાઠશાળા એમની જ્ઞાનદાત્રી સંસ્થા બની, એટલે એની જ્ઞાનભૂમિ કચ્છ બન્યું.* કચ્છમાંથી જામ રાવળના વખતથી ચારણો કાઠિઆવાડમાં આવ્યા; અને કાઠિઆવાડના એ ઇતિહાસ પ્રસિદ્ધ જાડેજા રાજવીએ, એ શારદા પુત્રોને સન્માન્યા એટલે કાઠિઆવાડ એમની વસવાટ ભૂમિ બની. આજે ગાંધીજીના યુગમાં ગુજરાત ચારણોને સાંભળવા આતુર બન્યું છે. અને મારા છેલ્લા પંદર વર્ષના અનુભવ પરથી હું કહી શકું છું કે, ચારણી સાહિત્યે ગુજરાતનાં શિષ્ટ ગણાતાં નરનારીઓને પણ મુગ્ધ કરેલ છે. આજે ગુજરાત એ રીતે ચારણોને સત્કારે છે એટલે ગુજરાત એ ચારણોની નવી સત્કારભૂમી બનેલ છે.

---

* અહીં લેખક મહાશયની ભૂલ થાય છે. તેલંગ દેશનો વસવાટ મૂકયા પછી ચારણોએ સર્વપ્રથમ સૌરાષ્ટ્ર દેશને પોતાની નિવાસ ભૂમિ બનાવ્યાનો ઉલ્લેખ મળે છે, અને તેથીજ રાજપૂતાનામાં આજેય કાઠિયાવાડને 'ચારણો રો પીહર' નામથી પૂજ્યભાવે સંભારવામાં આવે છે. વિક્રમની આઠમી સદીમાં ચારણ જાતિમાં પ્રધાન આરાધ્યા દેવી આવડ (ઉબ્બટ) નો જન્મ થયો. એ દેવીએ પોતાનું નિવાસસ્થાન રાજપૂતાના અને સિંધની સીમાપર બનાવ્યું હતું, તેથી સૌરાષ્ટ્ર તેમજ તેની આસપાસના પ્રદેશમાં વીખારાયેલી ચારણ જાતિએ એ મહાશક્તિના પ્રભાવથી પ્રભાવિત બની રાજપૂતાના પ્રદેશના પશ્ચિમી ભાગમાં પોતાનો વસવાટ કર્યો. અને ત્યાંથી પાછી આ જાતિ ગુજરાત, કાઠિયાવાડ અને કચ્છમાં આવી. એ રીતે રાવળ જામની પૂર્વે પણ કાઠિયાવાડમાં ચારણોના વસવાટના ઘણા દાખલા મળી આવે છે. ભૂજની પાઠશાળા તો ફકત દોઢસો વર્ષ પૂર્વે સ્થાપિત થયેલી છે, અને તે ગુજરાત, કાઠિયાવાડ તેમજ કચ્છ પૂરતીજ જ્ઞાનદાત્રી સંસ્થા રહી છે. રાજપૂતાના ને તેમાં સમ્મિલિત કરી શકાય નહિ. એ દેશમાંનાજ જોધપુરના કનકકુશળ નામે ગોરજીએ ભૂજની પાઠશાળા સ્થાપી હતી. એટલે કે રાજપૂતાનાના ચારણોને તો તેમના દેશમાં જ સાહિત્ય જ્ઞાન મેળવવાની સદાયથી સવડ રહી છે.

—તંત્રી, ગુજરાતી વિભાગ

દેશના કેટલાયે આગેવાન નેતાઓએ મારી પાસે એક માગણી કરી છે કે ગઢવી મેઘાણંદભાઈ, કવિશ્રી દૂલાભાઈ કાગ તથા ગઢવી મેરૂભા જેવા ચારણો ગુજરાતને ગામડે ગામડે ફરી રામકથાની પરબો ગામે ગામ માંડે તો ગુજરાતની રાષ્ટ્રભાવના જે આજે છે એથી વિશેષ જરૂર જાગૃત બને.

એવા ચારણોની હું શોધમાંજ રહું છું, અને આજે જ્યારે આ અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનમાં કવિ દૂલાભાઈ તથા ગઢવી મેરૂભાની બેલડીએ 'માતાજીની નોબતુ વાગે છે, એ ગીતને ચડાવ્યું ત્યારે ચારણોએ પ્રાચીનકાળમાં દેશની જે સેવા સાધી છે એમાં આ નવયુગમાં આવી ચારણ બેલડીઓ રાષ્ટ્રની સેવા સાધી ચારણ જ્ઞાતિને ઉજ્જવળ બનાવશે એ મારાં સ્વપ્નાંઓ સાચાં પડતાં લાગ્યાં.

રાજદરબારના એ કવિઓ આજે લોક દરબાર જગાવી રહ્યા છે, નવયુગની પ્રેરણાની ઝડી એમની ઝમકદાર ભાષા અને જોરદાર વાણીમાં વરસાવી રહ્યા છે. એને માટે શબ્દોનાં વર્ણનો અધૂરાં છે. એતો લોકોએ સાંભળવું જોઇએ.

અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનમાં કેટલીક વિશિષ્ટતાઓ હતી. એમાં ખાસ કરીને રાજપૂતાનાના ચારણ બંધુઓનું જ્યારે મારી સાથે મિલન થયું; ત્યારે એક વિશિષ્ટતા પહેલીજ વખત જીવનમાં અનુભવી. ચારણો ઊંચી કેળવણી લઇ આગળ વધે એ જોવાનો અભિલાષ તો મને વર્ષોથી છે. પણ **ચારણ** ચારણ ન મટે એ જોવા માટે હું આતુર રહું છું. મારવાડના શિક્ષિત ચારણ ભાઇઓને જોયા તો એમાં આજની ઉંચી કેળવણીની જ્ઞાનગંગા અને ચારણોની ચારણ તરીકે વિશિષ્ટતાઓની રસગંગાના સંગમ જોઇ મારી આંખો ઠરી છે.

મારવાડ અને રજપૂતાના મળી લગભગ સત્તર ચારણો આજે ગ્રેજ્યુએટ છે. એમાંના ચાર બી. એ. એમ. એ. એલ એલ. બી. ચારણો રાજકોટના આ સંમેલનમાં ભાગ લેવા આવ્યા હતા. ચારેની પ્રતિભા, ચારેનો જ્ઞાતિપ્રેમ, ચારેની કવિતા અને ચારેની સાહિત્ય ભક્તિ અનુભવવાની આવી સુંદર તક મને પહેલીજવાર સાંપડી.

શ્રી સત્યદેવ આઢા, બી. એ. એલ. એલ. બી. મારવાડના ગામ પાંચેટિયાના મૂળ રહીશ છે. ૨૩ વર્ષની ઊંમર છે. પતિયાળા રાજ્યના માનીતા ઇતિહાસકારક ઠાકુર શ્રી કિશોરસિંહજીની સલાહથી આજે તેઓજ "પશ્ચિમ ભારતના ઇતિહાસમાં ચારણોનું સ્થાન" એ વિષે હિંદુ વિશ્વ વિદ્યાલયની એમ. એ. ની ડિગ્રી માટે **થીસીસ** લખી રહેલ છે. અકબરના જમાનામાં પ્રસિદ્ધ રાષ્ટ્રીય શાયર તરીકે પંકાયેલ કવિ **દૂરસાજી** આઢાની બારમી પેઢીએ તેઓ થાય છે. એમના પિતા મારવાડના પ્રસિદ્ધ કવિ ઠાકુર શ્રી શંકરદાનજી આઢા અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના એક સભાપતિ હતા. એમના આ સત્પુત્ર સત્યદેવજી આઢા કાશીમાં રાજસ્થાન એસોસીએશનના મંત્રી છે.

શ્રી જયકર્ણજી બારહઠ, બી. એ. એલ. એલ. બી. એડવોકેટ મારવાડમાં સોજત ગામે વકીલાત કરે છે. એમના પિતા શ્રી શક્તિદાનજી બારહઠ ચારણ જાતિમાં સંસ્કૃતના અદ્વિતીય વિદ્વાન તથા કવિ તરીકે પ્રસિદ્ધ હતા. શ્રી જયકર્ણજીની ઉમર ૩૦ વર્ષની છે, જાગીરદાર છે, વકીલાત કરે છે અને કવિતાને પણ આરાધે છે.

શ્રી આઇદાનજી બારહઠ બી. એ. એલ એલ. બી. હિંદુ વિશ્વ વિદ્યાલયના પહેલા વર્ગમાં આવેલ છે. જોધપુરમાં આજે ન્યાયાધીશ છે. મારવાડ જાગીરદાર સભાના તથા મારવાડ

પ્રાંતીય ચારણ સભાના મંત્રી છે. ૨૬ વર્ષના એ જુવાને કોલેજની કારકીર્દીમાં પણ જાહેર સંસ્થાઓના મંત્રી તરીકે નામના મેળવેલ છે.

શ્રી શુભકર્ણજી કવિયા એમ. એ., એલ એલ. બી. હિંદીના પહેલા એમ. એ. છે, એલ. એલ. બી. માં ફર્સ્ટ ક્લાસ તથા એમ. એ. માં સેકંડ ક્લાસમાં આવેલ છે. 'ડિંગલ સાહિત્યમાં ભક્તિ કાવ્ય' એ થીસીસ એમણે એમ. એ. માં લખી હતી. હિંદુ યુનિવર્સિટીના રિસર્ચ સ્કોલર તરીકે એમનું નામ સુપ્રસિદ્ધ છે. ૨૪ વર્ષની એમની ઉંમર છે. કવિતા લખે છે અને બોલવાની ઢબ પણ સારી છે. અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના તેઓ સહકારી મંત્રી છે. ઉત્સાહી અને યુવાનીને શોભાવનારા છે.

આ ઉપરાંત બીજા પાંચ એલ એલ. બી. અને સાત ગ્રેજ્યુએટો મારવાડમાં છે. એમનો પરિચય સાધવાના પણ અભિલાષ છે. આ બધા ભાઇઓને પચાસ હજારથી માંડીને નાની રકમની જાગીરો છે. મારવાડનાં લગભગ ૩૦૦ ગામોમાં કુલ પાંચ લાખની ઉપજ ચારણોને મળે છે. મારવાડમાં ચારણોની વસ્તી પંદર હજારની છે; પણ એ લોકોમાં ભાગ્યેજ કોઇ ચારણ માગે છે. માગવું એ એમના શબ્દકોષમાં નથી. ચારણને માગણ તરીકે ઓળખનારાઓ ચારણ જાતિને પિછાનતાજ નથી એમ કહી શકાય. કમનસીબે કાઠિયાવાડ–ગુજરાતમાં ચારણોમાંના કેટલાકો પોતાપણું ભૂલ્યા એટલે આજે એની માગણમાં ગણત્રી થઈ. ચારણોને તો રાજાઓ ગામ ગીરાસ આપતા અને શ્રીમંતો એની વિદ્યાને પોષતા. ચારણોની એ ઉંચી સ્થિતિનો ખ્યાલ મારવાડના ચારણો આજે આપી શકે છે.

આ સંમેલનની વિશિષ્ટતાઓમા રાજકોટની ધર્મેંદ્રસિંહજી કોલેજના મુખ્ય આચાર્ય શ્રી. ટી. એન. દવેનાં ચારણોની ઉત્પતિ અને સ્થિતિ વિષેનાં વિદ્વતાભર્યાં ભાષણો મુખ્ય સ્થાન લઇ જાય છે. જૂનાગઢના માજી પોલીસ સુપ્રી. નીરતા વરેલા શ્રી છેલશંકરભાઇ દવે, શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણી, શ્રી ત્રિભુવન ગૌરીશંકર વ્યાસ અને માસ્તર વસંત વગેરેનાં પ્રવચનો, કાવ્યો અને સંગીત પણ આ સંમેલનની ઉપયોગિતામાં વધારો કરતાં હતાં.

ખાસ કરીને બે દિવસ સુધી રાત્રે ડાયરાની જામેલી રમઝટ. તેમાંય કવિશ્રી દુલાભાઇ તથા ગઢવી મેરૂભા, શ્રી મેઘાણીની અને કવિશ્રી ત્રિભુવન વ્યાસ તથા માસ્તર વસંતની પ્રસાદી તો રાજકોટ વર્ષો સુધી યાદ કરશે.

આ સંમેલને કાઠિયાવાડ, ગુજરાત, કચ્છ અને મારવાડના ચારણોને સંગઠિત બનાવ્યા છે. ચારણ જ્ઞાતિના કેટલાક સામાજીક રિવાજો પણ સુધારણા માગે છે. આ સંમેલને સાહિત્યની ચર્ચા સાથે સમાજ સુધારણાનો પણ પ્રબંધ રચ્યો છે.

ઠરાવોમાં 'ચારણ' ત્રૈમાસિક પત્ર પ્રગટ કરવાનો ઠરાવ અતિ જરૂરનો છે. ચારણો વિષે સાચી સમજ જનસમૂહને આપવા માટે આવા પત્રની જરૂરિયાત છે. મહાગુજરાત ચારણી સાહિત્ય અને ચારણોમાં રસ લેતું થયું છે, એવે વખતે આવું પત્ર જરૂર આવકારદાયક થઇ પડશે.

આ સંમેલનના અધ્યક્ષ ઠાકુર શ્રી કેસરીસિંહજી એક રાષ્ટ્રીય ચારણ તરીકે મશહૂર છે. એમના નેતૃત્ત્વ નીચે ચારણો રાષ્ટ્રધર્મને સ્વીકારે એવા અભિલાષ આજે સહુ કોઇ સેવે છે.

—'શારદા' જુન ૧૯૩૮ માંથી ઉધ્ધૃત



ગઇ તા. ૨૧-૨૨-૨૩ એ ત્રણ દિવસો રાજકોટ માટે સદૈવ સ્મરણમાં રહે તેવા નોંધવા જેવા હતા. એ દિવસોમાં અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનનું પંચમ અધિવેશન ભરાયું હતું: જેમાં કચ્છ, કાઠિયાવાડ, ગુજરાત, મારવાડ અને રજપૂતાનાના સરસ્વતી પુત્રો-સાચા ચારણો એકઠા થયા હતા. આ સંમેલનને કાઠિયાવાડમાં લાવવાનું માન સ્વાગત પ્રમુખ શ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, શ્રી કારણભાઇ મહેડુ, લીંબડીવાળા શ્રી શંકરદાનભાઇ, શ્રી દૂલાભાઈ કાગ, શ્રી પિંગશીભાઈ પાયક, શ્રી મેરૂભા મેઘાણંદ એ સર્વ કાઠિયાવાડના આગેવાન શારદા પુત્રોને ફાળે જાય છે. અને એ સંમેલનની યશસ્વી વ્યવસ્થા કરવાનો યશ પણ એ જ સોરઠી શાયરોનેજ છે. એ સોરઠી કવિઓ કાઠિયાવાડનું પરમ ધન છે. એમણે અખિલ ભારતના ચારણોને કાઠિયાવાડમાં નોતરી સાચા ચારણી સંસ્કારનાં દર્શન સહુને કરાવ્યાં છે. એટલુંજ નહિ પણ ચારણો એટલે 'ખુશામતખોર' એ આક્ષેપ મૂકનારાઓ ખોટા છે, એ સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે. જેણે જેણે આ સંમેલનમાં હાજરી આપી છે એ અમારી સાથે પોતાનો સૂર પુરાવી જરૂર કહેશે કે, ચારણોમાં યુગ કવિ, રાષ્ટ્ર કવિ થઇ શકે તેવા સમર્થ શારદા પુત્રો છેજ.

'શારદા'ના તંત્રી મહાશયની વિચારનોંધ. 'શારદા' જુન ૧૯૩૮.

સાહિત્ય અને જાતિ સેવાનો તપસ્વી.

લેખક:—શ્રી જીવણલાલ નાથાભાઇ વરસડા, ભાદરવા.

સરસ્વતી, લક્ષ્મી અને ઉચ્ચ અધિકાર જેમની સેવામાં હાજર હતાં છતાં જેઓ સ્વાર્થનું માયાવી પૂતળું બન્યા નહોતા : જેમણે **सा विद्या या विमुक्तये** ના મંત્રો ઝીલી સાત્વિક ત્યાગ અને આત્મ સમર્પણ ધર્મ અદા કર્યો હતો : જેઓ પ્રારબ્ધ તેમજ સ્વપુરૂષાર્થથી પ્રાપ્ત થએલ જીવનનાં મીઠાં ફળો બીજાઓને વહેંચી શ્રેયસના ભાગીદાર થયા હતા : એટલુંજ નહિ, જેમણે પોતાના દેશ અને જાતિ બંધુઓના કલ્યાણ માટે-સ્વામિ ધર્મ માટે-સ્વ સંસ્કૃતિના સર્વનાશને અટકાવવાને માટે-રાષ્ટ્રની બલિવેદીપર પોતાના સર્વસ્વની અને પ્રાણની આહુતિ આપી હતી : જેઓ સુખ ભોગવવાને સર્જાયા હતા છતાં રાષ્ટ્રની ઇજ્જત અને આઝાદી માટે દુઃખના પહાડ નીચે દબાયા હતા; એવા પવિત્ર પુરૂષોના વંશમાં જન્મ થવો એ પણ એક પૂર્વના પુણ્યનું પ્રબળ પ્રમાણપત્ર છે.

આવું પ્રમાણ પત્ર ધરાવનાર એક માનવંત મહેમાન બ્રહદ્ ગુજરાતને આંગણે આવવાનો હતો. તેનાં દર્શન માટે ગુજરાતની ચારણ જનતા આતુર નયને રાહ જોઇ રહી હતી. એક તરફ અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનનું પંચમ અધિવેશન ગુજરાતમાં ભરાવાનું હતું. તેમાં પ્રમુખ તરીકે તેને હાજરી આપવાની હતી, બીજી બાજૂ ચારણ દેવી બહુચરાજીના પ્રશ્નની ચર્ચા માટે શ્રીમંત ગાયકવાડ સરકાર વિલાયતથી પધારે કે તેના અધ્યક્ષપણા નીચે વિદ્વાન ચારણોનું એક ડેપ્યુટેશન વડોદરામાં આવવાનું હતું એટલુંજ નહિ, ચારણ જાતિને નવ યુગના સંદેશ સાથે અતીત સ્મૃતિની યાદ આપવા માટે સંમેલનના મુખ પત્ર 'ચારણ'ને પુનર્જીવિત કરવાની પણ તે તૈયારી કરી રહ્યો હતો. સર્વ કાર્યક્રમ ગોઠવાઇ ગયો હતો. ગુજરાતના ચારણ યુવાનો પોતાના યુવક ધર્મના ઋણ અદા કરવાની ફરજ સમજી તેની સેવામાં હાજર રહેવા અધીરા બન્યા હતા; પરંતુ કાળની ગતી વિચિત્ર છે ! અચાનક એ મહા મોંઘા નર

સ્વ. ઠાકુર **કિશોરસિંહજી સૌદાનો** હૃદયની ગતિ બંધ પડી જવાથી દેહાંત થયાના માઠા સમાચાર આવ્યા ? વિજળી વેગે ઉત્સાહના વાતાવરણમાં ગમગીની છવાઇ ગઇ : મનના મનોરથ મનમાંજ રહી ગયા, વખત વીતી ગયો ! સ્વાગતને બદલે એને અંજલિ અર્પવાનો દુ:ખદ પ્રસંગ આવ્યો !

એ નર શાર્દૂલનો જન્મ વીરભૂમિ **મેવાડ** (રાજસ્થાન) માં થયો હતો, પ્રથમ અલવર સ્ટેટમાં અને છેલ્લાં પંદરેક વર્ષથી તેઓ પતિયાળા રાજ્યમાં ઇતિહાસ કાર્યાલયના અધ્યક્ષ તરીકેનું સ્થાન શોભાવતા હતા. મોટા મોટા રાજા મહારાજાઓ અને વિદ્વાનો સાથે તેઓ મૈત્રી ધરાવતા હતા. સંસ્કૃત અને અંગ્રેજી સાહિત્યના શ્રેષ્ઠ જાણકાર અને કાવ્ય શાસ્ત્રના પરમ મર્મજ્ઞ વિદ્વાન તેમજ ડિંગલ, વ્રજભાષા અને ખડી બોલીના દિવ્ય પ્રતિભાસંપન્ન કવિ હતા. ઇતિહાસ એ તેમનો ખાસ વિષય હતો, ઇતિહાસના વિદ્વાનોમા તેમનું ખાસ સ્થાન હતું. લાંબા કાળની નવાજૂનીઓ તેમણે જોઇ હતી. તેમના વિચારો અને દિશા—સૂચનો અગ્નિપરીક્ષામાં સિદ્ધ થયેલ શુદ્ધ સુવર્ણ જેવાં અનુભવસિદ્ધ હતાં. રાષ્ટ્રની આઝાદી માટે તેમનો આત્મા તલસતો હતો. રાષ્ટ્રભાવથી પ્રેરિત બની કેટલાંક વર્ષ પૂર્વે તેમણે ' નવ રાજસ્થાન ' પત્રનું સફળ સંપાદન કર્યું હતું. તે વખતે તેમના વિચારો રાજાઓની બાબતમાં ઘણા કડક હતા, તેઓ વૃદ્ધ થયા હતા, પરંતુ તેમનો આત્મા ' કિશોર ' હતો. તેમનું નામ પણ ' કિશોર ' હતું અને તેમની પવિત્ર ભાવનાઓ ' કિશોરજ ' હતી. તેમની કુલીનતા માત્ર ' નામની ' ન હોતી; પરંતુ ઉદયપુરના હિંદુસૂર્ય મહારાણાના પૂર્વજોના આફત ધર્મ વખતે અડગ સાથ દેનાર, સ્વધર્મનાં કવચ પહેરી આત્મસમર્પણ ધર્મમાં તેમની સાથો સાથ બલિદાન બનનાર આહુતિ રૂપે હતી.

ધર્મરક્ષાનાં પણ લેનાર: રાષ્ટ્રની વેદી ઉપર સમિધ બનનાર કુળમાં આવો એક કિશોર જન્મે તેમાં નવાઇ શી ? કારણકે એ સૌદા કુળમાં કર્મવીર યોદ્ધાઓ, આઝાદીના પ્રેરક સંદેશાઓ આપનારા કવિઓ અને સર્વસ્વનો ભોગ આપનારા ક્રાંતિવાદીઓ તેમજ દેશભક્તો પેદા થયા છે. આજે પણ એમાંના એક પુરુષ દેશભક્ત ઠાકુર શ્રી કેસરીસિંહજી (કોટા) હયાત છે, તેઓ એ કિશોરના મોટાભાઇ થાય.

જે કુળમાં આત્મસમર્પણનો ધર્મ વહેતા જળધોધ જેવો હજુ નજરે જોવામાં આવે છે; જ્યાં દૈવી સંપત્તિના ઝરણાં સમા જ્ઞાનની તૃષા છીપાવનાર, સંસ્કૃતિની વાડીને નવપલ્લવ બનાવનાર અમર પુરૂષો આજે પણ વિદ્યમાન છે. એવા પ્રાચીન કાળના ચારણોના પ્રતિકસમા યુગજૂના ગૌરવને સાચવી રાખનાર, વિદ્યા અને સંસ્કારના ખજાના રૂપ પવિત્ર કુળમાં એ વિદ્યાધર કિશોર જન્મ્યો હતો. તેનું જીવન પણ કેવું ' કિશોર ' હતું !

આજે મૃત્યુબાદ તેનો વાસના દેહ યુવાનોના હૃદયમાં વિદ્યુતનો પ્રકાશ અર્પતો વિદ્યમાન છે. એ કર્મવીર હતો; આત્મબળ અને નિર્ભયતાની એ પ્રતિમા સમો હતો મૃત્યુનો એને ડર ન હોતો; એને પક્ષપાત અને અસત્યનો અણગમો હતો. એક અમીરને છાજે તેવું ખમીર ધરાવતો હતો; છતાં તે મોટાઇનો ઘમંડી બુરખો પહેરી ફરતો ન હોતો. વિદ્યા, લક્ષ્મી અને માન મરતબો એને વર્યાં હતાં છતાં ડોળ અને દંભીપણું એ દાખવતો નહિ.

એનું જીવન સાદાઇ અને માનવપ્રેમથી ભરપૂર હતું. વિદ્વાન હોવા છતાં તેનામાં નમ્રતા હતી. બાળક પાસેથી પણ જ્ઞાન લેવાની એને ધગશ હતી. એના મનોરથો મોટા હતા; આશાઓ ઉન્નત હતી. યુગને ઓળખવાની તેનામાં આવડત અને સમાજને દોરવાની શક્તિ હતી. એ સમાજમાં નેતા થવા માટે સરજાયો હતો. આવતા યુગને અને ભૂતકાળને જોનારી દિવ્ય પ્રતિભા એના મસ્તિષ્કમાં ભરેલી હતી. વર્તમાનનો સદુપયોગ કરવાની એની કળા આકર્ષક અને દુઃખીને દિલાસારૂપ તથા સુખીને આશાની ફૂલી ફળી વાડી સમાન હતી. જીવનથી કંટાળેલા—સમાજની ચક્કીમાં પીસાયેલા વર્ગને માટે તેને હૃદયમાં ઊંડી સહાનુભૂતિ હતી. એને ગુરૂ માનનાર વર્ગ પ્રત્યે પણ એ સમાનતાનો દાવો રાખતો હતો. યુવાનોનો એ સાચો મિત્ર અને સલાહકાર હતો. એની દ્રષ્ટિમાં ગરીબ અને તવંગરના ભેદો ન હોતા. એની આંખમાં અમિધારા હતી.

રાજાઓની સિંહાસનોની જમણી ભૂજા બની બેસનારો એ માણસ, વિદ્વાનોની સભામાં ગર્જના કરનારો એ વ્યક્તિ સ્ત્રી સમાજ અને દલિતોનાં ઊંડી હાય ભર્યાં દુઃખો સાંભળી તેને માટે ખુલ્લી દલીલો કરતાં સંકોચાતો નહિ. ત્યાં એને કુલીનતા અને વિદ્વતા વિઘ્નરૂપ નડતાં ન હોતાં; કારણકે તે સત્યનો હિમાયતી હતો; ઇશ્વરદત્ત બુદ્ધિનું અનુશીલન કરનારો હતો; તેનું ખૂન કરનારો ન હોતો. વિદ્વાન હોઇ વિદ્યાને વેચનારો ન હોતો. તેનો આત્મા ઊંઘતો ન હોતો—જાગૃત હતો. તેના પરિચયમાં આવનાર સર્વને તે જગાડતો હતો—વ્યક્તિસ્વાતંત્ર્યનાં મૂલ્ય સમજાવતો હતો. એ સત્ય જ્ઞાન અને શુદ્ધ પ્રેમ ઉપર 'પાગલ' બનનારો બુઢો 'બાર્હસ્પત્ય' હતો.

એની મનોકામના ઇશ્વરે આપેલી શક્તિના સદુપયોગ દ્વારા સંસારમાં રહી કર્મયોગ સાધક શ્રેયસ્ને પંથે દોરનારી હતી. સમાજની મુક્તિમાં પોતાની મુક્તિ એ જ્ઞાનવૃદ્ધ કિશોર ઇચ્છતો હતો. સંસારના સળગતા પ્રશ્નો પ્રત્યે ઉદાસીનતા સેવી ઇશ્વરના દરબારમાં પોતાના માટેજ મુક્તિનો ચેક વટાવવા આગળ દોડનારાઓમાંનો તે ન હોતો. તેને વિમાનમાં બેસી ઝટ ઊડી જવાનો મોહ ન હોતો; કારણકે તેને કર્મયોગના નાવમાં બેસી નિષ્કામ સુકાની બની સહુની સાથે પોતાનો ન્યાય માગવો હતો. એકલી મુક્તિ એને ખપતી ન હોતી. એને તો શ્રેષ્ઠ કિશોર બની **वसुधैव कुटुंबकम्** ના આદર્શો સિદ્ધ કરવાના લડકોડ હતા. **सर्वभूत हितेरताः** નો એ પ્રચારક હતો. એ સિદ્ધ ન હોતો પણ **आत्मवत् सर्वभूतेषु** ની ભાવના જીવનમાં ઉતારી વ્યાવહારિક વેદાંતના પાઠો સમાજને ભણાવનાર આદર્શ સદ્ગૃહસ્થ હતો. એના સ્વર્ગવાસથી આજે રાજસ્થાનની વીરભૂમિએ એક નરરત્ન અને ચારણ જાતિએ પોતાનો યુગ પુરૂષ ગુમાવ્યો છે ! પાર્થિવ શરીરનો ત્યાગ કરી આપણી પાસેથી એ તેજોમય પ્રદેશની લાંબી મુસાફરીએ ગયો છે ! સમય ધર્મ સમજી એણે જન્મ દઇને જેનું અગિયાર માસનું બચપણ પણ '**होन हार बिरवानके होत चिकने पात**' ની પેઠે દીપાવ્યું હતું; અને એને દસ વર્ષની લાંબી ઊંઘ લેવા દીધા પછી જાગૃત કરી ઉછેરવાના વધુ લાડકોડ હતા, તે '**चारण**' ના પુનર્જાગરણ પ્રસંગે—તેના પ્રથમાંકમાં તેના એ સ્વર્ગગત જનકને અંજલિ અર્પી પરમાત્મા એ દિવ્યાત્માને વધુ દિવ્ય તેજ અને શાંતિ બક્ષો એવી પ્રાર્થના પૂર્વક વિરમું છું.

બિરદાળીનાં સંતાનોની બિરદાવલિ

[અમદાવાદના શ્રી ગુજરાત બ્રહ્મભટ્ટ વિદ્યોત્તેજક મંડળે ગુજરાતી ભાષાના આધુનિક મહાકવિ શ્રી નાનાલાલ દલપતરામ એમ. એ. નો મણિમહોત્સવ ગયે વર્ષે તા-૧૩-૪-૩૮ ના દિને ઉજવ્યો હતો. તે પ્રસંગે ઉકત કવિ શ્રી એ બ્રહ્મભટ્ટ કોમને ઉદ્દેશીને નીચેનું વ્યાખ્યાન આપ્યું હતું. તેમાં તેમણે બ્રહ્મભટ્ટ અને ચારણ કોમને એક મગની બે ફાડ સમજીને પોતાના પ્રેરક વિચાર દર્શાવ્યા હોવાથી તે વ્યાખ્યાન ચારણોને પણ ઉપયોગી છે. અને તેથી તેને અત્રે આપવું અમે ઉચિત સમજીએ છીએ. તંત્રી, ગુજરાતી વિભાગ]

તમારી ઉમદા ખાનદાની ઈતિહાસ-ઉતરેલી છે. તમારૂં ખાનદાન કિયું? સિંહાસનની છત્રછાયામાં તમારા વાસ હતા. સંધિ-વિગ્રહના તમે રાજદૂત હતા. બહારવટિયાઓના ને રાજા મહારાજાઓનાં જમાની ખત તમે લખતા ને જમાન તમે થતા. તમ જેવા સિંહના જમાન જગત-ઇતિહાસે શોધ્યા કોણ કોણ જડશે? તમારી બિરદાવલિએ સમશેરોનાં જુમરો ઝળહળતાં; તમારા બોલ-બાણે મુગટધારીઓ થરથરતા. તમારો સિંધુડો ગવાતો ને કેસરીઓ કેસરિયાં કરતા. રાજવટના માળી ને સિંહના ખેલાડી તમે હતા. ક્ષત્રિયોનાં કેસરિયાંથી ને ક્ષત્રાણીઓનાં જોહરથી તમારો ઇતિહાસ આલેખાયેલો છે.

તમારા ગોત્ર-પ્રવરની નામાવલિનો ખેરખો ફેરવે એનાયે હૈયાનાં પાણી ઉછાળે ચડે: પૃથ્વીરાજ ચોહાણના ચંદ બિરદાઇ, જોધાણનાથના કરણીદાનજી[1], મહારાણા પ્રતાપના દર્શાજી આઢા[2], રાણા રાજસિંહના મહાદષ્ટિ રાજકવિ[3], શિવાજીના ભૂખણ: એક એક નામોચ્ચારે હૈયામાં કવિતાના ફુવારા ફૂટે. રાજવીઓની રાજવટના ઇતિહાસ એ તમ દેવીપુત્રોના ઇતિહાસ. રાજવટ ને વીર કવિતા તમારા આંગણાં ને તુલસી કયારે રમતાં.

આપણી સંસાર વ્યવસ્થામાં ત્યારે કવિનું સ્થાન શું હતું?

એ સંસાર શાસ્ત્રના પ્રશ્નનો ઉત્તર આપના ઇતિહાસો આપે છે. સંયુકતાના સ્વયંવરમાં ચંદ બારોટના ચંબૂદાર થઇને દિલ્લીપતિ પૃથ્વીરાજ ગયા હતા. કરણીદાનજીને હાથી હોદ્દે બીરાજાવીને એક પ્રહરભર જોધાણનાથે આગળ ઘોડેસ્વારી કીધી હતી. દર્શાજી આઢાએ અકબરશાહના રાજદરબારમાં મહારાણાની પાઘને નમણું નહોતું દીધું. ભૂખણે શિવરાજબાવની લલકારીને શૂરવીર શિવાજીને પણ શૂરાતન પાયું હતું. મહારાણા રાજસિંહના રાજકવિએ રાજનીતિનિપુણ મહારાણાને યે રાજનીતિ સદ્‌બોધી હતી. કલ્યાણીમાં ભુવનાદિત્યના રાજદરબારમાં જયશિખરીના રાજકવિ શંકર બારોટે ગુજરાતને પૃથ્વીનો પારસમણિ કહ્યો હતો. અષ્ટ પ્રધાનમંડળમાંના રાજકવિ એક હતા, ત્યારે કવિ હતા રાજયનું અંગ ને સિંહાસનનો પાયો.

પાટણ, મૂળી[1], દેવરાસણ[2], વિજાપુર, નડિયાદમાં તમારા કવિ નિવાસ હતા. ઇતિહાસનાં ખંડેરો સમાં આજ તો બધે એ જૂનવટનાં ખંડેરો છે. પણ ચિતોડનાં, કુંભલમેરનાં, ઉદયપુરનાં, દિલ્લી-આગ્રાનાં, ફતેહપુર-સિક્રીનાં શિવનેરી ને રાયગઢનાં ખંડેરો ઇતિહાસ પૂજ્ય છે એવા તમે ઇતિહાસ પૂજ્ય છો.

૧-૨-૩ ચારણ કવિઓ.

૧-૨ કાઠિયાવાડ-ગુજરાતમાં ચારણ જાતિના પ્રસિદ્ધ ગઢવાડાઓનાં ગામ.

અને કવિઓને છંછેડયે શું પરિણમે એના ઉત્તરો યે તમ ઇતિહાસમાં ઓછા નથી. તમ કરતાંયે અધિકો જગ જાણીતો કિસ્સો ફિરદૌસીનો છે. આજે એક હજાર વર્ષેય ફિરદૌસીનો કસીદો શાહનામાના જેટલોજ જગત્ પ્રખ્યાત છે.

પણ આપણાજ દેશે કવિવરો લોકપૂજ્ય હતા કે દુનિયાનાં દેશ દેશમાં? જ્યાં બુદ્ધિનાં તેજ પહોંચતાં નથી એ હૈયા ગુફાના દિશા લોકમાં, જ્યાં સૂરજનાં કિરણો પ્રવેશતાં નથી એ અગમ નિગમના અગોચર દેશમાં કવિઓ કાવ્ય વિહારે સંચરે છે. સ્વયં પરબ્રહ્મનું એક વિશેષણ કવિ છે: **कविं पुराणं अनुशासितारम्** વિ૰ જ્યાં જ્યાં માનવી હૃદય છે, ત્યાં ત્યાં એ હૃદય રાજવીનાં રાજ્ય છે. હૃદય શૂન્યો હોય એ કવિઓને ઉપહાસે. દુનિયાના દેશ દેશમાં કવિઓ પ્રજાના મુગટ મનાતા. કવિ એટલે પ્રજાની પ્રેરણા.

ગ્રીસમાં હોમરયુગથી લોક સમારંભો કવિ લલકારથી ગાજતા. ઇસ્લામી સંસ્કૃતિ કવિ મેળાવડાઓ–મુશાયરાઓથી ગૌરવવંતી હતી. ઉજ્જયિનીમાં કવિવરને પટ્ટબંધ બંધાવી, રથમાં પધરાવી, નગરીની વિજય યાત્રા કરાવીને સન્માનતા. બ્રિટનમાંનો એક દાખલો જરા વિગતેથી જોઇએ.

ગયા સૈકાનીજ વાત છે; બ્રિટનના રાજકવિ વર્ડ્ઝવર્થ કે રાજકવિ ટેનીસન, ગ્લાડસ્ટન કે વિકટોરિયાથી લોક હૈયે નીચેને પાટલે વિરાજતા નહોતા. એક સમાનો યોગ હતો ને ગ્લાડસ્ટન ને ટેનીસન એક કાંઠા આગબોટ ભાડે કરીને ગ્રેટબ્રિટનને કાંઠે કાંઠે તબિયતની શોધમાં સાગર સફરે નીકળ્યા. ફરતા ફરતા એ મહાપુરૂષો સ્કોટલેંડના ગ્લાસગો શહેરમાં જઇ ચડયા. ગ્લાસગોની જનતાએ આંગણ આવ્યા મહાપુરૂષોનો સન્માન–સમારંભ ઉજવ્યો, અને બ્રિટિશ મહારાજ્યના રાજમંત્રીને ને રાજકવિને સમાનપત્રો સમર્પ્યાં. બન્ને મહેમાનોની વતી ઉત્તર આપવાને બ્રિટિશ મહારાજ્યના મંત્રીશ્વર ઊભા થયા. જગત્–ઉથલ પાથલોના વિધાતા એ મંત્રીશ્વરે શું કહ્યું? જાવ ને વાંચો, ઇતિહાસને પાને લખેલું છે કે પચ્ચીસ–પચાસ વર્ષે ગ્લાડસ્ટનને પ્રજા ભૂલી જશે, ને પૂછશે કે ગ્લાડસ્ટન કોણ હતો, ને એણે શું કર્યું છે? પણ આ આપણા કવિવર ટેનીસન: એમના કાવ્યગ્રંથો તો અંગ્રેજી ભાષાના જીવન–તારોમાં ગૂંથાયેલા છે, અંગ્રેજી ભાષા જેટલા અમ્મર છે.

ગ્રીસ ને રોમના સામ્રાજ્યો આજ નથી; પણ ગ્રીસ રોમના કવિવરોનાં સામ્રાજ્ય હજી આથમ્યાં નથી. વિક્રમ કે હર્ષનાં ચક્રવર્તીત્વ આજે ક્યાં છે? પણ કાલિદાસનાં ને બાણનાં ચક્રવર્તીત્વ જગત્–વ્યાપેલાં છે.

રાજપુરૂષોના રાજમુગટ નાશવંત છે; કવિઓના કાવ્ય–મુગટ ચિરંજીવ છે. આજે કોણ સજીવન છે? મહમ્મદ ગિઝનવીનો રાજમુગટ કે ફિરદૌસીનો કાવ્ય–મુગટ? પૃથ્વીરાજનું દિલ્લીપતિત્વ કે ચંદનું કવિતા સ્વામિત્વ?

ઉદયાચળે ચડતી મહાપ્રજાઓ કવિ–પ્રેરણાને પ્રજા–મુગટ પહેરાવે છે.

બારોટો અને ચારણો બન્ને દેવીપુત્રો છે, મારે મન તો એક મગની બે ફાડ છે. બારોટો ને ચારણો ક્ષત્રિયવટની વાડીના માળીઓ હતા. રાજદેહના બે પાયસ્તંભ હતા. આજ માળીઓ વિના વાડીઓ સૂકાઇ ગઇ; પાયસ્તંભો પડી ગયે દેહસ્તંભ પડી ગયો.

અને તમારો કાવત–પ્રવાહ? ગંગા–પ્રવાહ સમો તમ કવિત–પ્રવાહ વહતો. હિમાદ્રિના ખડકો ઉપરથી પડતા ધોધસમો ગાજતો; કનખળ કને વનલક્ષ્મીનાં સોહાગી રૂપ ધરતો; વારા-

ણસીને ધાટે સાગર–ગંભીરો વહતો. ચંદ રાસો એટલે માત્ર વીરરસનું મહા કાવ્ય નહિ; પણ વીર–કરુણ–શૃંગાર–અદ્દ્ભુતના ઓઘ વહતું મહાકાવ્ય. સૂરદાસ, કેશવદાસ, ભૂખણ, તુલસી, મતિરામ, દર્શા આઢા,[1] કરણીદાન,[2] બ્રહ્માનંદ,[3] એ અને એવા તમારા ગ્રહો અને ઉપગ્રહો હતા. પ્રવીણસાગર તે તમશૈલીનો, મધ્યયુગના ગુજરાતનો મહાગ્રંથ. ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદો મળે છે ને ત્યાં મધરાતે માવદાનજી[4] સદ્દગુરૂ બ્રહ્માનંદ સ્વામીનો રેણુકી છંદ ક્યારેક લલકારે છે ત્યારે એ સાહિત્યમંડળ, સૂર્યતેજમાં ચંદ્રતેજ ઝંખવાઈ જાય એમ ઝંખવાય છે. કવિતાના જંગ જામે ત્યાં તો રસ, માધુર્ય ને પ્રસાદ હોય તે જીતે.

यही वान चोहान! राम रावन उत्थप्यो।

ઉધડકેજ એ છપ્પય ગગન ધડાકા સમો ગાજતો નથી ? ઘોડીલાની છલંગો સમા ઊછળતા ચંદના ભૂજંગપ્રયાત ને મોતીદામ નવ કવિતામાં ઝાઝા છે ?

शिवाजी न होत तो सुन्नत होत सबकी।

એવા ઇતિહાસ ગાજતા કાવ્ય બોલની કવિતા ક્યારેક તો લખાવ. કડીંગ ધુમ, કડીંગ ધુમ નિશાન ડંકો ગાજે એમ તમ કાવ્યસ્તોત્રો ગાજતાં, ને પ્રજા હૈયે ડંકા વાગતા.

कवि गंग कहै, सुनु शाह अकबर।
भाग्य छिपै न भभूत लगायो।

એવા વિધાતાના આંકડાના અક્ષરો કેટલાકે ઘુંટયા ?

घण रव पट फरर घरर पद घूघर,
रंगभर सुंदर श्याम रमे,
जिय रंगभर सुंदर श्याम रमे।

એક સદીથી ગુજરાતભરમાં ગાજતો, લાડુ બારોટ (શ્રી બ્રહ્માનંદ સ્વામી*)ના એ રેણુકીનો કવિત રણકો ગુજરાતીમાં ઊતર્યો છે ખરો ? વૈરાગ્ય પણ તમારોજ છે.

પેટ કટારી રે કે પહેરી સન્મુખ ચાલે,
સાચા શુરા રે, જેનો વેરી ઘાવ વખાણે.

सदूगुरुका वंदा ब्रह्मानंदा साच कहंदा सब हंदा. એના બોલ હૈયામાં જઈ મગદળ જેવા નથી વાગતા ?

सीत हरी दिन एक निसाचर,
लंक लई दिन ऐसोहि आयो।
एक दिना दमयंति तजी नल,
एक दिना फिरही सुख पायो॥
एक दिना वन पांडव गे अरु,
एक दिना सिर छत्र सुहायो।

૧–૨ ૩ ચારણ કવિઓ. ૪–કાળાવડ (જામનગર) વાળા કવિ માવદાનજી રતુ.

* સ્વામીનારાયણ સંપ્રદાયી કવિવર બ્રહ્માનંદનું પૂર્વાશ્રમનું નામ લાડૂદાનજી આસિયા હતું. તેઓ સં. ૧૮૨૮માં શિરોહી રાજ્યના ખાણગામમાં જન્મ્યા હતા. તેમનો સં. ૧૮૮૮ માં દેહાંત થયો.

सोच प्रवीन ! कछु न करो,

करतार यही विधि खेल रचायो ॥

પ્રવીણસાગરના એ સવૈયાએ આશાનાં છાંટણાં છાંટી કેટ કેટલાંને સજીવન કીધાં છે: ચેતના પાઇ છે.

તમારી કટારીએ તો રાસા શોધાવ્યા, રાસમાળા લખાવી, ગુજરાતનો ઇતિહાસ સજીવન કીધો, ફારબસને પ્રેરણા પાઇ ગુજરાતનો ટૉડ સરજ્યો.

જ્યાં સતીમાતાને સત ચડતાં, જ્યાં ક્ષત્રાણીઓ જોહર ખેલતી, જ્યાં ક્ષત્રિય જાયાઓ કેસરિયાં ઘૂમતા, ત્યાં ત્યાં દેવીના બિરદાઇઓનાં ગીત–રણશીંગડાં વાગતાં. મરણને તમે હથેળીમાં લઇ ફરતા. કસુંબો પીવો ને મૃત્યુ પીવાં તમારે સરખાં હતાં. હાહાકીરી કરવી એતો જાપાનમાં આજ પ્રત્યેક સજ્જનની સુજનતા છે.

वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि ।

વજ્રથી કઠોર ને ફૂલથી કુમળા તમે હતા. કાળના ખડકો તમે હતા. કાળની ફૂલ–વેલો યે તમે હતા. વીર ઘૂંટતા એટલો શૃંગાર ઘૂંટતા; વૈરાગ્ય ઘૂંટતા. એટલો ભક્તિરસ ઘૂંટતા. પ્રજાના સૂર્યે તમે હતા ને ચંદ્રે તમે હતા. નવખંડ સમા નવે કાવ્યરસમાં તમારી પગલીઓના પડછંદા પડતા.

—'પ્રજાબંધુ'ના તા. ૧૮–૪–૩૮ ના અંકમાંથી ઉદ્ધૃત.



ભક્ત કવિ દૂલાભાઇ ભાયાભાઇ કાગ

લેખક: શ્રી. ગોકુલદાસ દ્વારકાદાસ રાયચુરા

ભગવત લિખિયો ભાગ, કોયલ કંઠો રદ કિયા;
થારી–કેવી વાણી કાગ ! દુનિયા વશ કી દૂલિયા !

× × ×

બોલે કોયલ બાગ, મીલ ભર્યો સુણવે મિનક;
થારી–કેવી વાણી કાગ ! દુનિયા સુણ લી દૂલિયા !

× × ×

ગૌરવ નિજ કુલકો ગહત, રખત રાષ્ટ્ર–અનુરાગ;
કૃષ્ણાર્પણ હિય કરત તૂ; કાગ ! અહો બડભાગ.

મારવાડના સુપ્રસિદ્ધ ચારણ કવિઓ: શ્રી સુમેરદાનજી વણસૂર તથા શ્રી ઇશ્વરદાનજી આસિયાએ સોરઠી શાયર ભક્ત કવિશ્રી દૂલાભાઇ ભાયાભાઇ કાગ માટે દૂહા લખતાં લખતાં

ઉપરની દિલની વાણી ઉચ્ચારી છે.* એક સમર્થ સોરઠી ચારણ કવિની પ્રશંસા એમના મારવાડના જાતભાઈઓ તરફથી આ રીતે થાય એ અનેક રીતે શોભાસ્પદ અને ગૌરવભર્યો પ્રસંગ ગણાય. હજુ હમણાંજ રાજકોટમાં મળેલા અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના પ્રસંગે મારવાડના ચારણ વિદ્વાનોએ કવિશ્રી કાગની પ્રશંસા કરતાં એમને 'કાં ઇસરા કાં પરમેશરા' એ શબ્દોથી અમર બનેલા ભક્તકવિ ઇસરદાસજીના અવતાર તરીકે ઓળખાવી સોરઠના એ સંત કવિની સાચી પિછાણ કરાવી હતી.

અને ખરેખર કવિશ્રી દૂલાભાઇ કાગની પિછાણ સમગ્ર મહાગુજરાતને થાય એ અતિ જરૂરનું છે. આજના યુગના એ સમર્થ ચારણ કવિ છે. ચારણી ભાષા પર તો એમને પ્રભુત્વ હોયજ, હિંદી અને વ્રજભાષાનાં લાલિત્ય તો એમને વરેલાંજ છે, પણ સાથે સાથે ચારણ કવિઓમાં ઝડઝમકભરી, મીઠી અને જોરદાર શૈલીમાં ગુજરાતી ભાષામાં કાવ્યો રચનાર તરીકે કવિશ્રી કાગ અજોડ અને અદ્વિતીય છે.

રાષ્ટ્રભાવનાને રંગે રંગાયલા ચારણ કવિઓ બહુજ થોડા છે. જે થોડા છે એમાં પણ સમર્થ શક્તિશાળી અને સંસ્કારી થોડા છે. એ સર્વના મુકુટમણિ તરીકે શોભતા ભક્તકવિ દૂલાભાઇ કાગ, આ યુગના સમર્થ, શક્તિશાળી અને સંસ્કારી રાષ્ટ્રીય શાયર છે.

જ્યારથી 'શારદા'માં એ સોરઠી શાયરનાં કાવ્યો પ્રગટ થવા લાગ્યાં ત્યારથી અનેક મિત્રો, સ્નેહીઓ અને 'શારદા'ના હજારો વાંચકો એ કવિની કાવ્યકલા ઉપર મુગ્ધ થયા છે. સહુ કોઇ એમની કવિતા સાંભળવા આતુર રહે છે. એટલુંજ નહિ પણ એમના પરિચયના અભિલાષ પણ કેટલાક મિત્રો સેવી રહ્યા છે.

બડભાગી ભાવનગર રાજ્યના પોર્ટ વિકટર પાસે આવેલા મજાદર ગામના એ રહીશ, સોરઠભૂમિનું એક અણમોલ રત્ન છે. જનની અને જન્મભૂમિને અમર કરનાર એ સમર્થ કવિ આજે 'ભગત'ના નામથી એમના આખાય પંથકમાં મશહુર છે. કૃષ્ણની બંસરીના સૂર સાંભળનાર ગોપાંગનાઓ જેમ એ સૂરને તાને તાને મસ્ત બનતી તેમ કવિશ્રી કાગની વાણી સાંભળનાર સદૈવ એની મસ્તીમાં રમ્યા કરે છે.

હરિપુરા કોંગ્રેસમાં આ સોરઠી શાયરને પ્રથમવાર સાંભળનાર ગુજરાતના અનેક યુવાનોને કવિશ્રી કાગની વાણીમાં મેં મસ્ત થતા જોયા છે. હરિપુરાની વ્યાસપીઠ પરથી જ્યારે આ દેવીપુત્રે 'દેશ જો જો ગાંધીજીની દીકરી' એ ગીત સંભળાવ્યું, ત્યારે હજારો ગુજરાતીઓ અને ગુજરાતણો એ ગીતને ચરણે ચરણે મુગ્ધ થતાં ગયાં. અને એ પછી જ્યારે કવિએ 'મોભીડો' નામક મહાત્માજીની પિછાણ આપતું કાવ્ય જમાવ્યું ત્યારે તો આખીયે મેદની એને તાલે તાલે કંઇ અજબ દર્શન, અજબ મસ્તી અને અજબ ઉત્સાહને હેલે ચડી હતી. જે

---

* રાજપૂતાનાના આધુનિક સમર્થ કવિ ઠાકુર શ્રી. કેસરીસિંહજી સોદા (સોન્યાણા) એ પણ શ્રી. દૂલાભાઇની કવિતાની પ્રશંસા કરતાં કહ્યું છે:

સુંદર રચના હે સરસ, તેસેઇ ઉત્તમ છંદ;
કવિતા દૂલા ભગતકી, સોનો ઔર સુગંધ.

—તંત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.

કાવ્યમાં સાચી કવિતા હોય એમાં કેવી અને કેટલી તાકાત હોય છે, એ આ 'મોભીડા'ના કાવ્યમાં એ સોરઠી શાયરે સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે.

'શારદા'ના જુન અંકમાં પ્રગટ થયેલ 'લાડકડો વર' નામક કવિના ગીતે તો કમાલ કરી છે. એમાં સ્વતંત્રતા સુંદરીને વરવા માટે કેટલાય વરરાજા માંડવે જઈને પાછા ફરે છે. કારણ કે એ વરરાજાના સામૈયામાં ફૂલની શૈય્યા નહોતી, આસોપાલવનાં તોરણ નહોતાં; પોંખણામાં મીઠડી સાસુના ગૌરવર્ણા હાથ નહોતા, પણ કવિ ગાય છે તેમ :

એને પોંખણ કાળ તણા ગણ છે,
એનો માંડવડો એ મહા રણ છે;
તલવારો તણાં એને તોરણ છે.

ઉપરાંત કવિ જ્યારે આગળ વધીને કહે છે કે, એ વરરાજાએ કન્યાને માંડવે જઈ—

દિન રાત ધખેલ હતી તપતી,
એણે કૈંક નમાવી દીધા નૃપતી;
એવી નાળ જંજાળ કરાળ હતી.

ભયકાર મુખે વિકરાળ હતી;
ઝગતી જમ આંખ શી જામગરી;
એવી તોપને મોઢડે બાથ ભરી,
પછી હાકલ દાગવાની કરી.

તોપને મોઢે બાથ ભરીને પછી 'હાકલ દાગવવાની કરી' આ શબ્દોમાં કવિએ મહાત્માજીની અહિંસા એ સાચી વીરતા છે, એ સરસ રીતે સાબીત કરી આપ્યું છે.

કવિ શ્રી કાગે 'ભ્રેમંડ ડોલે' નામક એક કાવ્ય હમણાં લખ્યું છે: આજે દેશની દુર્દશાની વાત કોઈ પૂછે તો કહેનારના દાઝેલા દિલમાં કેટલું દુઃખ છે, એનો સાચો ચિતાર આ સોરઠી શાયરે આપ્યો છે, તેવો હાલના કોઈ કવિએ આપણને આપ્યો નથી: કવિતામાં રસ અને કલાની જમાવટ ત્યારે થાય કે જ્યારે કવિનું દિલ એ કવિતામાં દ્રવે. આ કાવ્યમાં કવિનું દિલ દ્રવતું દેખાય છે.

ભ્રેમંડ ડોલે.

ન પૂછો કોઈ દાઝેલાંઉંની વાતું,
વાતડીએ ભ્રેમંડ ડોલેરે.
મારી વાતડીયું ધરણી જો સાંભળે,
એની હૈયુંના ડુંગરા ડોલે;
વાતડીએ ભ્રેમંડ ડોલેરે.

મારી વાતડીયું ચાંદો જો સાંભળે;
એના તનડાની ટાઢકું ત્યાગે;
વાતડીએ બ્રેમંડ ડોલેરે.

મારી વાતડીયું વનરાયું સાંભળે,
એનાં ખીલેલાં ફુલ ખરી જાસે;
વાતડીએ બ્રેમંડ ડોલે.

મારી વાતડીયું દરિયો જો સાંભળે,
એની મોટાઈની માઝા મૂકે;
વાતડીએ બ્રેમંડ ડાલેરે.

મારી વાતડીયું હેમાળો સાંભળે,
એ હેમાળો ઓગળીને હાલે;
વાતડીએ બ્રેમંડ ડોલેરે.

મારી વાતડીયું દેવળજો સાંભળે
એ દેવળનો દેવ ભાગી નાસે;
વાતડીએ બ્રેમંડ ડોલેરે.

તાત્પર્ય કે સાચી કવિતાનું દર્શન કરાવવામાં કવિ શ્રી કાગ એક સફળ કવિ તરીકે અગ્રસ્થાને છે.

કવિમા લે'ર અને મસ્તી હોય એ રીતે કવિ શ્રી કાગની કવિતાઓ જુદા જુદા પ્રકારમાં અજબ સફળતા મેળવી જાય છે.

દાખલા તરીકે કવિશ્રી 'મનખડાં મેળે' નામક ગીત અતિ ભાવથી આલેખતાં ગાય છે કે:

હાલો હાલો માનવીયું મેળે,
મેળામાં મારાં મનડાં માનેલ છે.

ઈરે મેળામાં કોઈ આંટિયાંળી પાઘડી,
એના ઓડિયાંના ઠાઠપર તનડાં ઓવારિ;
મારાં મનડાં નીચોવું—માનવીયુ મેળે.

ઈરે મેળામાં કેંક ઘૂમાવે ધોડલાં,
એના ડાખલાના તાલ મારાં હૈડાં હરાવે;
મારાં મનડાં નચાવે—માનવીયું મેળે.

હીરે મેળામાં કૈંક પાવાની જોડ છે,
એના પાવાના સાદ બહુ મીઠા;
વરસ દિ'એ દીઠા—માનવીયું મેળે.

કવિશ્રી પ્રાસંગિક ગીતોમાં પણ વસ્તુને અચ્છો ઇન્સાફ આપી શકે છે. દાખલા તરીકે, કવિશ્રી એ ' શ્રી દિલહરકુંવરબા ' વિષે હમણાં એક ગીત લખ્યું છે. વાત એવી છે કે વાંસદાના ફટાયાને વાવડીવાળા શ્રી વજુભા ગોહિલનાં કુંવરી શ્રી દિલહરકુંવરબા આપ્યાં હતાં. પોતાના પતિદેવ ગુજરી જવાથી અન્ન જળનો ત્યાગ કરી વીસેક દિવસે બાવીસ વરસની ઉંમરે એ બહેને શરીર છોડી દીધું. કવિ શ્રી એ વિષે ગાય છે કેઃ

દેવી દિલહરકુંવરબા રે વરી એને કાજ મરી,
પતિ પરલોક જાતાંરે, કાયા કુરબાન કરી—ટેક.
એને ભૂષણ વીંછીના ભાર થયા,
એને ભોગ ભયંકર રોગ થયા;
એને મે'લ રંગેલ મસાણ થયા.
અબધૂતણ બેઠીરે, મસાણુંમાં મે'લ કરી—દેવી૦
એનો આતમ—સ્વામી જ્યાં ઉડી ગયો,
એનો ક્યાંય ન જીવડો થીર થયો;
એને સઘળો સંસારિડો શાપ થયો.
એનો ચૂડો અડીખંમ રે, ઉતરવા મનાઈ કરી—દેવી૦
છેલ્લી સાથરી નાથ તણી સંઘરી,
ધીંગી ધરણી[1] માતા સામે રોષ ધરી;
વજમાલ ગોહિલ તણી કુંવરી.
સ્વામી—બાળણહાર[2]નુંરે રાંધેલું હરામ કરી—દેવી૦
દુઃખી દેખી દિલે દુઃખીયારી થતી,
રંગમે'લ હતી હસતી રમતી;
બીજે દિને થોડી એની ખાખ હતી.
વિધવા પણ—સાગર[3]રે ગઇ એની નાવ[4] તરી—દેવી૦

૧—પોતાના પતિના શબને સંઘરનારી ધરતી (વાંસદા) નો ત્યાગ કર્યો. ૨—ભાવ એવો છે કે, જે અગ્નિએ પોતાના પતિને બાળી દીધો તે અગ્નિ વડે રાંધેલું હરામ કર્યું. ૩—વૈધવ્ય રૂપી સમુદ્ર. ૪—જીવન રૂપી નાવડી.

આ પ્રકારે કવિશ્રી, જીવનના જુદા જુદા ક્ષેત્રમાં અજબ રસ જમાવી શકે છે. રાજકારણ, સંસાર, વીર–શૃંગાર–ભક્તિ : એ સર્વમાં કવિની કૃતિ જુદી રીતે ખીલી ઉઠે છે. કવિશ્રીનો આખોય ભંડાર અણમૂલ રત્નોથી ભરેલો છે.

કવિશ્રી જેમ કવિ તરીકે ઉત્તમ છે તેમ સુજનતા, ભલાઇ, સાદાઇ અને ભક્તિમાં આજે એક અજોડ પુરૂષ તરીકે સહુનો પ્રેમ સંપાદન કરી શકયા છે.

એમની એક વિશિષ્ટતા છે કે, તેઓ ‘ અયાચક ચારણ ’ છે. ચારણોમાં ‘નરા’ શાખના જેટલા ચારણો છે, એ અયાચક હોય છે. ‘નરા’ શાખની એ વિશિષ્ટતા કોઇએ અખંડ રીતે જાળવી હોય તો તેમાં ભક્ત કવિશ્રી દૂલાભાઇ કાગ મોખરે છે.

એમની એ ‘ અયાચકવૃત્તિ ’ નો એક ખાનગી પ્રસંગ એમની મારી માગીને અત્રે આપી દેવાની લાલચ હું રોકી શકતો નથી.

દેશના રાજકારણમાં ફેડરેશન આજે સર્વનું લક્ષ્ય ખેંચી રહેલ છે. એ વખતે ફેડરેશન વિષે જો કોઇ કવિએ કવિતામાં કહ્યું હોય તો એનું માન સમગ્ર ભારતવર્ષમાં સહુથી પહેલું આ સોરઠી શાયર શ્રી. દૂલાભાઇ કાગને ફાળે જાય છે. આ ‘ફેડરેશન’ વિષેનું ગીત સાંભળી કાઠિયાવાડના એક આગેવાન રાજપુરૂષે આ સમર્થ કવિ પાસે એક બીડેલ કવરમાં રૂપિયા પાંચ હજારનો ચેક ધર્યો. ચેક જોઇ કવિ હસે છે, અને એ પુરૂષ સામે હાથ જોડીને કહે છે કે, “ આપ કૃપા કરી મારી અયાચક વૃત્તિને ડગાવવાનો આવો પ્રયાસ ન કરો એવી મારી વિનંતિ છે. ” એ રાજપુરૂષના અનેક પ્રકારના આગ્રહ છતાં કવિએ ચેક ન સ્વીકાર્યો, ત્યારે એ આગેવાન પુરુષે નોંધવા જેવા શબ્દો ઉચાર્યા કે, “ સોનાને કસવા માટે પત્થર જોઇએ, અને માણસને કસવા માટે સોનું જોઇએ. ”

સોનાથી કસાયલા આ સોરઠી શાયર આજે સર્વ સ્થળે પૂજ્ય છે, એનું મુખ્ય કારણ એમની અયાચક વૃત્તિ છે.

‘ પ્રભાસ* ’ નામના એક કવિ કવિશ્રી દૂલા કાગ માટે જે સાચું લાગ્યું તે કવિતામાં ઉતારતાં કહે છે કે :

જેની રગે રગે નીચતા નીતરે,
ઝેરી આંખમાં મદની લાલી ઝરે;
વિષયી ચિતે નિત્ય વિકાર કરે.
એવા ક્ષત્રિય–કુળ–કલંકની કે’વાતી
કીર્તિ તણાં કવિ ગાન કવે !
પાપી પેટના પૂરવા એ પતિતોની
પૂજા કરી શી ઉપમાથી સ્તવે ! ૧
જેનું દૂષિત જીવન પાપે ભર્યું,

---

* મુરબ્બી શ્રી. રાયચુરાભાઇ પાસેથી જાણવામાં આવ્યું કે, પ્રભાસ પાટણના એક દેસાઇ અટકધારી નાગર યુવાન ‘પ્રભાસ’ ઉપનામથી કાવ્યો લખે છે. તેઓ ગ્રેજ્યુએટ હોઇ હાલમાં જૂનાગઢ રાજ્યમાં કુતિયાણા મહાલના વહીવટદાર છે.’

જેનું નામ જગે અતિ દુષ્ટ ઠર્યું;
જેનાં કામમાં કાળું કલંક ભર્યું.
અપનાવી એવા મહા પાપી પતિતને,
પુનીત ને પુણ્યશ્લોક કહે;
બિરદાવી એવા બદમાશ ને બાદશા'—
શાહ કહી કવિ ચર્ણ ચૂમે.

સૂણી રંકની રીડ ન પાઈ ધરે,
જેને દ્વારથી પાછો ભિખારી ફરે;
કોડી કોડી ગણી જેનાં દિલ ઠરે.
એવા સૂમ તણા સરદારને કર્ણ—
તણા અવતાર કહી વરણે;
અન્ન-પૂરણહાર કરી અળગો,
વળગે એવા 'શ્રીમંત'ને શરણે. 3

પણ આ કવિતો—
જેની બાનીમાં શૌર્યને સત્ય તરે,
જેના કાવ્યમાં દુઃખીની દાઝ ઠરે;
જેની વાણીએ શારદ વાસ કરે.
જેણે રાયથી રંક અધિક ગણી
ગાયાં ગીત ગરીબી તણાં કવને;
જેના હૈયામાં ઊંની વરાળ ભરી,
તપ્યો તાપ ગરીબ તણાં તપને. ૪
ગાય રંકની રીડને કાજ ખીજે,
પરપીડ વિદારવા વાણી વીઝે;
ન્યાય—ભીખ માંગી એનાં દિલ રીઝે.
જ્યારે રાજ રીઝે ત્યારે જાત ભૂલી,
માગે ચારણોદ્ધારનો ભાગ મીઠો;
ભૂલી સ્વાર્થ રમે પરમારથમાં;
(એવો) પરદુઃખ નિવારણ (ચારણ) 'કાગ' દીઠો. ૫

આ સોરઠી શાયરે આજે સોરઠી કવિતાને જોમ આપ્યું છે. પોતાના બુલંદ મીઠા કંઠથી એ જ્યારે પોતાનાં સ્વ રચિત કાવ્યો લલકારે છે, ત્યારે હજારો શ્રોતાઓ મંત્રમુગ્ધ થઇ જાય છે.

મારા અભિલાષોમાં એક અભિલાષ એ છે કે, મહા ગુજરાતની સાહિત્યસભાઓમાં કવિશ્રી કાગ અને ગઢવી મેરૂભાની જોડીને લઇ જઇ સોરઠી કવિતાની સાચી પ્રસાદી અપાવું. અત્યાર સુધીમાં હું એક પાંખે ઉડતો હતો, આજે મને બે પાંખો આવી છે, એટલે મહા-ગુજરાતના સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં સેવા આપવાના અભિલાષ પૂરા થશે એ વિચારે સંતોષ થાય છે.

ચારણોદ્વારા, ચારણી સાહિત્યદ્વારા ગુજરાતના સાહિત્યના ક્ષેત્રમાં સાચી કવિતા ઉતાર-વાનું સદ્‌ભાગ્ય કોણ નહિ ઇચ્છે ?

કવિશ્રી કાગનાં બે પુસ્તકો તૈયાર થાય છે: 'કાગવાણી' ભાગ ૧ લાની બીજી આવૃત્તિ અને 'કાગવાણી' ભાગ બીજો. આ બન્ને પુસ્તકો ગુજરાતને ચરણે આ સમર્થ સોરઠી શાયર-ની કાવ્ય-પ્રસાદી અર્પશે એવી શ્રદ્ધાથી સોરઠના આ રાષ્ટ્રીય શાયરનો ટુંક પરિચય આપતાં મને આનંદ થાય છે.

—'શારદા'ના ઓગસ્ટ ૧૯૩૮ના અંકમાંથી કિંચિત ફેરફાર સાથે ઉદ્ધૃત.



काव्यकुञ्ज.

દેવીપુત્ર ચારણને

[લેખક-કવિશ્રી ત્રિભુવનભાઈ ગૌરીશંકર વ્યાસ, રાજકોટ]

હરિગીત છંદ

(૧)

રે ! દેવીપુત્ર પવિત્ર વંશજ સુજશ મુખ ઉચ્ચારણા,
રે ! યુગે યુગાંતરના અડીખમ સાક્ષીભૂત ઇતિહાસના;
કંઠસ્થ રાખી વીરકથાઓ ભાખી ભારે રસભરી,
એ ઊઠ ચારણ ! ઊઠ તારી ઊંઘ ને અળગી કરી.

(૨)

દ્વિજ, ધર્મ, ધેનુ, આશ્રિતો શિરસાટ જે રક્ષે સદા,
જાતિ અને વળી ન્યાય પથથી ડગ ન છંડે જે કદા;
એ ક્ષત્રીવટ ની સતત કીધી ચોકી જેણે આકરી,
એ ઊઠ ચારણ ! ઊઠ તારી ઊંઘને અળગી કરી.

(૩)

શુભ આર્ય સંસ્કૃતિના પ્રવાહો જેમણે સંચ્યા સદા,
ને લોકભાષામાં વહાવ્યા પ્રબળ વેગે સર્વદા;
કે કલેશમાં વચ્ચે પડી કુરબાન કાયાઓ કરી,
એ ઊઠ ચારણ ! ઊઠ તારી ઊંઘને અળગી કરી.

(૪)

કૈ ભાન ભુલ્યા ભૂપતિને આપી જેણે શુભમતિ,
કૈને ઉગાર્યા અધમતાથી દૂર કરીને દુર્મતિ,
જેના વચનથી ભીરુમાં પણ શકિત સાચી સંચરી,
એ ઊઠ ચારણ ! ઊઠ તારી ઊંઘને અળગી કરી.

(૫)

જેણે રચ્યા અદ્‌ભુત રાસા કવિતની શ્રેણી સજી,
ગાજી રહ્યા પડછંદ જેના છંદના આજે હજી;
જેણે દુહાની બાનીમાં વેધક અજબ કવીતા ભરી,
એ ઊઠ ચારણ ! ઊઠ તારી ઊંઘને અળગી કરી.

(૬)

રહેણી અજબ ગૌરવ ભરી કહેણી છટા નવરસભરી,
જેની પ્રતિભાથી દબાયા ભૂપ બંકા ભય ધરી;
જ્યાં જોગમાયા જેવી સતિઓ જાગી ઝાઝી સતભરી,
એ ઊઠ ચારણ ! ઊઠ તારી ઊંઘને અળગી કરી.

(૭)

તજીદે ખુશામદ હૃદયથી સજ સત્યવાણી સર્વદા.
જગદીશ એકજ ઈષ્ટ ભજ ધર ટેક તારી ધજ સદા;
રજનું કરી ગજ રાળવાની અણુસમજને પરહરી,
એ ઊઠ ચારણ ! ઊઠ તારી ઊંઘને અળગી કરી.

(૮)

તું છોડ વ્યસનો ભીખ તજ રજવાડી આળસ દુર્ગુણો,
વિદ્યાતણો વ્યાસંગ કર ભર અંતરે તું સદ્‌ગુણો.
પરતંત્રતાની બેડી સરખી અભણ હાલત પરહરી,
એ ઊઠ ચારણ ! ઊઠ તારી ઊંઘને અળગી કરી,

(૯)

મધુકંઠ માંહે હલક છે ને જીભમાં હજી ઝમક છે,
હજુએ પુરાતન ખમીરની તુજ નેત્ર માંહે ચમક છે;
તો સજ્જ થા એ શસ્ત્ર લઈ નવયુગના વાઘા ધરી,
એ ઊઠ ચારણ ! ઊઠ તારી ઊંઘને અળગી કરી.*

ચારણોની શક્તિ

લેખકઃ—રાજકવિ શ્રી હરદાનભાઈ પિંગળશીભાઇ નરેલા, ભાવનગર

છંદ—ઝૂલણા

ચારણો સત્ય સંતાન શિવ શકિતના,
જીવન નિર્દોષ તે દેવ જાણો.
હિમાલય શિખરો મધ્ય રહેતા હતા,
પ્રગટ સાક્ષી પુરે છે પુરાણો. ૧

હિંમતી વિમાને ચડી ફરતા હતા,
દિવ્ય જેની હતી દીર્ઘ દ્રષ્ટિ;
ધર્મના કાર્યમાં ધ્યાન ધરતા હતા,
વિજય કરતા હતા પુષ્પ વૃષ્ટિ. ૨

દ્વેષ ને કલેષથી દૂર રહેતા હતા,
કાયમી જગત કલ્યાણ કરતા;
અખંડ શાન્તિ વિષે બનાવી આશ્રમો,
હોંશથી દુખીનાં કષ્ટ હરતા. ૩

આમંત્રણ સ્વિકારી યજ્ઞમાં આવતા,
પૃથુ ભગવાનને હતા પ્યારા;
કોઇદી' કોઇનું બુરૂં કરતા નહીં,
સર્વ કરતા બને તે સુધારા. ૪

પ્રથમથી ક્ષત્રિના પૂજ્ય ઉપદેશકો,
વારિ ગંગા સમી વિમલ વાણી;

* ઉપરોક્ત કાવ્ય કવિ શ્રી ત્રિભુવનભાઇએ અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના પાંચમા અધિવેશન (રાજકોટ) વખતે રચીને સભામાં સંભળાવ્યું હતું. આ કાવ્ય 'શારદા' પત્રિકાના જુન ૧૯૩૮ના અંકમાં પણ પ્રકાશિત થયું છે.

અતિ નૃપ લાભ આપ્યા અને અપાવ્યા,
નેક ઇતિહાસમાં છે નિશાની. ૫

નિત્ય એને હૃદય હતી નિઃસ્વાર્થતા,
ખુશામત કરીને નહીં ખાતા;
સ્વારપણુ ધર્મનો મર્મ સમજાવતા,
મહદ જેની સદા શકિત માતા. ૬

શુદ્ધ ભાવે હતી પ્રસન મા શારદા,
જાણુતા વેદના ભેદ ઝાઝા;
ગુણી જન ગ્રંથ રચતા હતા જ્ઞાનના,
રીઝતા એ થકી પ્રજા-રાજા. ૭

દિવ્ય અવતાર લેતી હતી દેવીઓ,
કૈંક મહિપાલને મદદ કરતી;
સ્થાનકે સ્થાનકે થતી'તી સ્થાપના,
ભાવના જગત ભંડાર ભરતી. ૮

કોઈની દેવ* પરવાહ કરતા નહીં,
સ્વતંતર રહેતા સત્ય સાથી;
આપ નિઃશંક અંકુશ રૂપી હતા,
હિન્દ ક્ષત્રિયો મદમસ્ત હાથી. ૯

વાત એ બધી છે ઘણુાયે વર્ષની,
કાળની ગતી છે ગહન કેવી;
જાળવી રહ્યા એ છતાં પણુ જેમને,
દિવ્ય છે સતી ને સંત દેવી. ૧૦

આશિર્વાદ મહાત્મા વડીલો આપશે,
ધાબળીવાળીઓ મદદ ધરશે;
કરી વંદન કહે આજ હરદાન કવિ,
કૃષ્ણુજી સર્વને સુખી કરશે.+ ૧૧

---

* ચારણદેવ.

\+ આ કાવ્ય શ્રી હરદાનભાઇએ અખિલ ભારતીય ચારણ સમ્મેલન (રાજકોટ અધિવેશન) પ્રસંગે સભામાં સંભળાવ્યું હતું.

જાગૃતિનું ચિત્ર—દર્શન

લેખક : શ્રી ભગવતીદાનજી મનુભાઇ રોહડિયા, શેરડી (કચ્છ)

[આ જાગૃતિ અને સમૂહવૃત્તિનો યુગ છે. સંસારની પ્રત્યેક જાતિ તેનું રહસ્ય સમજીને પોતાને શક્તિ સંપન્ન અને ઉન્નતિશીલ બનાવવાનો પ્રયત્ન કરી રહી છે. પરંતુ આજની જાગૃતિ અને સમૂહવૃત્તિનો પાયો વિજ્ઞાન–જડવાદના સિદ્ધાંતો પર અવલંબિત હોવાથી તેનું રહસ્ય સમજીને સભ્ય અને શક્તિશાળી બનેલી એક જાતિ તેનીજ જાતિના એક સુધારણામાં પાછળ પરંતુ તેને આદર્શ રૂપ માની તેના જાગૃતિના સંદેશ ઝીલનાર સમૂહને આગળ લાવવાને બદલે પોતાનો ગુલામ બનાવવામાં એ જાગૃતિ અને સમૂહવૃત્તિનો ઉપયોગ કરે છે. ઇટલી એબીસીનિયાને ગળી ગયું એ વાત એ વિભિન્ન પ્રજાની હોવાથી બાજૂએ મૂકીએ તોયે સ્પેનનો આંતર–કલહ, હાલમાં જર્મનોએ ઝેક પ્રજા સામે ઊપાડેલાં શસ્ત્રો અને સુધરેલાં જાપાનીઓ તરફથી સુધારામાં કાંઇક પાછળ તેના જાત ભાઇ ચીનાઓને પરાધીન બનાવવાનાં બે વર્ષથી થતા પ્રયત્નો આ વાતની સાક્ષી પૂરે છે. યુગબળની પ્રેરણાથી આજે ચારણ જાતિમાં જાગૃતિનાં મંડાણ મંડાઇ ચૂક્યાં છે. પરંતુ જાગૃતિમાં સૌથી આગળ તેનો એક પ્રાંત તેને આદર્શ રૂપ માની તેના સંદેશ ઝીલનાર બીજા પછાત ચારણ પ્રાંતોને આગળ લાવવાને બદલે તેમની ભર્ત્સના કરશે, તો એ જાગૃતિ અને સમૂહવૃત્તિથી ચારણ જાતિને કશોય લાભ નથી. જો કે હાલમાં આપણે એવો ડર રાખવાની કાંઇ જરૂર નથી; છતાં આ લેખમાં તેના વિચારશીલ લેખકે આજની સંસાર માન્ય જાગૃતિનું સ્વરૂપ દર્શન કરાવી તેનાં દૂષણો ચારણ જાતિની જાગૃત્તિમાં પેસવા ન પામે તેની ચેતવણી આપી છે. તે પર ધ્યાન આપવાની સહુને જરૂર છે.—**તંત્રી, ગુજરાતી વિભાગ.**]

માનવ દેહની સંપ્રાપ્તિ એજ જાગૃતિનું મુખદ્વાર છે: એમ વિશ્વના મહાપુરુષો ઉપદેશે છે. માનવીની વિશિષ્ટતા—ઉન્નતતા જોતાં એ ઉપદેશની તથ્યતા પરત્વે આપણને સચોટ શ્રદ્ધા થાય છે. કુદરત પણ પોતાના સિદ્ધાંત ક્રમથી અવ્યક્તમાંથી વ્યક્ત કિંવા સુષુપ્તિમાંથી જાગૃતિનું અભિનવ સ્વરૂપ પ્રતિપાદિત કરે છે. આ ક્રમને વ્યાપક શબ્દોથી કહેવા માંડીએ તો એમ કહી શકાય કે: જાગૃતિ એ જીવનના લક્ષ્ય સ્પર્શી અહોભાગ્યની અંતિમ અવસ્થા છે. નીતિ શાસ્ત્રનું વચન છે, " નાસ્તિ જાગરતો ભય " અર્થાત્ જાગૃતિના પુણ્ય ક્ષેત્રમાં ભયનો (પતનનો) સંભવ રહેતો નથી. માટેજ એ હિતદા–સુખદા–ફલપ્રદા જાગૃતિને સપ્રેમ અપનાવવી એ મનુષ્ય તરીકે આપણું પરમ કર્તવ્ય ગણી શકાય.

વર્તમાન વિશ્વનું અવલોકન કરતાં આપણા કર્ણપટ પર એવા ગગનભેદી અવાજો આવ્યા કરે છે. " અમે જાગૃતિના **ઉપાસકો** બન્યા છીએ. " એટલુંજ નહિ પણ વિચાર વાણીમાં વહેતો જાગૃતિનો પ્રવાહ ઠાલવવા પરિષદો ભરાય છે: સમાજ, રાષ્ટ્ર અને ધર્મના અભ્યુદયની વિચારણાઓ થાય છે; વ્યાખ્યાનો, ઉપદેશો અને એવી એવી વિવિધ પ્રવૃત્તિઓ આદરાય છે. આવા ભરચક જાગૃતિના **ઉપાસના** યોગમાં જનતા જાગૃતિનો જે રસાસ્વાદ લે છે, તેનું અલ્પ વર્ણન આપણે ખરા શબ્દોમાં કરીએ તો તેથી આપણા અંતઃકરણને સંક્ષોભ પહોંચે; આપણા વદનપર શોકની કાજળ ઘેરી છાયા પથરાઇ જાય. કારણ, આજની ઇતસ્તતઃ ફેલાયલી જડ જાગૃતિના વિપાકોથી માનવ સમાજનો ભયંકર સંહાર આપણે જોઇએ છીએ. તે પણ એટલો બધો સંહાર કે જેની બરોબરીની સંખ્યા જગતના ભૂતકાળના ઇતિહાસમાં ભાગ્યેજ મળી શકશે. પૂરી થતી વીસમી સદીનાં અનેક વિશેષણો પૈકી એક વિશેષણ કે જેથી

તે જાગૃતિના મધ્યાહ્ન તરીકે સંબોધાય છે. આપણે જરા ઊંડા ઊતરી સ્થિર દ્રષ્ટિથી એ જાગૃતિના પ્રદેશને નિહાળીએ: સૌથી પ્રથમ તો પશ્ચિમના સર્વ પ્રદેશો જે સગર્વ વાણીથી જાગૃત હોવાનો દાવો કરી રહ્યા છે. અને તેનાજ ઘમંડમાં માનવકુલનો હત્યાકાંડ કરવામાં પોતાના સમગ્ર સામર્થ્યનો ઉપયોગ કરે છે. નિર્દોષ માનવીઓના જાન લેવામાં નિરપરાધ આબાલ વૃદ્ધ જનતાની કતલ કરવામાં એઓ આનંદ માણી રહ્યા છેઃ સ્વતંત્રતા ભોગવતી પ્રજાઓને પરતંત્ર-ગુલામ કરવામાં એઓ પોતાની રાક્ષસી મહત્વાકાંક્ષાને પોષી રહ્યા છે: પ્રપંચો, કારસ્થાનો, કૂટનીતિઓ, દાવપેચો અને કલુષિત ષડયંત્રો એમના જાગૃત હૃદયમાં અહોનિશ અવનવા સ્વરૂપે રચાતાં જાય છે. એકંદરે થોડા શબ્દોમાં કહીએ તો, ઘોર અનિષ્ટતા એજ તેમની જાગૃતિનો આદર્શ છે, અને આપણા ભારતવર્ષની સ્થિતિમાં પણ એ જાગૃતિએ અજબ આંચકા આપ્યા છે, ને આપતી જાય છે.

આ કૃત્રિમ જાગૃતિમાં સત્યતા, નીતિમત્તા, વિશ્વબંધુતા અને નિષ્કામતા જેવા જીવનના પ્રાભાવિક સંસ્કારોનો અસ્ત હોય એ ખુલ્લું છે.

જાગૃતિ તેજ રહો કે; જેમાં સંપત્તિમાન મનુષ્યો સંપત્તિનો સદૈવ લોક કલ્યાણમાં વ્યય કરી તેના પર મમત્વ ન ધરાવે. બુદ્ધિમાન મનુષ્યો મન, વાણી અને ક્રિયા દ્વારા જનતાને સન્માર્ગનો સદ્‌બોધ આપતા રહે. સચ્ચારિત્ર્ય એજ જીવનની સાચી મહત્તા છે; એવા ઉચ્ચ મનોરથોથી પોતાની બુદ્ધિને સેવા માર્ગમાં અચલ રાખે; સત્તાવાન પુરૂષો સેવક બની દુઃખ-ઉપદ્રવ-ઉત્પાત કરનારા આતતાયી જનોને જીવન સુધારણાના માર્ગમાં તેમના અંતઃકરણોને વાળી તેમનું મનુષ્યત્વ દીપે તેવા ઉપાયો યોજે.

વસ્તુતઃ આજની જાગૃતિમાં તો નિર્દયશીલ યેન કેન પ્રકારેણ સત્તારૂઢ થવાની આશા પાર કરી લોક કલ્યાણની ભાવનાને જેર કરવા લોકો પર જુલમના કોરડાઓ વીંઝે છે. અનધિકારી વિદ્વાનો સ્વમંતવ્યના વિજયમાં બુદ્ધિની વિવિધ રંગી ઈંદ્રિજાળ ઊભી કરી એમણે રચેલા સિદ્ધાંતોથી ભલે સત્યનો નિકંદન થતો હોય છતાં તેની પરવા કીધા વગર પોતાના મદોન્મત સ્વભાવને વેગવાન રાખે છે.

પ્રૌઢ ગણાતા મુત્સદ્દીઓ વાણીના જાદુથી માનવી માત્રને ભૂલથાપ આપવામાં પાવરધા બને છે, અને તેમનાં ગળાં રહેંસવામાં રાક્ષસી કાવા દાવાની પ્રપંચ-જાળ રચે છે.

નિષ્ઠુર ધનપતિઓ લાખો માણસોના પરસેવાથી ઉત્પન્ન થતી આવકને ઓહિયાં કરી અમન ચમન ઉડાવવામાં જીવનની છેલ્લી ઘડી સુધી કસાઇ જેવા રહે છે.

આવી ક્રૂર વૃત્તિઓ જાગૃતિ નામક આ માયાવી યુગમાં બને છે. જેને જોઇ કાળ મીંઢ હૈયાને પણ કંપારી લાગે ! આવી કૃત્રિમ જાગૃતિથી અભિમાન લેતા કોઇ પણ સમાજ કે રાષ્ટ્રનો ભયંકર વિનિપાત છે; એ કહેવું ન્યાય પુરઃ સર છે. ચારણ દેવોનો કાળ જુનો અલંકારઃ ' જાગૃતિના વિધાયકો ' તરીકે શાસ્ત્ર સંમત છે. આપણા એકેક સમર્થ પૂર્વજના જીવનમાં લાક્ષણિક સચ જાગૃતિનાં દર્શન આપણને થાય છે. એમના જીવનની સૈદ્ધાંતિક લાક્ષણિક જાગૃતિ હતી, ત્યારેજ તેઓ મદાંધ નૃપતિઓને કાવ્યથી કટુ વચનો કહી શકતા. સંગ્રામને મોખરે ખડા થઇ શિર આપવા ઉત્સુક બનતા. સુંવાળો રાજધર્મ બજાવી સ્વાર્થ સંપાદન કરવો એ દુર્ગુણને તેઓ સતત્ ધિક્કારતા.

આપણા પૂર્વજોનો એ પ્રતાપી વારસો શોભાવવા આપણે પણ જાગૃતિના પ્રદેશમાં પગલાં ભરવા કટિબદ્ધ બન્યા છીએ. પરંતુ એ જાગૃતિમાં કૃત્રિમતા ન પ્રવેશે એ આપણો અત્યારથીજ જીવન સંકલ્પ છે, એવી દૃઢ પ્રતિજ્ઞા પૂર્વક આપણે આપણા ઉત્કર્ષમાર્ગમાં આગળ વધવું જોઇએ.

બૃહદ ગુજરાતના જ્ઞાતિ-સમાચાર

કચ્છ ભૂજમાં અમદાવાદ મિલ કામદાર યુનિયનવાળા શ્રીયુત મનસુખભાઇ ગઢવી (કચ્છી) એ ભૂજ તાલુકા ખેડુત સંઘ સ્થાપ્યો છે.

આગામી કાર્તિક માસમાં શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણ વિદ્યાલયના કાર્યવાહકોની ભાવનગરમાં બેઠક મળશે. વિદ્યાલય સંબંધી જેમને કાંઇ સૂચના કરવી હોય તેમણે પંદર દિવસ અગાઉ તેના ગૃહપતિ ઉપર લખી મોકલવી.

ભાવનગરમાં હાલમાં પ્રેસ કામદારોની લડત ચાલતી હોવાથી ચારણ હિતવર્ધક સભાના ચતુર્થ અધિવેશન (રાજકોટ) નો રિપોર્ટ પ્રસિદ્ધ થવામાં સ્હેજ વિલંબ થશે. જે ભાઇઓની ચાલુ વર્ષની મેમ્બર ફી બાકી હોય તેમણે તત્કાળ તેના મંત્રીજી ઉપર મોકલવા તજવીજ કરવી કે જેથી તેમનાં નામ રિપોર્ટમાં છાપી શકાય.

સમસ્ત ચારણ કોમમાં પહેલવહેલી વિલાયતની પદવી મેળવનાર પીંપળીવાળા શ્રીયુત કૃષ્ણલાલ કાળુભાઇ પાલિયા, બી. એ. ટી. ડી. (ઇંગ્લાંડ) વડોદરાની બી. ટી. કોલેજમાં રૂા. ૧૨૦ થી ૨૦૦ ની ગ્રેડમાં પ્રોફેસર તરીકે નીમાયા છે.

ચાલુ વર્ષે વડોદરા કોલેજમાંથી બી. એસ. સી. ની પદવી પ્રાપ્ત કરનાર રામોલડીવાળા શ્રીયુત મનુભાઇ રવાભાઇ વરસડાની નાર હાઇસ્કૂલમાં અધ્યાપક તરીકે નીમણુંક થઇ છે.

વડોદરાની પુરૂષ અધ્યાપન પદ્ધતિ પાઠશાળાના અધ્યાપક ચરાડાવાળા શ્રીયુત કાળિદાસ હાલાભાઇ બાટીની ચાણસ્મા મહાલની તાલુકા સ્કૂલના હેડ માસ્તર તરીકે બદલી થઇ છે.

શ્રી મેરૂભા લીલા (છત્રાવા) વીસેક દિવસ પૂર્વે મુંબઇ જઇને કેટલાંક લોક ગીતો અને ચારણી છંદોની રેકર્ડો ઊતરાવી આવ્યા છે.

સીંધાવદર (વાંકાનેર) વાળા શ્રીયુત નારણભાઇ મેકરણભાઇ રોહડિયા, બી. એ. હાલમાં કુંડલા હાઇસ્કૂલમાં અસ્થાયી અધ્યાપક તરીકે કામ કરે છે.

મોજીદડ (લીંબડી તાબે) ના કરણસિંહ તેજમાલજી દેથા ૧૯૩૮ ના એપ્રીલમાં મુંબઇ વેટર્નરી કોલેજના છેલ્લા વર્ગમાં ફર્સ્ટ કલાસ ફર્સ્ટ પાસ થયા છે. તેમને વડોદરા રાજ્યના વડનગર ગામમાં **વેટર્નરી સર્જન** તરીકે રૂા. ૬૦ થી ૧૨૦ ની ગ્રેડમાં મૂકવામાં આવેલ છે.

સુપ્રસિદ્ધ ભક્ત કવિ શ્રી દુલાભાઇ કાગનાં કાવ્યોનો સંગ્રહ 'કાગવાણી' ભાગ ૧ લો (બીજી આવૃત્તિ) અને ભાગ ૨ જો પ્રેસમાં છપાય છે. દરેક ભાગનું મૂલ્ય સવા રૂપિયો છે. કુલ પાંચ હજાર નકલો નીકળશે. તેમાંથી ત્રણેક હજાર નકલના તો અગાઉથી ગ્રાહકો થઇ ગયા છે.

ચારણી કવિતાને નવી દિશા તથા જોમ આપનાર કવિ શ્રી કાગનું એ પુસ્તક લખી વાંચી જાણનાર પ્રત્યેક ચારણ બંધુના ઘરમાં હોવુંજ જોઇએ.

ભક્ત કવિશ્રી દુલાભાઇ રચિત પુસ્તકો.

૧. કાગવાણી ભાગ ૧ લો: બીજી આવૃત્તિ

કિમ્મત રૂા. ૧–૪–૦

૨. કાગવાણી ભાગ ૨ જો: પહેલી આવૃત્તિ

કિમ્મત રૂા. ૧–૪–૦

પોસ્ટેજ ખર્ચ બન્ને પુસ્તકો માટે અલગ.

ફક્ત અઢી અઢી હજાર નકલ દરેક ભાગની છપાણી છે તેમાં ત્રણ હજાર ગ્રાહક તો અગાઉથી થઈ ગયા છે માટે જલદી મગાવો.

નીચેના શિરનામે લખો:—

પિંગળશી પરબતજી પાયક

શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણ વિદ્યાલય–ભાવનગર.

"चारण" के नियम.



१ "चारण" वर्ष में चार वार विजया दशमी, वसंत पंचमी, अक्षय तृतीया और रक्षा-बन्धन पर प्रकाशित होगा।

२ वार्षिक मूल्य दो रुपये होगा।

३ चारण जातिकी सर्वांगीण उन्नति के साधक लेखादि के साथ समयानुकूल अन्य विषयों के लेखादि को भी "चारण" में स्थान होगा।

४ केवल वे ही लेखादि "चारण" मे छप सकेंगे जो एकही तरफ शुद्ध स्पष्ट लिखे हुये होंगे।

५ "चारण" में छपने के लिये लेखादि ठा. ईश्वरदान आशिया ग्राम भैंगटिया, पो. नाथद्वारा (मेवाड) राजपूताना के पते पर भेजने चाहिये।

६ "चारण" के ग्राहक बनने एवं रुपये पैसे संबंधी लिखापढी श्री शंकरदानजी जेठीभाई देथा, राजकवि लींबडी, स्टेट. मु. लींबडी (काठियावाड) के पते पर करनी चाहिये और रुपये उन्हीं के पास भेजने चाहिये।

७ पत्र-व्यवहार के समय ग्राहकों को अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखनी चाहिये और जवाबके लिये टिकिट भेजनी चाहिये।

८ प्राप्त लेखादि तभी वापस किये जावेंगे जब इसके लिये पोस्टेज प्राप्त होगा।

९ विना नाम के लेख आदि नहीं छापे जावेंगे, परन्तु कोई अपना नाम न छपवाने चाहें तो वैसा लिख दें।

मुद्रणस्थल: श्री जसवंतसिंहजी प्रिन्टींग प्रेस, लीम्बडी (काठीआवाड)

પ્રકાશક તરફથી પ્રસિદ્ધ થયેલાં પુસ્તકો.

હરિરસઃ–(ચારણ મહાત્મા ઇશરદાસજી કૃત) વિનામૂલ્ય, પોસ્ટ ખર્ચ માટે ૦–૨–૩ ની ટીકિટો બીડવાથી મોકલવામાં આવે છે.

લઘુ સંગ્રહઃ–જેમાં કવિવર નંદદાસજી કૃત **અનેકાર્થી** તથા **માનમંજરી** નામે (સરલ દોહામાં) બે શબ્દ કોશ તથા કવિવર જયકૃષ્ણદાસજી કૃત **રૂપદીપ પિંગલનો** સમાવેશ થાય છે. તેમજ પ્રકાશકનાં સ્વરચિત પ્રાસ્તાવિક કાવ્યો પણ છે. કીંમત રૂ. ૨–૦–૦ પોસ્ટ ખર્ચ અલગ.

સુકાવ્ય સંજીવની:–જેમાં પ્રાતઃસ્મરણીય મહારાણાશ્રી પ્રતાપસિંહજીનું યશકાવ્ય કવિવર દુરસાજી આઢા કૃત **"બિરદ છહુંતરી"** તથા દુરસાજી આઢાનું જીવન ચરિત્ર તેમજ અન્ય કવિઓની અમર વાણી, ગીત, છંદ, દોહા, કવિત વિગેરેનો ઉત્તમ સંગ્રહ છે. પુસ્તક ખાસ વાંચવા લાયક છે. કીંમત રૂ. ૧–૪–૦ પોસ્ટ ખર્ચ અલગ.

પ્રભાનાથઃ–ભાવનગરના સ્વર્ગસ્થ ઉદારાત્મા, મહામાત્ય સર પ્રભાશંકર પટ્ટણીનું યશકાવ્ય, (વિના મૂલ્ય), પોસ્ટ ખર્ચ માટે ૦–૨–૬ ટીકિટો બીડવાથી મોકલવામાં આવે છે.

સદર પુસ્તક મળવાનું શિરનામું:—

શંકરદાનજી જેઠીભાઈ

કવિ–લીંબડી સ્ટેટ

મુ. લીંબડી–કાઠિયાવાડ.

॥ श्रीजगदीश्वरी विजयते ॥

चारण

अखिल भारतीय चारण सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

वर्ष १] वसंत-पंचमी विक्रम सम्वत् १९९५ [अङ्क २

सम्पादक:

ठाकुर ईश्वरदान आशिया

सहकारी सम्पादक:

कुँवर शुभकर्ण कविया, M. A., LL. B.,

गुजराती विभाग सम्पादक:

खेतसिंह नारायणजी मिश्रण

प्रकाशक:

शंकरदान जेठीभाई देथा, लींबडी

वार्षिक मूल्य २) [एक अङ्क के ॥)

लेख-सूची

ॐ

श्री जगदीश्वरी विजयते

चारण

अखिल-भारतीय-चारण-सम्मेलन
का
त्रैमासिक-मुखपत्र

सत्य अभय स्वातंत्र्य उपासक,—सिखा मरण-जीवन का मर्म ।
क्षात्रधर्म-उद्बोधक चारण,—रहा सदा साधक युगधर्म ॥

वर्ष १] वसंत—पंचमी विक्रम सम्वत् १९९५ [अङ्क २

प्रार्थना

—:०:—

(कर्त्ता—श्री० अक्षयसिंहजी रत्नू, अलवर)

जगदम्ब ! अब तो जल्दी इस जाति को जगा दो ।
कर नित्य नेम तत्पर कुलप्रेम में पगा दो ॥

ग़ैरों से बढ़के आगे चलना तो खुद है मुश्किल ।
बढ़ते हुओं के लेकिन कुछ साथ तो लगा दो ॥

भर पाये इसकी ऐसी गंभीर धीरता से ।
टुक भाव-वीरता भर, भय-भीरुता भगा दो ॥

जब जब विपद् पड़ेगी रक्षा करूँगी आकर ।
प्रण यह विसार करके तुम तो न मा ! दगा दो ॥

परतंत्रता के रुज से मुँह बंद हो चुके हैं ।
"अक्षय"-स्वतंत्रतामय सञ्जीवनी सुंघा दो ॥

सम्पादकीय-विचार

हमारी मौजूदा हालत

अपने इतिहास को जानना बुरा नहीं परन्तु हम क्या थे या गुज़रे हुए ज़माने में हमारी स्थिति क्या थी इस विवेचन की अपेक्षा अधिक लाभकारी यह मालूम होता है कि हम अपनी मौजूदा हालत को ठीक २ जानें। यों, जाहिरा तौर पर इस बात का विचार करने की कोई जरूरत नज़र नहीं आती क्योंकि सब कोई अपनी २ हालत को बखूबी जानने का दावा रखता है। लेकिन दर असल बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिन्होंने जाति की सारी मौजूदा हालत पर एक साथ ग़ौर किया होगा कि उसकी सामाजिक, धार्मिक या राजनीतिक स्थिति क्या है ?

चारणजाति इस देश के राजपूताना-मालवा और गुजरात-काठियावाड़ प्रान्तों में बसती है जहां का अधिकांश भूभाग राजपूत नरेशों के अधिकार में है। गुजरात-काठियावाड़ में बसने वाले अपने जाति समुदाय की परिस्थिति का विवेचन इस पत्र के गुजराती विभाग के सम्पादक महोदय के ज़िम्मे छोड़ कर हम राजपूताना-मालवा के स्वजाति समुदाय के संबंध में ही अपने विचार प्रकट करने का प्रयत्न करेंगे क्योंकि उधरकी परिस्थिति का प्रामाणिक परिचय वे ही दे सकते हैं।

"चारण" के इस अंक में हम अपनी सामाजिक दशा पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

हमारी जाति गांवों में बसती है जो सैंकड़ों वर्षों से उसी के अधिकार में चले आ रहे हैं। इन्हीं गांवों में से कुछ लोग राजाओं और उनके जागीरदारों की सेवा में भी रहते हैं और इनेगिने लोग व्यापार व्यवसाय के क्षेत्र में या वृटिश सरकार में भी नौकर होंगे।

जो लोग राजाओं और जागीरदारों के पास रहते हैं उनके लिये उस प्राचीन दोहे के शब्दों में ही कहना काफी होगा कि–

" हथ जोड़ा रहिया हमै,
गढवी काज गरत्थ।

वो 'राजड़' छत्रधारियां,
गो, जोड़ावण हत्थ॥"

रही बात डिपार्टमेंटल नौकरों की या ऐसे ही अन्य लोगों की सो वे अपनी २ नौकरी करके और लोगों की तरह अपने निर्वाह की चिन्ता में लगे हुए रहते हैं। बहुत कम लोगों को जाति-सेवा की लगन या अपनी जाति की हीन-दशा का ध्यान है और जिनको है भी तो उनमें अधिकांश प्रायः हतोत्साह एवं निराश हैं।

अब रहे ग्रामवासी जातिबंधु। पहिले इनमें से भी कइयों का राजदरबार या जागीरदारों के ठिकानों में आना जाना रहा करता था और विवाह अवसरों पर ठिकानों में समूहरूप से जाने के अवसर

आते रहने से शहरी तहज़ीब कुछ २ आ जाती थी। रहन सहन और बोल चाल ग्रामीण जनता से कुछ ठीक ढंग की होती थी। अब यह प्रायः बंद हो जाने से कई चारण ग्रामों में जाने पर पूछने से ही पता लग सकता है कि अमुक व्यक्ति चारण है। अन्यथा किसी साधारण ग्रामवासी और उसमें कोई स्पष्ट अन्तर नजर नहीं आता। पहिले जोधपुर नरेश्वर श्री मानसिंहजी के शब्दों में कहें तो, चारण प्रायः "राजाओं में शोभित होने वाले—देह दराज दीसता डारण" होते थे और इस लिये अन्य लोगों से अपने आप ही विशेषता लिये हुए होते थे। परन्तु आज, 'हा! वे गये दिव्य वपुधारी'। आज एक साधारण ग्रामवासी बालक और चारण बालक-बालक ही क्यों वूढ़े और जवानों तक में भी कोई अन्तर नज़र नहीं आता। वही भद्दा रहन सहन, वही बोलचाल, वही रंगढंग! पहिले हर गांव में जहां सुबह शाम पिता अपने २ बालकों को पुरानी उत्तम बातों के साथ गीत, दोहे, छंद, छप्पय जो भी उन्हें आते, अक्सर सिखाते हुए देखे सुने जाते थे और इस तरह लिखना पढ़ना न जानने पर भी बहुतों को सैंकड़ों गीत, दोहे, छंद आदि कविता कंठाग्र होती थी और वे बहुत-सी पुरानी बातें इस परिपाटी से जान जाते थे। शाम को सब बालक इकट्ठे होकर याद की हुई कविता बोला करते थे। अब वह प्राचीन परिपाटी तो लुप्तप्राय हो गई है और उसके स्थान पर बालकों की शिक्षा का सब जगह कोई ख़ास इन्तज़ाम न होने से परिणाम वही हुआ जो ऊपर कहा गया है। इस तरह यह बुद्धिजीवी जाति ग्रामीण श्रमजीवियों के रूप में आ जाती हुई मालूम हो रही है।

ग्रामीण होना, किसान होना या श्रमजीवी होना बुरा नहीं, बल्कि आजकी दुनिया में तो इस प्रकार के जीवन ही मानव जाति के कल्याण की दृष्टि से अनुकरणीय एवं आदर्श माने जा रहे हैं, और अन्य देशों के समान हमारे देश में भी राजसत्ता का प्रथमाधिकार इस प्रकार का जीवन बिताने वालों ही के हाथ में आता हुआ दिखाई दे रहा है। अतः यदि हमारी जाति भी ग्रामीण श्रमजीवियों के रूप में जीवन बितावे तो वह अवांछनीय तो न होगा। अभीष्ट यह है कि वह अपने बुद्धिबल के पैतृक उत्तम संस्कारों को क़ायम रख सके और समय के अनुरूप उन संस्कारों का लाभ अपने साथियों को पहुँचा कर अपनी विशेषता बनाये रहे तो और भी अच्छा हो। इसका एक मात्र उपाय उपयोगी शिक्षा का सुलभ प्रचार ही है।

ग्रामीण सजातीयों में खेतीवाड़ी व पशुपालन का धंधा ही निर्वाह का प्रधान साधन है। परन्तु बहुत कम लोग ये काम ठीक तरह से करते हैं। ज्यादातर लोग अपने समय का बहुत कुछ हिस्सा सुस्ती में बैठे २ गपशप लड़ाने में, तम्बाकू फूंकने में और जो खा पी सकते हैं या व्यसन के चक्कर में आ गये हैं वे अफ़ीम व शराबखोरी में बिता देते हैं जिसका अनिवार्य परिणाम सर्वत्र दिखाई देने वाली गरीबी और क़र्ज़दारी है। सौ में से दश परिवार भी मुश्किल से ऐसे मिलेंगे जो क़र्ज़दार न हों या अच्छी

हालत में हैं। इस आर्थिक दुरवस्था में 'कोढ़ में खाज' की कहावत के अनुसार परस्पर के ईर्ष्या-द्वेष, अनुचित स्वार्थ और अज्ञान अहंकार के कारण बढ़ी हुई मुक़द्दमेबाज़ी और झगड़े बखेड़े हैं जो ग़रीबी और कर्ज़दारी के सहायक हो रहे हैं। बन्धुप्रेम और सहानुभूति-सहयोग मिटता जा रहा है। याचनावृत्ति के पुराने पाप से स्वाभिमान लुप्तप्राय हो गया है। जाति के अधिकांश व्यक्ति खुद ही अपने आप को हीन अनुभव करते हैं फिर, भले ही भले राजपूत उन्हें 'पूजनीक' कह कर भी क्यों न सम्बोधित करें। अलबत्तह सम्मेलन की शुभ प्रेरणा से 'त्याग' का परित्याग हो जाने से और किंचित् शिक्षा के प्रचार से साधारणतया सारी जाति में और विशेषतया शिक्षितों में यह बात अब बहुत कुछ मिटती जा रही है। शिक्षित युवक समझने लगे हैं कि विद्याप्राप्ति का जितना आवश्यक गुण विनय है उतना ही स्वाभिमान की रक्षा भी।

अंध विश्वास के कारण रूढियों के गुलाम हम भी उतने ही हैं जितनी कि हमारी साथी अन्य जातियाँ, हिन्दू मात्र के जीवन में शादी और गमी के ही मौके ऐसे हैं जो ख़ास तौर पर रूढ़ियों के आधार कहे जा सकते हैं। हैसियत न हो तो भी इन मौक़ों पर क़र्ज़ लेकर भी ख़र्च करने को हरेक व्यक्ति रूढियों के कारण मज़बूर होता है।

पिता या भाई आदि की बीमारी में जो पुत्र या भाई आदि निकट संबंधी एक घड़ी भी हमदर्दी के साथ टहल-बंदगी में नहीं रहता और रात को उस के पास सोता तक नहीं और न इलाज़ के लिये कुछ ख़र्च करना आवश्यक समझता है वही, जब इस परिस्थिति में बीमार चल बसता है तो, घरधंधा छोड़ कर मातमपुर्सी के लिये आने वालों की आवभगत करने को बैठ जाता है। इतना ही नहीं द्वादशे के लड्डू बनाने के लिये क़र्ज़ देने को बोहरे की खुशामदें कर-कर के अपनी जमीन उसके यहां गिरवी रखता है और लड्डूप्रेमी भी लोगों की निंदा से बचने के लिये अपनी बर्बादी अपने हाथों मोल लेता है। उसे यह भाव भी दबाता है कि मृत व्यक्ति ने और मैंने भी तो ऐसे ही लड्डू लोगों के यहां खूब उड़ाये हैं तो अब उन लोगों को कैसे नहीं बुलाया जाय। ऐसे पुत्र की माता भी उसकी जननी हो वैसी ही होती है। कहने सुनने या समझाने से वह इस बर्बादी से बचने को आमादा हो भी जाय तो माता नहीं मानती। पति के जीते जी बीमारी में उसके इलाज के लिये अपने पैरोंकी कड़ियां या एकाध जेवर जो उसके पास हो उसे बेच देने की उसे नहीं सूझती पर उसके द्वादशे के तो लड्डू ही बनें इसके लिये ज़र-ज़मीन सब कुछ दे देने को अपना कर्तव्य समझती है और बड़े सवेरे जग कर वा शाम वग़ैरः के मुक़र्ररा वक्तों पर अरसें तक अपने और पति के पारस्परिक स्नेह और वियोग के विलाप चिल्ला चिल्ला कर रोते हुए करने में ही अपनी कुलीनता की रक्षा मानती है। कुटुम्ब की स्त्रियाँ भी, आंसू भले ही एक भी न आवे रोने के लहज़े में शोर मचा कर उसका सहयोग देती हैं। मातमपुर्सी के लिये किसी के आने पर रोने के लिये

स्त्रियों के सूचित करना जरूरी समझा जाता है। करें भी तो क्या? इन बातों में थोड़ी सी भी कसर रह जाय तो निष्ठुर रूढिप्रेमी लोगों की निंदा का डर और पीढियों के जमे हुए संस्कार सब के दवाये हुए हैं। आवश्यकता है, सम्मेलन के प्रस्तावों के अनुसार ध्यान देकर हानिकर रूढियों को उठा देने वाले साहसियों के आगे आनेकी जो ऐसी बातों में निंदा की परवाह न करें।

शादियां भी वहुत कम जगह अपने नाम के सार्थक करती हैं। सम्पूर्ण जीवन के इस प्रेम संबंध के स्थापित करनेकी शुरूआत ही आजकल भावताव ठहराने की दृष्टीसे होती है। वरकन्या की सगाई में ही ऐंचातानी शुरू हो जाती है जो शादी के वक्त तक तो वाज २ जगह लड़ाई का स्वरूप धारण कर लेती है। जहां एक दूसरे के देख कर प्रफुल्लित होना चाहिये वहां वरकन्या पक्ष में कई जगह स्थायी वैमनस्य हो जाता है, अधिकांश विवाह अनमेल स्वभावादि के तो होते ही हैं क्योंकि सगाई के समय वरकन्या के स्वभाव-साम्य आदि वातों की तरफ़ ऊपर कहे हुए कारण से किसीका खयाल ही नहीं होता—वाज़ २ विवाह अनमेल उम्र के भी होते हैं। जो कुलिन माने जाते हैं और कुछ अच्छी आर्थिक दशा वाले हैं या जिनके कुछ वड़ी जागीर है वे अपनी या अपने पुत्र आदि की सगाई में कन्या पक्ष से जितने रुपये जिस नाम से ऐंठे जा सकें उतने ऐंठने में कोई वात उठा नहीं रखते। और जिनकी कुलीनता के निर्धनता ने दवा लिया है और जो लड़की के पैसे लेना अपना रिवाज़ ही मान वैठे हैं वे लोग परस्पर लड़कियों के पैसे दे ले कर शादियां करते हैं। यह लड़कियों की ख़रीद फ़रोख्त अव उन लोगों में भी कुछ २ शुरू हो गई सुनी जाती है जो लड़की के पैसे देकर या लेकर शादी करने-कराने में अपनी कुलीनता के वट्टा लगाना समझते थे और विना शादी किये ही उम्र विता देना अच्छा मानते थे। परन्तु आज कल कैसे भी हो, कहीं भी हो हरेक व्यक्ति शादी कर लेना चाहता है। यह प्रवृत्ति भी हमारी वढ़ती हुई गरीवी और मानसिक पतन के स्पष्ट सूचित करती है।

राजपूताने में इन शादी-ग़मी की हानिकर रूढियों के वंद करने के उद्देश्य से स्व० महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी दधिवाड़िया (उदयपुर) के अनुरोध पर राजपूताने की सव रियासतों के राजपूत-चारण-प्रतिनिधियों की राय से तत्कालीन ए० जी० जी० कर्नल वाल्टर महोदय की प्रेसिडेंटशिप में "वाल्टर-कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा" के नाम से एक सभा अजमेर में स्थापित की गई थी जो नाम रूप से अव तक भी है, और जिसकी शाखा-सभा हरेक रियासत में है। परन्तु, कहते दुःख होता है, संगठनादि संबंधी कुछ मौलिक त्रुटियां शुरू में ही रह जाने से उक्त सभा अपना उद्देश्य अपने जीवन के इतने दीर्घकाल में—हर तरह की साधन सुलभता प्राप्त होने पर भी अव तक पूरा न कर सकी! इस असफलता के संवंध में यहां विस्तृत रूपसे लिखना विषयांतर-सा होगा, अतः जितना सा संवंध चारण जाति से इसका है और जो रुख इसने इसके संवंध में इख्तियार किया मालूम होता है उसीके विषय में यहां संक्षेप से कुछ कह देना अप्रासंगिक न होगा।



(क्रमशः)

भावी महायुद्ध



चौबीस वर्ष पूर्व जैसा भयंकर महायुद्ध छिड़ा था और जिस में इस देश के भी लाखों योद्धा अंग्रज सरकार की तरफ़ से बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर काम आये थे और देश को अरबों रुपयों का व्ययभार उठाना पड़ा था वैसा ही या उस से भी अधिक भयंकर संसार-व्यापी युद्ध छिड़ने की आशंका बड़े २ राजनीतिज्ञ वर्षों से करते आ रहे हैं। इटली अविसीनिया की लड़ाई, स्पेन का गृहयुद्ध, चीन जापान समर और जेकोस्लोवेकिया पर जर्मनी का प्रभुत्व आदि के कई अवसर ऐसे आये कि जब मालूम होता था कि युद्ध छिड़ने ही वाला है। किन्तु कई गुप्त एवं प्रकट कारणों से अभी तक महायुद्ध टलता जा रहा है। पर ख़तरा हर वक्त बना हुआ है इसलिये संसार के बडे २ देश अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाने और आत्मरक्षा के साधनों को जुटाने में पानीकी तरह धन वहा रहे हैं। इस देश में भी अंग्रेज़ सरकार इस निमित्त करोड़ों रुपये हर साल ख़र्च कर रही है। परन्तु देश की जनता की तरफ से राष्ट्रीय महासभा-कांग्रेस इस का विरोध करती है और उस ने तो स्पष्ट ही कह भी दिया है कि अगर हिन्दुस्तान की सम्मति विना अंग्रेज़ सरकार किसी युद्ध में कूद पड़ेगी तो पहेले के समान यह देश धन जनादि से अब उस की सहायता नहीं करेगा। ख़ैर। अब चूंकि अंग्रेज़ सरकार को कांग्रेस के हाथ में देश की कुछ हुकूमत भी दे देनी पड़ी है और उसका प्रभाव प्रताप भी दिन दिन बढ़ता जा रहा है इस लिये उस की वात को वह एकदम सुनी अनसुनी नहीं कर सकती। हां, राजा लोग हर समय हर वात में हर तरह उस की मदद करने को तय्यार हैं क्योंकि वे खुद अपने और अपने लोगों के बल बुद्धि पर विश्वास न कर उसी के भरोसे पर अपना अस्तित्व समझते हैं।

अब हम पाठकों की जानकारी और मनोरंजन के लिये सहयोगी 'राजपूत' से निम्नलिखित अंश उध्धृत करते हैं जिस से उन्हें ज्ञात होगा कि उन देशों में भावी महायुद्ध के समय आत्मरक्षार्थ कैसी कैसी तय्यारियां हो रही हैं—

"...........वायुयानों से बम बरसा २ कर किसी भी देश का भीषण रूप से नाश किया जा सकता है; पर जब तक स्थलसेना सीमा पार कर देश पर कब्ज़ा न करे, तब तक अधिकार तो हो नहीं सकता। किन्तु युरोपियन देशों ने अपनी २ सीमाओं पर इसी लिये अभेद्य क़िलेबंदियां कर रक्खी हैं। फ्रांस ने अपनी सीमा पर दुश्मन को रोकने के लिये, जमीन के नीचे, जो अभेद्य क़िलेबंदी की है वह भावी विश्वयुद्ध के इतिहास का गुप्त अध्याय है। इसी संबंध में किसी अंश तक प्रकाश डालते हुए 'सन्डे एक्सप्रेस' के सम्वाददाता ने लिखा है—फ्रांस की क़िलेबंदी की यह दीवार-जिस का नाम मेगनेट लाइन है-ज़मीन के नीचे होने के

कारण अदृश्य है। यह स्विस सीमा तक ६०० मील तक दुश्मन के आक्रमण से फ्रांस की रक्षा करती है।

यदि कोई अजनबी फ्रांस की सीमा से गुज़रे तो उसे क़िलेबंदी का कोई भी चिह्न दिखाई न देगा सिवाय तोपें रखने की बुर्जों के जो कई सौ गज़ के फ़ासलों पर बनी हुई हैं। यदि युद्ध छिड़ा तो तोपें बटन दबाते ही जमीन के भीतर से अपने स्थानों पर ऊपर आ जायँगी और बिजली की सहायता से लोग भूगर्भ से उन्हें अभूतपूर्व तेज़ी से चला सकेंगे।

शान्ति के समय मैगनेट लाइन के ६०० मील के फ़ासले में एक लाख व्यक्ति १४००० प्रधान तोपों पर सदा मुस्तैद रहते हैं। इन तोपों का नियंत्रण जमीन के नीचे जिन लोगों के हाथ में रहता है वे हर प्रकार से सुरक्षित हैं। उनके सिर पर ४० इंच मोटी विशेष रूप से तय्यार की हुई सीमेंट की छत है, जिस पर कोई गोला, बम या मशीनगन की गोलियां असर नहीं कर सकतीं।

इसके अलावा गैस भी इन अदृश्य गोलन्दाजों का कुछ बिगाड़ नहीं सकती। तोपों की जो बुर्जें दिखाई देती हैं, उन में कुछ तो जमीन के नीचे १०० फीट तक चली गई हैं। इन में नीचे गोलन्दाजों के सोने, रहने, खाने और मनोरंजन का पूरा प्रबंध है। दीवार की चारों तरफ मीलों तक अदृश्य आंखें रात दिन देखती रहती हैं। रात के वक्त सामने और पीछे के प्रदेश में वैज्ञानिक किरणें फैली रहती हैं। किसी आदमी के आते ही खतरे की घंटी प्रत्येक बुर्ज में बज जायगी और सभी लोग सतर्क हो जायँगे।

यह है फ्रांस की मैगनेट क़िलेबंदी, जिस का उद्देश्य आक्रमणात्मक न हो कर रक्षात्मक है। सीमा की दूसरी तरफ इसी तरह की क़िलेबंदी जर्मनी ने की है। सोवियट रूस ने भी उत्तर से लेकर कास्पियन सागर तक अपनी पश्चिमी सीमा पर यही किया है। यही हाल जेकोस्लोवेकिया की जर्मन सीमा पर था, लेकिन अब वह सीमा ही नहीं रह गई।

इस स्थल पर जर्मन सीमा की फ़ौलादी दीवार का कुछ ज़िक्र कर देना आवश्यक होगा। जर्मनी ने भी फ्रांस की मैगनेट लाइन के मुक़ाबले में बेलजियम से लेकर स्विस सीमा तक क़िलेबंदी की है। इस लाइन को तय्यार करने के लिये हर हिटलर ने हुक्म निकाला था कि समस्त किसान १५ अगस्त तक अपना फ़सल काटने का काम ख़तम कर दें ताकि काफ़ी तादाद में मज़दूर इस लाइन को तय्यार करने के लिये मिल सकें। सारे जर्मनी की फैक्टरियों से कहा गया था कि ९५ फ़ी सैकड़ा मजदूरों को इस लाइन पर काम करने के लिये छोड़ दें। दो लाख से अधिक मज़दूर इस लाइन पर काम करने में लगे रहे हैं। इस दीवार के साथ ही मशीनगनें, टैंक तथा विध्वंसक मशीनें चढ़ाई जा रही हैं। पर सब काम ऐसी गुप्त रीति से हो रहा है कि इसके बारे में कुछ विशेष पता नहीं चलता।

यद्यपि जर्मनी इस दीवार का निर्माण आत्मरक्षा के बहाने से कर रहा है पर यह बात कौन नहीं जानता कि जब तक जर्मनी स्वयं आक्रमण न करे, कोई भी उस पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता।"

चारण-वाणी

(१) ओपाजी आढा के गीत

(गतांक से आगे)

४

जोवन काज मोहाणो उठ जासी, याद भजन तणो अभियास ।
वळे न आवै कदे पामणो, वळे न बीजो वागड़ वास ॥ १ ॥

होय सनाथ जनम मत हारे, नाथ समर त्रयलोक नरेस ।
लाखां देतां मिळै न तोई, बीस क्रोड़ देतां लघुवेस ॥ २ ॥

सूने गाम न पाड़ संसोड़ो, गाफल हिवड़ै राख गियान ।
"ओपा" ये दिन कद आवसी, भजसां वळे कदे भगवान ॥ ३ ॥

परसराम भज चाख अमृतफळ, जनम सफळ हुय जासी ।
पाछो वळे अमोलक पंछी, इण तरवर कद आसी ॥ ४ ॥

५

कर जाणो तो कोई भलाई कीजै, लाह जनम रो लीजो लोय[1] ।
पुरखा दो दन तणां पामणा, कणी सूं मती विगाड़ो कोय ॥ १ ॥

जाणो छै जाणों छै जाणो, समझो जो भीतर व्है सान ।
वे दन काज जहर क्यूं बोलो, मरदां दूर तणा मजमान ॥ २ ॥

यूं करतां ही जावै ऊमर, परम क काल परार क पोर ।
आंपां वात करां औरां री, आंपां री करसी कोई और ॥ ३ ॥

गिरवा[2] हुवा हरी गुण गावो, छीलर ज्यूं मत दाखो छेह ।
आज क काल पियाणो 'ओपा' ! दीहज गया ज्यूं ताळी देह ॥ ४ ॥

---

१ लोक-हे लोको ! २ वड़ा आदमी । —संपादक, गुजराती विभाग ।

[प्रथमांक में प्रकाशित ओपाजी के तीसरे गीत के तीसरे व चौथे दोहे के बीचके अन्य दो दोहे श्री खेतसिंहजी मिश्रण को उनके गांव के पास के ब्राह्मणवाड़ा ग्राम निवासी कवि शार्दूलजी गांगड़ा[1] से इस प्रकार मिले हैं—

मन में जाणै पिऊं पय मिसरी, छास सोम री[2] मिळै न छांट।
वळिया सूं पाछी कुण वाळै, उण घर रा लेखण री आंट[3] ॥

मन में जाणै पै'रूं महमूदी, फाट्या धावळ लियां फिरै।
किसूं कळपै माणस रो कीधो[4], करै जिको करतार करै ॥

["चारण वाणी" की कविता में जहां २ अर्थ की अस्पष्टता होगी वहां भविष्य में उन शब्दों पर रेखा कर दी जाया करेगी जैसी कि इस अंक में भी की गई है। अतः जो सज्जन अर्थ की स्पष्टता कर सकें वे ध्यान दें और सूचित करने की कृपा करें—सम्पादक]

---

१. बड़े दुःख का विषय है कि, हमारी पित्रोपार्जित निधि डिंगल-साहित्य के अखूट भंडार-स्वरूप इन महानुभाव का विगत पौष शुक्ला १५ को ६२ वर्षकी उम्र में देहावसान हो गया! समस्त उत्तर गुजरात एवं वढियार प्रांत में प्राचीन पीढी के ये अंतिम कवि थे। इनकी याद-शक्ति अपूर्व होने से हजारों कवितायें इनके कंठाग्र थीं। कविता बोलने एवं कहानी कहनेका इनका ढंग अपूर्व था। बड़े सरल हृदय और भावुक व्यक्ति थे। २. हमारी समझ में यहां "छास छाग री मिळै न छांट" पाठ होगा। छाग=बकरी। ३. हमारी समझ में इस दोहार्द्ध का भावार्थ है-"उस वलिष्ठ घर अर्थात् ईश्वर के घर की लेखिनी के अग्रभाग को कौन वापस लौटा सकता अर्थात् रोक सकता है?" ४. इस चरणार्द्ध का भावार्थ हमारी समझ में इस तरह है- "मनुष्य के कल्पना किया करने से क्या हो सकता है?"

—सम्पादक, गुजराती विभाग

(२) कविराजा बाँकीदासजी आशिया के गीत

(गतांक से आगे)

४

आयौ अँगरेज़ मुलक रै ऊपर, आहँस लीधा खैंच उरा ।
धणियां मरे न दीधी धरती, (वां) धणियां ऊभाँ गई धरा ॥ १ ॥
फौजां देख न कीधी फौजां, दोयण किया न खळां डळां ।
खवाँ खाँच चूड़ै खावँद रै[1], उणहिज चूड़ै गई इळा ॥ २ ॥
छत्रपतियां लागी नँह छाणत[2], गढपतियां धर परी गुमी ।
बळ नँह कियो बापड़े बोतां[3], जोतां जोतां गई जमी ॥ ३ ॥
दुय चत्रमास बाजियो दखणी, भोम गई सो लिखत भवेस ।
पूगौ नहीं चाकरी पकड़ी, दीधौ नहीं मराठे देस ॥ ४ ॥
बधियौ भलौ भरतपुर वाळौ, गाजे गजर धजर[4] नभ गोम।
पहलाँ सिर साहब रौ पड़ियौ, भड़ ऊभां दीधी नँह भोम ॥ ५ ॥
"महि जातां चींथातां महळा, ए दोय मरण तणा अवसाण ।"
राखो रे किहिंक रजपूती, मरदा हिन्दू की मुस्सलमाण ॥ ६ ॥
पत जोधाण, उदैपुर, जैपुर, पह थांरा खूटा परियाँण[6] ।
आँके गई, आवसी आँके, "वांके आसल" किया वखाँण[7] ॥ ७ ॥

---

१. खवाँ खाँच चूड़ै=कंधे से कलाई तक के चूड़े सहित । खवाँ खाँच......गई इळा=पृथ्वी उसी अपने पुराने पूरे चूड़े सहित दूसरों के अधिकार में चली गई। २. छाणत=अप्रिय, बुरी । छत्रपतियां.........छाणत=राजाओं को यह बात बुरी नहीं लगी । ३. बोतां=गँवाते समय । ४. गाजै गजर धजर नभ गोम=तोपों के चलने की गर्जना से आकाश और पृथ्वी भर गई । ५. पह=राजा । खूटा=समाप्त हुआ। ६. परियांण=वंश। पह......परियांण=हे राजाओ ! तुम्हारा तो वंश ही समाप्त हो चला । ७. अभी कुछ मास पूर्व काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से कविराजा बांकीदासजी के ग्रंथों का ठा० सा० मुरारीदानजी कविया, कुम्हारिया (जयपुर) के संपादकत्व में 'बांकीदास ग्रंथावली' नाम से तीसरा भाग प्रसिद्ध हुआ है । उसमें डिंगल भाषा के अन्यान्य ९ ग्रंथों के साथ उनके फुटकर गीत, दोहा, सवैया, कवित आदि का स्फुट-संग्रह भी प्रकाशित हुआ है । उसमें 'चारण' के प्रथमांक में प्रकाशित उक्त कविराजाजी का पहला एवं दूसरा गीत और इस अंक में प्रकाशित उपरोक्त गीत शब्दार्थ-भावार्थ सहित दिया गया है। और तदनुसार ऊपर के गीत की पाठ-शुद्धि कर हमने रेखांकित शब्द या पंक्तियों का शब्दार्थ-भावार्थ लिखा है । अपने इस अनुचित हस्तक्षेप के लिये हम सम्पादक महोदय के क्षमा-प्रार्थी हैं । —सम्पादक, गुजराती विभाग

[इस गीत के साथ उक्त कविराज के प्रास्ताविक गीत हमारे संग्रह में समाप्त होते हैं। जिनके पास और हों वे अवश्य भेजने की कृपा करें।

प्रस्तुत गीत में कवि की राजनीतिक दूरदर्शितापूर्ण भविष्यवाणी, स्पष्टवक्तापन, उस ज़माने के वैमनस्यकाल में भी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की राष्ट्रभावना और देश की खोई जाती हुई आज़ादी के लिये हार्दिक वेदना किन मार्मिक शब्दों में प्रकट की गई है, सहृदय पाठक ज़रा देखें।

इन कविराज के संबंध में पाठक इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित लेख देखेंगे।

—सम्पादक]



(३) महाकवि ठाकुर सूर्य्यमल्लजी मिश्रण (बूँदी) रचित

वीरसतसई (अपूर्ण)

[इन दोहों का यथामति भावार्थ लिख दिया गया है, परन्तु जहां २ सन्देह है वहां दोहों पर रेखा कर दी गई है। —सम्पादक]

दोहा

लाऊं पै सिर लाज हूं, सदा कहाऊं दास।
गण व्है गाऊं तूझ गुण, पाऊं वीर प्रकास ॥ १ ॥

(मुझे सदा लज्जा है कि मैं आपका दास कहलाता हूं। फिर भी वीररस के प्रकाश की प्राप्ति के लिये आपका नम्र सेवक हो आपके गुणगान करता हूं।)

आणी उर जाणी अतुळ, गाणी करण अगूढ।
वाणी जगराणी वळे, मैं चींताणी मूढ ॥ २ ॥

(इन दोहों में वर्णसगाई का नियम न रखने से वीररस का पोषण ही दिखाई देता है। वीरता के हुताशन रंग में दोष कोई नज़र नहीं आता।)

वीकम बरसां बीतियो, गण चौ चंद गुणीस।
विसहर तिथ गुरु जेठ वदि, समय पलट्टी सीस ॥ ३ ॥

(विक्रम संवत् १९१४ की ज्येष्ठ कृष्णा ५ गुरुवार को समय ने एकदम पलटा खाया।)

इकडंकी गिण एक री, भूले कुळ साभाव ।
सूरां आळस ऐस में, अकज गुमाई आव ॥ ४ ॥

(उस समय किसी एक ही का आतंक मान कर अपने कुल स्वभाव को भूल शूरवीरों ने आलस्य एवं विलास में अपनी आयु को व्यर्थ खो दी ।)

इण वेळा रजपूत वे, राजस गुण रंजाट ।
सुमिरण लग्गा वीर सब, बीरां रौ कुळवाट ॥ ५ ॥

(इस प्रमाद काल में भी वे सब वीर राजपूत जो रजोगुण में अनुरक्त थे समय का परिवर्तन देख वीरों के कुलमार्ग का स्मरण करने लगे ।)

सत्तसई दोहामई, मीसण सूरजमाल ।
जंपै भड़खाणी जठै, सुणे कायरां साल ॥ ६ ॥

(ऐसे अवसर पर मिश्रण सूर्यमल्ल दोहामयी उस वीर सतशती का उच्चारण करता है जो शूरसंहारिणी और सुनते ही कायरों के लिये शूलरूपिणी है ।)

नथी रजोगुण ज्यां नरां, वा पूरौ न उफाण ।
वे भी सुणतां ऊफणै, पूरा वीर प्रमाण ॥ ७ ॥

(इसके श्रवण से जिन लोगों में रजोगुण नहीं है और न पूरा जोश; वे भी पूरे वीर के समान जोश में आ जायँगे ।)

जे दो ही पख ऊजळा, जूझण पूरा जोध ।
सुणतां वे भड़ सौगुणा, वीर प्रकासण बोध ॥ ८ ॥

(फिर ऐसे लोगों का तो कहना ही क्या जिनके दोनों पक्ष उज्वल हैं और जो युद्ध के लिये कमर कसे रहते हैं । ऐसे सुभटों का शौर्य तो इसके श्रवण से सौगुना हो जायगा ।)

दमँगळ विण अपचौ दियण, वीर धणी रौ धान ।
जीवण धण वाल्हा जिकां, छोडो जहर समान ॥ ९ ॥

(मित्रो ! वीर स्वामी का अन्न युद्ध के विना पचा नहीं करता । अतः जिन्हें अपने जीवन और पुत्र-कलत्र से मोह हो वे उसे ज़हर समझ कर छोड़ दें ।)

नहँ डाकी अरि खावणो, आयां केवल वार ।
वधावधी निज खावणो, सो डाकी सरदार ॥ १० ॥

(ज़बरदस्त सेनानी वह नहीं है जो केवल अवसर आने पर शत्रु का संहार करता है; किन्तु प्रतापी नेता वह है जिसके लिये अपने ही लोग अहमहमिका से बलिदान हो जाते हैं ।)

डाकी ठाकर रौ रिजक, ताखा रौ विख एक ।
गहळ मुआं ही ऊतरै, सुणिया सूर अनेक ॥ ११ ॥

(यह अनेक शूरवीरों के उदाहरणो से सर्वश्रुत है कि ज़बरदस्त मालिक का रिज़्क़ और तक्षक सर्प का विष एक से ही होते हैं कि जिनका नशा मरने पर ही उतरता है ।)

डाकी ठाकर सहण कर, डाकण दीठ चलाय ।
मायड़ खाय दिखाय थण, धण पण वलय बताय ॥ १२ ॥

(प्रतापी स्वामी अपने सेवकों की बातें सहन कर उन्हें खा जाता है, डाकिनी अपने भक्ष्य को दृष्टिक्षेप करके खाती है, माता पुत्र को स्तन बता कर और पत्नी पति को वलय (चूड़ा) बता कर खा जाती है ।)

सहणी सब री हूं सखी, दो उर उलटी दाह ।
दूध लजाणै पूत सम, वलय लजाणै नाह ॥ १३ ॥

(हे सखि ! और सब बातें मुझे सह्य हो सकती हैं किन्तु यदि प्राणनाथ मेरे वलय को लजा दें और पुत्र मेरे दूध को, तो ये दोनों बातें मेरे लिये समानरूप से दाहक एवं हृदय को उलट देने वाली हैं—असह्य हैं ।)

जे खळ भग्गा तो सखी, मोताहळ सज थाळ ।
निज भग्गा तो नाह रौ, साथ न सूनो टाळ ॥ १४ ॥

(युद्ध में भगदड़ देख कर वीर पत्नी कहती है कि सखि ! यदि शत्रु भाग खड़े हुए हों तो मोतियों का थाल सजा ला जिस से हृदयेश्वर की आरती उतारूंगी और यदि अपने ही लोग भाग चले हों तो प्राणनाथ का साथ मत बिछुड़ने दे अर्थात् शीघ्र मेरे सती होने की तय्यारी कर ।)

हथळेवे ही मूठ किण, हाथ विलग्गा माय ।
लाखां वातां टेकलो, चूड़ौ मो न लजाय ॥ १५ ॥

(पाणिग्रहण के अवसर पर उनकी हथेली में के तलवार की मूठ के निशान (आंटण) मेरे हाथ में चुभते ही, मा! मैं ताड़ गई कि कुछ भी हो जाय वे प्रणवीर मेरे चूड़े को कभी न लजायँगे।)

समळी और निसंक भख, जंबुक राह म जाह।
पण धण रौ किम पेखही, नयण बिणट्ठा नाह॥ १६॥

(ऐ चील्ह! और २ अंग तो तू भले ही निस्संकोच खा; किन्तु शृगाल के मार्ग का अनुगमन मत कर। क्योंकि यदि तू प्राणनाथ को नेत्रविहीन कर देगी तो वे अपनी अर्द्धांगिनी का युद्ध में सहयोग का प्रणपालन कैसे देख सकेंगे।)

बिण दामां बिलसै सदा, दामां दुरलभ नाग।
न्याय भड़ां घर नारियां, चूड़ौ पोत सुहाग॥ १७॥

(मूल्य देने पर भी जो हाथी दुर्लभ हैं उन्हें शत्रुओं से छीन कर जो शूरवीर विना मूल्य ही उपभोग करते हैं उन सुभटों के घरों में कण्ठाभरण में गजमुक्ता और हाथीदांत का चूड़ा स्त्रियों के सौभाग्यचिह्न माने जायँ तो उचित ही है।)

काय कलाळी छळ कियौ, सेज गुमावण रंग।
फूल दुवारै छाकियौ, चींतै चौगुण जंग॥ १८॥

(ऐ कलालिन! तैंने यह क्या धोखा दिया। शय्यासुख का कुछ भी तो आनन्द नहीं रहा। वे तो तेरे बढ़िया शराब से मस्त हो कर भी युद्ध का ही अधिकाधिक स्मरण करते हैं।)

भड़ घोड़ा महँगा थिया, एकण भाट उडंत।
भड़ घोड़ां रा भामणा, जेथ जुड़ीजै कंत॥ १९॥

(एक ही वार की मुठभेड़ में सुभट और घोड़े महँगे हो गये। क्यों न हो, जहां मेरे कन्त जा भिड़े कि घोड़ों और बहादुरों की क़द्र होने लग जाती है—उनकी वलैयां ली जाने लगती हैं।)

दमँगळ विण दुमनो रहै, जड़ै न कंगळ जंत।
सखी वधावौ त्यां भड़ां, जेथ जुड़ीजै कंत॥ २०॥

(युद्ध के विना वे उदास रहा करते हैं और कवच की कड़ियाँ भी नहीं बंद करते। अतः सखि! हमें तो उन बहादुरों को बधाना चाहिये जो प्रियतम से आ भिड़ें।)

झूटै हाकै हुलसता, पीव वधाईदार।
जागो सिव सांचौ कियौ, घूमै मैंगळ बार॥ २१॥

(प्रियतम ! यों ही कोई शोर सुनकर आप को युद्ध होने की बधाई देने वालों से आप प्रसन्न होते थे । किन्तु आज तो शंकर ने वह सत्य ही कर दिया—द्वार पर हाथी घूम रहे हैं, जागिये ।)

आज सवेळौ जागणौ, कसियौ चर तोखार ।
प्यारा मिळिया पाहुणा, मिजमानी री बार ॥ २२ ॥

(क्या कारण है आज आप जल्दी ही जाग उठे और साईस ने भी घोड़ा तय्यार कर डाला ? किन्तु ओह ! अब ज्ञात हुआ, प्रिय अतिथि (शत्रु) आ पहुंचे हैं जिनकी खातिरदारी आप को इस समय करना है ।)

सुणतां हाकौ सहज ही, कीधी जेज कधी न ।
नींदाळू अब छोडणा, भोड़ाणा कुच पीन ॥ २३ ॥

(मामूली कोई शोर सुन कर भी जा पहुंचने में आपने कभी देरी न की । फिर अब युद्ध का कोलाहल सुन कर तो हे निद्रालु ! इन दबे हुए पीनस्तनों को छोड़ ही दोगे ।)

पूजाणौ गजमोतियां, मींडाणौ कर मूझ ।
वीजाणौ घण चामरां, है चूड़ौ बळ तूझ ॥ २४ ॥

(पतिदेव ! गजमुक्ताओं से जिसकी पूजा हुई है, जिस पर ख़ूब ही चंवर ढुले हैं और जो मेरे हाथ में सुशोभित है वह चूड़ा आप का बल है-सहायक है ।)

कर पुचकारे धण कहै, जाण धणी री जैत ।
नीराजण बाधावियौ, हूं बळिहार कुमैत ॥ २५ ॥

(अपने पति की विजय सुन पत्नी पति के घोड़े की आरती उतार कर और अपने हाथ से थपथपा कर कहती है कि कुमैत (घोड़े) ! तुझ पर बलिहारी हूँ ।)

जंग नगारां जाण रव, आण धगारां अंग ।
तंग लियंतां तंडियौ, तोनैं रंग तुरंग ।२६ ॥

(रणदुंदुभियों की आवाज़ सुनते ही शरीर में वीरस्फूर्ति लाकर तंग खिंचते २ ही तू नाचने लग गया या बोल उठा, तुझे शाबास है ।)

हूं बळिहारी राणियां, थाळ वजांणै दीह ।
वीर जमी रा जे जणै, सांकळहीटा सीह ॥ २७ ॥

(मैं उन रानियों के थाल बजवाने के दिन अर्थात् पुत्रप्रसव पर बलिहारी हूँ जो उच्छृंखल सिंहों के-से वसुधा के वीरों को जन्म देती हैं ।)



(क्रमशः)

चारण बन्धुओं से

(लेखक—श्री रामनारायणजी चौधरी, संचालक—"नवज्योति" अजमेर)

मातृपूजा के प्रथम पाठ जिन व्यक्तियों से मैंने सीखे हैं उन में से जिस ने मेरे मन को सब से अधिक मोहा वह एक चारण युवक था। स्वर्गीय प्रतापसिंह की स्मृति मेरे हृदय पटल पर अमर और मधुर है। उन के पिता—यों कहिये कि ठा० केसरीसिंहजी का सारा परिवार—हुतात्मा है। राजस्थान में राष्ट्रीयता का बीजारोपण इन लोगों ने अपने सर्वस्व की बलि चढ़ा कर किया है। मेरा प्रान्त—राजस्थान—इन शहीदों के ऋण को शायद ही उतार सके।

चारण जाति की जिस में अपनी खास विशेषता है उस डिंगल काव्य का मैं ने थोड़ा रसास्वादन किया है। मेरे परम मित्र स्व० ठा० किशोरसिंहजी जब उस साहित्य के रत्न खोज २ कर सुनाया करते थे तो इस बनिये की बाँहें भी फड़कने लगती थीं। मैं सोचा करता हूँ इस जाति ने कितने वीर बनाये होंगे, इन अमर गायकों ने कितने नायक पैदा किये होंगे, कितने लड़खड़ाते योद्धाओं के पैर मज़बूत किये होंगे और कितनों को कर्तव्य विमुख होने से बचाया होगा।

परन्तु क्या आज भी अधिकांश चारण वैसे ही स्फूर्ति के स्रोत हैं? क्या आज भी वे सजीव साहित्य बना कर सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् का प्रचार करते हैं? इस का उत्तर हाँ में देना कठिन है। विपर्यास के इस युग में अधिकांश चारण भी सरदार न रह कर भिक्षावृत्ति के हामी, पथप्रदर्शक न रह कर चापलूस और प्रेरक के स्थान पर स्वार्थी दिखाई देते हैं। मेरी इस टीका में कोई भाई तिरस्कार न देखें, इस में भरे दर्द को समझें। इस का कारण है।

हमारे देश में राजपूत जाति राजा, जागीरदार और छुटभैयों के रूप में ज्यादातर शासक है। लाखों मनुष्यों के सुख-स्वातंत्र्य इस पर निर्भर करते हैं। दुर्भाग्यवश देश की पराधीनता और दायित्वहीन निरंकुश सत्ता ने इन शासकों में से अधिकांश को कर्तव्यविमुख बना दिया। ये विलासी, पीड़क और कायर बन गये। इन के शौर्य, बलिदान, प्रेम और देशभक्ति आदि गुण बहुत कुछ नष्ट हो गये। प्रजासेवा की भावना इन में से प्रायः काफूर हो गई। देश की आज़ादी के उपासक न रह कर ये उस की पराधीनता के पोषक बन गये। इस पतन की ज़िम्मेदारी से चारण नहीं बच सकते। चारणों और राजपूतों का चोली-दामन का संबंध रहा है। आज भी राजपूत चारण का सम्मान एवं विश्वास करता है और उस की बात पर ध्यान देता है। मगर चारण अपने निकट और क्षुद्र स्वार्थ से दब गया है। वह खरी कहने का साहस नहीं करता। कई जगह तो वह राजपूत के नाश का प्रत्यक्ष कारण बना हुआ है।

परन्तु क्या चारण वस्तुतः एक जाति विशेष या शासक समूह के ही भक्त थे,

या किसी भावना या आदर्श के पुजारी थे ? मेरी नम्र सम्मति में यह कवि-समुदाय, ये सरस्वतीपुत्र किसी वर्ग के समर्थक नहीं थे, राष्ट्रदेव के उपासक थे। यदि राजपूतों को उन्होंने अपना प्रेमपात्र बनाया तो उस का कारण यही मालूम होता है कि मध्यकालीन भारत में राजपूत ही राष्ट्र की रक्षा-शक्ति के प्रतीक थे। यदि यह सही है तो क्या चारण जाति अपनी उपासना का रूप और क्षेत्र राष्ट्रदेव के परिवर्तित स्वरूप के अनुकूल नहीं बनायेगी ? आज कोई वर्ग राष्ट्र नहीं है, सारी जनता राष्ट्र है। आज राजा मुख्य शक्ति नहीं, प्रजा प्रधान है। युगधर्म का तक़ाज़ा है कि चारण समाज इस शक्ति को जगावे और अपने पुराने देवताओं को या तो इस नई देवी की उपासना में लगावे या उन्हें छोड़ दे। इसमें उसे त्याग करना पड़ेगा। शायद पहला त्याग 'त्याग' का ही करना पड़े*। मगर जो दूसरों को शब्द से स्फूर्ति देता है उसे अपने कार्य से भी उदाहरण पेश करना चाहिये।

कवि और साहित्यकार नई सृष्टि नहीं बनाते। वे तो युगों के अनुभव को और ख़ास तौर पर युगधर्म को भावों के रूप में इस तरह पेश करते हैं कि वह जनता के हृदय पर अमिट रूप से अंकित हो जाय और जो महापुरुष या महाशक्ति युगविशेष का निर्माण करते हों उनका सन्देश व्यापक और कार्यपरिणत हो जाय। कवि किसी उसूल को देते नहीं, प्रसारित करते हैं। तो फिर चारण समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रचारक क्यों न बनें ? वे अनेक को एक के लिये जीने का समर्थन न करके एक को अनेक के लिये जीने की प्रेरणा क्यों न करें। वे राजपूतों को जापानी समुराई (जापान के जागीरदार सरदारों) का मार्ग क्यों न दिखावें ? वे राजस्थान की पीड़ित, मूर्च्छित और निराश प्रजा में आशा, जीवन और स्वाभिमान को क्यों न जगावें ?

यदि हम आस्तिक हैं तो अवतार-सिद्धान्त को मानते हैं। मेरी विनीत सम्मति में महात्मा गाँधी आधुनिक काल के वैसे ही महापुरुष हैं। उन्होंने सामूहिक अहिंसा का एक नया सन्देश भारत को और उसके द्वारा जगत् को दिया है। उन्होंने बताया है कि कूटनीति और शस्त्रास्त्रों के इस वैज्ञानिक संगठन में अत्याचार का सफल विरोध सीधे, सच्चे और अहिंसक अस्त्रों से ही हो सकता है। इस महान् आत्मा का यह महान् उद्देश्य धीरे धीरे किन्तु निश्चित रूप से पूरा हो रहा है। परन्तु हमारे राजस्थानी कवि-समाज ने इस उद्देश्य की पूर्ति में कितना सहयोग दिया है ? उस ने नवयुग के इस नवीन सन्देश का कितना प्रसार किया है ? बदकिस्मती से वह जिस प्रकार पुराने देवताओं से चिपटा हुआ है उसी तरह उस का पूजा अर्चा का सामान भी पुराना है। यदि चारण भाई इस नये अस्त्र, इस नई

*अ० भा० चा० सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन (पुष्कर क्षेत्र, सं० १९७८ वि०) में ही 'त्याग' के परित्याग का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास किया गया और तदनुसार राजस्थान में यह नामशेष है। —सम्पादक

युद्धकला की दीक्षा राजपूत और राजस्थानी जनता को देने लग जायँ तो आज जो मुर्दनी, काहिली और नाउम्मीदी इस वीरभूमि में चारों तरफ़ छाई हुई दीखती हैं वह शीघ्र दूर हो जायँ, इस में मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं। यह नवधर्म खुद चारण जाति को भी सामाजिक दृष्टि से पूर्ववत् आदरणीय और स्वावलंबी बना देगा।

तो क्या चारण जाति असमंजस में है? क्या उसे राजा और प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य में विषमता दीखती है? क्या वह दो वफ़ादारियों के संघर्ष में किंकर्तव्यविमूढ है? यदि ऐसा है तो सामञ्जस्य का मार्ग उस की कठिनाई को हल कर सकता है। वह शासक-समूह को कर्तव्य की और शासित जनता को अधिकार की शिक्षा देने लग जाय तो चारणों का, राजपूतों का और प्रजा का यानी सब का भला हो सकता है। यदि एक ओर वह राजाओं और जागीरदारों को समय की गति पहिचान कर प्रजासेवक बनने की प्रेरणा कर सके और प्रजाजनों में अन्याय का सक्रिय विरोध करने की भावना भर सके तो दोनों का उत्थान हो सकता है। यदि वह शासकों को प्रजा के हाथों में शासनभार सौंप कर निश्चिन्त हो जाने को राज़ी कर सके तो वह देश की ऐसी सेवा कर दे जिस की कहीं मिसाल न मिले और जो चारण जाति को इतिहास में सदा के लिये अमर कर दे। यदि वह इच्छा करेगी तो शक्ति मा 'करनी' दे देगी।



काव्य-कुंज



विधि-वैपरीत्य

(ले०—राजस्थान-केसरी कविवर ठा० श्री केसरीसिंहजी बारहठ, कोटा)

रोंकत क्यों ना नृपन कौं, शुभचिंतक कहलात।
जे पूछत यों हमहिकौं, सुनहु मर्म की बात॥



राजनीति ओट, लिखि कहिकै बदल जावैं,
लोभ को प्रबंध कहि दीनजन चूसे जात।
कृपण छिपावैं धनमोह कौं मितव्यय में,
निर्दयता न्याय, नाम क्रूरता, प्रभाव पात।

देश काल-ज्ञान मानि, हनि कुलधर्म चलैं,
डूबि खोटे व्यसन जतावैं दिल बहलात ।
वहते विरुद्ध पौन महिप मदांध-भौन,
रोकै कौन ऐंचि रह्यो विधि-विपरीत हात ॥

देवजाति ?

(ले०-श्री मोतीसिंहजी रोहड़िया, बी० ए०, जोधपुर)

स्वार्थ त्यागि सत्य कहने की शुभनीति छोड़ि–
पेट पालने को, बान गही, जी हुजूरी है ।
साहस नहीं है श्रम करके कमाई करें,
भाइयों का हिस्सा खोसि खाने में गरूरी है ।
विधवा-अनाथों पर जुलमकी न पूछो बात,
अन्न-वस्त्र आदि की व्यवस्था भी न पूरी है ।
दावा देवजाति का करत सकुचाओ 'सिंह' !
अब ही ते आप में मनुष्यता अधूरी है ॥

वसन्त-विडम्बना

अनुचित स्वार्थ ने दबाया है विवेक सारा,
देखो जहां तहां एक यही जयवन्त है ।
चल पड़ी चारों ओर राजा-प्रजा ऐंचातान,
प्रेमभाव रखनेकी बात में न तन्त है ।
सुनते न अहंमन्य सर्व हितकारी बात–
कहता पुकार कर जो कि गांधी सन्त है ।
समझो भले ही सुखदायक वसन्त आया,
देश-हिय में ते अभी दुख का न अन्त है ।

—सम्पादक

होली

(ले०—श्री मोतीसिंहजी रोहड़िया, बी० ए०, जोधपुर)

भूखे पेट कई बिललाते लाल भारत के !
शिक्षा हेतु कितने गहत कर झोली है।
फिरें अधनंगी कई आर्य ललनायें 'सिंह' !
मिले तन ढांकने को ओढनी न चोली है !!

ऐसी दीन हीन दशा बन्धुजन की बिसार,
मस्त भये झूमते हो सूझत ठठोली है !!
कौन गिनती है सूखी लकड़ी जलाना, जहां—
हृदय हज़ारों में हमेशा होत होली है !!



कविराजा बाँकीदास*

[ले० महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

वीर-भूमि राजस्थान डिंगल-भाषा के कवियों की खान है। समय-समय पर वहाँ ऐसे कवि-रत्न उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने युद्धों के प्रसंगों पर ओजस्विनी रचनाओं द्वारा जादू का काम किया है। आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व मारवाड़ में एक ऐसे ही व्यक्ति का जन्म हुआ था, जो सच्चा कवि, इतिहास का मर्मज्ञ और साहित्य में उच्च कोटि का विद्वान् था। अतएव इस लेख द्वारा पाठकों को उक्त राजस्थान के कवि-रत्न का यत्किंचित् परिचय कराया जाता है।

चारणों का राजपूतों में दीर्घ काल से बड़ा मान चला आ रहा है। सच पूछा जाय, तो क्षत्रियों की वीरता को जीवित रखनेवाले भी ये ही लोग रहे हैं। यही कारण है कि राजस्थान में इन लोगों को बड़ी-बड़ी जागीरें मिली हुई हैं। इस लेख के चरित्र नायक कविराजा बाँकीदास का जन्म चारण-जाति के आसिया-कुल में, वि० सं० १८२८ (ई० सन् १७७१) में, जोधपुर-राज्य के पचभद्रा-परगने के भाँडियावास-गाँव में, हुआ था। अपने पिता से कविता का सामान्य ज्ञान प्राप्त

* 'सुधा' मासिक पत्रिका की श्रावण, ३१३ तु० सं० की संख्या में प्रकाशित यह लेख, लेखक महोदय की आज्ञा से यहाँ मुद्रित किया जाता है।

—सहकारी सम्पादक, हिंदी विभाग

कर वि० सं० १८५४ (ई० सन् १७९७) के लगभग वह जोधपुर गये। वहाँ निरंतर पाँच वर्ष तक भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से भाषा के काव्य-ग्रंथ, व्याकरण में सारस्वत और चंद्रिका, साहित्य में कुवलयानंद तथा काव्य प्रकाश आदि ग्रंथों का अध्ययन कर हिंदी-भाषा के काव्य-ग्रंथों द्वारा विस्तृत ज्ञान-वृद्धि की।

उस समय मारवाड़-राज्य के सिंहासन को महाराजा मानसिंह सुशोभित करते थे, जो विद्या-रसिक, काव्य-प्रेमी और कवियों के आश्रय-दाता थे। वि० सं० १८६० (ई० सन् १८०३) में बाँकीदास की पहुँच उक्त महाराजा के पास हुई। उनकी अद्भुत कवित्व-शक्ति, सत्यवादिता और निर्भीकता आदि गुणों से मुग्ध होकर प्रथम अवसर पर ही उक्त गुणग्राही महाराजा ने उनको लाख-पसाव नामक पारितोषिक देकर अपने राजकवियों में स्थान दिया। महाराजा मानसिंह स्वयं कवि थे। उन्होंने अपनी ज्ञान-शक्ति का विकास करने के लिये बाँकीदास से साहित्य के ग्रंथों का पढ़ना आरंभ किया, और उसमें शीघ्र ही अच्छी गति प्राप्त कर ली। महाराजा ने उनको 'कविराजा' की उपाधि, ताज़ीम, पाँव में सोना और बाँहपसाव आदि से सम्मानित किया, तथा काग़ज़ों पर लगाने के लिये मोहर (मुद्रा) रखने का मान दिया, और उसमें उनको अपना शिक्षा-गुरु होने के वाक्य खुदवाने की आज्ञा दी, जो नीचे लिखे अनुसार है—

"श्रीमन् मान धरणिपति बहु गुन-रास,
जिन भाषा गुरू कीनौ बाँकीदास।"

शरीर स्थूल होने के कारण कविराजा बाँकीदास को चलने-फिरने में कठिनाई होती थी, और वृद्धावस्था में वह पैदल चलने में असमर्थ हो गये थे। वह जब जोधपुर के क़िले में जाते, तो जहाँ तक सवारी जाती है, वहाँ तक पालकी में बैठकर जाते; उसके आगे कहार तथा छोटे नौकर उनको लकड़ी के पाटे पर बिठाकर ले जाते थे। ज्यों ही उनका पाटा महाराजा मानसिंह के सामने पहुँचता, त्यों ही महाराजा खड़े होकर उनको ताज़ीम देते और वह पाटे पर बैठे हुए ही महाराजा को विरुद सुनाते थे।

वह डिंगल-भाषा एवं पिंगल-शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता तथा आशुकवि थे। उनकी धारणा-शक्ति इतनी प्रबल थी कि एक बार भी किसी के मुँह से कोई बात सुनते, तो उसको ज्यों-की-त्यों अपने मुँह से सुना देते थे। उनकी वीर-रस-पूर्ण कविता बड़ी चित्ताकर्षक होती थी। उनका इतिहास-ज्ञान भी बढ़ा-चढ़ा था। एक बार ईरान का कोई सरदार भारतवर्ष की सैर करता हुआ जोधपुर पहुँचा, और महाराजा से मुलाक़ात होने पर उसने किसी इतिहासवेत्ता से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। इस पर महाराजा ने बाँकीदास को ही उपयुक्त समझ उस सरदार के पास भेजा। ईरानी सरदार उनसे मिलकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने उनके ऐतिहासिक ज्ञान की प्रशंसा लिखकर महाराजा के पास भेजी, जिससे महाराजा ने बड़ा गौरव समझा।

कविराजा बड़े स्वाभिमानी थे। एक समय महाराजा मानसिंह नेत्र-रोग से

पीड़ित हुए, और वह पीड़ा छः मास तक बनी रही। विवश होकर महाराजा ने आँखों को दूषित वायु से बचाने के लिये पर्दे के भीतर रहना स्वीकार किया, और राज्य के कर्मचारियों को अपने सामने बुलाना छोड़ दिया। उन दिनों राज-कर्मचारियों को महाराजा से कोई बात कहनी होती, तो वे पर्दे के बाहर बैठकर निवेदन करते थे। उस अवसर पर एक दिन महाराजा को कविराजा की आवश्यकता हुई। दो-तीन बार नौकर भेज उनको हाज़िर होने के लिये कहलाया, किंतु प्रत्येक बार उन्होंने बीमार होने का बहाना किया। तब उनके पुत्र ने उनको महाराजा के अप्रसन्न होने का डर दिखलाकर महलों में जाने का आग्रह किया। इस पर उन्होंने पर्दे के बाहर बैठकर महाराजा से बात करने में अपना अपमान होना प्रकट कर महाराजा के पास जाने से साफ़ इनकार किया। यह बात उस सेवक ने ज्यों-की-त्यों महाराजा से कह सुनाई। इस पर महाराजा ने उस सेवक को फिर भेजकर कविराजा को कहला भेजा कि यदि मेरी आँख की पीड़ा बढ़ जाय, तो कोई चिंता नहीं, पर आपको बाहर बिठलाकर बात नहीं करूँगा। तब वह दरबार में गये। गुण-ग्राहक महाराजा ने नेत्र की पीड़ा होने पर भी कविराजा को अपने सम्मुख बुलाकर बातचीत की।

महाराजा ने अपने राजकुमार छत्र-सिंह की शिक्षा का भार भी कविराजा पर छोड़ा था; किंतु कविराजा ने कुँवर के लक्षण देखकर जान लिया कि वह अवगुणों का भंडार है, उस पर शिक्षा का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा, इसलिये उन्होंने राजकुमार को शिक्षा देना छोड़ दिया। महाराजा मानसिंह को जब ज्ञात हुआ कि कविराजा राजकुमार को शिक्षा देने के लिये नहीं जाते, तब उन्होंने उनसे राजकुमार को न पढ़ाने का कारण पूछा। कविराजा ने कहा—"यह कुपूत है, इसको शिक्षा देकर मैं अपनी कीर्ति में बट्टा लगाना नहीं चाहता।" आगे जाकर उनका कथन अक्षरशः ठीक निकला, और महाराजा मानसिंह को छत्रसिंह के कारण बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ उठानी पड़ीं।

कविराजा की अद्भुत काव्य-कला की प्रशंसा सुन मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह ने, जो काव्य के ज्ञाता थे, उन्हें उदयपुर बुलाकर विशेष रूप से उनका सम्मान करना चाहा, परंतु उन्होंने जोधपुर-नरेश के अतिरिक्त अन्य जगह से दान न लेने की प्रतिज्ञा कर ली थी, इसलिये महाराणा से प्रतिग्रह लेना अस्वीकार कर उसके लिये धन्यवाद-पूर्वक क्षमा-याचना की।

कविराजा बड़े निर्भीक थे। एक बार जोधपुर में बहुत वर्षा हुई, और सूरसागर तालाब जल से परिपूर्ण हो गया। उस अवसर पर वर्षाऋतु के आनंद को लूटने के लिये महाराजा सपत्नीक सूरसागर गये, और कविराजा भी पालकी में बैठकर रवाना हुए। मार्ग में ज़नानी सवारी जा रही थी, जिसके साथियों ने उनको ठहर जाने के लिये कहा; किंतु उन्होंने महाराजा के नाराज़ होने की कुछ

भी परवा न कर कहा—"ऐसी रानियाँ बहुत-सी जाती हैं।" जब सूरसागर पर ज़नानी सवारी पहुँची, और रानी ने बाँकीदास की धृष्टता का हाल महाराजा से निवेदन करना चाहा, तो महाराजा ने यह उत्तर दिया—"हम यहाँ आमोद-प्रमोद के लिये आये हैं, इसलिये जिस किसी को हमारे आनंद में बाधा उपस्थित करना हो, वही यहाँ अर्ज़ करे; नहीं तो जोधपुर लौटने के बाद जो कुछ अर्ज़ करना हो, करे।" फिर महाराजा जोधपुर लौटे, तब रानी ने कविराजा की गुस्ताखी की बात महाराजा से कह सुनाई। इस पर महाराजा ने उत्तर दिया—"यदि मैं चाहूँ, तो आप-जैसी बहुत रानियाँ ला सकता हूँ, परंतु ऐसा दूसरा कवि मुझको नहीं मिल सकता। इसलिये अब इस विषय में मौन धारण करना ही अच्छा होगा।" इस पर वह चुप हो गईं।

महाराजा मानसिंह के पूर्व जोधपुर की गद्दी पर उनके चचेरे भाई भीमसिंह थे। भीमसिंह ने गद्दी पर बैठते ही अपने कई भाई-भतीजों को मरवा डाला था। इस कारण महाराजा मानसिंह वहाँ से भागकर जालोर में, जो बचाव के लिये सुरक्षित स्थान था, जा बैठे। उनको वहाँ से निकालने के लिये महाराजा भीमसिंह ने सिंघवी इंद्रराज को सेना देकर भेजा, जिसने जालोर के क़िले को घेर लिया, और मानसिंह को यहाँ तक तंग किया कि वह विवश होकर क़िले से निकल जायँ। उक्त क़िले में जलंधरनाथ का एक स्थान था। वहाँ के आयस (कनफड़ानाथ) देवनाथ ने उनसे कहा—"यदि आप छः दिन और इस क़िले में रह जाओगे, तो यह आपके हाथ से कभी न निकल सकेगा, और आप मारवाड़ के स्वामी होकर जोधपुर पहुँचोगे।" इन वाक्यों पर उनको दृढ़ विश्वास हो गया, और अनेक आपत्तियाँ सहने पर भी उन्होंने जालोर के क़िले को न छोड़ा। इन्हीं दिनों जोधपुर से महाराजा भीमसिंह के देहांत हो जाने का समाचार इंद्रराज को मिला। जोधपुर का तमाम सैनिक-बल इंद्रराज के अधिकार में था, इसलिये उसने सोचा, यदि कोई दूसरा गद्दी पर बैठ गया, तो सरदार उसे अपने क़ाबू में कर लेंगे; और मानसिंह को गद्दी पर बिठाया जाय, तो वह अपने हाथ में रहेगा, और उस पर यह बड़ा उपकार का काम होगा। निदान उसने महाराजा मानसिंह को यह सूचना देकर बिना संकोच उन्हें जोधपुर चलने के लिये कहलाया, परंतु उन्हें विश्वास नहीं हुआ। अंत में जब उन्हें निश्चित रूप से भीमसिंह की मृत्यु का हाल ज्ञात हुआ, और उनके विरुद्ध होनेवाले षड्यंत्र का भय मिट गया, तब वह जालोर से आकर जोधपुर के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इसके बाद महाराजा ने आयस देवनाथ की भविष्यद्वाणी को स्मरण कर उसको अपना गुरु बनाया, जिससे नाथों का उपद्रव बहुत बढ़ा; परंतु महाराजा सदा उस बात की उपेक्षा ही करते रहे। अंत में नाथों के उपद्रव से तंग होकर सरदारों ने आयस देवनाथ को अमीरख़ाँ पठान के द्वारा मरवा डाला, और कुँवर छत्रसिंह को महाराजा के हाथ से राज्याधिकार दिलवा दिया।

इतना ही नहीं कुँवर को चांपासनी के वल्लभ-संप्रदाय के गोसाईं द्वारा मंत्रोपदेश दिलवाया, जिससे वहाँ कनफटों का प्रभाव हटने लगा। उस समय कविराजा ने महाराजा के अप्रसन्न होने की कुछ भी परवा न कर नाथों का निंदासूचक एक सवैया कहा, जिसका अंतिम चरण इस प्रकार है—

"मान को नंद गुविंद रटै,
तव...फटै कनफट्टन की।"

युवराज छत्रसिंह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुआ, तदनंतर फिर राज्याधिकार महाराजा मानसिंह ने अपने हस्तगत कर लिया। नाथों के बड़े पक्षपाती होने के कारण उक्त महाराजा ने कविराजा के कहे हुए उक्त सवैये से चिढ़कर उनको दंड देना चाहा। महाराजा के क्रूर स्वभाव से कविराजा अपरिचित न थे। इसलिये जो नौकर उन्हें बुलाने आया, उससे कहा कि मैं हाज़िर होता हूँ, तुम चलो। किंतु वह महाराजा के पास नहीं गये, और तेज़ चलनेवाले ऊँट पर सवार होकर, मारवाड़ का परित्याग कर मेवाड़ चल दिये। वहाँ पर उनका वैसा ही आदर रहा, जैसा जोधपुर में था। महाराजा को कविराजा के मारवाड़ छोड़ देने पर बड़ा दुःख हुआ। अंत में उन्होंने बहुत कुछ अनुनय-विनय करके उनको फिर जोधपुर बुला लिया।

श्रावण सुदि ३, वि० सं० १८९० (ई० सन् १८३३) को कविराजा का परलोक-वास हुआ। महाराजा मानसिंह को उनकी मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ, और निम्न-लिखित सोरठों में उन्होंने अपने हृदयोद्गार प्रकट किये—

"सद्विद्या बहु साज,
वाँकी थी बाँका वसू।
कर सूधी कवराज,
आज कठीगो आसिया।

विद्या कुळ विख्यात,
राज काज हर रहसरी।
वाँका तो बिण वात,
किण आगळ मनरी कहाँ॥"

कविराजा वाँकीदास रचित डिंगल और व्रजभाषा के छोटे-बड़े कई ग्रंथ हैं, और उनकी फुटकर कविताएं और गीत तो अनेक हैं। महाभारत के कुछ अंश का हिंदी अनुवाद भी उन्होंने किया था, परंतु अभी तक वह अप्रकाशित ही है। मरु-भाषा के गंगालहरी आदि २४ ग्रंथों में से निम्न-लिखित ग्रंथ नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी ने बालावक्ष राजपूत-चारण-पुस्तकमाला में, दो भागों में प्रकाशित किये हैं।

पहले भाग में—(१) सूर-छत्तीसी, (२) सीह-छत्तीसी, (३) वीर-विनोद, (४) धवल-पचीसी, (५) दातार-बावनी, (६) नीति-मंजरी और (७) सुपह-छत्तीसी।

दूसरे भाग में—(१) वैसक-वार्ता, (२) मावड़िया मिजाज, (३) कृपण-दर्पण, (४) मोह-मर्दन, (५) चुगल-मुख-चपेटिका, (६) वैस-वार्ता, (७) कुकवि-बत्तीसी, (८) विदुर बत्तीसी,

(९) भुरजाल-भूषण और (१०) गंगालहरी ।

अप्रकाशित—(१) झमाल, (२) जेहल-जस-जड़ाव, (३) सिधराव-छत्तीसी, (४) संतोष-वावनी, (५) सुजस-छत्तीसी, (६) वचन-विवेक-पच्चीसी और (७) कायर-वावनी । +

कविराजा वाँकीदास की कविता डिंगलभाषा में प्रायः वीर-रस-पूर्ण हुआ करती थी, जिसका राजपूताने में वड़ा सम्मान है, किंतु समय-समय पर उन्होंने अपनी कविता में अन्य रसों का भी प्रयोग किया है । कहते हैं, जयपुर और जोधपुर के महाराजों के आपस के वैर के मिटाने के लिये महाराजा मानसिंह ने अपनी कन्या का विवाह जयपुराधीश जगतसिंह के साथ तथा जगतसिंह ने अपनी वहन का विवाह मानसिंह के साथ कर दिया था । उस समय हिंदी के प्रसिद्ध कवि पद्माकर और वाँकीदास के वीच काव्य-चर्चा हुई, जिसमें वाँकीदास ने वाज़ी मार ली । उनकी डिंगल-भाषा की कविता ओज-पूर्ण, प्रसाद-गुण-युक्त, उत्कृष्ट एवं सुधरी हुई होती थी । उनका ऐतिहासिक ज्ञान भी अगाध था । मेरे संग्रह में उनकी लिखी हुई अनुमानतः २८०० ऐतिहासिक वातों का संग्रह है, जो अव तक अप्रकाशित है । वह संग्रह केवल राजपूताने के इतिहास के लिये ही उपयोगी है । इतना ही नहीं, किंतु राजपूताना के वाहर के राज्यों तथा मुसलमानों के इतिहास की भी उसमें कई वातें उल्लिखित हैं * ।

डिंगल साहित्य में हास्यरस

[ले० भँवर उदयसिंह दधिवाड़िया, एम० ए०, एल-एल० वी० (प्रीवियस), हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सवसे आदि काल और वड़ा ही महत्वशाली समय 'वीर-गाथा-काल' गिना जाता है। उस समय केवल डिंगल साहित्य का

+ अभी कुछ मास पूर्व उक्त सभा की ओर से 'वाँकीदास-ग्रंथावली' का तीसरा भाग प्रसिद्ध हुआ है, उसमें 'कृपण-पच्चीसी' एवं 'हमरोट-छत्तीसी' नामक अन्य दो ग्रंथों के साथ ये सातों ग्रंथ दिये गये हैं । —सम्पादक, गुजराती विभाग

* कविराजा वाँकीदास के पौत्र मुरारिदान साहित्य के विद्वान् और अच्छे कवि थे । जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (दूसरे) के नाम पर उन्होंने अलंकार का भाषा में 'जसवंतजसोभूषण'-नामक वृहद् ग्रंथ रचा । उनकी योग्यता आदि सद्गुणों से प्रेरित हो अँगरेज़ी सरकार ने उनको महामहोपाध्याय का ख़िताव दिया था । —लेखक

ही पूर्ण बोलवाला था और अन्य साहित्य तो केवल नींद में सोते हुए से ज्ञात होते थे। ठीक वह समय ही ऐसा था जब चारों ओर चारण लोग सबसे अधिक पूज्य समझे जाते थे। उस काल में केवल वीर रस-युक्त कविता की ही गूंज हो रही थी। और इस वीररस-युक्त कविता के निर्माता थे चारण कविगण। वह समय ऐसा था जबकि क्षत्रियों की तलवारें चारों दिशाओं में चमचमा रही थीं। उस समय के चारण कवियों की वाणी में भी वह शक्ति, वह ओज, वह उल्लास, वह चमत्कार और वह जोश था जो मुर्दों में जान डाल देता था, कायर को वीर में परिणत कर देता था और क्षत्रियों को तलवार पर नाच नचाता था। अत: क्षत्रिय गण चारण कवियों को हर समय अपने साथ रखते थे जिससे वह अपनी ओजस्विनी कविताओं द्वारा रणक्षेत्र से भागी हुई सेनाओं में भी पुन: जोश का संचार कर देते थे। ये चारण कविगण केवल वीरता पूर्ण कविता से ही लोगों को प्रभावित नहीं करते थे परन्तु स्वयं भी वीरता से लड़ कर क्षत्रियों के लिये-देश और जाति के लिये-मर मिटते थे। अत: वह समय ही चारण जाति के उन्नति का उच्चतम शिखर समझ लीजिये।

परन्तु "सब दिन रहत न एक समान"! समय ने धीरे २ पलटा खाया। डिंगल साहित्य का वह स्वर्णयुग बीत चला। अन्य साहित्यों के भी अंकुर निकलने लगे। तलवारों की चमचमाहट रुक गई, युद्ध शान्त हो गये और क्षत्रिय लोग विलासिता के गहरे कूप में जा गिरे! ऐसी परिस्थिति में भला चारण कविगण काल की चपेट से कैसे बच सकते थे? उन्होंने अपनी कविता में शृंगार रस को प्रधानता देना प्रारम्भ कर दिया।

तदनन्तर "Old order changeth yielding place to new" इस अंग्रेजी उक्ति के अनुसार चारण कवि इस से भी ऊब चले। फिर क्या था? अन्य रसों पर भी वे समय-समय पर कविता करने लगे। प्रस्तुत: लेख में उनमें से केवल हास्यरस का ही दिग्दर्शन हम पाठकों को कराते हैं।

हास्य मनुष्य-जीवन के लिये बड़ी उपयोगी वस्तु है। उसके बिना संसार में जीवन नीरस प्रतीत होता है। इसके द्वारा मुरझाये हुए हृदय भी फिर से खिल उठते हैं, खैर। देखें, डिंगल की हास्य रस-युक्त कविता के थोड़े से उदाहरणों से भी पाठकों के हृदय-कमल खिल उठते हैं या नहीं।

अच्छा, पाठक वृन्द! आपने एक साथ ही दश-मुख वाले राजा रावण का नाम तो सुना ही होगा। अब ज़रा उसके जन्म काल की एक छोटी-सी घटना को भी सुन लीजिये।

"राजा रावण जनमियो, दस मुख एक शरीर।
जननी ने सांसो भयो, किण मुख वालूं खीर॥"

रावण का जन्म होने से माता को बड़ी प्रसन्नता हुई परन्तु साथ ही उस का एक तो शरीर और मुँह दश देख कर बड़े भारी संशय में पड़ गई कि अब स्तनपान किस मुँह से करावें ?

यदि आपने स्त्रियों की अजीब बातों को कभी न सुना हो तो अब सुन लीजिये। पति के घर लौट आने पर उसकी स्त्री अपनी सखी से घर की दशा का वर्णन कर रही है और कहती है—

" साजन आया हे सखी ! ज्यां की जोंती बाट ।
थांभा नाचैं, घर हंसै, खेलण लागी खाट ॥ "

वाह ! हद कर दी। खम्भे भी कभी नाचते होंगे। घर भी भला हंसने वाला पदार्थ है और आपने कभी खाट को भी खेलते हुए देखा है !

इसी प्रकार पुत्री के सयानी होने पर पिता उसके विवाह की चिन्ता कर ही रहा था कि पुत्री चट से बीच ही में बोल उठी—

" बाबा मत देइ मारुवां, वर कुंवारि रहेस ।
हाथ कचोळो सिर घड़ो, सिंचंती ही मरेस ॥ "

हाय ! गजब हो गया ! बेचारे समस्त मारवाड़ियों को क्वाँरे ही रहना पड़ेगा। कलियुग आ गया। लड़कियां विवाह के लिये अपनी पसंदगी-नापसंदगी ज़ाहिर करने लग गईं। वाह ! क्वाँरी लड़कियों का मारवाड़ियों पर इतना अन्याय। वे क्वाँरी रह जायँगी परन्तु मारवाड़ में विवाह नहीं करेंगी। यदि ऐसा करें तो पानी ढोते-ढोते मर जायँ। वाह रे ! मारवाड़ देश। लडकियाँ तक घृणा करती हैं। ख़ैर !

क्या आपको मालूम है आजकल साधुओं की संख्या दिनोंदिन क्यों बढ़ती जाती है ? देखिये, साधु हो जाने पर तो मनुष्य को कई लाभ होते हैं—

" मूंड मुंडायां तीन गुण, मिटी टाट री ख़ाज ।
बाबा बाज्या जगत में, मिळ्यो पेटभर नाज ॥ "

लाभ नम्बर एक, सिर के बाल सफाचट हुए और बस, खोपड़ी की खुजली मिटी। लाभ नम्बर दो, जो कोई उन्हें देखे वह चिल्ला उठता है "बाबा जी महाराज !" नहीं तो वैसे कौन पूछे ? और लाभ नम्बर तीन यह है कि भरपेट भोजन बैठे-बिठाये मिल जाता है ! इसी प्रकार—

" चेला लावे मांग कर, बैठा खावै मंथ ।
राम भजन तो नाम है, पेट भरण रो पंथ ॥ "

चेले तो दर-दर भटक कर मांग लाते हैं और महन्तजी का तो सिद्धान्त है ही कि 'राम नाम जपना, पराया माल अपना।' इस तरह नाम तो राम भजन का है और काम है पेट भरने का।

पाठक वृन्द ! देखिये, जो लोग शरीर में थोड़ा सा भी दर्द होने पर अपनी दुर्बलता जता कर तरो ताज़ा पकवान खाने की इच्छा करते हैं, उनके विषय में चारण कविवर कृपारामजी क्या कहते हैं—

" घोचो लागां घाव, घी गेहूं भावे घणा ।
अहड़ा तो अमराव, रोट्यां मूंघा राजिया ॥"

हे राजिया ! ऐसे उमराव सिर्फ़ रोटी कपड़ा देकर रक्खे जायँ तो भी महँगे हैं । ईश्वर बचावे ऐसे नौकरों से !

अच्छा, अब ज़रा मारवाड़ की रेलगाड़ी (J० R०) की भी सैर कर लीजिये—

" नहीं तार नहि टैम है, नहीं बत्ती में तेल ।
आ चालै मन रे मते, मारवाड़ री रेल ॥"

वाह ! अजीब रेलगाड़ी है । न समय का ही कुछ ख़याल है, न तार का ही पता है और उसकी रोशनी तो बस अंधेरे से भी गई बीती है । और इच्छानुसार चलती ऐसे है जैसे कोई दूल्हा पैर बढ़ाता हो । ईश्वर ऐसी रेलगाड़ियों से दूर ही रक्खे !

अब ज़रा बेचारे ढूंढ़ाड़ देश को भी देख लीजिये—

" गाजर मेवो कांस खड़, पुरख जु पून उघाड़ ।
ऊंधा ओज़र अस्तरी, अइ हो धर ढूंढ़ाड़ ॥"

वाह रे ढूंढाड़ देश ! तेरी अब क्या प्रशंसा करें ! मेवे के नाम पर तो गाजर पैदा होती है और घास ईश्वरने कांस जैसी पैदा की । और वहां के स्त्री-पुरुषों का तो कुछ पूछिये ही मत । उलटे पेटवाली चन्द्रवदनियां और पुरुष अधनंगे । वाह ! खूब जोड़ी मिली है ।

परंतु अब इस थरादरी देश की औरतों को तो देखो—

" गागरपेटी गदचली, खीच अनोधा खाय ।
नार हिंड़वा नीपजै, वाह ! थरादरी-वाय ॥"

सचमुच, इन गागर सदृश पेटवाली पद्मिनियों के आगे बेचारे ढूंढाड़ की औंधे पेटवाली कामिनियां पानी भरती हैं । इन्होंने अपनी गदहो सदृश चाल के द्वारा अन्य देशों की हंस-गमनियों का गर्व उतार दिया है । इतना ही नहीं, यदि पतिदेव की आर्थिक स्थिति सामान्य है तो इनके दो-दो हंडी खीच के आहार की व्यवस्था हो नहीं हो सकती ! वाह थरादरी देश ! तेरी संतति ने तो सबसे आगे बाज़ी मार ली ।

पाठक वृन्द ! अब ज़रा जाते-जाते अकाल का वर्णन सुन लें—

" पग पूंगळ धड़ कोटड़े, बाहू बायड़मेर ।
फ़िरतो घिरतो बीकपुर, ठावो जैसळमेर ॥"

बस, समझ जाइये कि पूंगल में तो इसके पैर जमे ही रहते हैं और कोटड़े की तरफ़ भी आंख लगी रहती है ही, खैर। बाड़मेर को भी किसी तरह फंसा लेता है। बीकानेर की ओर तो समय-समय पर घूमने निकल जाता है। और यदि ख़ास उसका अड्डा ही ज्ञात करना हो तो जाइये सीधे जैसलमेर।

बस, पाठक वृन्द ! अब बहुत हो चुका। अब तो आपके मुखारविन्दों से बिखरे हास्य-पुष्पों को बटोर कर लेख समाप्त किये देते हैं। किन्तु आपको यह तो ज्ञात हो ही गया होगा कि चारण-कविगण केवल वीर या शृंगार आदि एक-दो रस-युक्त कविता करने में ही सिद्धहस्त नहीं थे, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं, परन्तु अन्य रसों पर भी कविता सफलता पूर्वक कर सकते थे। इस बात का प्रमाण डिंगल-कवियों के प्राचीन ग्रन्थों की खोज करने पर प्रत्यक्ष मिल जाता है। परन्तु इस प्रकार की विभिन्न रस-युक्त कविता अभी तक संसार की दृष्टि से एक प्रकार से ओझल है, और इसका एक मात्र कारण यही है कि डिंगल के प्राचीन ग्रन्थ हस्तलिखित अवस्था में ही चारण सरदारों के घरों में पड़े हुए दीमकों और चूहों की भोजन-सामग्री बन रहे हैं। अतः प्रत्येक जाति-हितैषी व साहित्य-प्रेमी चारण का कर्त्तव्य है कि, डिंगल साहित्य के निर्माता प्राचीन चारण कवियों के इस प्रकार के अप्रकाशित और हस्तलिखित ग्रन्थ अपनी-अपनी सुनहली तिजोरियों में से निकाल कर प्रकाशित करावें और उनमें से भिन्न भिन्न रसों की कविताओं का संग्रह करके उन पर सुन्दर लेख लिख कर "चारण" में प्रकाशित करावें; और अपने पूर्वजों का गौरव संसार को ज्ञात करावें। आशा है, "चारण" में "चारण-वाणी" विभाग खुल जाने से प्राचीन चारण कवियों के फुटकर गीत, कवित्त, सवैये आदि अब प्रकाशित हो कर साहित्य-प्रेमियों को भिन्न-भिन्न रसों का रसास्वादन करायेंगे और डिंगल साहित्य के गौरव को संसार के सम्मुख रखेंगे।



सम्पादकीय टिप्पणियां

शोक-सम्वाद—

यह वास्तव में दुष्ट संयोग ही की बात है कि इस पत्र के प्रथमांक में जाति के अद्वितीय विद्वान् एवं सम्मेलन के अनन्य प्रेमी ठाकुर किशोरसिंहजी बारहठ के स्वर्गवास का ज़िक्र छपा और इस द्वितीय अंक में सम्मेलन एवं जाति के दो हितैषियों—ठाकुर रघुनाथ दानजी बीठु (देशनोक—बीकानेर) व ठाकुर शंकरदानजी वणसूर (पारलाउ—मारवाड़) के दुःखद निधनका सम्वाद देना पड़ता है !

उक्त स्वर्गवासी सज्जनो में से प्रथम अ० भा० चा० सम्मेलन के संस्थापकों में से एक कहे जा सकते हैं। यह ठीक है कि सम्मेलन की स्थापना का विचार

जिन लोगोंने किया उनमे वे नहीं थे परंतु उस विचार को अमल में लानेमें उनकी सहायता मुख्य थी।

सुना है रघुनाथदानजी साहिब अपनी बहुत ही साधारण स्थिति में कलकत्ता गये थे और दैवानुकूलता से उन्हें वहां अच्छा आर्थिक लाभ हुआ। बाद में कदाचित् अपनी तन्दुरुस्ती ठीक न रहेनेके कारण ही वे ज्यादातर देशनोक में ही रहने लग गये थे और अन्तमें वहीं अपना शरीर छोड़ा। इनसे साक्षात्कार का प्रथम लाभ सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन के समय देशनोक ही में प्राप्त हुआ था। उस अधिवेशन का तो प्रायः कुल ही व्ययभार उन्हींने उठाया था। उस समय एकत्रित जातिका आतिथ्य बड़ी निरभिमानवृत्ति से करके वे अपना अहोभाग्य मानते थे। वे बडे सरल, मितभाषी और उदार स्वभाव के जातिहितैषी सज्जन थे। देशनोक में अब उनका-सा और भी कोई जातिहितैषी सज्जन है इस का पता तो परिचय प्राप्त होने पर ही लगेगा।

ठाकुर शंकरदानजी बणसूर भी सम्मेलन के बड़े प्रेमी थे। राजकोट अधिवेशन के अलावा शायद ही कोई ऐसा अधिवेशन हो जिस में वे शरीक न हुए हों। बड़े हँसमुख और मिलनसार सज्जन थे। वृद्ध होते हुए भी सुधारक विचारों के थे। जोधपुर अधिवेशन में उन्होंने सम्मेलन को प्रतिवर्ष कुछ निश्चित आर्थिक सहायता अपनी ओर से मिलती रहने की उदार प्रतिज्ञा भी की थी।

जगदम्बा मा करनी उक्त दोनों आत्माओं को शान्ति, उनके परिवार को धैर्य एवं सन्तान को उनका-सा ही जातिप्रेम व उदारता रखने की सुबुद्धि प्रदान करे।

बड़े मुँह छोटी बात—

गत अक्टूबर मास के अन्त में बड़ौदा राज्य के भादरण नामक स्थान पर "बड़ौदा राज्य-प्रजामंडल" के अध्यक्षपद से देशपूज्य सरदार वल्लभभाई पटेल ने दो बड़े ओजस्वी एवं मार्मिक-व्याख्यान दिये थे। बड़ौदा जैसे उन्नतिशील राज्य के भी वर्तमान शासन से सरदार को सन्तोष नहीं और इसलिये उन्होंने राज्य प्रबंध की कड़े शब्दों में आलोचना कर प्रजा को शासन सुधार के लिये स्वावलम्बन की काफी उत्तजना दी थी। इसी अवसर पर उन्होंने अपने झंडाचौक के भाषण में 'सयाजीविजय' नामक बडौदा के राजकीय समाचार पत्र की आलोचना करते हुए बेचारे चारणों पर-और सो भी पुराण काल के चारणों पर व्यंग्यबाण छोड़ दिया। सरदार महोदय को प्रसंगवश स्मृति तो आजकल के चारणों की इस अतिशयोक्ति पूर्ण प्रसिद्धि की आई होगी कि वे झूठी तारीफें करते हैं, परंतु व्यंग्य कर दिया पुराणकालीन सत्यसंध चारणों पर। चारणों की आज कल की हालत पर कुछ कह दिया गया होता तो इतना दुःख न होता परन्तु उनके पूर्वजों के लिये ऐसी, 'बड़े मुँह छोटी बात' जानकर चारणों को विशेष दुःख हुआ है। हमें

विश्वास है कि सरदार महोदय ने इरादतन या तिरस्कार भाव से कुछ नहीं कहा। परन्तु उनके जैसे सर्वमान्य देशनेता के मुँह से एक विशिष्ट जाति के संबंध में भ्रमात्मक उद्गार निकले तो उस जाति के व्यक्तियों को दुःख होना स्वाभाविक है। सरदार महोदय की जानकारी के लिये चारणों को पुराण कालीन एवं मध्य कालीन स्थिति के संबंध में शास्त्रीय एवं ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ विस्तृत कुछ लिखने का न तो अभी स्थान है और न उस को देखने का शायद सरदार महोदय को समय। अतः विश्ववन्द्य महात्मा गांधीजी के, अभी कुछ ही समय पूर्व (ता० १४-१०-'३७) चारण जाति के संबंध में लिखे हुए शब्द ही यहां उद्धृत कर हम आशा करते हैं कि सरदार महोदय इस जाति के प्रति भी सद्भाव बनाये रखने की कृपा करेंगे—

" ...चारणो भले देव कोटिना हो के न हो, परन्तु मनुष्य कोटिना तो छे ज; ने एक वेळाए तेओमां भारे शक्ति हती. ए आज पण अज्ञान कूपमांथी नीकळीने फरी प्रकटावी शके छे. "

यदि सरदार महोदय को थोड़ा-सा भी समय हो तो "चारण" के प्रथमांक में पृष्ठ १२ (गुजराती भाग) पर उद्धृत गुजराती भाषा के आधुनिक महाकवि श्री नानालाल दलपतराम एम० ए० का व्याख्यान, और इस अंक में प्रकाशित चौधरी श्री रामनारायणजी का लेख चारण जाति की प्राचीन एवं अर्वाचीन स्थिति की कुछ जानकारी के लिये सरसरी नज़र से अवलोकन कर लेने की प्रार्थना है।

श्री भूपाल चारण छात्रालय—

उदयपुर के श्री भूपाल चारण छात्रालय के प्रबंध की शिक़ायत अरसे से है। इस समय भी हमारे पास एक विस्तृत संम्वाद इस विषय का पड़ा हुआ है। किन्तु उसे हम इस आशा से प्रकाशित नहीं कर रहे हैं कि छात्रालय के वर्तमान प्रबंधक (सैक्रेटरी साहिब) हमारे निवेदन पर ही ध्यान देकर तदनुसार कार्यवाही करने की कृपा करेंगे जिस से फिर किसी को कोई शिक़ायत शायद न रहेगी।

छात्रालय के संबंध में अक़सर रसद वाले के हिसाब को साफ़ करने की, लड़कों की समुचित देखभाल की या लड़कों और सुपरिंटेंडेंट की अनबन की शिक़ायत सामने आती है। हमारी नम्र सम्मति में इसका मूल कारण यह है कि इस प्रकार के सार्वजनिक कार्यों का संचालन जिस प्रणाली से दुनिया भर में होता है उसका यहां अभाव है। ऐसे कामों की व्यवस्था में हर जगह यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिनके हाथ में कार्यसंचालन का भार हो उन में प्रधानता ऐसे लोगों की होनी चाहिये जो ऐसे कार्यों से दिलचस्पी रखते हों, अपनी आपसी रंजिशों को ऐसे कामों के समय तो हृदय से दूर रक्खें (होना तो यह चाहिये कि जिनका परस्पर मनमुटाव हो ऐसे लोग ऐसे कामों से दूर ही रहें क्योंकि

रागद्वेष की वृत्तियों पर क़ाबू रखना बड़ा मुश्किल होता है) और जो अपना समय ऐसे कामों के लिये सहर्ष दे सकें। परन्तु इस छात्रालय के प्रबंध में, प्रधानता इस विचार की है कि अमुक ठाकुर साहिब ही छात्रालय संबंधी चर्चा में भाग लेने के अधिकारी हैं। और इस विचार की प्रधानता का कारण शायद यही है कि इन साहिबान में से अधिकांश को प्रथम तो ऐसी चर्चाओं में भाग लेने का अवकाश सुरादेवी की आराधना आदि के सबब से मिलता ही नहीं और यदा कदा मिल भी गया तो वे हां में हां मिला देने के सिवाय किसी बहस मुबहिसे की तकलीफ़ करके तकलीफ़ नहीं पहुँचाते। उदयपुर में मौजूद मिलनेवाले उत्साही युवकों को ऐसे मौक़ों पर बुलाना आवश्यक नहीं समझा जाता। यही मनोवृत्ति है जो सब ख़राबियों की जड़ है। सार्वजनिक काम में भी एकाधिपत्य की भावना रखना प्रकारान्तर से यही सिद्ध करता है कि उस काम का चलाना-जैसा चाहिये वैसा चलाना मंजूर नहीं। यही घातक मनोवृत्ति थी कि जिस के परिणामस्वरूप छात्रालय-भवन का उतना झगड़ा पड़ा था—झगड़ा ही क्या यदि वर्तमान मेवाड़ेश्वर की न्यायप्रियता का उदार आश्रय न मिलता तो इस घातक मनोवृत्ति के कारण मेवाड़ी चारण जाति की एक मात्र यह सम्मिलित सम्पत्ति सदा के लिये हाथ से चली जाती। इतना कटु अनुभव ताज़ा होने पर भी मेवाड़ी चारण जाति में मुख्य होने का अभिमान रखने वाले सज्जन फिर उसी दुष्प्रवृत्ति में पडे रहें यह मेवाड़ के चारणों का दुर्भाग्य ही है।

यदि ऐसा नहीं है तो एक बार मेवाड़ के सब जातिभाइयों को एकत्र करके 'मेवाड़ चारण सभा' की नियमानुसार स्थापना कर उस के पदाधिकारियों (सभापति, उपसभापति, मंत्री, उपमंत्री, कोषाध्यक्ष आदि) का चुनाव क्यों नहीं किया जाता और इस विचार को भभ्भड़ कह कर क्यों टाल दिया जाता है और क्यों इस निर्दोष एवं पवित्र कार्य में राज्यकोप का डर दिखा कर सीधे सादे लोगों को भ्रम में डाला जाता है? उन्नतिशील राज्य सदा ऐसी प्रवृत्तियों का स्वागत करते हैं और हमारे ख़याल से मेवाड़ राज्य भी ऐसी सामाजिक सभा-समितियों के संगठन में भी बाधक बनने में शायद ही अपना हित एवं गौरव मानेगा। ज़रूरत है कि अविलम्ब मेवाड़ के सब जातिबंधुओं को इकट्ठा कर छात्रालय के प्रति उनके प्रेम को जागृत किया जाय और छोटे से छोटे चारण को भी यह अनुभव करने का मौक़ा दिया जाय कि छात्रालय का काम उस का भी उतना ही है जितना कि किसी और का और उस से लाभ उठाने में, उस के इंतज़ाम में उस का भी उतना ही अधिकार है जितना किसी बड़े सरदार का। इस के साथ ही इस की भी पूरी ज़रूरत है कि स्वनामधन्य स्व० कविराजा साहिब श्यामलदासजी के समय से लगा कर अब तक का इस छात्रालय का प्रामाणिक इतिवृत्त और अब तक के आय-व्यय का विस्तृत हिसाब पुस्तकाकार छपवा कर मेवाड़ के सब चारणग्रामों में एवं बाहिर भी विना मूल्य वितरित किया जाय।

छात्रालय के लिये नियम वना देने को सैक्रेटरी साहिव ने कहा, तो वनाकर उनकी सेवा में पेश कर दिये गये। मगर उनको अवतक व्यवहार में नहीं लाया गया। इस हानिकर उपेक्षा के कारण छात्रालय सच्चे अर्थों में छात्रालय न होकर एक ढाबे के से रूप में चल रहा है, जहां न तो विद्यार्थियों की शारीरिक उन्नति की ओर ध्यान है और न मानसिक विकास एवं चरित्रगठन की ओर। ध्यान दे भी तो कौन? समय पर जागना, शौच, दंतधावन एवं स्नान से निवृत्त हो प्रार्थना करना, समय पर पढ़ना, सफ़ाई से रहना और अपनी चीजों को सुव्यवस्थित रखना तक भी छात्रों की आदत में नहीं हो सका है तो ऊपर लिखी वातें तो इनसे आगे की हैं। इन सब वातों के लिये आवश्यकता है शिक्षित, चरित्रवान् एवं इस काम में अनुराग व उत्साह रखनेवाले निरीक्षक के रखने की। यह सब व्यवस्था सुचारु रूप से और स्थायी रूप से तभी संभव है जव ऊपर सूचित किये अनुसार मेवाड़-चारण-सभाका नियमानुसार संगठन हो और उसके आधीन छात्रालय-प्रबंधकारिणी सभाकी स्थापना हो। क्या ऐसा करने में इस निश्चित आशंका से अधिकार-हानि का भय है कि तव सैक्रेटरी ही सव कुछ न रहेगा? किन्तु यह कल्पना ही दुःखद है कि सैक्रेटरी साहिव ऐसे संकुचित विचार रखते हैं जिनसे जाति का स्पष्ट अहित हो रहा है। पर किया क्या जाय जव उनके अधिकार-कालमें परिस्थिति ऐसी हो रही है कि जिसको सुधारना अनिवार्य प्रतीत होने लगा है तो उन्हें कदाचित् अखरेगा तो भी कर्तव्यवुद्धि से निवेदन करना पड़ा और निवेदन करना पड़ता है कि वे अधिकार-लिप्सा को जातिहित के लिये तिलांजलि देने की उदारता दिखाकर शीघ्र ही ऊपर लिखे अनुसार आयोजन करने में दत्तचित्त हो यश के भागी वनें। यदि वे ऐसा करेंगे तो मेवाड़ी चारणजाति की भावी पीढी उनकी उपकृत होगी। और यदि वे अधिकार-मोह, प्रमाद या पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष के कारण इस सर्वोपरि जातिहित की ओर दुर्लक्ष्य करेंगे तो छात्रालय का तो जो भावी होगा, होगा; उन्हें जाति क्या कह कर स्मरण करेगी इसकी कल्पना वे स्वयं करें।

जो २ सज्जन इन पंक्तियों से अपना संवंध मानें उनसे यह आशा रक्खी जाती है कि जिस शुद्धभाव एवं जातिहित की प्रेरणा से ये लिखी गई हैं उसी शुद्ध भावसे वे भी इन्हें ग्रहण करनेकी कृपा करेंगे और किसी दुष्ट हेतु की कल्पना कर अपने मनोभावको न विगाड़ेंगे। जगदम्वा सवको सुमति दे।

अधिकार-लिप्सा—

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय (उदयपुर) के संवंध में जो कार्यवाही इन्हीं दिनों में हुई और उसमें जो तर्ज़े-अमल खेमपुर ठा० सा० करनीदानजी दधिवाड़िया–सैकेटरी ने इख्तियार किया वह कितना निंदनीय है यह नीचे लिखे विवरण से पाठकों को ज्ञात होगा—

गत फाल्गुन कृष्णा १२ वुधवार को छात्रालय में एक मीटिंग की गई जिसमें पहला प्रस्ताव सर्वसम्मति से यह पास किया गया कि "अब तक हुई मीटिंग्स की

कार्यवाही नियमानुसार नहीं होती रही है अतः इस मीटिंग की और भविष्य में होनेवाली सब सभाओं की कार्यवाही सभा-समितियों के प्रचलित नियमों के अनुसार हो और हरेक बात का निर्णय बहुमत के सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार किया जाय।" बाद में ठा० करनीदानजी सा० के प्रस्ताव से ठा० सा० चमनसिंहजी झाला (ताणा) उस दिन की कार्यवाही के लिये सभापति चुने गये जिनके सभापतित्व में पास हुए प्रस्तावों में एक मूल प्रस्ताव कार्यवाहक समिति के सदस्यों और उनमें से पदाधिकारियों के चुनाव का था। उक्त प्रस्ताव में सभापति के लिये खेमपुर ठाकुर साहिब करनीदानजी का नाम था। इसमें शायद किसीको विरोध नहीं था, परन्तु खेमपुर ठा० सा० ने अपने बजाय कविराजा सा० शक्तिदानजी को सभापति चुनने का ही आग्रह किया तब बहुमत से कविराजा सा० सभापति चुन लिये गये।

कार्य बाकी रह जाने से दूसरे दिन खेमपुर की हवेली ही सभा करना ते पाया था, अतः सब लोग वहां नियत समय पर इकट्ठे हुए। कार्यवाही शुरू होने से पूर्व ही ठा० करनीदानजी ने वितण्डा शुरू कर दिया कि आप लोगों ने सैक्रेटरी को उसका कोई अपराध बताये बिना ही क्यों बदल दिया, सेक्रेटरी नहीं बदला जा सकता आदि आदि। उनकी अनर्गल बातों का समुचित उत्तर दे कर समाधान करने की सब उपस्थित सजातीयों ने कोशिश की, परन्तु वे किसी की बात सुनने को तय्यार नहीं थे। आखिर जब करेड़े राजा बहादुर अमरसिंहजी को संबोधन कर ठा० करनीदानजी ने अपनी कथा कहना शुरू किया तो राजा बहादुर ने उन्हें समझाया कि यह तो नियम की बात है। हर जगह सालाना चुनाव होता है। आपके यहां नियमानुसार काम न होने से अब तक दूसरा सेक्रेटरी नहीं चुना गया और अब चुना गया है तो बेजा नहीं है। आपका सेक्रेटरी बने रहने के लिये आग्रह आपको शोभा नहीं देता आदि। इस पर वे खामोश हो गये और कविराजा सा० के सभापतित्व में उस दिन कार्यवाही होकर ठा० करनीदानजी ने नये सैक्रेटरी को कार्यवाही रजिस्टर तो उसी वक्त दे दिया और बाकी कागज़ात फिर दे देने को कहा।

लेकिन दूसरे दिन जब उन्हीं की हवेली सब लोग आवश्यक कार्यों के लिये फिर सभा करने को एकत्र हुए तो उन्होंने बड़े रूखेपन का व्यवहार कर जवाब दिया कि जब तक दरबार हुक्म न दे देंगे मैं सेक्रेटरी का काम नहीं छोडूंगा और न कोई चार्ज दूंगा। यह कहकर वे बिना किसी के कुछ लिहाज़ के सबको छोड़ हवेली से बाहर निकल गये।

ठा० करनीदानजी के इस अशिष्ट व्यवहार से सबको बड़ा दुःख हुआ। उन जैसे पढ़े लिखे वृद्धजन से इस प्रकार के दुर्व्यवहार और दुराग्रह की किसी को आशा न थी। खैर, अब तक लोग यह भी मानते थे कि सबकी सम्मति न मिलने से ही काम नियमानुसार नहीं होता। किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया कि सबके चाहने पर भी ठा० करनीदानजी नियमानुसार काम करना नहीं चाहते और न बहुमत के आगे सिर झुकाना चाहते हैं।

वे यदि यह सब अपने ही व्यक्तित्व के बल पर करते तो जाति के लोग उन्हें समझा लेते परन्तु वे अपने इस दूषित कर्म में दरबार के हुक्म का नाम लेते हैं इसलिये लोग डर कर चुप हो गये हैं ।

अब यह श्रीमन्मेदपाटेश्वर के लिये ही विचारणीय है कि क्या उनके हुक्म के नाम से ऐसा होना उचित है ?



समाचार-संग्रह

मारवाड़ के सेंट्रल एड्वाइज़री बोर्ड में चारण माफ़ीदारों की ओर से श्री शुकदेवजी किनिया, बी० ए०, एल्‌- एल्० बी० को लिया गया है । ध्यान रहे कि इस नियुक्ति के लिये और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स में भी चारण मेम्बर लेने के लिये मारवाड़-चारण-सभाने चीफ़ मिनिस्टर महोदय से प्रार्थना की थी । फलतः डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स में भी पांच-सात चारण सदस्य लिये गये हैं ।

श्री चण्डीदानजी सा० दधिवाड़िया (कूंपड़ास-मारवाड़) के सुपुत्र श्री सुमेरदानजी, एम्० एस-सी०, एल्-एल्० बी० जोधपुर राज्य में पब्लिक प्रोसीक्यूटर के पद पर नियुक्त हुए हैं।

श्रीमान् महाराणा सा० उदयपुर अभी जोधपुर पधारे थे तब मारवाड़-चारण-सभा की ओर से एक डेप्युटेशन पं० धर्मनारायणजी साहिब-मुसाहिब आला राज्य मेवाड़ से मिला था जिसमें सर्व श्री बद्रीदानजी सा० कविया, श्री बैजदानजी सा० बारहठ, श्री चण्डीदानजी सा० दधिवाड़िया, श्री आईदानजी सा० बारहठ, श्री भूरदानजी सा० बारहठ और सम्मेलन के प्रधानमंत्री श्री शुभकर्णजी सा० कविया थे । इस डेप्युटेशन ने मुसाहिब आला महोदय से मेवाड़ के चारण-ग्रामों की ज़ब्ती की कार्रवाई के संबंध में अर्ज़ की । मुसाहिब आला सा० ने डेप्युटेशन का स्वागत कर उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुना और सांत्वनाप्रद उत्तर दिया ।

गत २९ जनवरी को जोधपुर के श्री उम्मेद-चारण-छात्रालय का वार्षिकोत्सव संखवास ठाकुर दीवान बहादुर श्री माधवसिंहजी सा० चौहान, होम मिनिस्टर के सभापतित्व में बड़े समारोह से मनाया गया, जिसमें खान बहादुर नवाब मुहम्मददीनजी चौधरी—रेवेन्यु मिनिस्टर, श्री ए० पी० कॉक्स—अध्यक्ष शिक्षा-विभाग और होम सेक्रेटरी श्री किशनपुरीजी आदि माननीय सज्जनों ने भी अपनी उपस्थिति से सहयोग दिया था ।

श्रीमान् महाराणा साहिब उदयपुर ने स्व० महाराज सा० हिम्मतसिंहजी (स्व० महाराणा सा० फतहसिंहजी के भतीजे) के द्वितीय पुत्र महाराज सा० प्रतापसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री भगवतीसिंहजी को गत फाल्गुन कृष्णा ५ को दत्तक लेकर अपना उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया है। जगदम्बा पिता-पुत्र को दीर्घायु करे और श्री महाराज कुमार सा० को इस बड़ी गद्दी के गौरव को क़ायम रखने योग्य बनावे।

गत फाल्गुन कृष्णा १४ को मेवाड़-चारण सभा की ओर से चतुर्दश सज्जनों का एक डेप्युटेशन दीवान बहादुर ठाकुर धर्मनारायणजी साहिब, सी० आई० ई० (मुसाहिब आला राज्य मेवाड़) से उदयपुर में उनके बंगले पर मिला, जिसमें कविराजा सा० शक्तिदानजी, बारहठजी सा० चालकदानजी, ठा० सा० करनीदानजी, ठा० सा० प्रतापसिंहजी, बारहठजी सा० केसरीसिंहजी, ठा० सा० चण्डीदानजी, ठा० सा० रामसिंहजी व ठा० ईश्वरदानजी आदि थे। डेप्युटेशन ने मेवाड़ के चारण-ग्रामों की सनदों की दर्याफ्त के सिलसिले में राज्य की ओर से जो जब्ती व कुर्की के हुक्म हुए हैं उनके अनौचित्य की ओर श्रीमन्मेदपाटेश्वर का ध्यान आकर्षित करने के लिये मुसाहिब आला सा० से प्रार्थना की और एक प्रार्थनापत्र भी उनके नज़र किया, जिसको उन्होंने वहीं आद्योपान्त पढ़ लिया और श्रीमन्मेदपाटेश्वर से अर्ज़ करने का आश्वासन दिया।

मुसाहिब आला साहिबने डेप्युटेशन के साथ बड़ा सम्मानपूर्ण व्यवहार कर उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा की थी।

स्व० विद्वद्वर्य ठा० सा० किशोरसिंहजी सौदा-सम्पादित 'हरिरस' (सटीक) प्रसिद्ध हो गया। डाकव्यय के ।=) के टिकट के साथ नित्यपाठ करनेकी प्रतिज्ञा लिख भेजने पर वह विना मूल्य मिल सकेगा। पता—ठा० सा० भीमसिंहजी राठौड़, मु० गारासणी, पो० आसोप (मारवाड़)

अत्यंत दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि, किशनगढ नरेश महाराजा सर यज्ञनारायणसिंहजी सा० बहादुर का सिर्फ़ ४२ वर्ष की उम्र में स्वर्गवास हो गया। श्री जगन्नियंता से प्रार्थना है कि, वह उनकी परलोकगत आत्मा को शाश्वत शांति एवं शोकग्रस्त राजपरिवार को धैर्य्य प्रदान करे।

अँगरेज़ी भाषा के विश्वविख्यात लेखक एच० जी० वेल्स अभी भारतवर्ष के परिभ्रमणार्थ आये थे, तब जोधपुर में चार दिन तक राज-मेहमान हुए थे। उनसे साहित्यिक वार्तालाप करनेका जोधपुर के ग्रेज्युएट चारणबंधुओं को सूझा था?

ચારણ પત્રને

('આભમાં ઉગેલ ચાંદલો ને જીજીબાઈને આવ્યાં બાળ' એ શિવાજીના હાલરડાનો રાગ)

ક્રોડ વરસ તું જીવજે જગમાં ને કરજે જય જયકાર;
લાડીલા પ્રાણ સમ પ્યારા,
'ચારણ' મુખપત્ર અમારા.   ટેક.

દેશ અને નિજ જ્ઞાતિ-હિતની સાફ સુણાવજે વાત;
સાચું મોટા ભૂપને કું'જે,
કોઈનું માખણ ના લેજે.

ફરજે ફાવે ત્યાં દેશ-વિદેશે દીપાવજે તારૂં નામ;
ધરોધર ભાવથી જાજે,
દેવીનાં બાળકો કાજે.

જીવતો તારો એ હોત કળાધર 'કિશોર' જો કુળવાન;
નવો તારો જન્મ સૂણીને,
ચડાવત ફૂલ વીણીને.

અગિયાર મહીના જે આજ્ઞા પાળી આગળને અવતાર;
સંભારી પૂર્વનો નાતો,
ખુશી ખૂબ દિલથી થાતો.

ખોટ પડી એની તારે અમારે, છે બાજી પ્રભુને હાથ;
સંચાલક તો પણ તારા,
પ્રેમી ને સુજ્ઞ છે સારા.

લખતા કરજે તું લેખકો ઝાઝા જ્ઞાતિ-હિતને કાજ;
ભારત માના ગુણ તું ગાજે,
જાડું મોટું ખૂબ તું થાજે.

અભેસિંહ રામભાઇ ખળેલ, કોંઢ

ચારણ જાતિ: તેની પડતીનાં કારણો અને ઉપાયો

લેખક: શ્રી નારણભાઇ મેકરંણભાઇ રોહડિયા, બી૦ એ૦, સિંધાવદર

ચારણોની દેવકોટિમાં ગણના

અત્યાર સુધીના દરેક સંમેલનમાં અનેક ભાષણો થઇ ગયાં: ઘણા લેખો લખાઇ ગયા: દરેકનો મુખ્ય ધ્વનિ એકજ હતો કે ચારણ દેવજ્ઞાતિ છે.

રામાયણ, મહાભારત અને શ્રીમદ્‌ભાગવત જેવા હિંદુ ધર્મના આધારભૂત શાસ્ત્રગ્રંથો, પુરાણો, પ્રાચીન ઇતિહાસો વગેરેમાં પણ આ વિશે પુષ્કળ ઉલ્લેખો જોવામાં આવે છે. પ્રાચીન સમયનું આપણે નિરીક્ષણ કરીશું, તો આપણને પ્રતીતિ થશે કે એ કાળમાં, કવિ અને ગાયકનું સ્થાન, એ વખતના સમાજમાં ઉચ્ચ હતું. કવિનું અને ગાયકનું જીવન આદરણીય હતું. જે કવિની કવિતા મનુષ્ય સ્વભાવને બદલી શકવા સમર્થ હોય, તે કવિતાને રચનાર અને તેને ગાનાર કોઇ અદ્‌ભુત ચારિત્ર્યબળવાળો હોવો જોઇએ, એમ કલ્પના કરી શકાય. એ વખતના કવિઓમાં અને ગાયકોમાં બ્રાહ્મણો, ચારણો, કિન્નરો અને ગંધર્વો વગેરે કોમો મુખ્ય હતી; અને તેથીજ તે કોમોને આપણા શાસ્ત્રકારોએ ગૌરવભર્યું સ્થાન આપી, તેમની દેવકોટિમાં ગણના કરી હોય, એમ લાગે છે.

પ્રાચીન કાળમાં હિમાલયમાં વસવાટ કરતી જ્ઞાતિઓએ, હિંદુ સંસ્કૃતિને પૂરેપૂરી તેમના જીવનમાં વણી લીધેલ હતી. નૈસર્ગિક જીવન: હિમાલય જેવા સૌન્દર્ય ધામમાં વસવાટ: અને તેમાંય ચારણો તો સૌન્દર્યમણિ કૈલાસ પર્વતની તળેટીમાં રહેતા એટલે ચોવીસેય કલાક કુદરત સાથે ગળાતું જીવન: તેની માનવ જીવન ઉપર અસર: આ બધાં કારણોને લીધે એ સમયના શાસ્ત્રકારોએ અને ઇતિહાસકારોએ નગાધિરાજને ખોળે ઊછરતી જ્ઞાતિઓને ગંગા જમુનાના મેદાનોમાં વસવાટ કરી રહેલ બીજી સર્વ જ્ઞાતિઓ કરતાં અગ્રસ્થાન આપ્યું.

ચારણ શબ્દની વ્યુત્પત્તિકારોએ " **चारयन्ति इति चारणा:** " એમ નિરૂક્તિ કરી છે, તેના ઉપર મનન કરતાં ઇતિહાસના અભ્યાસીને માલૂમ પડશે કે, એ નિરુક્તિ ચારણો પ્રાચીન કાળમાં કેટલું ગૌરવભર્યું સ્થાન ભોગવતા હતા, તેની સાબીતી રૂપે છે. આપણે રામાયણ, મહાભારત, ભાગવત કે બીજાં હિંદુશાસ્ત્રો વાંચતા હોઇએ, ત્યારે દરેક મહાન પ્રસંગે-પછી તે પ્રસંગ રામના જન્મનો હોય, ભીષ્મના સ્વર્ગારોહણનો હોય કે પ્રભુના અવતારોમાંથી કોઇપણ અવતારના વિશેષ કાર્યનો હોય, ત્યારે ત્યાં ચારણો-આર્યભૂમિના ગમે તે ભાગ ઉપર હાજર હોયજ. આ શું બતાવે છે? મને લાગે છે કે, ચારણો, એ વખતે આર્ય સંસ્કૃતિનો ફેલાવો કરવા માટે, એ કાળના હિંદુસ્થાનના દરેક ભૌગોલિક પ્રદેશોમાં પ્રસરીને વસવાટ કરી રહ્યા હતા. રાજદરબારમાં, કે રણભૂમિમાં, ચારણો એ કાળમાં અગત્યનું સ્થાન ધરાવતા હતા. આટલું ગૌરવભર્યું સ્થાન ધરાવતી જ્ઞાતિની શાસ્ત્રકારોએ દેવકોટિમાં ગણના કરી હોય તો તેમાં આશ્ચર્ય પામવા જેવું કે શંકા રાખવા જેવું શું છે?

રાજકારણમાં ચારણોની અગત્યતા

એ વખતના રાજકારણનો જો જરા વિચાર કરીએ, તો આપણને સમજાશે કે એ યુગ સામ્રાજ્યવાદનો હતો. દિગ્વિજયો, અને તેને અંગે થતા અશ્વમેધ, રાજસૂય જેવા યજ્ઞો તેની સાબીતી રૂપે છે.

આજનો યુગ જે અવર જવર અને સંદેશા આદિ વ્યવહારની અનેક વૈજ્ઞાનિક શોધોનો યુગ છે, કે જેમાં પૃથ્વી ઉપરના એક ભાગ ઉપરથી બીજા ભાગ ઉપર જવું, અને તેને વિશે માહિતી મેળવવી, એ ફક્ત થોડાક કલાકોનું જ કાર્ય છે, આ પ્રમાણે હોવા છતાંય દરેક દેશને—તે દેશ ભલે પ્રજાવાદી હો, સામ્રાજ્યવાદી હો, કે સરમુખત્યારોના શાસન નીચે હો, પ્રચારકોની જરૂર પડે છે. ત્યારે આપણે જે યુગની વાત કરીએ છીએ તે યુગમાં તો અવર જવરના સાધનો આજનાં જેવાં ન હતાં. અને તે સમયે આર્યભૂમિમાં ઘીચ જંગલો અને તેમાં વસવાટ કરતી જંગલી જાતિઓનો વધારો હતો, જ્યારે એક પ્રદેશમાંથી બીજા પ્રદેશમાં જવું એ દુર્ઘટ કાર્ય હતું, ત્યારે રાજાઓની, શૂરવીરોની, સંતોની, દાનવીરોની અને દેશભક્તોની કીર્તિનો કાવ્યદ્વારા પ્રચાર કરતી જ્ઞાતિનું સ્થાન રાજદરબારોમાં, આશ્રમોમાં, સમરભૂમિમાં અને પ્રજાના હૃદયમાં બહુજ ઊંચું હતું. અને તેથીજ ચારણો સમાજમાં પ્રથમ પંક્તિનું સ્થાન ભોગવી શકતા, અને દરેક વર્ગમાં પૂજ્ય તરીકે પૂજાતા.

રામાયણ યુગ, મહાભારત યુગ, અને પુરાણોના યુગ પછી જેમ જેમ ખેતીમાં સુધારા થતા ગયા, ખેડાણ જમીન વધતી ગઇ, વેપાર—વાણિજ્ય વધવા લાગ્યાં, જીવન-ધોરણ બદલાતાં ચાલ્યાં, અને અનેક નાનાં મોટાં રાજ્યો સ્થપાતાં ગયાં; તેમ તેમ યુદ્ધના પ્રકારોમાં પણ ફેરફાર થતો ગયો. પહેલાં જે યુદ્ધો ઓછાં થતાં તે, રાજાઓના સાર્વભૌમપદ મેળવવા માટેના તલસાટથી વધતાં ગયાં. એક યુગ આપણા ઇતિહાસમાં એવો આવ્યો કે, જ્યારે કાવ્યોમાં, કે લેખોમાં વીરરસને મુખ્ય સ્થાન અપાયું. વિજયાદશમીથી શરૂ થઇને વર્ષાઋતુના પ્રારંભકાળ સુધી, એક રાજાનું લશ્કર બીજા રાજવીના પ્રદેશ ઉપર કૂચ કરતુંજ રહેતું. હિંદુસ્થાનમાં આવેલાં તે વખતનાં નાનાં મોટાં રાજ્યોમાં કાયમ યુદ્ધ ચાલુ રહેતાં. રાજા માટે, જન્મભૂમિ માટે, ગાયો, સ્ત્રીઓ, અને બ્રાહ્મણો માટે મરી મટવું, એ દરેક માણસનો ધર્મ મનાતો. પરંતુ તેઓને આ પ્રમાણે પ્રેરનાર કોણ?

વેદકાળથી યુદ્ધભૂમિમાં હાજર રહેતી અને એ વખતની આર્યભૂમિની રાજદ્વારી અને સામાજિક-સ્થિતિથી પરિચિત જ્ઞાતિનાં સંતાનોએ, પૂર્વજોના વારસાને કારણે મધ્યયુગમાં પણ પોતાનું સ્થાન જાળવી રાખ્યું. નિર્માલ્ય અને બાયલાઓને પણ પોતાનાં વીરરસથી છલકાતાં કાવ્યોથી પાનો ચઢાવી રાજભકિત, દેશભકિત વગેરે શીખવ્યાં. ચારણોનું સ્થાન એ યુગમાં બહુજ ઊંચું હતું. પરંતુ એ કર્મથી મળેલા આ માનથી ચારણો કયારેય ફૂલાઈ ગયા હોય, તેવું આપણા વાંચવામાં આવતું નથી. એ જ્ઞાતિ રાજાશ્રિત બનતી જતી હોવા છતાં, કયારેય ખુશામદના નિંદ્યકાર્યમાં પ્રવર્તક બનેલ ન હતી. જરા સરખો અન્યાય દેખતાં તે પોતાનું લોહી રેડીને પણ અન્યાય મટાડવા પ્રયાસ કરતી, આવી રીતે પોતાના કાવ્યના ઓજસ્થી, અને સત્યતા, પ્રમાણિકપણું, નિમકહલાલી, ચારિત્ર્યબળ વગેરે સદ્‌ગુણોથી, ઉત્તરોત્તર ચારણજ્ઞાતિ સમાજમાં ઉચ્ચ સ્થાન મેળવતી રહી. ગરીબ અને તવંગર : સેવક અને શેઠ: પ્રજા અને રાજા: નીચ અને ઊંચ: એમ બધાય વર્ગોમાં તે પૂજાવા લાગી. ચારણજ્ઞાતિએ લોક વર્ગમાં એવું સ્થાન મેળવી લીધું, અને એવી વિશ્વાસ પાત્રતા જમાવી કે બે માણસો, રાજાઓ કે દેશો વચ્ચેના ઝગડાઓમાં ચારણોને સુલેહ કરાવનાર પંચ તરીકે બોલાવવામાં આવતા. દરેક પોતાને થનાર

લાભ-હાનિનો વિચાર કર્યા શિવાય, પોતાનો ફેંસલો કરવાનું ચારણો ઉપર નિઃશંક મને છોડી દેતા; અને ચારણો પણ, કોઇપણ જાતના પ્રલોભનોથી અંજાયા વિના, કોઇની પણ શેહમાં દબાયા સિવાય, યોગ્ય ન્યાય આપતા; અને પોતાની સત્યતા અને ન્યાયપ્રિયતા દર્શાવતા. વિશ્વાસપાત્ર જ્ઞાતિ તરીકે, ચારણોએ એક વખત એવું સ્થાન મેળવેલ કે દરેક અગત્યના કિલ્લાઓના રક્ષક તરીકે ચારણોને નીમવામાં આવતા. અને તેમને 'ગઢવીરો'ના ખિતાબ નિવાજવામાં આવતા. જીવનને ભોગે પણ ચારણો પોતાની તે ફરજ વફાદારીથી અદા કરતા.

સત્યવકતા, નિમકહલાલ, વિશ્વાસપાત્ર, અડગ-નિશ્ચયી, શરણાગતનું રક્ષણ કરનાર ચારણ જ્ઞાતિના આ સદ્‌ગુણો દર્શાવતા દાખલાઓથી ઇતિહાસો ભર્યા પડેલ છે. આ નાના લેખમાં વધુ જગ્યા રોકવાની દેહશતે, તેના વિશે ફકત નિર્દેશ જ કરવામાં આવેલ છે.

પરંતુ "કહાં લગ કહેં પુરાની બાતેં !" આ બધું ભકતકવિ દૂલાભાઇએ કહ્યું છે, તેમ "અણમોલ હા હા અમતણા એ દિવસ કયાં જાતા રહ્યા ?" એટલે જૂનાં સ્મશાન જગાવવા જેવું છે! હવે આપણે અત્યારની આપણી સ્થિતિનો વિચાર કરવાનો રહ્યો:

કાળના વહન સાથે, આ મહાન જ્ઞાતિની મહાનતા પણ ઘસાતી ચાલી. ઇતિહાસનું એક સનાતન સત્ય છે, કે દરેક સમાજ, જ્ઞાતિ, દેશ, રાષ્ટ્ર કે શહેનશાહત, એક વખત ગમે તેટલું ઉન્નત સ્થાન ધરાવતી હોય, તો પણ છેવટે નામશેષ થઇ જાય છે. ઇતિહાસના આચાર્યો—ચારણોને પણ આ સત્ય લાગુ પડયું હોય તેમ લાગે છે.

સમયના વહન સાથે, રાજવીઓ એશ-આરામી, ભોગવિલાસી અને વ્યસની બનતા ચાલ્યા. સાચું ક્ષાત્રત્ત્વ ઓસરતું ચાલ્યું; અને દેશમાં અંધાધુંધીનો પણ એક સમય આવી ગયો. રાજદરબારોમાં વસતા ચારણો, પોતાનું સ્વત્ત્વ ભૂલવા લાગ્યા. ક્ષત્રિય જ્ઞાતિ સાથે પોતાનો ગુરૂપણાનો, અને ઉપદેશકનો ઉચ્ચ સંબંધ હતો; તે વીસરી તેઓ ખુશામદખોર બનતા ગયા. ગામગરાસ માટે, ધન અને વસ્ત્રો માટે, ચારણો પોતાની સરસ્વતીની પ્રસાદીને વેચવાનો ધંધો કરવા લાગ્યા. પાત્રાપાત્રતાનું ભાન ભૂલી ગયા. અને આનું પરિણામ થોડીજ પેઢીઓ પછી દેખાવા લાગ્યું કે, ખુશામદથી મેળવેલ રાજ્યધને ચારણોનું સ્વત્ત્વ હણી નાખ્યું. સ્વત્ત્વ, તેજ અને ઓજસ્ જતાં ચારણોમાં બીજા દુર્ગુણો પણ પેસવા લાગ્યા. આમ આપણે આપણી આજની સ્થિતિના પ્રારંભકાળ સુધી આવી પહોંચ્યા.

ચારણોની આધુનિક સ્થિતિ

સંમેલનો અને બીજા પ્રસંગોએ, અનેક જ્ઞાતિપ્રેમી ચારણ બંધુઓએ આપણી હાલની સ્થિતિનું વર્ણન કરેલ છે. દરેક ભાષણકાર કે લેખક, પોતાના પૂર્વજોની ગૌરવતાનું વર્ણન કરી, આજની આપણી હૃદય ચીરતી સ્થિતિનું આપણને ભાન કરાવે છે. આપણે સર્વ ભાષણોને એકી સાથે સમજી તેનો વિચાર કરીએ, તો તેનો એક જ સાર આપણને લાગશે કે પ્રાચીન ઋષિ, સિદ્ધ અને મહાત્મા ચારણોના વંશજ આજના ચારણો, એટલે વ્યસની, પ્રમાદી, આળસુ, ખુશામદખોર, આચાર-વિચારમાં શિથિલ, ઇર્ષ્યાખોર, શેખીખોર, વહેમી, અજ્ઞાની વગેરે. શું સાચોસાચ આપણી સ્થિતિ આવી થઇ ગયેલ છે? અને જો આવી સ્થિતિ આપણી હોય; તો તેમ થવાનું કારણ શું? તે સ્થિતિ સુધારવા માટે—આપણા પૂર્વજોનાં સાચાં સંતાનો થવા માટે, આપણે દરેકે

શું કરવું જોઇએ, તે પ્રશ્ન દરેક જ્ઞાતિપ્રેમી ચારણ સ્ત્રી-પુરૂષે વિચારવો જોઇએ.

હિંદુઓના આદ્ય સ્મૃતિકાર ભગવાન્ સ્વયંભૂ મનુએ કહેલ છે :

"રમે છે દેવ દેવી ત્યાં,
પામે સન્માન નારી જ્યાં."

આપણે આ ઉપર વિચાર કરીશું તો આપણને એ સત્ય બરાબર સમજાશે. જ્યાં દેવદેવીઓનો વાસ હોય, ત્યાં ધર્મ હોય. અને ગીતામાં જેમ ભગવાન શ્રીકૃષ્ણે કહ્યું છે તેમ જ્યાં ધર્મ ત્યાંજ જય, ત્યાંજ લક્ષ્મી, અને ત્યાંજ સર્વ સદ્દગુણો અને અનેક પ્રકારનાં ઐશ્વર્યો રહે છે. જ્યાં જ્યાં અને જે જે દેશ કે સમાજમાં સ્ત્રીજાતિ સન્માનભર્યું સ્થાન ભોગવે છે તે દેશનો અને સમાજનો ભૂતકાળમાં ઉદય થયો છે, અને અત્યારે પણ થઇ રહ્યો જોવામાં આવે છે. આધુનિક યુરોપ પોતાનું ઉન્નત સ્થાન પોતાની નારી સન્માનની ભાવનાથીજ ટકાવી રહેલ છે. પ્રાચીન આર્યભૂમિમાં સ્ત્રીનું સ્થાન સમાજમાં ઊંચું હતું; અને આપણે ઇતિહાસમાં વાંચીએ છીએ કે તેને પરિણામે આર્યપ્રજા ઉન્નતિ અને આદર્શના શિખરે પહોંચી હતી.

સામ્રાજ્યના ઉદય અસ્તનો, સમાજોમાં થતા પરિવર્તનોનો, રાજ્ય-પલટાની વાતોનો કે જ્ઞાતિઓના અભ્યુદય અને અવનતિનો ઇતિહાસ વાંચતાં આ અસ્તની પાછળ કામ કરી રહેલ અનેક વસ્તુઓમાં એક સર્વ સામાન્ય વસ્તુ આપણી નજરે જરૂર ચડશે. રોમન, ગ્રીક કે બીજા સામ્રાજ્યોની પડતીનાં કારણો શોધો: યાદવ-કૌરવના વિનાશનાં મૂળ તપાસો કે અમુક સમાજ અથવા જ્ઞાતિની અવનતિનો વિચાર કરો, તો આ બધાંની પછવાડે સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યે બતાવેલી તુચ્છ અને અપમાનભરી વર્તણુંકજ આપણી નજરે ચડશે.

દરેક ધર્મના ધર્માચાર્યો અને શાસ્ત્રકારોએ-દરેક દેશના સુધારકોએ, એક વાત ફરી ફરીને કહેલ છે કે, દુનિયાનું, દેશનું, સમાજનું, જ્ઞાતિનું કે કુટુંબનું ભલું ઇચ્છવું હોય, તેનો ઉત્કર્ષ કરવો હોય, તો હમેશાં જગતની સમસ્ત સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યે પછી તે સ્ત્રી ચાહે માતા હોય, બ્હેન હોય, પત્ની હોય અથવા તો ગમે તે સંબંધમાં હોય, કે કોઇ પણ જાતના સંબંધમાં ન હોય, તો પણ માનની-પૂજ્યભાવની દષ્ટિ કેળવો. હિંદુઓના સ્વયંભૂ મનુ, પારાશર, નારદ જેવા સ્મૃતિકારો: ઇસ્લામ ધર્મના પ્રવર્તક મુહમ્મદ પયગંબર સાહેબ: યુરોપ આખાને ધ્રૂજાવનાર નેપોલિયન: હાલના નાસ્તિકવાદના યુગમાં યુરોપ-અમેરિકા જેવા સુધરેલા દેશોમાં હિંદુ ધર્મનો ઝંડો ફરકાવનાર સ્વામી વિવેકાનંદ અને સ્વામી રામતીર્થ: જગત આખાને પોતાના સત્ય અને અહિંસાના સિદ્ધાંતોથી આકર્ષતા અને ભારતના આબાલ વૃદ્ધ નરનારીઓનાં હૃદય ઉપર અધિકાર ભોગવતા મહાત્મા ગાંધીજી : આ દરેક મહાપુરૂષ એકજ વાત કહે છે કે જો તમારો ઉદ્ધાર અને અભ્યુદય ચાહતા હો તો સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યે સન્માન વૃત્તિ કેળવો.

હિંદુ શાસ્ત્રની અર્ધનારીશ્વરની ભાવના : નવરાત્રિ જેવા ઉત્સવોની ઊજવણી : શાસ્ત્રોમાં દેવીઓનું સ્થાન : વગેરે હિંદુઓની સ્ત્રી સન્માનની ભાવનાનાં દષ્ટાંત રૂપ છે. ચારણો ઘણા જૂના સમયથી દેવી-બાળક તરીકે ઓળખાય છે. ચારણ જ્ઞાતિમાં આવડ, ખોડિયાર, કરણીજી, બહુચરાજી, બૂટ આદિ સર્વ જ્ઞાતિમાં પૂજાતી અનેક દેવીઓ, અનેક સતીઓ અને

સન્નારીઓ ઉત્પન્ન થયેલ છે કે જેના પ્રભાવે હજુ પણ ચારણો સમાજમાં દેવી-બાળક તરીકે પોતાનું સ્થાન જાળવી રહ્યા છે. પ્રાચીન કાળમાં આપણી જ્ઞાતિમાં સ્ત્રીઓનું સ્થાન બહુજ ઊંચું હતું. દરેક પુરૂષ સંબંધી-પિતા, ભાઇ, સસરો, જેઠ, પતિ, દિયેર વગેરે-પોતાના આશ્રયે રહેતી સ્ત્રીનું સન્માન જાળવતા; અને તેના પ્રત્યે એક જાતનો પૂજ્યભાવ રાખતા. એટલુંજ નહિ પણ ચારણ પુત્રવધુને સાસરામાં યે કોઇ 'વહુ' કહીને સંબોધતું નહિ, પરંતુ સંબંધ પરત્વે 'બહેન', 'દીકરી' કહીને બોલાવતાં. દરેક ચારણ સ્ત્રી સ્વમાનશીલ હતી. સ્વમાનને ભોગે મૃત્યુને ભેટવા તે તૈયાર થતી. અને તેથી એ જગદંબાનાં બાળકો પણ સ્વમાનપ્રિય, અને અદ્ભુત ચારિત્ર્યબળવાળાં થતાં. પરંતુ જેમ જેમ આપણામાંથી સ્ત્રી સન્માનની ભાવના ઓસરતી ચાલી, જેમ જેમ સ્ત્રીઓ પ્રત્યે સામાજિક અત્યાચારો વધતા ચાલ્યા, તેમ તેમ આપણે આપણા ઉન્નત સ્થાનેથી અવનતિની ઊંડી ખાઇ તરફ ગબડતા ગયા. એટલે કે, જ્યાં સુધી આપણે સ્ત્રી જાતિ પ્રત્યેની આપણી વર્તણુંક અને વર્તાવમાં ફેરફાર કરીશું નહિ-સ્ત્રીઓને સમાજના અગત્યના અંગ તરીકે સ્વમાનભર્યું જીવન જીવતી બનાવીશું નહિ, ત્યાં સુધી આપણા ઉદ્ધારની બધી વાતો આકાશ કુસુમવત્ છે.

—(ક્રમશઃ)



હિંદના લેખકો-વિદ્વાનોને

" આજના દુઃખ સળગતા ભારતમાં જન્મ પામી, યુવાન બની, આપ વૈભવો અને વૈભવજનિત સુખોનાં ગાણાં નહિ ગાઇ શકો. જિંદગીની બધી તીખાશ ને કડવાશઃ જિંદગીની બધી યાતનાઓ અને વાંછનાઓઃ જે આપ અને આપની પેઢીઓ સેંકડો વર્ષોથી સહ્યા કરો છો, તેનું પ્રતિબિંબ આપનાં તમામ કાર્યોમાં અને આપની તમામ રચનાઓમાં ઊઠવુંજ જોઇએ. "

—મુલ્કરાજ આનંદ

(આંતર રાષ્ટ્રીય નામના મેળવનાર પ્રગતિશીલ ભારતીય સાહિત્યકાર: તેમણે અંગ્રેજીમાં 'કુલી', 'અછૂત' વગેરે કૃતિઓ રચી ઇંગ્લાંડને તાજ્જુબ કર્યું: પંજાબી છેઃ યુવાન છેઃ આપણા શ્રી દૂલા ભગતની જેમ તારા-ચંદ્રની જ સ્તુતિ કરનાર સાહિત્યના ઉગ્ર વિરોધી છે.)



ચારણ દેવો આવો !

લેખક : ભક્તકવિ શ્રી દૂલાભાઇ ભાયાભાઇ કાગ; મજાદર

સંવત ૧૯૯૪ ના વૈશાખ વદી ૬-૭-૮ એ ત્રણ દિવસ અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનનું પાંચમું અધિવેશન રાજકોટમાં મળ્યું હતું. તે પ્રસંગે ચારણ બંધુઓને આવકાર આપતું અને ઠપકો દેતું આ ભાવવાહી કાવ્ય રચીને ભગતજીએ સંભળાવ્યું હતું.

ચર્ચરી છંદ

આવો ચારણ સુજાન ધારણ દેવોનાં માન,
આવો સત્યવાન હે સ્વમાનના પૂજારી—ટેક૦

આવો મંગળ ગવાય જમણે લાડુ જમાય,
છેવટનું એઠ જૂઠ ખાઈ પેટ ભરશું;
મળશું સૌ સગાં સાંઇ લેશું પૈસો કે પાઈ,
બીજે ક્યાં લગ્ન થાય વાત નકી કરશું;
દુનિયા મર કહે ભીખ આપણ સૌ કહો શીખ,
શૂદ્રની ગ્રહાય શીખ શાસ્ત્ર કે' પુકારી—આવો૦ ૧

આવો કવિતાના બાપ ધોવા અહીં પરમ પાપ,
સઘળા હરતલ સંતાપ દુનિયાના ડાહ્યા;
વાણી સુકુમાર યાર ઘર ઘર પરણાવનાર,
વિક્રય કરનાર ખોડિયારના હે જાયા;
મન નહિ અપમાન માન ચોરાના મીજમાન,
વૃત્તિ સંતો સમાન આજ અમારી—આવો૦ ૨

આવો દેવીના બાળ કીર્તિ કરવા ભૂપાળ,
આપણ વિણ વિશ્વના સાહિત્યનું શું થાશે;

જાગ્યો વિકરાળ કાળ માનવમતનો વિશાળ,
　　આપણ વિણ તેહનાં સુગીત કોણ ગાશે;
લંપટને ભીષ્મ કોણ કંજૂસને કરણ દ્રોણ,
　　કહેશે કહો કોણ હાથ ડાયરે પસારી—આવો૦ ૩

શૂર સૌ કરતા શિકાર, કરતા મદ્યમાંસ આ'ર,
　　અંદર તકરાર ધાર ખાર ખપ કરતા;
અંગે આળસ અપાર નહોતો પુરુષાર્થ પ્યાર,
　　ભીખ બાજ લાજ વિણ ઘર ઘર ફરતા;
કુળના ચીલા ચૂકાય તો તે વડવા દુઃખાય,
　　રહિયા તે કાજ હાય ! દેવ ભિખારી—આવો૦ ૪

જગનું નાટક વિરાટ, (એમાં) ચારણનો કયો પાઠ,
　　એનો કરજો ઉચાટ દેવવંશ રાગી;
જાગ્યો એક નર અઘાટ વસમી દેશે થપાટ,
　　રહેશો નહિ વાટ ઘાટ ચેતજો સુવાગી;
અંદર ભેદોની ભીંત તોડો થઈને અભીત,
　　માનજો ખચીત એક ઊગરવાની બારી—આવો૦ ૫

સત નહિ કળજુગમાંહી, કે'તી ગઈ નાગબાઇ,
　　કરતી ગઈ આઈ ઉપદેશ એ ભવાની;
એનાં કેટલાં અભાગ તાગે નવ મળે તાગ;
　　'કાગ'ને જરાવે આગ બાળ વિધવાની;
એનાં આંસુની ધાર પ્રલયકાળના અંગાર,
　　સૂણજો દેવી—કુમાર ! અર્જ અમારી—આવો૦ ૬

—કાગવાણી ભાગ ૨ જામાંથી



કુદાનમાં ઘોર અપમાન

લેખક: શ્રી ભગવતીદાન મનુભાઇ રોહડિયા, શેરડી (કચ્છ)

સભ્ય સમાજની વિચારશીલ વ્યક્તિઓ સશંક બની પ્રશ્ન કરે છે કે, ચારણો રાજા રજવાડાઓમાં ઊજવાતા દશેરા, લગ્નાદિ માંગલિક પ્રસંગોમાં હાથ પસારતા ટોળાબંધ હાજર થઇ માગણ વર્ગની હરોળમાં ઊભા રહી 'પરવા' કે 'ત્યાગ'ના નામથી ઓળખાતું હલકી કોટિનું ક્ષુદ્ર દાન લેવા કાં તત્પર થાય છે? ચાણાક્ય ગણાતા ચારણો હાથે કરીને આવી ક્રૂર મશ્કરી કાં કરાવે છે? આવું ઘોર અપમાનથી ભરેલું માનવતાશૂન્ય દાન કાં સ્વીકારે છે? તેમના આવા વેધક પ્રશ્નો સાંભળી સજાતીય સુજ્ઞ વ્યક્તિને અત્યંત લજ્જિત બનવું પડે છે!

જેની હરોળમાં ઊભતાં આપણા ગૌરવને ઝાંખપ લાગે, જેના હાથથી દેવાતી એ દાનની રકમ લેતાં આપણને ધિક્કાર ઉત્પન્ન થાય, જે દૃશ્યથી આપણી દેવ-સંસ્કૃતિને કલંક લાગે તેવા સ્થાનમાં આપણે મલકાતા મુખે જઇએ એ તો આપણે સાચા પદભ્રષ્ટ થયા છીએ, એમ જ સૌને લાગે. અને એ ભ્રષ્ટતામાં વધારો કરનાર બાબત તો એ છે કે, આપણે જન-સમાજ પાસે "એ દાનના અમે હક્કદાર છીએ," એમ સગર્વ જાહેર કરીએ છીએ! ખરેખર, એ સાંભળી મનુષ્ય-લોકના પવિત્ર ચારણ પુરુષોમાં જ નહિ, પણ દેવલોકના દેવ ચારણોમાં યે શોકની અવધિ જેવો આઘાત થતો હશે!! તેઓ વિચારતા હશે કે, આ અમારા વંશજો!!!

આપણી દેવ-જ્ઞાતિનો પુરાણ-પ્રસિદ્ધ દાવો છે કે, ક્ષત્રિય-સમાજના અમે અગ્રગણ્ય તારણહાર છીએ-ભારતમાં ક્ષત્રિય-સમાજનું ક્ષાત્રત્વ સજીવન રહ્યું છે, તે અમારા પૂજ્ય દેવત્વને આભારી છે. એટલે કે, જો એ આભૂષણો અને આત્મ-પ્રશસ્તિઓ: જે કહો તે, સાચાં હોય તો રાજ-રજવાડાઓમાં માંગલિક પ્રસંગે વગર નોતર્યે હજારોની સંખ્યામાં એકત્ર થઇ તે પ્રસંગે મહેમાન તરીકે ત્યાં આવેલ અનેક રાજા-મહારાજાઓની હાજરીમાં માગણ તરીકે દાન માટે દોડાદોડી કરી એ આભૂષણો અને એ આત્મ-પ્રશસ્તિઓનું આપણે છડેચોક નીલામ કરાવતા હોઇએ એવું સૌને લાગે છે. ભિખારી, રાજાનો પૂજનીય બન્યો હોય, એવું કદી સાંભળ્યું છે? આપણા પરમ જ્યોતિર્ધર સ્વ૦ ઠાકુર કિશોરસિંહજી સોદા 'પાગલ' કવિએ આપણી એ મિથ્યા બડાઇનો જે માર્મિક જવાબ આપ્યો છે, તે ઘણા યે જાતિ બંધુઓના લક્ષ્યમાં હશે:

"गुरु-दक्षिणा जो चाहुजों के[1]
ब्याह में तुमको मिले।
वह पीठ पर तुम वह रहे[2]
पर त्याग हित नित चित डुले!
क्या भिक्षुकों सँग पार्थिवों का[3]
शिष्य-भाव सुना कहीं?
ऐ चारणो! गुरुभाव रखते
डूब क्यों मरते नहीं!!
आचार्य भिक्षा-वृति के बनि
मान नृपतिन सन[4] चहो!

૧. ક્ષત્રિયોના. ૨. હાથ ઓડે જે કાંઇ પાણ પાવલું આપવાનું નક્કી કરી એકત્ર થયેલા ચારણોને જબરદસ્તીથી વાડામાં પૂરે છે, તે વખતે એ મોંઘા મહેમાનોના બરડા સિપાઇઓના ધક્કા અને ક્વચિત્ સોટીઓથી ભારે બને છે, તે ભાવ અહીં છે. ૩. રાજાઓનો. ૪. (રાજાઓ) પાસેથી.

क्या भिक्षुकों को मान मिल सकता कहीं ? सच तो कहो ? "

વાસ્તવિક રીતે આંખ ઊઘાડીને જોઇએ તો ક્ષત્રિય રાજા મહારાજાઓને તેમના સ્વધર્મ-પરિપાલનાર્થે ઉપદેશ દેવાની આપણે બિલકુલ યોગ્યતા ગુમાવી બેઠા છીએ અથવા બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો દેશી રાજાઓના હાથમાં અત્યારે પરરાષ્ટ્રનીતિ (Foreign Politics) નક્કી કરવાનો જરા પણ અધિકાર ન હોવાથી આપણા એ ઉપદેશની તેમને મુદ્દલ જરૂર નથી. પરંતુ આપણે એ જરી પુરાણા હક્કને આગળ ધરી-તેનો ઢોલ પીટી આત્મચારિત્ર્યદ્વારા આપણા સ્વધર્મનો વિક્રય કરીએ છીએ. અને તે દ્વારા અન્ય સમજદાર વર્ગમાં આપણી અવગણના થાય, એ સ્વાભાવિક છે.

આપણે ઊંડું નિહાળીએ તો દીવા જેવું સ્પષ્ટ દેખાય છે કે, આપણને અપાતા એ દાનમાં આપણી સંસ્કૃતિનું ખૂન થાય છે: માનવતાનો ધ્વંસ થાય છે: દેવપુત્ર અને દેવી પુત્રનાં સંબોધનોમાં હાસ્યજનક કલંક તરી આવે છે. આવી આત્મઘાતક સ્થિતિમાં કેટલાક તેજોદ્વેષી ચારણેતર સાક્ષરો આપણને ભિક્ષુક, ખુશામતખોર, નિંદક આદિ કલંક લગાવવાની તક મેળવતા ગયા. અને તે કલંક જ્યારે આપણે શૂદ્રદાન લેવા તત્પર બનીએ છીએ ત્યારે ક્ષત્રિયોને પણ સાચાં ભાસવા લાગ્યાં. એટલે કે, એવી માન્યતાઓના થર જેમ જેમ તેમના હૃદયપટ પર ચડતા ગયા, તેમ તેમ તેમના માનસમાં આપણી પુરાણી પૂજનીયતા નામમાત્ર અને તે પણ ઊડી જવા સમાન દેખાવા લાગી છે.

આવા તુચ્છ દાનની અધિકારી કોઇ જાતિ હોય તો તે પ્રાચીન વર્ણાશ્રમના બંધારણે ફક્ત શૂદ્ર જાતિ છે. એટલે, કે શૂદ્ર જાતિને ખપતું એ દાન લેવા જ્યારે આપણી જાતિ હકકદાર બને, ત્યારે તો આપણું દેવત્વ શૂદ્રત્વમાં પરિણમ્યું છે, એમ ન્યાયપુરઃસર આપણે કબૂલવું પડે છે.

આપણા કેટલાક માનનીય સર્વોચ્ચ હક્ક-લાગ તો હજી સુધી ક્ષત્રિય-સમાજ પર ચાલ્યા આવે છે. અને તે આપવા માટે તેઓ તેમના ક્ષત્રિયત્વ રહેતા સુધી બંધાયેલા છે. છતાં તે ચારણ અને ક્ષત્રિયઃ બન્ને સમાજને શોભાસ્પદ હક્કો કોઇ કોઇ સ્થાને તો સદંતર ભૂંસાઇ ગયા છે અથવા નામશેષ રહ્યા છે. તેનો સઘળો પ્રતાપ પણ આપણી આ શૂદ્ર-સ્વરૂપિણી-દાન-ગ્રહણ-બુદ્ધિનો હોય તેમ લાગે છે.

આપણા આ શૂદ્ર-ધર્મથી રાજા-મહારાજાઓ આપણા ભવ્ય ભૂતકાળના પારસ્પરિક-સંબંધને ભૂલી આપણા આવા પ્રકારના અન્ય હક્ક-અધિકારની ફરિયાદો સાંભળતા નથી. તેઓ એ ફરિયાદોના ફેંસલા તેમના અધિકારીઓ પાસે કરાવે છે. અને એ અધિકારીઓ આપણું પતન કરવા માટે પ્રયત્નશીલ હોય છે-લાગ શોધતા હોય છે. એટલે આપણા સંબંધમાં મનફાવતો અપમાનજનક ફેંસલો કરવામાં તેઓ સંકોચાતા નથી. પરિણામે એ કુદાનના મહાપાપથી આપણે આપણા પરમ પવિત્ર પૂર્વજોનો વારસો ગુમાવી રહ્યા છીએ.

કોણ જાણે કયા સમયના અમંગળ ચોઘડિયે આપણને આવું નિંદિત દાન લેવાની કુબુદ્ધિ સૂઝી કે જેના કલુષિત અંશ અત્યારે પણ આપણી બુદ્ધિમાં સ્થાન લઇ રહ્યા છે ! જે દેવ-જ્ઞાતિના પૂર્વજોએ પાર્થિવ પ્રલોભનોથી

ન લોભાતાં પોતાના પવિત્ર ઋષિ-જીવન દ્વારા વિશ્વ-પટપર પોતાની સુકીર્તિ ફેલાવી. તે જ્ઞાતિના હાલના આપણે વંશજો આવી એક નાચીઝ રકમ લેવામાં એ પૂર્વજોએ સંચિત કરેલી કીર્તિ-મત્તાને ગુમાવી રહ્યા છીએ. અને તે છતાં યે તેનો પશ્ચાતાપ નહિ, એ શું ઓછો દુ:ખનો વિષય છે !

ધિક્કાર હજો આપણી કુમતિને ! લ્યાનત હો આપણી એ ક્ષુદ્ર કામનાને ! ! શાપ હોજો એ દાનની કુપ્રથાના હિમાયતીઓને ! ! ! એવા અડગ-એક નાદથી આપણે સૌ આપણા પ્રગતિ માર્ગમાં વેરાયેલા એ કુદાનના મલિન રજકણો ઝાડી-ઝાપટીને સાફ કરીશું, તો જ જગતને એમાં આપણી સાચી ઉન્નતિનાં દર્શન થશે.



શૂરવીરોને પણ પ્રેરણા દેતી ચારણ કોમની જ્વલંત ગાથા

પ્રજા-દમનના પ્રપંચો રચી રહેલા દરબારો આજે રસહીન બન્યા છે

[સુપ્રસિદ્ધ અંગ્રેજી માસિક ' મોડર્ન રિવ્યુ ' ના ડીસેમ્બર સને ૧૯૩૮ ના અંકમાં શ્રીયુત દેવેંદ્ર સત્યાર્થીએ 'the Charans of Rajputana' નામક મનનીય લેખ લખ્યો છે. તે ઉપરથી ગુજરાતી ભાષાના અજોડ રાષ્ટ્રીય દૈનિક 'જન્મભૂમિ'ના તા૦ ૧૮-૧૨-૩૮ ના અંકમાં ઉપરોક્ત શીર્ષકથી " પોતાના પ્રેરક વાણી-પ્રવાહથી શ્રોતાજનોને મુગ્ધ કરતી ચારણ કોમની આ જ્વલંત ગાથા છે. જમીન પર સામસામાં હાથોહાથ ખેલાતાં યુદ્ધોનો જમાનો ગયો, અને શૂરવીરોને પાનો ચડાવનાર ચારણોની મહત્તા ઓછી થઇ. તેમના દુહાઓની હવે જરૂર રહી નહિ. આજે તો મશીનગનોનો તડતડાટ, ટેંકના કર્કશ અવાજ, બોમ્બગોળાના કર્ણ-ભેદી અવાજો અને યુદ્ધ-વિમાનોનો ભય-સૂચક ઘેરો નાદ, લડવૈયાઓને પાનો ચડાવી રહ્યા છે. રણભૂમિ પર દુહા લલકારતો ચારણ આજે કાળના પડો નીચે દટાયો છે. ભૂતકાળમાં ચારણો રાજદરબારમાં આદરમાન પામતા હતા. ચારણોનાં પ્રેરક ગીતોથી રાજદરબારો ગૂંજતા હતા. રાજાઓ તો આજે પણ છે. પરંતુ પ્રજા દમનના પ્રપંચો રચતા રાજદરબારોમાં આજે ચારણનું સ્થાન નથી. એ ઉજ્વળ કોમ હવે તો કદાચ પોતાની કાવ્ય-શક્તિ વીસરી જવા લાગી હશે. " એવી પરિચયાત્મક નોંધ તથા કિંચિત્ ફેરફાર સાથે આ

લેખ પ્રસિદ્ધ થયેલો. મૂળ અંગ્રેજી લેખ તથા તેના ભાવાનુસારી આ ગુજરાતી લેખથી અજ્ઞાત સજાતીય પાઠકોના હિતાર્થે તેને અક્ષરશઃ અત્રે ઊતારીએ છીએ.

—તંત્રી: ગુજરાતી વિભાગ]

"ચારણ ચોથો વેદ, વણ પઢિયો વાતું કરે." રાજસ્થાનમાં રહેતી ચારણ કોમ વિષેનું એ વાકય અક્ષરશઃ સાચું છે. વાર્તા કહેવાની અદ્‌ભુત-કળા એ કોમે હાથ કરી છે, તેવી કળા બીજી કોઇ કોમે હજુ સુધી પ્રાપ્ત કરી નથી. મધરાતના પહોર જામતા હોય અને ચાંદનીમાં દૂધથી ધોવાયેલાં લાગતા ચોગાનમાં બેસીને કોઇ ધસમસતા પૂર જેવો ચારણનો વાણી-પ્રવાહ શ્રોતાઓને મંત્રમુગ્ધ કરે છે. એ વાર્તા-કળામાં માનવીને પ્રેરણા આપવાની, નિર્માલ્યમાં બળ રેડવાની શક્તિ રહેલી છે. માથા વિનાનાં ધડ ઊભાં થઇ જાય એવી કથાઓ તે કહી શકે છે.

જ્વલંત કાવ્ય-શક્તિ

તે સાથેજ ચારણોની કાવ્ય-શક્તિ પણ એટલીજ જ્વલંત હોય છે. સામાન્ય રીતે તેઓ શીઘ્રકવિઓજ હોય છે. તેમણે રચેલા છંદો અને સ્તોત્રોમાં અકલ્પનીય ગતિ અને પ્રાણ રહેલાં હોય છે. માનવીનાં રૂંવેરૂંવાં તેના શ્રવણથી ઊભાં થઇ શકે છે.

મુખ્યત્વે આ ચારણકોમ રાજાશ્રયેજ જીવી છે, ને આજ સુધી રાજાઓ અને રાજકુળોનાં પ્રશંસા ગીતોજ તેણે ગાયાં છે. કોઇ રાજાથી નારાજ થતાં રાજાઓને કડવાં વેણ પણ એ કોમે કહેલાં છે. કેટલીક વખત અનેક આકરા દોહાઓથી રાજાઓને કર્ત્તવ્યભાન પણ તેણે કરાવ્યું છે.

એવી એ ચારણ કોમની આજે તો અવનતિ થઇ. રાજાશ્રય પર જ જીવનારા એ વર્ગને આજે રાજ દરબારોમાં પહેલાંના જેટલું માન મળતું નથી, ને પ્રજાના વર્ગ સાથે તેઓ ભળી શકતા નથી. એ કોમનો ઇતિહાસ જાણવા જેવો છે.

ચારણ કોમના ઉદ્‌ભવનો પ્રશ્ન ઇતિહાસનો સહેલો પ્રશ્ન નથી. પરંતુ જણાય છે કે, દશમી સદીમાં તેઓ ઉત્તર હિંદુસ્તાનમાં છૂટા છવાયા રહેતા હતા, ને કનોજની આસપાસ તેમની મોટી જાગીરો હતી.

સિંધમાં શું બન્યું

એ અરસામાં સિંધમાં એક બનાવ બન્યો.* સિંધમાં હમીર સૂમરાનું તે વખતે શાસન હતું. તેની નજર મમ્મટ (મામડ) નામના એક ચારણની ઉમ્બટ (આવડ) દેવી નામની પુત્રી પર પડી. આ બનાવે ચારણ કોમમાં ખળભળાટ મચાવ્યો ને તેઓનો પ્રવાહ સિંધ તરફ વહેવા લાગ્યો. ઉમ્બટ દેવી માતા હિંગળાજનો અવતાર હતી, એમ એ કોમે જાહેર કર્યું છે. ચારણોની મુખ્ય દેવી હિંગળાજ ગણાય છે. મમ્મટને કેદ કરવામાં આવ્યો પણ ઉમ્બટદેવી ને તેની છ બહેનો નાસી છૂટી. તેમાં સૌથી નાની ભાવનગર પાસે ગઇ. તેનું નામ ખોડિયાર હતું. ને આજે પણ ખોડિયારનું સ્થાનક ભાવનગરથી ચૌદ માઇલ દૂર આવેલું છે. બીજી બહેનો રાજપૂતાનામાં ગઇ.

આ પછી બધા ચારણો કચ્છ, કાઠિયાવાડ અને રાજપૂતાનામાં વહેંચાઇ ગયા. અને તેઓ જ્યાં જ્યાં વસવા લાગ્યા, ત્યાં ત્યાંના સંજોગો પ્રમાણે તેમની રીતભાત, જીવનધોરણ અને રિવાજોમાં ભેદ પડતો ગયો છે. કચ્છ, રાજપૂતાના તથા સોરઠમાં વસતા ચારણોની જુદી જુદી કોમો ગણાય છે.

* દશમી સદીની આસપાસ નહિ, પરંતુ આઠમી સદીમાં આ બનાવ બન્યો હતો.

—તંત્રી: ગુજરાતી વિભાગ.

તીર્થક્ષેત્ર

પરંતુ ચારણોનું તીર્થક્ષેત્ર તો રાજપૂતાના રહ્યું. દૂર દૂરના ચારણો પણ ઉબ્બટ દેવીના સ્થાનકે આવવા માંડયા. તેઓને રાજપૂતાના પર ખૂબ પ્રેમ હતો. કારણ કે શૌર્ય ને પ્રેમની ગાથાઓ ત્યાંથીજ સાંપડતી હતી.

આ પછી ચૌદમી સદીનો લોહિયાળ–સંગ્રામોનો કાળ આવ્યો. રણથંભોરનો કિલ્લો અલાઉદ્દીનના હાથમાં ગયો: ચિત્તોડ પણ પડયું: પદ્મિનીએ જૌહર કર્યું: રાજપૂતોએ કેસરિયાં કર્યાં: આ બધું નીરખ્યું: ચારણોને માતા હિંગળાજે પ્રેરણા આપી કે, આવાં અદ્‌ભુત ગીતોનાં વીરગીતો રચો. અને તેમણે દુહાઓ રચ્યા.

દરેકને પ્રિય એવા અનુરાગનાં એ પ્રેરક કાવ્યો દેશભરમાં પ્રિય બન્યાં ને ફેલાયાં. ને રાણા હમીરે ચિત્તોડ પાછું લીધું. આ અદ્‌ભુત વિજય ચારણોનાં વીરગીતોને આભારી હતો. એ સ્વાધીનતા તથા સ્વમાનની લડત સદીઓ સુધી ચાલ્યા કરી.

રાજપૂતો વિજય પામતા ને પરાજિત થતા. સ્વાધીનતાની એ સતત્ લડતનું કેંદ્ર મેવાડ હતું. અને સ્વાધીનતાની લડત અર્થે દેહ ખપાવી દેવાની પ્રેરણા આપતાં ચારણ–કાવ્યો રચાવા લાગ્યાં. દેહ, મન, આત્મા: સર્વસ્વ સ્વાધીનતાને અર્થે અર્પણ કરનાર વીરોની એ વીરગાથાઓ હતી.

ચારણોમાં બધાજ કાંઇ આ કાવ્યો રચવાનો ધંધો કરતા નહોતા. તેમાંના ઘણા ગોપાલન અને પશુ પાલનનું કામ કરતા. તેઓની ઝુંપડીઓને 'નેશ' કહેતા. અને એક રીતે તેઓનું કાર્ય સંગ્રામને મદદરૂપ હતું. એમની ગાયો યુદ્ધવીરોને શુદ્ધ ઘી પૂરૂં પાડતી, તેમની ઊછેરના અશ્વો રણસંગ્રામમાં કામ આવતા.

કેટલીક વખત કોઇ કોઇ ચારણ વણજારની માફક ગામડે ગામડે પોઠિયા લઇને ફરતા. ને તે ખાસ ખંજર, તલવાર, ઢાલ જેવી વસ્તુઓનુંજ વેચાણ કરતા જતા. રાજ્યનો આશ્રય હોઇને તેઓને જમીન કે જાગીરો મળતી. ને એ રીતે તેઓ પૈસેટકે સુખી રહેતા.

પરંતુ ગમે તે ધંધામાં હોય છતાં ચારણની કાવ્યશક્તિ નષ્ટ થતી નહિ. કવિતા તો એના લોહીમાંજ રહેલી છે. ને તેથીજ તે 'વણ પઢિયો વાતું કરે' છે. ને ઊગતા ચારણ કવિને કવિરાજનું બિરૂદ પ્રાપ્ત કરતાં વાર લાગતી નહિ.

ચારણ કોમના સભ્યોમાં એટલી પ્રતિષ્ઠા ને પવિત્રતા હતી કે, ચારણોનો દેશ ખૂબજ શુદ્ધ અને પવિત્ર મનાતો. ને તેમનો ગમે તેવો ગુન્હો હોય છતાં દેહાંત દંડની સજા તેમને કરવામાં આવતી નહિ. કદાચ તેની પછવાડે એવો પણ ભય હોય કે એકાદ કાવ્યઝરણુ સૂકાઇ જશે !

ગમે તે કહેવાનો હક્ક

ચારણોની બુદ્ધિમત્તા અને કળાની તથા વ્યક્તિત્વની રાજાઓ ઉપર એવી ઊંડી છાપ પડેલી હતી કે, તેમને રાજદરબારમાં ગમે તે બોલવાની છૂટ હતી. ચારણ રાજાશ્રયે જીવતા. રાજાની ભેટસોગાદો પામી તેની પ્રશંસા કરતા. પરંતુ ચારણ રાજાથી કદી અંજાતો નહિ. તેની સમક્ષ તે લાઘવતા અનુભવતો નહિ. રાજા પાસેનો તેનો પોતાનો હક્ક છે, એમ માનતો. જેમ રાજપૂત તલવાર ધારણ કરીને સ્વાધીનતા માટે લડવા સર્જાયો હોય, તેમ ચારણ દેશભરમાં વીરતાના પ્રવાહોને અખંડ રાખવા બંધાયો હતો. ને કેટલીયે વખત વીરકાવ્યોથી યોદ્ધાઓને ઉત્તેજન આપનાર ચારણ પોતે પણ તલવાર લઇને યુદ્ધમાં ઊતરી પડતો. રાજપૂતાનાના ઇતિહાસમાં આવા ચારણવીરોનો સંપૂર્ણ ઇતિહાસ નથી, એ શોચનીય છે.

ચારણોનાં કાવ્યો મુખ્યત્વે દુહા રૂપે હતાં, એ અગાઉ જણાવ્યું છે. દુહો એ પ્રજાનો પ્રિય છંદ હતો. યુદ્ધો નહોતાં, ત્યારે નરનારીઓના પ્રેમની વાતો દુહા દ્વારા કરવામાં આવતી. યુદ્ધકાળમાં ને મધ્ય યુગમાં દુહાઓ માત્ર વીરરસથી જ અંકિત બન્યા.

આવા દુહાઓ કોણે રચ્યા. તે વિષે કોઇ માહિતી નથી. દરેક રાજપૂત–પત્નિ પતિને રણસંગ્રામે પાઠવતી વખતે દુહા દ્વારા વીર–સંદેશ આપતી. કોઇ રચયિતાએ દુહામાં પોતાનું નામ આપ્યું નથી.

કંઠસ્થ કાવ્યો

ચારણોનાં આ કાવ્યો મુખ્યત્વે કંઠસ્થ હતાં. તેમના ચોપડાઓમાં તેઓ તેને નોંધી લેતા નહિ. જો તેમણે રચેલા સર્વ કાવ્યોને લેખિત સ્વરૂપમાં સાચવવામાં આવ્યાં હોત તો રાજપૂત વીરોનો સળંગ ઇતિહાસ મળી આવતાં આ દુહાઓ બધા વિસ્મૃતિથી જીવંત રહેત. એટલુંજ નહિ, પણ દરેકની પંક્તિઓ પણ ચોક્કસ નહોતી. સ્થળે સ્થળે તેના શબ્દોમાં ફેરફાર માલૂમ પડતા. ને તેથી તેનાં કર્ત્તાનું નામ હંમેશાં અજ્ઞાત રહેતું.

દુહાઓનાં કાવ્ય ઉદ્‌બોધન રૂપે અગર તો બે વ્યક્તિઓના વાર્ત્તાલાપ રૂપે રચવામાં આવતાં.

ચારણોની કોમ જોતાં સર્વત્ર એકરૂપતા નજરે પડે છે. તેમના દેહ, ચહેરાની રેખાઓ, વિચારો, વાણી વાટે કાવ્ય–શકિત, રીત–ભાત અને બીજી અનેક બાબતોમાં જાણે કે એકજ બીબામાંથી ઢાળેલા હોય તેવા તેઓ લાગે છે.

ઘોર યુદ્ધ વખતે પણ પોતાની અનોખી ધ્વજા લઇને ચારણ યુદ્ધ ક્ષેત્રમાં જતો; ને લડવૈયાઓને પાનો ચડે એવાં યુદ્ધ–ગીતો એક પછી એક સ્વયં રચીને છેડતો.

ચારણોનાં અદ્દભુત કાવ્યોની પ્રશંસા હિંદના કવીશ્વર શ્રી રવીંદ્રનાથ ટાગોરે[1] 'રાજસ્થાન–સંશોધન-સભા' સમક્ષ નીચેના શબ્દોમાં કરીહતી:

ટાગોરની અંજલિ

" ભકિતનું સાહિત્ય આપણે દરેક પ્રાંતમાં વાંચીએ છીએ. દરેક સ્થળે કવિઓએ' રાધા–કૃષ્ણ'નાં ગીતો પોતાની રીતે ગાયાં છે. પરંતુ પોતાના લોહીથી રાજસ્થાને જે સાહિત્ય સર્જ્યું છે; તે અનોખું છે. તે અકારણ નથી. કારણ કે રાજપૂતોને બિરદાવનારાઓ રણભેરીના સમક્ષ જીવનની નક્કરતા સામે સ્વયંગીતો રચતા ને ગાતા.[2] તેમની સામે તેઓ સાક્ષાત્ તાંડવને

---

૧. તા. ૧૮ ફેબ્રુઆરી સને ૧૯૩૭ ના રોજ નં. ૬ દ્વારકાનાથ ટાગોર સ્ટ્રીટમાં કવિવર રવીંદ્રનાથ ટાગોરના પ્રમુખપદે 'રાજસ્થાન-રિસર્ચ.સોસાઇટી' ની એક સભા થઇ હતી. તેમાં તેના મંત્રી શ્રીરઘુનાથપ્રસાદ સિંહાનિયાએ તેમને અન્વેષણ–કાર્ય કરતાં મળેલાં ચારણ કવિઓનાં વીરરસપૂર્ણ કાવ્યો સંભળાવ્યાં હતાં, તે સાંભળી એ વયોવૃદ્ધ કવિવરના ચહેરા ઉપર પણ લાલી દોડી આવી હતી. અને તે પછી તેમણે આ અંજલિ અર્પી હતી. ૨. ચારણોને તેમના એ કર્તવ્યનું ભાન કરાવતાં મહાકવિ સૂર્યમલ્લજી મિશ્રણે સત્ય જ કહ્યું છે કે :

रण हालीजै चारणां ! चाहे अव लग चैन ।
करै सुहड़ जिसड़ी कहो, विध सो दूर वणै न ॥

(હે ચારણો ! અત્યાર સુધી ઘર બેઠે ઘણી મોજ કરી. હવે તમે રણક્ષેત્રમાં ચાલો. ત્યાં પોતાની સગી આંખે વીર યોદ્ધાઓનાં કામ જુઓ. અને ત્યાં જેવું તેઓ કરે, તેવુંજ તેમનું વર્ણન કરો. દૂર રહીને જે વર્ણન કરશો તે તેવું સાચું નહિ બને.)

—તંત્રી : ગુજરાતી વિભાગ

જોઇ રહેતા. આજે કલ્પનાથી એવું કાવ્ય કોઇ રચી શકે તેમ છે?

રાજસ્થાની ભાષાનાં દરેક ગીતમાં જે વીરતાનાં તત્ત્વો ભર્યાં છે! એ હિંદના ગૌરવનો વિષય છે. તે સ્વાભાવિક સચ્ચાઇ ભરેલ ને કુદરતી છે.

મારા મિત્ર ક્ષિતિમોહન સેને મને હિંદી કવિતાનો પરિચય કરાવ્યો હતો. આજે મને એક નવી વસ્તુની પિછાન થઇ છે. આ હૃદય વલોવતાં કાવ્યો મારી સમક્ષ સાહિત્યની એક નવીજ દિશા ખુલ્લી કરે છે. મેં ઘણી વખત સાંભળ્યું હતું કે, ચારણોએ પોતાનાં કાવ્યોથી વીરોને પ્રેરણા આપી છે. આજે એ મેં જાતે અનુભવ્યું. આજે પણ એ કાવ્યોમાં બળ રહેલું છે. ચારણી કાવ્યોનું એક સરસ પુસ્તક બહાર પડે તે જરૂરનું છે."

રવિબાબુના ઉપરના શબ્દો આદરણીય છે. કાઠિયાવાડના ચારણી-સાહિત્યના શ્રી મેઘાણીએ કરેલા સંશોધન પછી એ દિશા પ્રત્યે કેટલાકનું લક્ષ્ય દોરાયું છે. પરંતુ તે માટે જે કાર્ય કરે ને અભ્યાસને ઉત્તેજે તેવી કોઇ સંસ્થા છે નહિ. આપણા આ ગુપ્ત ધનને બહાર લાવવાની જરૂર છે.



મેવાડ રાજ્યનાં પુસ્તકાલયો અને મ્યુઝિયમ

લેખક: સ્વ૦ મુનિશ્રી હિમાંશુવિજયજી ન્યાયકાવ્યતીર્થ

[શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈનસમાજમાં મુનિરાજશ્રી વિદ્યાવિજયજી મહારાજ એમની વિશાળ ધર્મભાવના અને વિદ્વતા માટે સુપ્રસિદ્ધ છે. આજે તેઓ હિંસામાં ગળાડૂબ સિંધ પ્રાંતને અહિંસાનો ઉપદેશ દઇ રહ્યા છે. મુનિશ્રી હિમાંશુવિજયજી તેમના મુખ્ય શિષ્ય હતા, અને સંસ્કૃત-પ્રાકૃતના ઉત્તમ વિદ્વાન અને ઇતિહાસના આશાસ્પદ લેખક હતા. ગુરૂની સાથે બે વર્ષ પૂર્વે સિંધનો વિહાર કરતાં રસ્તામાં તેમનું ભર યુવાન વયે મૃત્યું થયેલું. તેમના સ્મારકરૂપે તેમના લેખોનો હમણાં સંગ્રહ પ્રસિદ્ધ થયો છે. ગુરૂ-શિષ્યની એ વિરલ જોડીએ સં૦ ૧૯૯૨નું ચાતુર્માસ ઉદયપુરમાં કરેલું. તે પ્રસંગે ઉક્ત ઇતિહાસપ્રેમી મુનિજીએ ઉદયપુરનાં પુસ્તકાલયો અને મ્યુઝિયમની મુલાકાતો લીધેલી, અને તે દરમિયાન આપણા આધુનિક એક ઉત્તમ વિદ્વાન ઠા૦ સા૦ કરણીદાનજી દધિવાડિયા સાથે તેમનું ઘણી વખત મળવું થયેલું. પ્રાતઃસ્મરણીય કવિરાજાશ્રી શ્યામલદાસજીની વિદ્વત્તાના પરિપાક રૂપી 'વીર વિનોદ' ગ્રંથનાં પણ તેમણે અહીં દર્શન કરેલાં. આ લેખમાં તેમણે આપણા આ બે વિદ્વાનોની તથા

તેમની કૃતિઓની યોગ્યતા વિષે નિષ્પક્ષ અને સુંદર નોંધ લીધી હોવાથી તેને અત્રે અક્ષરશઃ ઊતારીએ છીએ. ચારણ બંધુઓ આવાં લેખો વાંચી પોતાના વિદ્વાનોને ઓળખતાં શીખશે એવી આશા છે.* —તંત્રી : ગુજરાતી વિભાગ]

ભારત ભૂમિમાં 'મેવાડ' પુણ્ય દેશ છે. દરેક દેશ પોતાની વિશેષતા ધરાવે છે. તેમ મેવાડ પણ અનેક વિશેષતાઓ રાખે છે. બારસો વર્ષોથી મેવાડમાં સીસોદિયા વંશના ક્ષત્રિયો અવિચ્છિન્ન રીતે શાસન ચલાવી રહ્યા છે. એકજ દેશ ઉપર એકજ વંશનું આટલાં વર્ષો સુધી રાજ્ય હોવાનું ઉદાહરણ, ભારતના ઇતિહાસમાં તો શું, પણ બીજાં રાષ્ટ્રોમાં પણ જવલ્લેજ મળી શકશે. મેવાડમાં વીરતાનો ગુણ સારી રીતે વિકાસ પામ્યો છે. આ ગુણને કેળવવા માટે મેવાડવાસીઓએ પોતાનાં ધન, માલ, પુત્રી, સ્ત્રી અને વ્હાલા પ્રાણોને પણ તૃણવત્ ગણી ત્યાગવામાં પૂરેપૂરી ઉદારતા બતાવી છે. તેથી તેઓ શું મરેઠા, શું મુગલ કે શું પઠાણ, દરેક લડાયક કોમોની સાથે લડી પોતાના દેશની કીર્તિને બચાવવા માટે લગભગ દોઢ હજાર વર્ષ સુધી કટિબદ્ધ રહ્યા છે. રાણા પ્રતાપે આ કીર્તિની ઉજ્જવલતામાં ખાસ વધારો કર્યો. તેમના પિતાશ્રી ઉદયસિંહજીએ સત્તરમી સદીના પ્રથમ ચરણમાં મનોહર ઝાડી અને પહાડોથી શોભિત તથા સુરક્ષિત પ્રદેશમાં 'ઉદયપુર' નગર વસાવી ત્યાં મેવાડની રાજધાની બનાવી. તે પહેલાં ચિત્તોડમાં અને 'નાગદ્દ'† વગેરે સ્થળે મેવાડની રાજધાની હતી, પણ તે સ્થાનો કાળબળે શત્રુઓનાં આક્રમણોથી ઘેરાઇ ગયાં, છિન્નભિન્ન થયાં, તેથી ઉદયપુર વસાવવાની ફરજ પડી. અત્યારે મેવાડની રાજધાની ઉદયપુરમાં છે. જો કે હવે મેવાડમાં વીરતાનાં પૂર ઓસરતાં જાય છે, પણ પૂર્વકાળમાં વીરતાની આરાધનામાંજ વધુ સમય વીત્યો હોવાથી મેવાડ દેશ સાહિત્ય, કલા અને શિક્ષણના વિષયમાં પંજાબની જેમ ઉલ્લેખનીય પ્રગતિ સાધી શક્યો નથી.

આ દિશામાં રાજ્ય તરફથી અભિમાન લઇ શકાય તેવો પ્રયાસ લેવાયો નથી. બીજાં રાજ્યોમાં વીસમી સદીમાં જેટલી રાજ્ય તરફથી

---

* અમારે દુઃખ સાથે કહેવું પડે છે કે, આપણી કોમની મહાન વિભૂતિઓને તેમના જીવનકાળમાં આળખવામાં આપણે વ્યક્તિગત હિતને મહત્ત્વ આપી સાવ ઉદાસીન રહ્યા છીએ. આપણી એ વૃત્તિને ઉદ્દેશીને આપણી કોમના આધુનિક મહાન્ પુરૂષ દેશભક્ત ઠા૦ સા૦ કેસરીસિંહજી સોદા (કોટા)ની પ્રશંસા કરતાં કવિ શ્રીઅક્ષયસિંહજી રતુએ યોગ્યજ કહ્યું છેઃ

अजौं उपस्थित अपुनमें, केसर-से नरनाह ।
बीते दिन जाते विहद, क्यौं न उठाते लाह ॥
मुग्ध राजनैतिक रसिक, सुजस-सुगंध-समीर ।
केसर सम केसर जहां, कुल चारण कसमीर ॥

—તંત્રી : ગુજરાતી વિભાગ

† પંદરમી સદીના છેલ્લા સમય સુધી આ નગર બહુ સમૃદ્ધ હતું. ત્યાં રાજધાની પણ રહી છે. કુંભારાણાનું તે પ્રિય નગર હતું. કહેવાય છે કે ત્યાં ૩૫૦ મંદિરો હતાં. અત્યારે તે શૂન્ય ગામડાના રૂપમાં 'નાગદા' નામથી ઓળખાય છે.

લાયબ્રેરીઓ, સાહિત્યિક સંસ્થાઓ છે, તેના પ્રમાણમાં આ રાજ્યમાં ઓછી જણાય છે. (સં૦ ૧૯૯૧ ના) ગયા ચોમાસામાં અમે ઉદયપુરમાં હતા ત્યારે રાજ્ય તરફથી ચાલતી પબ્લિક અને પ્રાઇવેટ લાયબ્રેરીઓ અને મ્યુઝિયમ જોવાનો લાભ મને મળ્યો હતો તે વિષે ટૂંકમાં અહીં પરિચય આપવા ચાહું છું.

વિક્ટોરિયા લાયબ્રેરી

આ લાયબ્રેરી સજ્જનનિવાસ બાગમાં આવી છે. ત્યાં વિક્ટોરિયા મહારાણીનું બાવલું છે. લાયબ્રેરીનું મકાન સારા ઢંગનું છે. થોડાં ઘણાં છાપાંઓ આવે છે, પણ જણાય છે કે પબ્લિકને માટે હોવા છતાં ઉદયપુરની પ્રજા તેનો લાભ બહુજ ઓછો લે છે. પુસ્તકોનો સંગ્રહ લગભગ ૭,૦૦૦ નો હશે તેનો લાભ લેનાર વર્ગ પણ જૂજ છે. નવાં પુસ્તકોને સંઘરવા તરફ પણ રાજ્યના અધ્યક્ષની કાળજી ઓછી હશે. ત્યાં સિક્કાઓનો સંગ્રહ ઉલ્લેખનીય છે. સોના, રૂપા, તાંબા અને લોઢા વગેરેના સિક્કાઓ છે. તેમાં ઘણા ખરા મધ્યકાળથી જૂના નથી. લાયબ્રેરીની સાથે જ વિક્ટોરિયા મ્યુઝિયમ છે. તેમાં મહારાણા કુંભારાણાના સમયના નાના મોટા શિલાલેખો ઘણા છે. કેટલાક કુટિલલિપિના લેખો તથા બ્રાહ્મીલિપિના શિલાલેખો પણ ઉલ્લેખનીય છે. હિંદુ અને જૈનોની કેટલીક ખંડિત મૂર્તિઓ અને તેના અવયવો પણ છે. એક જૈન-મૂર્તિનું પરિકર કુંભારાણાના સમયનું છે, તે 'નાગહ્રદ' નગરનું છે જેને અત્યારે નાગદા કહે છે. તેની નીચે આ પ્રમાણે લેખ કોતરેલો છે:—

ओं नागह्रदपुरे राणाश्री कुंभकर्णराज्ये श्री आदिनाथ विंबस्य परिकर: कारित:। प्रतिष्ठित: श्रीखरतरगच्छे श्रीमतिवर्धन-सूरिभि:॥ उत्कीर्णवान् सूत्रधार धरणाकेन श्री:।

મ્યુઝિયમમાં બીજી પણ કેટલીક વસ્તુઓ છે. જેવી કે, મારેલા સિંહ, વાઘ, મગર વગેરે જનાવરો, જૂનાં વાસણો અને વસ્ત્રો વગેરે. પણ તેમાં 'રીતનું રાઇતું છે.' ખાસ મહત્વની વસ્તુ શાહજહાં ખુર્રમની ખાસ પાઘડી છે. તેણે ઉદયપુરના મહારાણા કરણસિંહજીની પાસે આવી શરણ માગ્યું અને મહારાણાને ચરણે પોતાની પાઘડી મૂકી હતી. આ બનાવ ઇસ્વી સન ૧૬૨૧ માં બન્યો એમ કહેવાય છે.

ઉપર્યુકત લાયબ્રેરી અને મ્યુઝિયમના અધ્યક્ષ શ્રીયુત પંડિત અક્ષયકીર્તિજી છે. તેઓ નવયુવક અને હિંદી-વ્રજ ભાષાની કવિતામાં સારો રસ ધરાવે છે. આ બન્ને સંસ્થા ઉદયપુર રાજ્યના ખર્ચથી ચાલે છે. આના નિભાવ માટે રાજ્ય દર વર્ષે ૩,૪૦૦ રૂપિયા ચિત્તોડી એટલે કે બે હજાર રૂપિયા ખર્ચે છે. આખા ઉદયપુર રાજ્ય તરફથી જનતાને માટે ફકત આ એકજ પુસ્તકાલય છે. આની પ્રગતિ માટે ઘણો અવકાશ છે, માટે મેવાડના રાજ્યે પૂરતું લક્ષ્ય આપવું ઘટે.

સજ્જન વાણીવિલાસ

આ પુસ્તકાલય રાજમહેલમાં છે. આની સ્થાપના સંવત્ ૧૯૩૧ માં મહારાણા સજ્જનસિંહજીના શાસનકાળમાં થઇ છે. આમાં નીચેના ખંડમાં 'ઇતિહાસ કાર્યાલય' છે. ત્યાં સરકારી તવારીખને લગતાં પુસ્તકો, દસ્તાવેજો, પટ્ટાઓ, સિક્કાઓ અને તામ્રપત્રોનું પણ સાહિત્ય સંગ્રહાયેલું છે. રાજ્ય તરફથી પ્રજાને કોઇને કાંઇ પણ જમીન યા બીજી કોઇ વસ્તુ ક્યારે અપાઇ છે તે બધી નોંધ અહીં રહે છે. આમાં કુલ ૧,૬૫૮ પુસ્તકો છે, જેમાં થોડાંક

હસ્તલિખિત પણ છે. આ સંસ્થાના ઉપરી શ્રીમાન્ દધિવાડિયા કરણીદાનજી ચારણ છે, જેઓ વિદ્યાપ્રેમી, સજ્જન, વિદ્વાન્ અને રાજભક્ત છે. તેથી રાજ્ય તરફથી તેમને જાગીર અને માન મળેલાં છે. આ સંસ્થામાં પણ નવાં પુસ્તકો ખરીદવા તરફ બહુજ ઓછું ધ્યાન અપાય છે.

સરસ્વતીભંડાર

આ પુસ્તકાલય પણ મહેલમાં જ સજ્જન વાણી વિલાસની પાસેજ છે. તેમાં જૂના કાળથી સંગ્રહિત થયેલાં હસ્તલિખિત પુસ્તકોનો સારો સંગ્રહ છે. કુલ ૨,૩૧૯ પુસ્તકો છે, તેમાં કુલ ૩૧ વિભાગનાં આ પ્રમાણે પુસ્તકો છે:

વિષય	સંખ્યા
વેદ	૨૦
વેદાંત	૪૮
ભગવદ્‌ગીતા	૪૧
ધર્મશાસ્ત્ર	૧૦૮
કર્મકાંડ	૧૩૨
પુરાણ	૧૨૮
ઇતિહાસ	૧૯
વૈદક	૫૪
જ્યોતિષ્	૧૧૮
શિલ્પ	૪
શાલિહોત્ર	૧૩
મંત્રશાસ્ત્ર	૯૦
કાવ્ય	૩૪
કોશ	૨૨
સાહિત્ય	૫૪
વ્યાકરણ	૨૪
સંગીત	૧૨
સંસ્કૃત લેખમાં	૩૧
ભાષા–સંસ્કૃત હસ્તલિખિત પુસ્તકો	૨૭
છાપેલાં સંસ્કૃત પુસ્તકો	૫૮
રામાયણ	૯
ન્યાય (દર્શન) શાસ્ત્ર	૨૧
પાતંજલ યોગશાસ્ત્ર	૪
નાટક	૨૦
પરચુરણ	૨૫
રાજનીતિ	૧૧
રહસ્ય	૧
સંગ્રહ	૪
ધનુર્વેદ	૩
શ્રોતકર્મ	૬
રત્નપરીક્ષા	૫
સ્તોત્ર	૪૫૧
ટિપ્પણી	૧૩
જૈનદર્શન	૩૯
ભાષા	૧૦૨
ચોપડા	૧૨૨
ભાષાનાં પુસ્તકો	૧૫૦
અંગ્રેજી	૫૪
ઉર્દૂ	૧૦૨
ફારસી	૧૦૪
તવારીખ	૩૧

આની સ્થાપના ઘણાં વર્ષો પહેલાં થઇ છે, એટલે આમાં સારો સંગ્રહ હોવો જોઇએ. આનો ઉપયોગ બહુ જ ઓછો થાય છે. આનું નવીન ઢબથી કેટલૉગ થાય એ જરૂરનું છે. આ બન્ને પુસ્તકાલયો ખાનગી છે, એટલે પ્રજા તેનો લાભ લઇ શકતી નથી. કોઇ ખાસ વિદ્વાન વ્યક્તિઓને જોવા માટે ખાસ મહારાણાશ્રીની આજ્ઞા લેવી પડે છે. શ્રીમાન્ મહારાણા સાહેબે આ બન્ને પુસ્તકાલયો જોવાની મને અનુમતિ આપી અને શ્રીમાન્ કરણીદાનજીએ આ પુસ્તકાલયો મને બતાવવામાં પોતાનો સમય આપ્યો તે બદલ બન્ને મહાનુભાવોને હું ધન્યવાદ આપ્યા વગર રહી શકતો નથી.

સાંભળવા પ્રમાણે રાજમહેલમાં એક ત્રીજી પણ ખાનગી લાયબ્રેરી છે; જેમાં સરકાર પાસે જે પુસ્તકો ભેટ આવે છે તે રખાય છે.

વીરવિનોદ

સજ્જન વાણીવિલાસમાં એક મહાન ગ્રંથ મારા જોવામાં આવ્યો. તેનું નામ છે '**વીરવિનોદ**'. તે મોટા કદના પાંચ ગ્રંથમાં પૂરો થયો છે. તે પાંચે ભાગનાં પૃષ્ઠ ૨,૬૩૦ છે.

આ ગ્રંથમાં રાજપૂતાનાની જ નહિ પરંતુ **આખી દુનિયાની ભૂગોળ** સંબંધી બહુ જ વિસ્તારથી પ્રમાણપુરઃસર લખ્યું છે. ખાસ કરી રાજપૂતાનાના ઇતિહાસ પરત્વે બહુજ વિસ્તારથી લખવામાં આવ્યું છે. મેવાડ રાજ્યનાં તમામ દફતરી સાધનો ઉપરથી આ ગ્રંથ તૈયાર કર્યો હોવાથી પ્રાચીન પ્રશસ્તિઓ, શિલાલેખો, પટ્ટાઓ, સનંદો, વહીઓ, તામ્રપત્રો અને રાજ્યની આજ્ઞાઓ આમાં આપ્યાં છે, તેથી સદર ગ્રંથની સત્યતા-ઉપયોગિતા અને પૂર્ણતામાં સારો વધારો થયો છે. આનું નિર્માણ લગભગ વિક્રમ સંવત્ ૧૯૪૩ માં થયું છે. મેવાડ રાજ્યના ખર્ચથી આ ગ્રંથ સંપૂર્ણ પાંચ ભાગમાં રાજ્ય તરફથીજ છપાઇ ગયો છે. તેમાં સાંભળવા પ્રમાણે એક લાખ રૂપિયાનું ખર્ચ થયું છે. આ મહાન ગ્રંથના આધારે **શ્રીમાન પંડિત ગૌરીશંકરજી ઓઝાએ 'રાજપૂતાને કા ઇતિહાસ'** વગેરે અનેક પુસ્તકો લખ્યાં છે.[1] આ વાતની ખાતરી તેમના ગ્રંથોમાં ઠેકાણે ઠેકાણે **વીરવિનોદના** ઉતારાઓ અને ઉલ્લેખોથી થાય છે. આટલો ઉપયોગી આકર ગ્રંથ હોવા છતાં કમનસીબે મેવાડ રાજ્યને તેમાં વહેમ પડવાથી અર્થાત્ રાજ્યનું અહિત થવાની આશંકાથી તેનો પ્રચાર સાવ બંધ રાખવામાં આવ્યો છે. અર્થાત્ છપાયા પછી તે પુસ્તક કોઇને ય અપાયું કે અપાતું નથી, તેથી તે મહાન ગ્રંથના લાભથી સાહિત્યસેવી વિદ્વાનો વંચિતજ રહે છે! અને તેથી રાજ્યના લાખ રૂપિયાનું નકામું પાણી થયું કહેવાય. આ ગ્રંથના રચયિતાની કેટલી બધી મહેનત અને આશા હશે? એ બધી અત્યારે તો એક અંધારી કોટડીમાં સડી રહી છે! ગ્રંથકાર જીવતા હોત તો તેમના આત્માને આ સ્થિતિ જોઇ કેટલું દુઃખ થાત? **આ મહાન ગ્રંથના કર્તા છે શ્રીમાન કવિરાજ સાંવલદાનજી**[2]. તેઓ જાતે ચારણ હતા, પણ સંસ્કૃત, હિંદી વગેરેના સારા વિદ્વાન, શોધક અને કવિ હતા[3]. તેઓ મેવાડ રાજ્યના ઇતિહાસ-કાર્યાલયના અધ્યક્ષ હતા. આ કાર્યાલયના અનુભવો અને બીજાં સેંકડો સાધનોથી તેમણે **વીરવિનોદ** નામનું પુસ્તક બનાવી પોતાની કીર્તિને અમર બનાવી જગત ઉપર મહાન ઉપકાર કર્યો છે. તેઓ પોતાના સમયમાં એક પ્રતિષ્ઠિત વિદ્વાન્ અને કવિ ગણાતા. મેવાડ રાજ્યનું ભૂષણ હતા. તેઓ અત્યારે

---

૧. પં૦ કેસરીમલ્લ શર્માએ 'મેવાડ કે સપૂત' નામક ગ્રંથમાં કવિરાજા શ્રી શ્યામલદાસજીના જીવનચરિત્રમાં, અને દી૦ બ૦ શ્રી હરબિલાસજી શારદાએ 'ઓઝા અભિનંદન ગ્રંથ' અંતર્ગત 'રાજપૂતાને મેં પ્રાચીન શોધ' નામક લેખમાં આવોજ અભિપ્રાય આપ્યો છે.

૨. તેમનું નામ સાંવલદાનજી નહિ પણ શ્યામલદાસજી હતું.

૩. અહીં 'પણ' શબ્દનો પ્રયોગ જોતાં લેખક મહાશયનો એવો અભિપ્રાય હોય તેમ જણાય છે કે, ચારણો સંસ્કૃત, હિંદી કે ગુજરાતી ભાષાના ઊંચી કોટના વિદ્વાન કે કવિ હોઇ શકે નહિ. વિક્રમની ત્રીજીથી અઢારમી સદી સુધીમાં બ્રાહ્મણ વિદ્વાનો અને કવિઓએ લખેલા સંસ્કૃતગ્રંથોમાં જ્યાં જ્યાં ચારણોનો ઉલ્લેખ થયો છે, ત્યાં ત્યાં કવિ અને ચારણ અથવા કવિ

આ મર્ત્ય લોકમાં શરીરથી નથી પણ **યશઃ કાયથી અત્યારે છે અને ભવિષ્યમાં જીવિત રહેશે.** હું વર્તમાન મહારાણા સાહેબને આ અનુરોધ કરૂં છે કે **તેઓ આ મહાન વિદ્વાનના આકરગ્રંથનો પ્રચાર કરી મહાન પુણ્ય-કીર્તિને પ્રાપ્ત કરવાનો પ્રસંગ જવા ન દે. આવા ગ્રંથો જગતની વસ્તુ હોય છે.***

અને ચારણકવિ એમ ગમે તે કારણથી ભિન્નતા બતાવવામાં આવી છે. અને બીજી બાજૂ છેલ્લાં એક હજાર વર્ષથી અંધાધુંધી અને લડાઇ–ઝગડામાં રચ્યા પચ્યા રહેલ રાજપૂતાના પ્રદેશના વસવાટને લીધે ચારણ જાતિએ પણ સંસ્કૃત ભાષાનું પઠન–પાઠન બિલકુલ છોડી દીધું છે, એમ અમારે દુઃખ સાથે કબૂલવું પડે છે. અને તેથીજ બ્રાહ્મણાદિ વિદ્વાનોએ આપણા માટે આવા ઉલ્લેખો કર્યા હોય એમ લાગે છે. એટલું છતાં યે સત્તરમી સદી પછીના કેટલાક ચારણ કવિઓ સંસ્કૃત ભાષાના ઉત્તમ વિદ્વાનો હતા. જો કે તેમણે પણ સંસ્કૃત ભાષામાં તો કોઇ અમર રચના કરી નથી, છતાં યે સંસ્કૃત ભાષાની વિદ્વતાએ તેમને હિંદી–ડિંગલના કવિઓમાં મહાકવિપદ અપાવ્યું છે. અને એ વિદ્વતાનો નિચોડ પણ તેમની તે તે ભાષાની કૃતિઓમાં જોવામાં આવે છે.

મહાકવિ સૂર્યમલ્લજી મિશ્રણ, કવિરાજા ચંડીદાનજી મહિયારિયા, મહામહોપાધ્યાય કવિરાજા શ્યામલદાસજી, ગોસ્વામી ગણેશપુરીજી, મહામહોપાધ્યાય કવિરાજા મુરારિદાનજી આસિયા, ઠાકુર કૃષ્ણસિંહજી સોદા આદિ ઓગણસમી સદીના સંસ્કૃત ભાષાના ધુરંધર ચારણ વિદ્વાનોના મૃત્યુ પછી પણ એ પરંપરા ઇશ્વરકૃપાએ ચાલુ હતી; પરંતુ હવે તે સૂકાઇ જશે એવો સંભવ છે. કેમકે છેલ્લાં પંદર વર્ષમાં ઠા૦ સા૦ હનુમદ્દાનજી ગાડણ અને ઠા૦ સા૦ શક્તિદાનજી બારહઠ ગયા. ગયે વર્ષે જાતિના એકમાત્ર સંસ્કૃતના અસાધારણ વિદ્વાન ઇતિહાસમૂર્તિ ઠા૦ સા૦ કિશોરસિંહજી સોદા ગયા! હવે પૂજ્યપાદ દેશભક્ત ઠા૦ સા૦ કેસરીસિંહજી સોદા (કોટા) અને પ્રસ્તુત લેખમાં ઉલ્લેખિત ઠા૦ સા૦ કરણીદાનજી દધિવાડિયા જેવા એ ત્રણ વયોવૃદ્ધ ઉત્તમ વિદ્વાનો બાકી છે. અત્યારે જો કે જ્ઞાતિમાં કેળવણીનો પ્રચાર વધ્યો છે, અને રાજપૂતાનાનાં બે ત્રણ યુવક બંધુઓએ તો હિંદની સર્વોપરિ શિક્ષણ-સંસ્થા હિંદુ વિશ્વવિદ્યાલય, કાશીની એમ૦ એ૦ જેવી સર્વોચ્ચ પદવી મેળવી છે. પરંતુ તેમણે કાશી જેવા સંસ્કૃત ભાષાના વિશ્વવિખ્યાત સ્થાનનો લાભ ન લેતાં પોતાની બીજી ભાષા તરીકે સંસ્કૃતને બદલે હિંદી કે બીજી કોઇ ભાષા લીધી હતી! આ સ્થિતિ વધુ વખત ચાલુ રહી કોઇ ગ્રેજ્યુએટ બંધુ સંસ્કૃતનો અભ્યાસ નહિ કરે તો ઉપરોક્ત બે ત્રણ વિદ્વાનોના આથમ્યા પછી ચારણજાતિમાં વીસમી સદીમાં પણ એકેય સંસ્કૃતનો વિદ્વાન મળશે નહિ, અને નાની સરખી શાસ્ત્રોક્ત કે પૌરાણિક વાત માટે પણ આપણે અન્ય જાતીય વિદ્વાનોનો આશરો શોધવો પડશે! હજુ તો ચારણજાતિનો વૈદિક, પૌરાણિક અને મધ્યકાળનો ઇતિહાસ આપણે શોધવાનો છે; તે સંસ્કૃત ભાષાના અભ્યાસ વિના કેવી રીતે શોધી શકીશું? એટલે કે, કોલેજોમાં ભણતા સજાતીય યુવક બંધુઓ અમારી આ નમ્ર સૂચના તરફ ધ્યાન આપી, અઘરી છે છતાં યે જ્ઞાતિને ભોગે પોતાની બીજી ભાષા તરીકે સંસ્કૃતને લઇ એમ૦ એ૦ બને એવી અમે આશા સેવીએ છીએ. * આ લેખ લખાયા બાદ ઉદયપુરના વર્તમાન મહારાણા સાહેબે આ મહાગ્રંથને ૬૦) રૂપિયા કલદાર અથવા ૧૦૦) રૂપિયા ચિતોડી મૂલ્યથી વેચવાની આજ્ઞા જાહેર કરી છે.

—તંત્રી : ગુજરાતી વિભાગ

ફત્તેહપ્રકાશ પ્રશસ્તિકાવ્ય

જે શ્રીમાન ઠાકોર કરણીદાનજીનો ઉલ્લેખ હું પહેલાં કરી ગયો છું તેઓ કવિરાજ સાંવલદાનજીની ઉત્તર પરંપરામાં થયા છે. અર્થાત્ ઠાકોર કરણીદાનજીના દાદા, સાંવલદાનજી કવિરાજના ભાઇ થતા હતા. તેથી કવિરાજ સાંવલદાનજીના વિદ્યાપ્રેમની ઝાંખી ઠાકોર કરણીદાનજીમાં નજરે પડે છે.[1] તેમણે '**ફતેહ પ્રકાશ પ્રશસ્તિ કાવ્ય**' નામની એક રાજપ્રશસ્તિ બનાવી છે. તે સંસ્કૃત ભાષાનાં ૧,૨૫૦ પદ્યોમાં પૂરી થઇ છે. તે એક સારૂં કાવ્ય છે. તેમાં **બાપા રાવળથી લઇ મહારાણા ભૂપાલસિંહજી સુધી** સાધારણ કાવ્ય અને ઇતિહાસ મિશ્રિત પદ્ધતિથી સરળ અને સંક્ષેપમાં વર્ણન છે. છંદ મોટે ભાગે અનુષ્ટુપ્ છે.

ઠાકોર શ્રી કરણીદાનજી સજ્જન અને વિદ્વાન્ હોઇ નમ્ર અને ગુણગ્રાહી છે. ગયા ચાતુર્માસમાં અમારી સાથે તેમનો પરિચય થયો. તેઓ અમારી પાસે અવારનવાર ઉપાશ્રયે આવવા લાગ્યા. તેમની ઓફિસમાં મને લઇ ગયા.

---

૧. સ્વ૦ પ્રાતઃસ્મરણીય કવિરાજા શ્રી શ્યામલદાસજી દધિવાડિયાના ભગીરથ પ્રયત્નથી ઉદયપુરમાં 'ચારણ પાઠશાળા'ની સ્થાપના થઇ હતી. તેમાં સંસ્કૃત ભાષામાં પડાંગ કાવ્યસાહિત્યનું ઉચ્ચ શિક્ષણ અપાતું હતું. પરંતુ ઉક્ત કવિરાજાજીનો સને ૧૮૯૩ માં દેહાંત થતાં પાઠશાળાનું કામ શિથિલ બન્યું અને ચારણોની તત્કાલિન વિદ્યા પ્રત્યેની અરુચિને લીધે તેમાં ભણતા ઘણાખરા વિદ્યાર્થીઓ નાસી ગયા. છતાં યે જે પાંચ-સાત પ્રતિભાસંપન્ન વિદ્યાર્થીઓએ ત્યાં રહી કાવ્ય-સાહિત્ય અને વ્યાકરણાદિનો સંપૂર્ણ અભ્યાસ કર્યો, તેમાં દેશભક્ત ઠા૦ સા૦ કેસરીસિંહજી સોદા (કોટા), ઠા૦ સા૦ કરણીદાનજી દધિવાડિયા અને સ્વ૦ ઠા૦ સા૦ કિશોરસિંહજી સોદા એ મુખ્ય હતા. એ ત્રણે સંસ્કૃતના ઉત્તમ વિદ્વાન અને કવિ થયા.

અત્યારે એ પાઠશાળાનું પરિવર્તિત નામ "શ્રી ભૂપાળ ચારણ છાત્રાલય" રાખવામાં આવ્યું છે. ચારણ પાઠશાળાને તેના સંસ્થાપક કવિરાજા શ્રી શ્યામલદાસજીના ઉત્તરાધિકારી પોતાની ખાનગી મિલ્કત સમજી તેનો અનુચિત લાભ લેતા હતા. એમનો અધિકાર ખસેડીને તેને હાલના સ્વરૂપમાં લાવવાનું પ્રાયઃ બધું શ્રેય અખિલ ભારતીય ચારણ સંમેલનના ભૂતપૂર્વ પ્રધાનમંત્રી અને હાલમાં આ પત્રના મુખ્ય તંત્રી ઠા૦ ઇશ્વરદાનજી આસિયાની ઘણા વર્ષોની નિરંતર પ્રેરણા, પ્રયાસ અને પ્રયત્નને આભારી છે. અત્યારે છાત્રાલયનો પ્રબંધ ઠા૦ સા૦ કરણીદાનજી દધિવાડિયાના હાથમાં છે, અને તેઓ તેના સેક્રેટરી છે. પરંતુ આ અંકના હિંદી વિભાગમાં એ છાત્રાલય સંબંધી જે તંત્રીનોંધ પ્રસિદ્ધ થઇ છે તે વાંચતાં અમને દુઃખ થાય છે કે, તેમના જેવા વિદ્વાન સજ્જનના હાથમાં છાત્રાલયનો પ્રબંધ હોવા છતાં પણ તે સંતોષકારક નથી; અને તેની સાથે તેઓ જાતિહિતનાં કાર્યો તરફ પણ દુર્લક્ષ્ય સેવે છે! એમના જેવા પ્રતિભાશાળી વિદ્વાનની સંમેલનના એક પણ અધિવેશનમાં હાજરી નહિ, તે શું ઓછો દુઃખનો વિષય છે ! ! કહેવાનું તાત્પર્ય કે, તેઓ એ તંત્રીનોંધની ઉપયોગી સૂચનાઓ પર શીઘ્ર ધ્યાન આપી તેનો કાર્યરૂપમાં અમલ કરશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

—તંત્રી : ગુજરાતી વિભાગ

તેમણે ઉપર્યુક્ત **'ફતેહપ્રકાશ પ્રશસ્તિકાવ્ય'** ઉપાશ્રયમાં લાવી મને બતાવ્યું. અને તેમાં યોગ્ય સુધારો કરવાનું પણ કહ્યું. બહુ પ્રેમપૂર્વક મેં તે કાવ્યનો કેટલોક ભાગ જોયો અને મારી બુદ્ધિ પ્રમાણે મેં તે માટે શ્રી કરણીદાનજી સાહેબને યોગ્ય સૂચના કરી; જેનો અમલ તેમણે નમ્ર ભાવથી કર્યો. મને દુઃખ છે કે આખું કાવ્ય જોવાનો તેમનો બહુ આગ્રહ હોવા છતાં તે કાવ્યને હું સંપૂર્ણ જોઇ શકવા જેટલો સમય કાઢી શક્યો નહિ અને તેથી તેમની માગણી હોવા છતાં, તે ઉપર મારો અભિપ્રાય પણ લખી શક્યો નથી. આ કાવ્યમાં સીસોદિયા વંશનો પ્રારંભથી અત્યાર લગીનો ટૂંક ઇતિહાસ છે, **જે 'વીરવિનોદ'નું નવનીત પણ કહી શકાય** શ્રીમાન ઠાકોર કરણીદાનજીના કહેવાથી જણાયું કે મહારાણા ફત્તેહસિંહજી ની ઇચ્છા-પ્રેરણાથી પ્રસ્તુત પ્રશસ્તિની રચના કરવામાં આવી છે. તેથી ઉદયપુર રાજ્યની સનાતન પદ્ધતિ પ્રમાણે આ સંપૂર્ણ કાવ્યને શિલાલેખોમાં કોતરાવવાની પૂરી ખાતરી હતી. દૈવયોગે કાવ્ય પૂરૂં થતાં પહેલાં મહારાણાશ્રી ફત્તેહસિંહજી સાહેબ દેવલોકવાસી થઇ ગયા. અત્યારે તેમનાજ પુત્ર મહારાણાશ્રી ભૂપાલસિંહજી રાજગાદી ઉપર છે. ઠાકોર કરણીદાનજી ઉપર તેમની કૃપા સારી છે તેથી તેમને પૂરી આશા છે કે, વર્તમાન મહારાણા સાહેબ આ પ્રશસ્તિ કાવ્યને શિલાલેખોમાં કોતરાવી ચિત્તોડના મહેલમાં યા કોઇ પ્રસિદ્ધ સ્થાનમાં મૂકાવશે અને પોતાની કારકિર્દીને ચિરંજીવી બનાવશે.

ઉદયપુર રાજ્ય પ્રાચીનતમ હોવા છતાં અત્યારે ઉદયપુરમાં દિગ્ગજ વિદ્વાનો તો નથી; પણ પંડિત ગિરિધરલાલજી શાસ્ત્રી, ઠાકોર કરણીદાનજી વગેરે કેટલાક સારા વિદ્વાનો છે. પંડિત ગિરિધરલાલજી કાવ્ય સાહિત્યના સારા જ્ઞાતા વિદ્વાન છે. તેમણે **કાવ્ય પ્રકાશ** ઉપર પદ્યબદ્ધ સંસ્કૃત વૃત્તિ વગેરે કેટલાક ગ્રંથો બનાવ્યા છે. ઉદયપુરમાં રાજ્ય તરફથી એક સંસ્કૃત શાળા પણ ચાલે છે.

મેવાડ રાજ્ય તરફથી ચાલતાં પુસ્તકાલયોની અહીં રૂપરેખા આપી છે. આટલું મોટું અને પ્રાચીન રાજ્ય હોવા છતાં રાજ્ય તરફથી જનતાને માટે ફક્ત એકજ 'પુસ્તકાલય' છે, એ બહુજ ઓછું દેખાય છે, જ્યારે વડોદરા રાજ્ય તરફથી એક હજાર કરતાં વધુ પુસ્તકાલયો સ્થાપિત થયાં છે. જો કે મેવાડની પ્રજામાં શિક્ષણનો ઘણો અભાવ હોવાથી તેને વાચનનો શોખ પણ નથી, છતાં રાજ્ય તે શોખ લગાડવા પગલાં લે તો સફળતા મળી શકે ખરી.

બીજી વાતની એ ભલામણ છે કે, મેવાડમાં સેંકડો પ્રાચીન જૈન અને વૈદિક મંદિરો ભગ્ન–અર્ધભગ્ન અવસ્થામાં પડયાં છે. અનેક પ્રાચીન તળાવો, કિલ્લાઓ અને જૂનાં સ્થાનો છે. ત્યાંથી મૂર્તિઓ, શિલાલેખો વગેરેનો સંગ્રહ કરી રાજ્યના મ્યુઝિયમને સમૃદ્ધ, વ્યવસ્થિત અને ઉપયોગી બનાવવામાં આવે તો મેવાડના ઇતિહાસ ઉપરજ નહિ; પરંતુ ભારતના ઇતિહાસ ઉપર સારો પ્રકાશ પડી શકે. હું ચાહું છું કે મહારાણા સાહેબ આ નમ્ર સૂચના તરફ ધ્યાન આપી યોગ્ય કાર્ય કરી બતાવશે.*

'કૌમુદી' એપ્રિલ ૧૯૩૬ ના અંકમાંથી ઉદ્ધૃત



* મુનિ શ્રી હિમાંશુવિજયજીના ગુરૂદેવ મુનિરાજ શ્રી વિદ્યાવિજયજી મહારાજે પણ ઉદયપુરના એ ચાતુર્માસ પ્રસંગેના વિહાર સંબંધી **'મારી મેવાડયાત્રા'** નામથી ગુજરાતી ભાષામાં

વિસ્તૃત અને પાંડિત્યપૂર્ણ લેખમાળા લખેલી, અને તે **"જૈન જ્યોતિ", "મુંબઇ સમાચાર"** આદિ પત્રોમાં પ્રસિદ્ધ થયેલી. હિંદી ભાષામાં તો એ લેખમાળા **"मेरी मेवाड़-यात्रा"** નામથી પુસ્તિકાકારે પણ પ્રસિદ્ધ થવા પામી છે. તેમાં ઉક્ત મુનિરાજે ઓસવાલ જૈનોના ઉદયપુર રાજ્ય સાથેના ઘનિષ્ટ સંબંધનું વર્ણન કરતાં આપણા આધુનિક સમર્થ કવિરાજ ઠાકુર કેસરીસિંહજી સોદા (સોન્યાણા)એ તેમના અમર ગ્રંથ **"प्रताप-चरित्र"**માં ઓસવાલ કુલભૂષણ મંત્રીવર ભામાશાહની અપૂર્વ સ્વામીભક્તિનું જે અનૂઠી કવિતામાં આલેખન કર્યું છે, તે આખો પ્રસંગ સુંદર વિવેચન સહિત આપ્યો છે. આ પ્રસંગે એ લેખમાળામાંથી તેટલો ભાગ અત્રે ઊતારવાના લોભને અમે રોકી શકતા નથી. **–તંત્રી : ગુજરાતી વિભાગ**

" ....જ્યારે મહારાણા પ્રતાપનું નામ, એનું દેશાભિમાન અને એની ધર્મદ્રઢતાનો દુંદુભી આજ પણ દિગ્–દિગંતમાં ગાજી રહ્યો છે. તેવીજ રીતે કટોકટીના સમયે એ મહારાણાના સહાયક થનાર અને દેશરક્ષાના કાર્યમાં તેને ઉત્તેજિત કરનાર ભામાશાહનું નામ પણ તેટલુંજ જગપ્રસિદ્ધ વ્યાપ્ત થયેલું છે. દુનિયાનો કોઇ પણ સાચો ઇતિહાસકાર મહારાણા પ્રતાપના નામની સાથે મહામાત્ય ભામાશાહનું નામ પણ ભૂલી શક્યો નથી; અને ભૂલી શકે તેમ નથી. મહારાણા પ્રતાપની સાથે ભામાશાહ માટે પણ આજ સુધીમાં ઘણું લખાયું છે; અને ઇતિહાસકારોએ, કવિઓએ, નાટકકારોએ, ભામાશાહની સ્વામીભક્તિ અને દેશભક્તિનાં ભૂરિ ભૂરિ વખાણ કર્યાં છે. આ બધાનો ઉલ્લેખ કરવાનો આ પ્રસંગ નથી, છતાં **શ્રીયુત કેસરીસિંહજી બારહઠ** નામના એક કવિએ હમણાં બહાર પાડેલ **'પ્રતાપચરિત્ર'**માં પ્રતાપ અને ભામાશાહનો પ્રસંગ જે સુંદરતાપૂર્વક વર્ણવ્યો છે, એની કંઇક વાનગી આ પ્રસંગે આપવાની લાલચને રોકી શકતો નથી.

મહારાણા પ્રતાપ ધનહીન, સાધનહીન બનતાં પોતાના પ્યારા મેવાડનો ત્યાગ કરે છે. ત્યાગ કરતાં કરતાં પણ પોતાની સ્વતંત્રપ્રિયતાને છોડતો નથી; અને પોતાના સાથીઓને સંભળાવે છે :

कछु दिन इमि रहि दूर कहिं, स्थापहिं राज्य स्वतंत्र ।
प्रान रहै तक नहिं रहै, पत्ता तो परतंत्र ॥ ૭૧૧ ॥

પ્રાણ રહેવા સુધીમાં કયારે પણ પરતંત્ર–ગુલામીમાં નહિ રહેવાની પ્રતિજ્ઞા કરતાં પ્રતાપ દેશ છોડી ચાલી નીકળે છે. હૃદયમાં દુઃખનો પાર નથી, પણ સાધનહીન પ્રતાપ માટે દેશ છોડવા સિવાય બીજો શો ઉપાય છે?

પ્રતાપ ઘોડેસવાર થઇ વિદાય થાય છે. તે વખતે જેના વાળ સફેદ થઇ ગયા છે, શરીરથી અશક્ત છે, લાકડીના ટેકાથી ચાલી રહ્યો છે, ચાલતાં ચાલતાં ઠોકરો ખાય છે, એવો એક વૃદ્ધ પુરૂષ પ્રતાપની સામે માર્ગમાં આવીને આડો ઊભો રહે છે. આ વૃદ્ધ પુરૂષ કેવા ભાવપૂર્વક મહારાણા પ્રતાપની સામે આવીને ઊભો છે, એનું વર્ણન કરતાં કવિ કથે છે:

स्वामि-भक्ति-प्रेम धर्यो पूरन हृदय बीच,
देस-अभिमान भर्यो जाकी रग-रग में ।

कीरति को लाडो और मन को उदार गाढो,
भामासाह आडो आय ठाढो भयो मग में ॥ ७३२ ॥

સંધ્યાકાળનો સમય હતો, પ્રતાપે લાકડીના ટેકાથી સામે આવીને ઊભેલા વૃદ્ધ પુરૂષને ન ઓળખ્યો. પ્રતાપ એ વૃદ્ધ પુરૂષને પૂછે છે: "તમે કોણ છો? તમારી જાત શી? તમારૂં નામ શું છે? તમારી ઉપાધિ શી છે? તમારૂં ગામ કયું?" ભામાશાહ પ્રતાપના આ પ્રશ્નોના ઉત્તરમાં જે કહે છે, તે કવિના શબ્દોમાં આમ છે:

बोलि 'जयजीव!' और नजर सप्रेम कीन्हीं,
सेठ के अपार भयो हृदय हुलास है।
हाथ जोरि चर्नन में अरज करन लागो,
चित्रकूट हमारो पुरानो नाथ! वास है।
बनिया है जाति और किंकर को नाम 'भामा',
वर्तमान वास जो यहाँ तें बहु पास है।
पुरुषा हमारे रहे रानन के मंत्री खास,
रावरो दयालु! यह दासन को दास है ॥ ७३४ ॥

'ભામા'નું નામ સાંભળતાંજ પ્રતાપ આશ્ચર્યમાં ગરકાવ થયો. ભામાશાહ એ તો પોતાનો બહુમાન્ય રાજપુરૂષ. ભામાશાહનું સ્થાન પ્રતાપના દરબારમાં, અરે પ્રતાપના હૃદયમાં કેટલું ઊંચું હતું એ પ્રતાપના શબ્દોથી પ્રતીત થાય છે:

बहुत प्रसन्न होइ पातल नजर लीन्ही,
कही महारान तुम बांधव की ठौर हो।
लायक हो बहुत हमारे खास सेवक हो,
जेते हैं हमारे मंत्रि उनके हू मौर हो।

કેટલું બહુમાન! પ્રતાપ કહે છે: તમે તો મારા બંધુને સ્થાને છો, લાયક છો, અમારા ખાસ સેવક છો, એટલુંજ નહિ પણ અમારા અત્યાર સુધીના મંત્રીઓમાં મુકુટ સમાન છો.

પ્રતાપે પોતાનો પ્યારો દેશ છોડવાનું કારણ બતાવ્યું, છતાં ભામાશાહ દેશ નહિ છોડવાને આગ્રહ કરે છે, અને પોતાની હાર્દિક ભકિત પ્રગટ કરે છે. અને જયારે તે માર્ગમાંથી હઠતો નથી, ત્યારે પ્રતાપ કહે છે:

कहै महारान साह ऐसी ही तुम्हारी भक्ति,
तदपि हमारी गल नाहक परो हो तुम।
धर्म के निमित्त सब सेना बलिदान भई,
देखिकै हमारो दुःख नाहक जरो हो तुम।

तुर्क सों लरन नई सेना फिर संचय व्है,
तेतो धन बूढे साह कहँातें भरो हो तुम ?
अपने निवास पर क्यों नहिं फिरो हो पाछे,
ऐसो हठ भामासाह ! नाहक करो हो तुम ॥ ७२७ ॥

ભામાશાહ કહે છે: જે વખતે જન્મભૂમિ વિપત્તિમાં આવી પડી છે, તેને જોઈ હું કેમ સંતાઇ શકું? આવા વિકટ પ્રસંગમાં મારા દેશની અને સ્વામીની યથાશકિત સેવાથી કેમ પાછો પડું? આખરે તે કહે છે:

वित्त अनुसार आज सेवा ही वजाऊँ कहा ?
मालिक के हेत नाथ ! ऊभो विकि जाऊँ मैं ॥ ७३८ ॥

સ્વામીની સેવાને માટે હું ઊભો ઊભો વેચાઇ જવા તૈયાર છું. ધન્ય છે ભામાશાહ! ભામાશાહ પોતાનું સર્વસ્વ મહારાણા પ્રતાપના ચરણોમાં ધરી દે છે. સ્વામિભકિત અને દેશ-ભકિતના આદર્શ સમાન ભામાશાહ ઇતિહાસનાં પૃષ્ઠોમાં પોતાનું અમર નામ કોતરાવે છે. કવિએ ભામાશાહની આ ભકિતની ભૂરિભૂરિ પ્રશંસા કરતાં છેવટે સાચા સ્વામીભકત સુગ્રીવની સાથે તુલના કરતાં કહ્યું છે:

उन किय सेवा लोभ हित, तुम निरलोभ असेस ।
सेवक वर सुग्रीव तें, भामासाह ! विसेस ॥ ७४६ ॥

સેવા બન્નેએ કરી, પરંતુ સુગ્રીવની સેવા લોભના કારણે હતી. ભામાશાહની સેવા નિર્લોભપણાની હતી. એટલા જ માટે સુગ્રીવ કરતાં પણ ભામાશાહ વધી જાય છે. ”



સાહિત્ય-સેવા

પુસ્તકના રૂપમાં જ વાચકોના હાથમાં પુસ્તકોનો થોકડો મૂકવામાં આવે તો જ એ વ્યકિતએ સાહિત્યની સેવા કરી છે, એવું માનવામાં આવે તો અનવસ્થાનો પ્રસંગ ઊભો થશે. ગ્રે નામના કવિએ પોતાના જીવન દરમિયાન પચાસેક જેટલાં અનુવાદ–કાવ્યો લખીને સાહિત્યની જે સેવા કરી છે, તે છપાયેલા કાગળોના મોટા ઢગલાથી થઇ શકતી નથી. આ તત્ત્વ લક્ષ્યમાં રાખવાની જરૂર છે.

—ગોવિંદ સખારામ સરદેસાઈ

બ્રહ્મચર્ય

"બ્રહ્મચર્યનું પાલન સંસારમાં મુશ્કેલ તો છેજ, પણ જો તે જગતમાંથી નિવૃત્ત થઇને પળાતું હોય, તો તેની બહુ કિંમત નથી."

—મહાત્મા ગાંધીજી



દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ!

(લેખક: કવિશ્રી ત્રિભુવનભાઇ ગૌરીશંકર વ્યાસ, રાજકોટ)

[ચારણ જાતિને અધોગતિ–ગ્રસ્ત બનાવવામાં જાગીરના મદની સાથે તેના જીવન–સહચર મદ્ય–દારૂએ કેટલો અગત્યનો ભાગ ભજવ્યો છે; અને ભજવ્યે જાય છે, તેનાથી કોણ અજાણ છે? હમણાં જ મારા એક બાળપણથી પરિચિત સજાતીય સ્નેહી કે જેઓ અમારા પંથકમાં જાતિને ઉપકારક નીવડવાની હું આશા સેવતો હતો, તેમનું દારૂથી થયેલું અધઃપતન મેં નજરો નજર જોયું, ત્યારે તો મારૂં કાળજું કપાઇ ગયું!

ગયા વર્ષથી હિંદના સાત પ્રાંતોમાં કાંગ્રેસી–અમલ શરૂ થતાં મદ્રાસ પ્રાંતમાં સર્વ પ્રથમ દેશના દુશ્મન એ દારૂના દૈત્યનો ફરજિયાત નાશ આરંભાયો. અને ત્યાર બાદ મુંબઇ પ્રાંતમાં પણ પ્રસિદ્ધ ઔદ્યોગિક નગર અમદાવાદમાંથી છેલ્લા ચારેક માસથી તેની કાનૂન દ્વારા બંધી ફરમાવવામાં આવી છે. એ માંગલિક પ્રસંગે કવિશ્રી ત્રિભુવનભાઇએ આ માર્મિક–ઉત્તમ ભાવવાહી કાવ્ય રચ્યું છે. તે આપણા સમાજને પણ બહુ ઉપયોગી જણાતાં અહીં ઊતાર્યું છે. જો કે મહાકવિ ઉમરદાનજી લાળસે દારૂના દુર્ગુણોનું માર્મિક વર્ણન કરવામાં કાંઇ બાકી રાખ્યું નથી, અને એ કવિતાથી આપણો સમાજ બહુધા પરિચિત હોવા છતાં તેની કાંઇ અસર થયેલી જણાઇ નથી. છતાં યે આ નવયુગના જાગરણે પ્રસ્તુત કવિતા કાંઇક અસર નીપજાવી અન્ય સામાજિક કુરૂઢિઓની જેમ દારૂના દુર્ગુણને ફગાવી દેવા આપણા સમાજને વિચાર કરતો કરશે એવી આશા છે. —તંત્રી: ગુજરાતી વિભાગ]

ઝુલણા છંદ

આજ ભારતતણો ગગન ઘનઘોર છે, દુઃખ દારિદ્ર ને દર્દ દળથી,
પીડિત છે બંધુઓ, ભગિનીઓ, બાળકો, વ્યસનના પૂર માંહે વમળથી;
શક્તિ સદ્‌ગુણને નષ્ટ કીધાં અરે! ભ્રષ્ટ કીધું ભલું વતન પ્યારૂં,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ!

અન્ન ખાવા નથી, દૂધ પીવા નથી, વસ્ત્ર પૂરાં નથી અંગ ઉપરે,
જીવનનાં સાધનો જરૂર પૂરતાં નથી, કામનો થાક તે કયાંથી ઊતરે?
હાડ પિંજર સમી નીપજે છે પ્રજા દેશમાં ક્રૂર પેઠો લૂંટારૂં,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ!

જિંદગી વેડફી છે અમારી અરે! પાક તેં સર્વ નાપાક કીધું,
હૃષ્ટ ને પુષ્ટ અમ હિંદ સંતાનનું ઘૂંટડે ઘૂંટડે લોહી પીધું;

ધર્મની ભાવના ધૂળ ભેગી કરી, નીતિને તેં બનાવી બજારૂ,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !

હિંદુને ના ખપે જૈનને ના ખપે, પાક ઇસ્લામને તો ખપે ના,
તોય તેં હાય! પરદેશથી આવીને, આંહી અડ્ડા જમાવ્યા જ શેના ?
વેશ સુધરેલને। ધારીને ભોળવ્યા, જીવન તેં ઝેર કીધું અમારૂં,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !

કુળની કુલીનતા, પુરુષની પુનીતતા, નારીની નમ્રતા તેં હરી છે,
ખીલતાં પુષ્પ શાં બાલુડાંની અરે ! ગાલની લાલીઓ ઊતરી છે;
ઉત્સવો ટાળીને મિજલસો માંડી તેં પ્યાલીનું માન મોટું વધાર્યું;
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા ૂર થા દુષ્ટ દારૂ !

વેશ વિલાયતી ધારી આ દેશમાં તેં પ્રવેશી પ્રતિપક્ષ સ્થાપ્યો,
દેશનાં વેશ, સાદાઈ ને શુચિ તણી ભાવનાને તિરસ્કાર આપ્યો;
યદ્યપિ ભૂખ છતાં મદ્યપી વધી પડયા, દુર્ગુણોનું લઈ છેક લારૂ,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !

રામ ને રહીમને। જાપ જપતી પ્રજા તેમનાં વદન તેં ભ્રષ્ટ કીધાં,
ગલીચ ગાળો વડે એજ મુખથી અરે! કૈંક સન્નારીને કષ્ટ દીધાં;
શ્વાન હડખાયલું હોય એવું કર્યું મનુજનું મગજ તેં તો નઠારૂં,
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !

મુકિતને ઝંખતી ભારતી માત જ્યાં પૂર્ણ સ્વાતંત્ર્યનાં યુદ્ધ માંડે,
કોણ એવો હશે હિંદી જે આ સમે મદ્યના પાનથી ભાન છાંડે !
કષ્ટ હોજો બહુ નષ્ટ હોજો સહુ, કિંતુ ના જોઈએ ભ્રષ્ટ દારૂ;
સર્વ ધર્મો તણી આ ભૂમિથી હવે દૂર થા દૂર થા દુષ્ટ દારૂ !

—"શારદા" દીપોત્સવી-અંક, અકટોબર ૧૯૩૮ માંથી

યુગ-સંદેશ

લેખક : શ્રી જીવણલાલ નાથાભાઈ વરસડા, ભાદરવા (મધ્ય ગુજરાત)

નવયુગની હાકલ આજે મનુષ્ય માત્રને–પછી તે રંક હો યા રાજા, બાળક હો યા વૃદ્ધ, કુલીનશાહીનો માંધાતા હો યા સમાજવાદનો હિમાયતી હો, પરંતુ માનવ-જાત તરીકે જેને જેને આ યુગમાં જીવવું છે, તેને સાંભળ્યે જ છૂટકો છે. કેમકે આજનું વર્તમાન એ આવતી કાલનું ભાવિ બનશે. આજે આકાશ-વાણીના યુગમાં બહેરો માણસ પણ ગમે ત્યાં બેસી આ સંદેશ સાંભળી શકશે, અને જન્માંધ નવી દષ્ટિએ જોઇ શકશે. આજે તો આપણા વડીલોની જૂની દુનિયા અદશ્ય થઇ છે, અને આપણે વિજ્ઞાનની નવી દુનિયામાં મૂકાઇ ગયા છીએ. શ્રદ્ધા આંધળી બની છે, અને બુદ્ધિને નવી દષ્ટિ સાંપડી છે. આજની હવા અને જૂનું માનસ બન્ને વિરોધી તત્ત્વો બન્યાં છે. ચોમેર ક્રાંતિનો ધ્વનિ સંભળાઇ રહ્યો છે. એવા બુદ્ધિવાદના જમાનામાં આપણે આજે જીવી રહ્યા છીએ.

એક બાજૂ વૃદ્ધ સામ્રાજ્યવાદ જાણે કે તેનાં કુકર્મોની શિક્ષા ભોગવતો હોય તેમ રોગી બની વિનાશક માર્ગે ગતિ કરી રહ્યો છે, ત્યારે બીજી બાજૂ લોકશાસનવાદ વધુ યુવાન અને શક્તિશાળી બનતો જતો જોવામાં આવે છે. એવા પ્રચંડ ક્રાંતિના પ્રવાહ વચ્ચે રહીને માનવ-જીવનના ગંભીર પ્રશ્નો આજના માનવીએ ઉકેલવાના છે. અને એ પ્રશ્નો ઉકેલી પોતાના જીવનમાં મૂકવાના છે. માનવજાતિ મુક્તિને માર્ગે પોતાની કૂચ કરી રહી છે, પણ તેના માર્ગમાં જે કેટલાંક આવરણો છે, તે હજારો વર્ષની તેની વેદનાનાં સ્મરણ ચિહ્નો છે. એ રાક્ષસી અવરણોને દૂર કરી આંતર-રાષ્ટ્રીય-દષ્ટિએ આજના જીવન-મરણના ગંભીર પ્રશ્નોનો આપણે ઉકેલ આણવાનો છે.

આત્મરક્ષાના, જીવન-વિકાસના અને વિશ્વ-શાંતિના બહુમૂલ્ય પ્રશ્નો પ્રત્યે ઉદાસીનતા રાખ્યે હવે માનવ-જાતિને પાલવી શકે તેમ નથી. પશ્ચિમનું વિજ્ઞાન આજે માનવ-જીવનમાં તાણા-વાણાની પેઠે વણાઇ ગયું છે. જીવનની ઘણી ખરી જરૂરિયાતો ઉપર આજે તેણે પૂર્ણ કાબુ મેળવી લીધો છે, પરંતુ વિજ્ઞાન દ્વારા કુદરત ઉપર ફતેહ મેળવવા જતાં આજનો માનવી તેનો કેદી બન્યો છે એમ કહીએ તો જરાયે ખોટું નથી. અને તેથી આપણા જીવન-મરણના પ્રશ્નો આજે પહેલાંના કરતાં તદ્દન નિરાળા બન્યા છે. એટલે કે ભૂતકાળમાં જીવવું જેટલું સહેલું હતું, તેટલું જ આજે તે મુશ્કેલ બન્યું છે. જીવનનાં ધ્યેય, સાધનો અને જરૂરિયાતો નવીન ઊભાં થયાં છે. જીવનના માર્ગમાં સ્વપ્ને પણ ખ્યાલ ન હોય તેવી મુશ્કેલીઓ આજે ઊભી થઇ છે.

આજની દુનિયામાં સૌ કોઇ જોઇ શકે છે કે, વિજ્ઞાનીઓને મન પૃથ્વીનો ગોળો એક નાની વસ્તુ બની ગયો છે. એને ધારણ કરનાર કાચબો ને શેષનાગ કોણ જાણે ક્યાં આજે છુપાઇ ગયા છે ! પછી આપણા કવિઓ તેમનું સ્થાન જાણતા હોય તો ભલે ! આકાશ-ઉડ્ડયન પૃથ્વી-પર્યટન, સમુદ્ર-વિહાર એ તો હવે સર્વ સાધારણ વિષય જેવાં બની ગયાં છે. આજે તો મંગળ અને ચંદ્રની દુનિયામાં જવાની મહત્ત્વાકાંક્ષા કેટલાક વૈજ્ઞાનિકો સેવી રહ્યા છે. આજનો કાળા માથાનો

માનવી તો મૃત-સંજીવની વિદ્યાના પણ પ્રયોગ કરવા માગે છે. આજે વગર તારના દૂરદૂરના દેશો વચ્ચેના સંદેશાઓ, ગાયન, નૃત્ય વગેરે સાંભળવું કેટલું સસ્તું બન્યું છે ? પરંતુ **अति सर्वत्र वर्जयेत्** ની પેઠે જગતને ઉપકારક એ વિજ્ઞાન તેને વિનાશને પંથે પણ દોરી રહ્યું છે. અને એના ફળરૂપે અનેક જાતની લડાયક રાસાયનિક સામગ્રી, મનુષ્ય સંહારનાં ઝેરી ગેસ જેવાં સાધનો દુનિયાનાં તમામ પ્રબળ રાષ્ટ્રો તરફથી ઢગલાબંધ તૈયાર થતાં જોવામાં આવે છે અને તેનું પરિણામ વિશ્વ-યુદ્ધમાં આવે તો નવાઇ નહિ. આજે દુનિયાનાં મોટાં મોટાં રાજ્યો અરસપરસ મિત્રતાના કરાર કરે છે. પરંતુ તેથી એમ માની લેવાનું નથી કે, યુદ્ધ આવવાનું નથી. એવા કરાર કરવા છતાં એ રાજ્યો અંદરખાનેથી લડાઇને પંથેજ દોરાઇ રહ્યાં છે. એમની વચ્ચે પરસ્પર સાચો વિશ્વાસ અને મિત્રતાની ભલી લાગણી હોય તેમ જણાતું નથી. આ અંકના હિંદી વિભાગમાં મુખ્ય તંત્રી મહોદયે **भावी महायुद्ध** નામક લેખમાં ફ્રાંસ અને જર્મનીની ભયંકર કિલ્લેબંદીનું જે વર્ણન કર્યું છે, તે ઉપરથી એવાં બળવાન રાજ્યો યુદ્ધસામગ્રી ઘટાડવાને બદલે નવી નવી યોજનાઓ અમલમાં મૂકી દિન પ્રતિદિન વધારતાંજ જાય છે એમ આપણે જોઇ શકીએ છીએ. તેમના મિત્રતાના કરારની પાછળ પવિત્રતાની ભાવના બિલકુલ નથી. પરંતુ તેમાં એ સ્વાર્થી સામ્રાજ્યોની રાજ-રમત અને ભેદનીતિનો ઢાંકપીછોડો છે. એટલે મિત્રરાજ્યો કયાં અને દુશ્મન રાજ્યો કયાં તે કહેવું આજે મુશ્કેલ બન્યું છે. દુનિયાનાં ઘણાં રાજ્યો પોતાના બજેટનો મોટો ભાગ યુદ્ધ-સામગ્રીમાં રોકીને બલ્કે લોનો લઇને પણ બીજાથી પાછળ ન રહી જવાય તેટલા માટે પોતાની શક્તિ વધારવા આગળ આગળ દોડતાં અને તેની ચિંતામાં ઘેરાયેલાં જોવામાં આવે છે. પરંતુ આ બધી દોડધામ થાય છે શા માટે એ પ્રશ્ન મહત્ત્વનો ખુલાસો માગે છે.

આજે ખાસ કરીને પશ્ચિમની પ્રજામાં વ્યાપારી દૃષ્ટિએ ઇર્ષાનો દાવાનળ સળગાવી દીધો છે; અને વિજ્ઞાનની શોધોએ તેમાં ઘી હોમ્યું છે. પોતાના પુરૂષાર્થમાંજ માનનારી એ પ્રજા આજે એ રીતે અવળે માર્ગે દોરાઇ રહી છે. જર અને જમીનની ભૂખી એ પ્રજાને કાચા માલની ખરીદી માટે કાયમનાં બજાર જોઇએ છે. આ સ્વાર્થી નીતિ સિદ્ધ કરવા માટે પોતાની રાજ્યસત્તા વધુ બળવાન બનાવવાની તેમને ખાસ જરૂર ઊભી થઇ છે, અને તેને માટે ગમે તે ભોગે પોતાનાં પાડોશી નિર્બળ રાજ્યોને દબાવીને અથવા ગળી જઇને ફેસિઝમ કે ડિકટેટરશાહીને નામે પોતાની શક્તિઓનું મજબૂત સંગઠન કરી બીજાં સ્વતંત્ર અને સમૃદ્ધ દેશોને પણ ગુલામ બનાવી બળવાન રાજ્યસત્તા દ્વારા ચૂસણનીતિ ચાલુ રાખવાના નીચ પ્રયત્નોની તેમની વચ્ચે તીવ્ર હરિફાઇ જામી છે. ૧૯૧૪ના વિશ્વયુદ્ધ પછી આજ સુધીમાં આપણે આવી આંતરરાષ્ટ્રીય અને આંતરદેશીય બાબતો વિષે ઘણું ઘણું સાંભળ્યું છે અને હાલ જે નવા નવા બનાવો બને છે, તે રાજકીય દૃષ્ટિએ સમસ્ત દુનિયાનું ધ્યાન ખેંચી રહ્યા છે.

એટલે કે, એક દેશમાં ઉથલપાથલ થાય તો તેની અસર દરેક દેશ પર થાય, તેવા સંજોગોમાં આજની દુનિયા મૂકાઇ ગઇ છે. કારણ કે યંત્રવાદને લીધે પ્રત્યેક દેશ એકબીજાની બિલકુલ નજીક આવી ગયો છે. વિજ્ઞાનની છેલ્લામાં છેલ્લી શોધોએ દુનિયાને ભયભીત બનાવી મૂકી છે. માનવ વિનાશનાં ચક્રો ગતિ-માન બન્યાં છે—માનવ સંહારનું મહાભારત

નજીક ને નજીક આવતું દીસે છે. દુનિયા જાણી ગઇ છે કે, તેને આ સ્થિતિમાં મૂકી પાયમાલીને પંથે દોરનાર રાક્ષસી સામ્રાજ્યવાદ અને તેના બુરખા નીચે ઢંકાયેલો સરમુખત્યારવાદ છે. લાખો–કરોડો નિર્દોષ માનવીઓના જીવન-રક્તથી રંગાયેલા આ સામ્રાજ્યવાદ અને સરમુખત્યારવાદ જ્યારે પોતાની મસ્તીમાં અંધ બની દુનિયાને સંહારને માર્ગે લઇ જઇ રહ્યા છે, ત્યારે તેને શાંતિ, સુવ્યવસ્થા અને ઉન્નતિની દિશા બતાવનાર એથી વિશેષ બળવાન કોઇ તત્ત્વ આ દુનિયામાં અસ્તિત્વ ધરાવે છે કે નહિ, એ સ્વાભાવિક પ્રશ્ન પણ આપણી સન્મુખ ખડો થાય છે. તેનો સીધોસાદો ઉત્તર એકજ છે કે, તેનું નામ લોકશાસનવાદ કે પ્રજાસત્તાવાદ છે. તે આજના વિજ્ઞાનના અનિષ્ટને અટકાવે, અત્યારના યુગને બંધ બેસે, જગતના સળગતા જ્વાળામુખીને ઓલવી શકે તેવો રાજમાર્ગ છે. બલ્કે દુનિયાના દરેક દેશની ઊછરતી પ્રજાને વિશ્વશાંતિનો–ઐકયનો સાચો પાઠ શીખવી **વસુધૈવ કુટુંબકમ્**ની ભાવના તે સિદ્ધ કરશે. આજે જોકે લોકશાસનવાદ અને સામ્રાજ્યવાદ વચ્ચેનું ઘર્ષણ દિન-પ્રતિદિન વધતું જાય છે, પરંતુ એ તો એની કસોટી છે. છેવટે તેનોજ વિજય થવાનો છે. આજે કોઇ પણ દેશ કે કોઇ પણ પ્રજા, સામ્રાજ્યવાદ કે સરમુખત્યારવાદના ભયથી મુક્ત નથી. આપણા ભારતવર્ષની વાત કરીએ તો તેમના યંત્રવાદે આપણા ગૃહઉદ્યોગ અને વ્યાપારને જમીનદોસ્ત કર્યા છે, અને તેનો કરૂણ ઇતિહાસ આપણી જાણ બહાર નથી. આજનાં સુધરેલાં રાષ્ટ્રોની ચૂસણનીતિ, દમનનીતિ અને કુટિલતાભરી રાજનીતિથી કોઈપણ દેશની પરાધીન પ્રજા હવે અજાણ રહી નથી. એ પરાધીન પ્રજાએ કેટલાક દેશોમાં તો રાજમુકુટ ધૂળમાં મેળવી દીધા છે, અને તેમાંથી પ્રજાસત્તાવાદનો જન્મ થયો છે.

હવે તો યુગના પ્રવાહની સાથે રાજકીય, સામાજિક, આર્થિક અને કેળવણી આદિ બધી બાબતોમાં પુનર્રચના થવાનાં સ્પષ્ટ ચિહ્નો આપણા પરાધીન દેશમાં પણ આપણી સામે દેખાઇ રહ્યાં છે. જેમ બીજા દેશો પોતાની સ્વતંત્રતા અને સંસ્કૃતિના બચાવ અર્થે આત્મરક્ષાના વિવિધ પ્રયોગ કરી રહ્યા છે, તેમ ઘણા કાળથી ગુલામીમાં રીબાતી આપણા દેશની પ્રજા પણ વિશ્વવંદ્ય મહાત્મા ગાંધીજીની આગેવાની નીચે પોતાની ઘોર નિદ્રા છોડી જાગૃત બની છે, અને નૂતન યુગમાં પોતાનું સ્થાન અને સ્વમાનભર્યું જીવન સહીસલામત જળવાય તેવા નિર્ભય પ્રયોગો દ્વારા કોંગ્રેસ-રાજ્યના છત્ર નીચે કૂચ-કદમ કરતી દેખાય છે. એટલુંજ નહિ પણ એ પ્રજાવાદનાં પૂર દેશી રાજસ્થાનોમાં પણ આગળ વધતાં આજે જોઇ શકાય છે. અને તેને લીધે રત્નજડિત રાજમુકુટો ખરતા તારાની માફક અસહાય બની અદૃશ્ય થવાની અણી પર આવી પહોંચ્યા હોય તેમ દેખાય છે. તોપ, તલવાર કે બીજી કશી યુદ્ધ સામગ્રી વિના આપણા દેશનો સંગઠિત બનેલો પ્રજા-સમુદાય એમની નિરંકુશ રાજસત્તાનો કોળિયો કરી રહ્યો છે. એ નિરંકુશ સત્તાવાદ અને પ્રજા-સમુદાયના સ્વાધીનતાવાદ વચ્ચેના યુદ્ધમાં સ્વાધીનતાવાદનો વિજય તે સત્ય અને અહિંસાનોજ વિજય સૂચવે છે. અને તે આ નવયુગનું ઓછું આશ્ચર્ય નથી.

આ બધું કહેવાનો હેતુ એટલોજ છે કે આવા ભીષણ જીવન-સંગ્રામના યુગમાં આપણે ચારણો અંધારામાં બેસી રહીએ કે બાપદાદાના કમાયેલા રોટલા બેઠા બેઠા ખાઇએ અને નિર્ભય રીતે મીઠી નિદ્રા લીધા કરીએ તે હવે ચાલવાનું નથી. પ્રારબ્ધનો યુગ હવે પૂરો થઇ પુરૂષાર્થના યુગનાં મંડાણ થયાં છે. એ નવીન યુગમાં આપણું સ્થાન કયાં રહેશે

તેનો આપણે દીર્ઘદષ્ટિ રાખી વિચાર કરવો જોઇએ. આપણે ઘણું ઊંઘ્યા. હવે તો એ નિદ્રાને ખંખેરવી પડશે. દુનિયામાં સૌના જાગ્યા પછી પણ સ્વમાનપૂર્વક મનુષ્ય જીવન જીવવાની આપણને ઇચ્છા હોય તો જેમ બને તેમ જલ્દી જાગવું આપણા માટે સલામતીભર્યું છે.

આપણા બાપદાદાઓ આમ હતા ને તેમ હતા, તેના રાગડા આજની દુનિયા સાંભળવાની નથી. એ તો આપણી અત્યારની નીતિ-રીતિ જોઇ આપણું સ્થાન નક્કી કરશે. આપણા દેવત્વના દાવાથી આજની દુનિયા અંજાવાની નથી. તેની સાથે આજની દુનિયા જે સંજોગોમાં મૂકાઇ છે, તેનાથી આપણે પર નથી એ નિર્વિવાદ સત્ય પણ આપણે કબૂલ કરવું પડશે. આજના પ્રશ્નો આપણે કાલ ઉપર છોડીશું તો જીવનના ક્ષેત્રમાં દેવાળિયા બનવાનો આપણા માટે વિષમ પ્રસંગ ઊભો થશે એ નિર્વિવાદ છે. અને તેમ બનતાં આપણી ભાવિ પ્રજા આપણને દોષિત ઠરાવશે. એટલે કે આપણે પિતા તરીકેનું ઋણ અદા કરીને નહિ પણ વધારીને બલ્કે આપણી માતૃભૂમિને ભાર રૂપ જીવન જીવીને માનવજાતિ તરીકેની ફરજ અદા કર્યા સિવાય આપણી પ્રજા માટે કલંકિત વારસો મૂકી ચાલ્યા ગયેલા ગણાઇશું. અને ભાવિના ઇતિહાસમાં આપણું સ્થાન ભારતના સાચા સંતાન તરીકે નહિ, પણ પેટપાળુ પામરો તરીકે હશે એ ચોક્કસ છે. જુઓને, છેલ્લી બે સદીમાંજ આપણી કોમે ભિક્ષુક-વૃત્તિને મહત્ત્વ આપવાથી આપણો હજારો વર્ષનો ઝળકતો ઇતિહાસ કેટલો ઝાંખો બન્યો છે !

હિંદુ પ્રજાના એક શ્રેષ્ટ અંગ તરીકે, ચારણ જાતિ તરીકે, નવયુગનું જીવન જીવવા માટે આપણે આપણા આજના કર્ત્તવ્યનો વિચાર કરવાનો છે. બાબા આદમના જમાનાની વાતો કરતા ઘેનમાં પડયા રહે હવે આપણને પાલવે તેમ નથી. આપણે જે વ્યક્તિગત રાજસત્તાને આપણું આશ્રય સ્થાન માની રહ્યા છીએ, તેની આજે શી હાલત છે તે આપણે સમજી લેવી જોઇએ. અને એ નામના ક્ષત્રિય રાજમુકુટોને દીપ્તિમાન બનાવનાર રત્નો તરીકે આપણું તેમાં શું સ્થાન છે; અથવા સીધા અર્થમાં કહીએ તો એ નરેશોને આપણા ઉપર કેટલું હેત છે, તેનો વ્યકિતગત હિતની દૃષ્ટિએ નહિ, પણ સમષ્ટિ હિતની દૃષ્ટિએ આપણે વિચાર કરવાનો છે. પાંચ-પચીસ વ્યકિતઓને કવિ તરીકે તેમની પાસે રાખે તેનાથી આપણે ફૂલાઇ જવાનું નથી, પરંતુ રાજા અને પ્રજાના હૃદયમાં એ કવિઓનું આજે શું સ્થાન છે, તેનો આપણે ઊંડો વિચાર કરવાનો છે. આજે તો જેના પૂર્વજોને ગયેલું રાજ્ય પાછું મેળવી આપવામાં ચારણ જાતિએ મહત્ત્વનો ભાગ લીધો છે, તે **મેવાડના નિષ્કલંકી રાણાએજ** ઊઠીને સનંદો કે પટ્ટા ન હોવાનું કારણ બતાવી મેવાડી ચારણોની જાગીરો ઉપર કાળી નજર કરવા માંડી છે ! એ સ્થિતિમાં બીજા ક્ષત્રિય નરેશોની તો વાતજ શી કરવી ? અને તેમ છતાં યે જાણે કે ઘરના કે ઘાટના ન હોઇએ તેમ એ નિરંકુશ નરેશોની સત્તાના પીઠ થાબડનારા ગણાઇ અન્ય જાતિઓનાં બલ્કે સરદાર વલ્લભભાઇ પટેલ જેવા સમદર્શી લોકનેતાઓનાં આપણે વારંવાર મહેણાં સાંભળવાં પડે છે, એ શું આપણા માટે ઓછા દુઃખનો વિષય છે !

સારાંશ કે, આજનો યુગ સંગઠિત બની આંતરજાતીય સંબંધ સુધારવાનો છે–યુગનાં વહેણ ઓળખી નવજીવન પ્રાપ્ત કરવાનો છે.

કૂપમંડુકની સંકુચિત દૃષ્ટિ રાખ્યે આજે પાલવે તેમ નથી. મારૂ, સોરઠિયા કે એવા બીજા ક્ષુદ્ર ભેદો તોડી અભિન્ન બનીને જાતિના વિષમ પ્રશ્નો આજે આપણે ઊકેલવાના છે, બલ્કે ભૂતકાળનાં સામાજિક અને જાતિદ્રોહના પાપોનું પ્રાયશ્ચિત કરી જગતના ભાવિ જીવન-સંગ્રામમાં આપણે હરોલે ઊભવાનું છે–સંકુચિત ભાવનાઓથી પર બની મનુષ્યત્વ કેળવવાનું છે–ખુશામદખોર ગુલામી–માનસ છોડી વ્યક્ત-સ્વાતંત્ર્યનાં આપણે મૂલ્ય ચૂકવવાનાં છે.

નામરૂપનો મોહ છોડી જાતિ અને દેશને માટે પોતાના સર્વસ્વની આહુતિ આપનારા દેશભક્ત ઠાકુર કેસરીસિંહજી સોદા જેવા બીજા પુરૂષો આપણામાં સમાજની વેદી ઉપર આગળ આવશે, ત્યારેજ એવા બત્રીસ લક્ષણા પુરૂષોના તપ અને આત્મભોગથી પ્રસન્ન થયેલ ઇશ્વર આપણી ભાવિ પેઢીને સાચા આશીર્વાદ આપશે. અને ત્યારેજ આપણું જીવન આપણને ભારરૂપ ન જણાતાં ઇશ્વરની બક્ષીસ સમું જણાશે–ત્યારેજ આપણે વિરાટનાં દર્શન કરતા જીવન-મુક્ત બનીશું–અહંકારને તજી અભેદને માર્ગે વિચરી સત્યનો સાક્ષાત્કાર કરીશું–કર્મયોગને માર્ગે આપણે સૌને દોરીશું અને **'સાચાશિવ'**ને પ્રસન્ન કરીશું–પ્રભુના પ્યારા પુત્રો બની સ્વતંત્ર ભારતનું સ્વપ્ન સિદ્ધ કરીશું. અને ત્યારેજ સ્વતંત્રતાના, અભયતાના મંત્રો જીવનમાં મૂકી શક્તિમાતાનાં સાચા પુત્રો ગણાઇ સિદ્ધ ચારણોના વારસ હોવાનો દાવો આપણે કરીશું. એ શુભ દિવસ નજીકમાં આપણે જોઇ શકીએ એવી પરમાત્મા પ્રત્યે કાં પ્રાર્થના ન કરીએ ?



ભારતીય સંસ્કૃતિ : પુરૂષાર્થ

સુમેરિયન, એસિરિયન, ઇજિપ્શિયન આદિ જૂની સંસ્કૃતિઓ સ્મૃતિશેષ થયા છતાં ભારતીય સંસ્કૃતિ ટકી રહી છે. પરંતુ આપણી સંસ્કૃતિએ આધ્યાત્મિકતા અને અનાસક્તિ ઉપર હદ કરતાં વધારે ભાર મૂકયો. જેને પરિણામે સમાજે નિવૃત્તિમાર્ગ ગ્રહણ કર્યો, અને સર્વત્ર નિષ્ક્રિયતા વ્યાપી. આત્યંતિક ત્યાગ અને સંયમ એ અધિકારીનો આદર્શ છે, ત્યારે સમષ્ટિનો અભ્યુદય તો બુદ્ધિયુક્ત સતત્ પુરૂષાર્થમાં જ છે.

(રાજકોટમાં જુલાઇ ૧૯૩૮ માં થયેલ પરિવ્રાજક સ્વામી શ્રી શંકરાનંદ અને શ્રી મણીલાલ પરીખનાં ભાષણોમાંથી)



બૃહદ ગુજરાતના જ્ઞાતિ-સમાચાર

તા૦ ૧૧-૧૧-૩૮ ના રોજ શ્રી કૃષ્ણ-કુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય (ભાવનગર) માં શ્રી ચા૦ હિ૦ સભાની કાર્યવાહક સમિતિ તથા શ્રી વિદ્યાલય વ્યવસ્થાપક સમિતિની બેઠકો મળી હતી.

ચારણુ હિતવર્દ્ધક સભાનીકાર્યવાહકસમિતિની બેઠકમાં હાજરી આપનારાઓનાં નામો—

૧ શ્રી ઠારણુભાઇ મહેડુ, પ્રમુખ, ૨ શ્રી દૂલાભાઇ કાગ, ઉપપ્રમુખ, ૩ શ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, ઉપપ્રમુખ, ૪ શ્રી હરદાનભાઇ નરેલા, ૫ શ્રી નારણુભાઇ રોહડિયા, ૬ શ્રી પિંગલશીભાઇ પાયક.

વિદ્યાલય-વ્યવસ્થાપક સમિતિની બેઠકમાં હાજરી આપનારાઓનાં નામો—

૧ શ્રી ઠારણુભાઇ મહેડુ, પ્રમુખ, ૨ શ્રી દૂલાભાઇ કાગ, ૩ શ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, ૪ શ્રી હરદાનભાઇ નરેલા, ૫ શ્રી જીવાભાઇ શામળ, ૬ શ્રી રવાભાઇ બારહટ્ટ, ૭ શ્રી પિંગળશીભાઇ પાયક.

કા૦ સ૦ ની બેઠકમાં પસાર થએલા ઠરાવો—

આ સમિતિ ઠરાવે છે કે શ્રી ચા૦ હિ૦ સભાનું આગામી પંચમ અધિવેશન ગુજરાતમાં યોગ્ય સ્થળે વૈશાખ અથવા જેઠ માસમાં કરવું.

૨ શ્રી કૃષ્ણુકુમાર-ચારણુ-વિદ્યાલય માટે રજવાડાંઓમાં ફંડ ઊઘરાવવા માટે જનાર પ્રતિનિધિમંડળના સભ્યોની પૂર્ણ અનુમતિ સાથે તે કાર્યની શરૂઆત અર્થે પોષ સુદ ૨ ની તિથિએ પ્રતિનિધિમંડળે જવું, એમ આ સમિતિ નક્કી કરે છે.

૩ આ સમિતિ સખેદ નોંધ લે છે કે વારંવાર કહેવામાં આવ્યા છતાં ભાવનગરના રાજકવિ શ્રી હરદાનભાઇ પિંગલશીભાઈ નરેલાએ પોતાની પાસે ઘણાં વર્ષોથી થાપણ તરિકે રહેલા વિદ્યાલય ફંડના રૂ૦ ૮૫૫ (લગભગ) હજુ સુધી આપ્યા નથી. ફરીથી આ બેઠક પ્રસંગે કહેવામાં આવતાં શ્રી હરદાનભાઇની સદરહુ રૂપિયા ચાલુ વર્ષના પોષ સુદ ૨ સુધી માં આપી દેવાની ખાત્રીવાળી ખાસ વિનંતિ ઉપર ધ્યાન આપીને તે મુદત સુધીમાં સદરહુ રૂપિયા આપી દેવાની આ સમિતિ શ્રી હરદાનભાઇને ભલામણ કરે છે, અને આશા રાખે છે કે શ્રી હરદાનભાઇ આ વખતે પોતાના વચનનું જરૂર પાલન કરશે.

૪ થોડાક બિનજવાબદાર માણસોએ સંસ્થાને નામે (સંસ્થાની પરવાનગી લીધા વિના) નાણાં ઊઘરાવેલ છે, એવી જાણ થતાં આ સમિતિ ઠરાવે છે કે આ બાબતમાં એક ચેતવણી પ્રસિદ્ધ કરી જનતાને માર્ગદર્શન કરાવવા માટે મંત્રીએ યોગ્ય કરવું.

૫ આ સમિતિ ઠરાવે છે કે, મોભા (ધોળકા)ના રહીશ શ્રી વૃંદાવનભાઇ જટાશંકર શાસ્ત્રીએ લખેલ 'સાંઇ નેહડી'ની વાત સંસ્થાને ખર્ચે છપાવી પ્રસિદ્ધ કરવી.

૬ આ સમિતિને એક સૂચન દ્વારા જાણુ-વામાં આવ્યું છે કે હાલમાં શ્રી અ૦ ભા૦ ચારણુ સમ્મેલનના મુખપત્ર તરીકે જે 'ચારણુ' ત્રિમાસિક પત્ર પ્રસિદ્ધિ થાય છે, તે પત્રના ગુજરાતી વિભાગની છપાઇ, પ્રસિદ્ધિ તથા અન્ય વ્યવસ્થાને અંગે જો કંઇપણુ ખોટ શ્રી અ૦ ભા૦ ચારણુ-સમ્મેલન ને આવે તો શ્રી ચા૦ હિ૦ સભાએ તે ખોટની ભરપાઇ અર્થે કંઇક જવાબદારી પોતાના ઉપર લેવી.

આ બાબતમાં સંપૂર્ણ વિચારણા કીધા પછી આ સમિતિ એમ માને છે કે અત્યારના

સંજોગોમાં શ્રી ચા૦ હિં૦ સભા આવી જાતની જવાબદારી પોતાને શિર લેવાને અશક્ત છે.

૭. 'શ્રી હાલાર મારૂ ચારણ મંડળ' ના રિપોર્ટના પૂંઠાની અંદર તથા કવિરાજ શ્રી માવદાનજી ભીમજીભાઇ રતનુએ રચેલા પુસ્તક 'શ્રી યદુવંશ પ્રકાશ' માં ચારણોના પાંચ ભેદો વિષે જે હકીકત પ્રસિદ્ધ થઇ છે તેમાં રીતરિવાજ, પહેરવેશ વગેરેનું જે લખાણ છપાયું છે તેનાથી ઘણા બંધુઓની લાગણી દુઃખાઇ છે એમ જાણવામાં આવતાં આ સમિતિ 'શ્રી હાલાર મારૂ ચારણ મંડળ'ના પ્રમુખ, મંત્રી તેમજ અન્ય કાર્યકરો તથા કવિરાજશ્રી માવદાનજી ભીમજીભાઇ રતનુ (કાળાવડ) ને ખાસ વિનંતિ કરે છે કે ચારણ જાતિના ઐક્ય તથા ઉન્નતિને લક્ષમાં રાખીને આવી લાગણી દૂભવનારી વસ્તુઓ પ્રસિદ્ધ ન કરવાની કાળજી રાખવાની કૃપા કરવી.

શ્રી વિ૦ વ્ય૦ સમિતિની બેઠકમાં પસાર થએલ ઠરાવો—

૧ શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલયના ગૃહપતિ તરફથી વિદ્યાલયના મકાનમાં વધારો કરવાની થએલ માગણીને આ સમિતિ યોગ્ય માને છે અને ઠરાવે છે કે પ્રતિનિધિમંડળ રજવાડાંઓમાં જઇ આવી મદદ મેળવી આવે ત્યાં સુધી આ કાર્ય મુલત્વી રાખવું. પરંતુ કોઇ સંજોગાવશાત્ પ્રતિનિધિમંડળ ન જઇ શકે તો આવતા વર્ષે (સં૦ ૧૯૯૫ ના ચૈત્ર સુદ ૧ પછી) શ્રી પ્રમુખ સાહેબની પરવાનગી લઇને યોગ્ય મકાન-વધારો કરવો.

૨ વિદ્યાલયના ગૃહપતિ તરફથી વિદ્યાલયની દક્ષિણ બાજૂની પડતર દરબારી જમીન ખરીદ કરી લેવાની સૂચના મળતાં સદરહુ જમીન ખરીદવાનું આ સમિતિ યોગ્ય માને છે તથા ઠરાવે છે કે ગૃહપતિએ આ બાબતમાં યોગ્ય પગલાં લેવાં.

૩ ભાડલાના વિદ્યાર્થી વાલાભાઇ સાજણની રૂબરૂ અરજ ઉપરથી આ સમિતિ ઠરાવે છે કે વિદ્યાર્થી મજકુરે નિયમ મુજબ વિદ્યાલયમાં દાખલ થવાની શરતો પૂરી પાડી નથી, છતાં પણ તેના સ્થિતિ-સંજોગોને ધ્યાનમાં લઇ તેને વિદ્યાલયમાં બિલકુલ માફી વિદ્યાર્થી તરિકે સગવડ આપવી.

૪ રામપરાના વિદ્યાર્થી રામદાન દેવીદાન લાંગાની રૂબરૂ અરજ ઉપરથી તેના સ્થિતિ-સંજોગોને ધ્યાનમાં લઇ તેને વિદ્યાલયમાં સગવડ આપવાનું આ સમિતિ ઠરાવે છે.

શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલયમાં પોષ સુદ ૯ ના રોજ તેનો વાર્ષિક મહોત્સવ ઊજવાયો.

શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય માટે ફંડ ઊઘરાવવા જનાર પ્રતિનિધિમંડળે હજુ સુધી કંઇ કર્યું નથી, એ ઘણી દુઃખની વાત છે. કવિરાજ શ્રી રામદાનજી તૈયાર છે, પણ બીજા સભ્યોની અગવડતાને અંગે વિલંબ થઇ રહ્યો છે.

શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય માટે ફંડ ઊઘરાવવા તથા શ્રી ચા૦ હિં૦ સભાના પ્રચાર અર્થે શ્રી જયમલદાનજી શિવદાનજી પાયક પ્રથમ ગુજરાતના પંચમહાલ, ખેડા તથા અમદાવાદ જિલ્લાઓમાં ફરી આવી હમણાં થરાદરી, વઢિઆર તથા ઉત્તર ગુજરાતને પ્રવાસે જઇ આવ્યા. સર્વે ચારણોએ તેઓને સારી સહાય આપી હતી.

શ્રી મેરૂભા મેઘાણંદભાઇ લીલાને તેમની ચારણસાહિત્ય અને લોકસાહિત્યની સેવા બદલ પોરબંદરવાળા શાહ સોદાગર શ્રી નાનજીભાઇ કાળીદાસ મહેતા તરફથી એક સુવર્ણચંદ્રક (સોનાનો ચાંદ) અર્પણ કરવામાં આવ્યો. આ ચંદ્રક અર્પણ કરવાની ક્રિયા પોરબંદરના મહારાણા શ્રી નટવરસિંહજી સાહેબ બહાદુરના શુભ હસ્તે તા૦ ૮-૧-૩૯ ના રોજ પોરબંદર મુકામે થઇ હતી.

લાઠી (કાઠિયાવાડ) ના સાહિત્યપ્રેમી યુવાન ઠાકોર સાહેબે પણ મેરૂભાને તેમની ઉપરોક્ત સેવા-યોગ્યતા બદલ ૧૦૦ રૂપિયાનું વર્ષાસન બાંધી આપી હમણાં પોતાના રાજકવિ બનાવ્યા છે.

ગોંડળના યુવાન કવિશ્રી યોગી કૃત ' મે'લોના મે'લથી વાલી અમને અમારી ઝુંપડી ' નામક લોકપ્રિય ગીત શ્રી મેરૂભા લીલાએ 'યંગ ઇંડિયા રેકર્ડ્ઝ'માં ડી૦ એ૦ ૫૫૧૪ નંબરની રેકર્ડમાં ચારેક માસ પૂર્વે ઊતરાવ્યું હતું, એ રેકર્ડ બહાર પડી ચૂકી છે. હજારો હૈયાંને હલાવી મૂકનાર એ ગીતની રેકર્ડો સુખી અને સંગીતપ્રેમી ચારણ બંધુઓ પોતાને ત્યાં વસાવવાનું ચૂકે નહિ.

સામરડા (પાલણપુર રાજ્ય) નિવાસી શ્રીયુત ખેતદાન પ્રતાપસિંહ કળોટ કે જેઓ મેટ્રિક થઇને પાંચ છ વર્ષથી વડોદરા રાજ્યના પોલીસ ખાતામાં જોડાયેલા છે, તેઓ ચાલુ સાલે વડોદરાની પોલીસ ટ્રેનિંગ સ્કૂલમાં ફર્સ્ટ કલાસમાં પાસ થયા છે.

અ૦ ભા૦ ચા૦ સંમેલનના પંચમ અધિવેશન (રાજકોટ)ના સંક્ષિપ્ત હેવાલ સાથેનો ચા૦ હિ૦ સભાના ચતુર્થ અધિવેશન (રાજકોટ) નો સુંદર-દળદાર રિપોર્ટ પ્રસિદ્ધ થઇ ગયો છે. ચા૦ હિ૦ સભાના જે મેમ્બર બંધુઓને તે ન મળ્યો હોય, તેમણે તેના મંત્રીજીને લખીને મંગાવી લેવા તજવીજ કરવી.

એક ઉત્તમ સામાજિક સુધારો

મોડવદર (કચ્છ)ના વતની કવિશ્રી રવાજી મલુજી રત્તુએ તેમનાં દાદીમા શ્રી ગંગાબાઇનો સ્વર્ગવાસ થતાં કારજ કરવાના વિકૃત રિવાજને તિલાંજલી આપી ૪૨૫) કોરી ધર્માદા આપી છે. તેમણે આવી જાહેર હિંમત બતાવી જ્ઞાતિમાં જે ઉત્તમ દાખલો બેસાડયો છે, તે બદલ અમારાં હાર્દિક અભિનંદન. અન્ય યુવાન બંધુઓ આનો દાખલો લેશે ?

શોક-સમાચાર

સ્વ૦ કવિશ્રી શાર્દૂલજી ગાંગડા

ઉત્તર ગુજરાતમાં બ્રાહ્મણવાડા ગામના નિવાસી કવિશ્રી શાર્દૂલજી રૂપશીભાઇ ગાંગડા વિગત પોષ સુદિ ૧૫ ને ગુરુવારને દિવસે ૬૨ વર્ષની ઉંમરે દેવલોક પામ્યા. સમસ્ત ઉત્તર ગુજરાત અને વઢિયાર પંથકમાં એ પ્રાચીન શૈલીના અંતિમ કવિ અને અજોડ વાર્તાકાર હતા. જૂની કવિતાઓના તો તેઓ ભંડાર હતા. હજારો કવિતાઓ તેમને કંઠાગ્ર હતી. પાટણવાડા પંથકમાં રાજપૂત અને અન્ય સમાજમાં બહુમાન હોવા છતાં તેઓ એક નિરભિમાની અને સાદાઇથી ભરપૂર ભકત ચારણ હતા. જૂના જમાનામાં ઊછર્યા હતા, છતાં તેઓ સમયાનુકૂલ સુધારાને માનતા. તેમણે કન્યાવિક્રય સંબંધી એક કાવ્યગ્રંથ પણ લખ્યો છે. અમારા તો તેઓ ખાસ મુરબ્બી હતા. તેઓ પાછળ બે નાની ઉંમરની દીકરીઓ મૂકી ગયા છે.

તેમનાં પત્નીનો ગયે વર્ષે કરુણ રીતે દેહાંત થયેલો. એમના નિધનથી ચારણ કોમને ભારે ખોટ પડી છે. પ્રભુ એમના આત્માને શાંતિ આપો.

સ્વ૦ સર સયાજીરાવ ગાયકવાડ

વડોદરાના વિશ્વવિખ્યાત નરેશ સર સયાજીરાવ ૭૬ વર્ષની ઉંમરે સ્વર્ગસ્થ થયા. હિંદમાં ઘણાં દેશી રાજ્યો છે, પરંતુ શ્રીમંત સયાજીરાવે પ્રજાની સર્વાંગીણ ઉન્નતિ માટે જેટલું કર્યું છે, તેટલું તેમાંના કોઇપણ નરેશે કર્યું નથી. જો કે વડોદરા રાજ્યમાં વસંતા ચારણોની જાગીરો-ગિરાસ વગેરે આ મહાન નરપતિના શિક્ષાગુરૂ ઇલિયટના પ્રતાપે નામશેષ થતાં તેમનો ગુજરાતના છેલ્લા એક હજાર વર્ષના ઇતિહાસમાં સુવર્ણકાળ રૂપે ગણાયેલો ૬૪ વર્ષનો સુદીર્ઘ રાજ્યકાળ ચારણો માટે તો દુઃખદ જ નીવડયો છે. છતાં યે શ્રીમંતે પછાત કોમોને કેળવણી આપવા માટે ઉદાર સવલતો આપી હતી, અને તેમાં ચારણજાતિનો પણ સમાવેશ થતો હોવાથી તે દ્વારા બે એક બંધુઓ ઊંચી કેળવણી મેળવી શકયા છે, અને બીજાઓ માટે તેનાં દ્વાર ખુલ્લાં રાખ્યાં છે. એટલે તેટલા પૂરતી ચારણ જાતિ તેમની આભારી છે. પ્રભુ એ પ્રજાપાલક મહાન્ નરપતિના આત્માને શાંતિ આપો.

સ્વ૦ ચારણકુળભૂષણ કવિરાજશ્રી પિંગળશીભાઈ નરેલા

ગુજરાત, કચ્છ અને કાઠિયાવાડના ચારણ-સમુદાયના ભીષ્મ પિતામહ પૂજ્ય કવિરાજશ્રી પિંગળશીભાઇ નરેલાનો ૮૨ વર્ષની જૈફ ઉંમરે વિગત ફાગણ સુદિ ૧૨ ની રાતે સાડાબાર વાગ્યે ભાવનગર મુકામે સ્વર્ગવાસ થયો.

પૂજ્ય પિંગળશીભાઇના નામ-કૃતિથી કોણ અજાણ છે? એમનો પરિચય કરાવવો એ તેમને અપ્રસિદ્ધ ઠરાવવા જેવું છે. એમનું સ્થાન ચારણ જાતિમાં અજોડ હતું. એક કાળે એમનાં પ્રભુભકિતનાં પદો પર ચારણસમાજ આફરીન હતો. એમણે એક રાજકવિ કરતાં ભકતકવિ તરીકે જીવન જીવી જાણ્યું છે. તેઓ મધ્યયુગી સંતોના પથગામી હતા. ભાવનગરના પ્રતાપી ગોહિલ નરેશોએ તેમના એ સંતહૃદયને પ્રેરણાજળ પાઇ સદા પલ્લવિત રાખ્યું હતું. એમનો અડીખમ દેહ-બાંધો જોઇ જોધપુરનરેશ મહારાજા માનસિંહજીની **'देह दराज दीसता डारण, राजां विच शोभे कवराज'** એ ગીત-પંકિત યાદ આવતી. સમસ્ત ચારણ જાતિ એમને 'પૂજ્ય' દૃષ્ટિથી જોતી. એમના જેવા એક મહાન વ્યકિતના નિધનથી લૂંટાએલી ચારણ જાતિ વધુ લૂંટાઇ છે. એવા યશસ્વી પિતાના સ્વર્ગવાસથી તેમના સુપુત્રદ્વય શ્રીહરદાનભાઇ અને શ્રીજોગીદાનભાઇને જે દુઃખ થયું છે, તેમાં અમો ભાગ લઇએ છીએ. પ્રભુ એ મહાન આત્માને શાશ્વત શાંતિ આપો એજ પ્રાર્થના.

"चारण" के नियम

१ "चारण" वर्ष में चार बार विजयादशमी, बसंतपंचमी, अक्षयतृतीया और रक्षाबन्धन पर प्रकाशित होगा।

२ वार्षिक मूल्य दो रुपये होगा और वह सर्वथा अग्रिम लिया जायगा।

३ चारण जातिकी सर्वांगीण उन्नति के साधक लेखादि के साथ समयानुकूल अन्य विषयों के लेखादि को भी "चारण" में स्थान होगा।

४ केवल वे ही लेखादि "चारण" में छप सकेंगे जो एकही तरफ़ शुद्ध एवं स्पष्ट लिखे हुए होंगे।

५ "चारण" में छपने के लिये हिंदी भाषा के लेखादि ठा० ईश्वरदान आशिया, ग्राम-मेंगटिया, पो० नाथद्वारा (मेवाड़-राजपूताना) के एवं गुजराती भाषा के लेखादि श्री खेतसिंह नारायणजी मिश्रण (गढवी), मु० मुढेरा, पो० वडावली (उत्तर गुजरात) के पते पर भेजने चाहिये।

६ "चारण" के ग्राहक बनने एवं रुपये-पैसे संबंधी लिखापढ़ी श्री पिंगलशीभाई परबतजी पायक, श्री कृष्णकुमार-चारण-विद्यालय, भावनगर (काठियावाड़) के पते पर करनी चाहिये और वार्षिक मूल्य उन्हींके पास भेजना चाहिये।

७ पत्र-व्यवहार के समय ग्राहकों को अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये और जवाब के लिये टिकट भेजना चाहिये।

८ प्राप्त लेखादि तभी वापस किये जायँगे जब इसके लिये डाक-व्यय प्राप्त होगा।

९ बिना नाम के लेखादि नहीं छापे जायँगे, परन्तु कोई अपना नाम न छपवाना चाहे तो वैसा लिख दे।

(टाइटल पृष्ठ ४ का शेष)

और हो रहे हैं, जो अपने पेशे के लिये, पैसेकी खातिर कागज़ों के दस्ते के दस्ते रँगते हुए चले जायँगे, परन्तु "चारण" में जातिहित के लिये कुछ लिखना उन्हें शायद दर्द सर मालूम होता है। इस मनोवृत्ति के लोगोंसे यह तो आशा ही कैसे की जाय कि वे पत्र के ग्राहक बढ़ाने या उसकी आर्थिक स्थिति सुधारने में अपने प्रभाव का उपयोग करेंगे।

जाति के विद्वानों की जब हालत यह है तो अन्य सजातीयों के लिये कुछ कहना ही व्यर्थ है। सम्मेलन को चाहिये कि पत्र-संचालन की व्यवस्था ठीक करने की शीघ्र योजना करे, वरना भय है कि फिर कहीं पत्र बंद न हो जाय।

आशा है, पाठकगण उपरोक्त स्पष्टीकरण के बाद पत्र के अनियमित प्रकाशन के लिये प्रकाशक एवं सम्पादकों को क्षमा करेंगे।

मुद्रणस्थान: श्री जसवंतसिंहजी प्रिन्टिंग प्रेस, लींबडी (काठियावाड़)

"चारण" का अनियमित प्रकाशन

"चारण" का प्रथम अंक भी समय पर नहीं निकल सका और दूसरा अंक तो तब निकला जब कि तीसरा अंक निकलना चाहिये था। ऐसी दशा में तीसरा अंक स्वतः देरसे छपेगा और चौथा अंक जो "चारण" के प्रथम वर्ष का आखिरी अंक होगा वह भी नियत समय—रक्षाबन्धन (श्रावणी) पर निकल ही जायगा इसमें सन्देह है। इस अनियमितता के लिये सम्पादक व प्रकाशक दोनों ही कुछ २ दोषी हैं। किसका दोष अधिक, यह यदि पूछा जाय तो कहना पड़ेगा कि मुख्य दोष उस परिस्थितिका है जिसके कारण उन्हें दोषी बनना पड़ता है।

पत्र का सम्पादक मेवाड़ में, सहकारी सम्पादक एक मारवाड़ में एवं एक गुजरात में और प्रकाशक हैं काठियावाड़ में। पत्र समय पर निकले भी तो कैसे? किन्तु और कोई उपाय भी न होने से इस अव्यावहारिक व्यवस्था को आपद्धर्म के रूप में स्वीकार करना पड़ रहा है। इसके अलावा पत्र समय पर न निकलने का एक मुख्य कारण यह भी है कि सम्पादकों में से एक भी इस सम्पादन-कार्य को अपने निजी कामों से पहिले करने की हालत में नहीं है। अतः यह कार्य गौण रूपसे होता है। मारवाड़ के सहकारी सम्पादक महोदय राज्य में नौकर हैं, सुना है डी० लिट्० की उपाधि के लिये तय्यारी कर रहे हैं और अ० भा० चारण सम्मेलन के प्रधानमंत्रित्व का भार भी वहन कर रहे हैं। ऐसी दशा में ये सज्जन यदि पत्र के लिये एक लंबा-सा ईश्वरभक्ति संबंधी अपना लिखा हुआ निबंध और कुछ ऐसे ही छप्पय आदि भेज कर अपने हिस्से के सम्पादन कार्य की इतिकर्तव्यता मान बैठें तो क्या ठीक नहीं है? सम्पादक स्वयं ऐसी स्थिति में है कि उस पर जो यह भार डाला गया है वह जैसे तैसे निभ रहा है वही गनीमत है, क्योंकि उसकी निजी परिस्थिति ऐसी ही है। अब रह गये गुजराती सम्पादक महोदय। वे स्वयं अभी कल तक बड़ोदा के ट्रेनिंग कालेजके विद्यार्थी थे और अब सिर्फ पंद्रह-बीस दिन से अपने गाँवमें शिक्षक की नौकरी पर नियुक्त हुए हैं। इतना होते हुए भी यही सबसे अधिक सम्पादन-कार्य में श्रम कर रहे हैं। प्रकाशक महोदय प्रायः बीमार रहते हैं।

इस हालतमें जाति के विद्वानों की फिर यह दिलचस्पी है कि डा० सा० केसरीसिंहजी (कोटा), श्री अक्षयसिंहजी (अलवर), श्री मोतीसिंहजी बारहठ, श्री आईदानजी बारहठ और श्री उदयसिंहजी दधिवाड़िया (जोधपुर), श्री किशनसिंहजी महडू (बीकानेर), श्री जीवणलालजी बरसड़ा (भादरवा), श्री भगवतीदानजी रोहड़िया (शेरडी) एवं श्री नारणभाई रोहड़िया के अतिरिक्त आज तक किसीने एक लाइन तक लिख कर इस कार्य में सहयोग नहीं दिया। ऐसे प्रतिभाशाली युवक विद्वान भी जाति में हैं, जो विश्वविद्यालय में सर्व प्रथम आये, परन्तु वे भी "चारण" में कुछ लिखने का कष्ट स्वीकार नहीं करते। कई बी० ए०, एम० ए० और एल्० एल्० बी० हैं

(शेष टाइटल पृष्ठ ३ पर)

ॐ

श्री जगदीश्वरी विजयते

चारण

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

वर्ष १] अक्षयतृतीया [अङ्क ३

विक्रम सम्वत् १९९६

सम्पादक:

ठाकुर ईश्वरदान आशिया

सहकारी सम्पादक:

भँवर शुभकर्ण कविया, M. A. LL. B.,

गुजराती विभाग सम्पादक:

खेतसिंह नारायणजी मिश्रण

प्रकाशक:

शंकरदान जेठीभाई देथा, लींबडी

वार्षिक मूल्य २)] [एक अङ्क के ।।।)

लेख-सूची

टाईटल श्री पटेल प्रिन्टींग प्रेस, कड़ी (उत्तर गुजरात) में छाप्युं

ॐ

श्री जगदीश्वरी विजयते

चारण

ग्राहकों की सेवा में

"चारण" के ग्राहक बनकर आप लोगों ने जो जातिहितैषिता प्रकट की है वह आपकी उदारता का परिचय देती है। इस वर्ष दूसरे एवं इस तीसरे अंक के प्रकाशन में जो बेहद विलंब हुआ उसे भी बिना किसी शिकायत के आपने बर्दाश्त किया यह आपके "चारण" के प्रति प्रेम का परिचायक है। अब आपको यह जानकर कुछ संतोष होगा कि, चौथा अंक नियत समय पर न सही, परंतु इस तीसरे अंक के दस दिन पश्चात् आपकी सेवा में अवश्य पहुँच जायगा।

अब यदि आप लोगों की है, वैसी ही कृपा बनी रही तो आपका यह पत्र आगामी विजया-दशमी से अपने जीवन के दूसरे वर्ष में प्रवेश करेगा और अब संभवतः समय पर आपकी सेवा में पहुँचा करेगा। आशा है, आप इस पत्र के प्रति अपने ममत्व को बनाये रक्खेंगे और आगामी वर्ष के मूल्य के दो २) रुपये भेज देने को कृपा करेंगे अथवा वी० पी० पहुँचने पर उसे अवश्य छुड़ा लेंगे।

यदि किसी कारण से कोई महाशय आइंदे "चारण" के ग्राहक न रहना चाहें तो यह तृतीयांक प्राप्त होते ही तुरन्त सूचित कर देने की कृपा तो अवश्य करें ताकि उनके नाम पर वी० पी० भेजने के खर्च का "चारण" को नुक़सान न उठाना पड़े।

—संचालक, "चारण"

अफ़सोस! चाल धीमीचलता है शेर कैसे?

निशुम्भ-शुम्भ जैसे जिससे विजय किये थे,
वह हो गई तुम्हारी शमशेर जेर कैसे?

तुम विश्वव्यापिनी मा! विश्वम्भरा कहाती,
फिर भी न पहुँच पाती 'अक्षय' की टेर कैसे?

सम्पादकीय विचार

हमारी मौजूदा हालत



[गताङ्क से आगे]

जो लोग चारण जाति को जानते ही न हों–उनको छोड कर प्रायः प्रत्येक जाति को किसी ऐतिहासिक प्रसंग पर चारणों के संबंध में ज़िक्र करते हुए राजपूतों का और राजपूतों के संबंध में ज़िक्र करते हुए चारणों का ख़याल बरबस आ जाता है। इन दोनों जातियों का इतना घनिष्ठ संबंध चला आ रहा है। यही कारण था कि "वाल्टर कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा" की स्थापना करनेवाले चारण–राजपूत महानुभावों ने इन दोनों जातियों के सामाजिक आचार-व्यवहार की नितान्त एकता के विचार से, दोनों जातियों का प्रेमपूर्ण सहयोग अक्षुण्ण बना रहे इसलिये दोनों के सामाजिक सुधार की व्यवस्था इस एक ही सभा द्वारा की। इन लोगों के मन में इस एकता की भावना किस हद तक थी इसका अनुमान इसी से सहज हो सकता है कि इस सभा द्वारा सुधारकार्य तो दोनों जातियों का सोचा गया, दोनों जातियों के प्रतिनिधि इसमें स्वीकार किये गये और सुधार-नियम दोनों जातियों के लिये समान रूप से लागू किये गये परन्तु इस सभा के नामकरण में 'चारण' शब्द की आवश्यकता दोनों जातियों के प्रतिनिधियों में से किसी को प्रतीत न हुई। उस समय के चारण प्रतिनिधि यदि चाहते तो 'चारण' शब्द भी उसके नाम में जुड़वा सकते थे, आज इस सचाई को चाहे और रूप दिया जाय परन्तु इस सभा के संस्थापक चारण प्रतिनिधि स्व० महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी स्व० महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदानजी आशिया आदि के तत्कालीन प्रभाव को जो लोग जानते हैं वे इसे अवश्य स्वीकार करेंगे। उस समय यही शुद्ध भाव था कि राजपूत शब्द में चारण समाविष्ट ही समझना चाहिये-चारण–राजपूत में कोई अन्तर नहीं। इस भावना से इस सभा की स्थापना से लेकर अब तक इस सभा की जनरल मीटिंग्स में हरेक रियासत से चारण प्रतिनिधि आते रहे हैं। लोकल सभाओं में राजपूतों के समान ही चारणों को भी शादी–गमी के खर्च आदि के लिये मंजूरी लेनी पड़ती है और राजपूतों के समान ही चारणों के लिये भी उन शादी-गमी के नक़शों की खानापूरी लाज़मी है जिनका अभिप्राय यह प्रकट करना होता है कि इन मौकों पर खर्च नियम विरुद्ध तो नहीं होता है, वर-कन्या की शादी कम उम्र में तो नहीं हो रही है, कोई अकारण ही दूसरी शादी तो नहीं कर रहा है और किसी अकुलीन के

साथ तो शादी नहीं हो रही है, आदि। नियम विरुद्ध चलने पर चारण भी वही आर्थिक दण्ड भुगतता है जो कि राजपूत।

इतना सब होते हुए भी यह साम्य एवं एकता अब कुछ राजपूत सरदारों को कदाचित अपनी बड़ी २ जागीरों के अभिमान के कारण अखरने लगी है, और वे इस सभा को केवल राजपूतों के लिये मानकर अपने बाप-दादों के दूरदर्शितापूर्ण सुनिश्चित निर्णय को मूर्खतापूर्ण समझ, उलट देना चाहते हैं। और बहुत संभव यदि इस सभा के कर्ताधर्ता इस प्रकार की मनोवृत्तिवाले राजपूत सरदार ही रहे तो आज कल प्रभावशाली चारण प्रतिनिधित्व इस सभा में न होने से और शिक्षित चारण-समुदाय की उपरोक्त मनोवृत्ति के कारण इस विषय में खिन्नतापूर्ण उदासीनता होने से संगठित विरोध के अभाव की अनुकूलता पाकर वे जो चाहें कर सकेंगे। परंतु उनसे इतना-सा निवेदन अप्रासंगिक न होगा कि राजपूतों पर चारणों के उपकार, आदि की अनेक महत्वपूर्ण बातों को आप ध्यान में न लावें तो भी कम से कम इस बात पर तो ध्यान दें कि जिन कुशल शिल्पियों ने तुच्छ पारिश्रमिक लेकर राजपूतों के विशाल एवं भव्य कीर्तिमन्दिर का निर्माण करने में अपनी पीढ़ियाँ खपा दी हैं और आज भी उस पर व्हाइटवॉश -सफेदी करने में नही चूकते हैं, उनके साथ यह अभद्र व्यवहार आपके कुल-शील के अनुरूप अच्छा तो नहीं है। 'भवन बनावत दिन लगें, ढाहत लगै न बार'। आपके पूर्वजों ने दान से अधिक मान चारणों को देकर उनके मन को वश में कर लिया था और वे भी 'मानो हि महतां धनम्' के धनी उससे परम सन्तुष्ट थे। आज आप उस दिये हुए पारिश्रमिक के लिये भी समझने लगे हो कि व्यर्थ ही क्यों दिया गया कहीं चारणों के सब गांव ले लिये गये हैं तो कहीं उन पर टैक्स लगा दिया गया है, कहीं नये २ कायदे-कानूनों से चारणों की जागीरों को गिरफ्त में लिया जा रहा है तो कहीं सनद और कब्ज़ा दोनों साबित कराने की कार्रवाई से गांवों की ज़ब्ती शुरू है। ऐसी दशामें आप चारणों को मान-दान देने में भी कृपणता धारण करो तो क्या आश्चर्य? आज चारण जाति को "पूजनीक" कहने और माननेवाले उसे अपनी समकक्ष भी मानने में संकोच करने लगे हैं। इस लोभ एवं अहंकार से चारण जाति का जो अहित होना है वह तो होगा ही, पर उसको इस तरह सताने से आपका ऐसा कौन-सा महान् हित हो जायगा? ज़रा विचारिये, राजर्षि भर्तृहरि के शब्दों में आपकी गिनती किनमें होगी है ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।

इस निराशाजनक स्थिति में गनीमत यही है कि अब भी कुछ राज्य ऐसे हैं जो लोभ या अहंकार के वशीभूत हो चारणों की जीविका या प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाना नहीं चाहते और

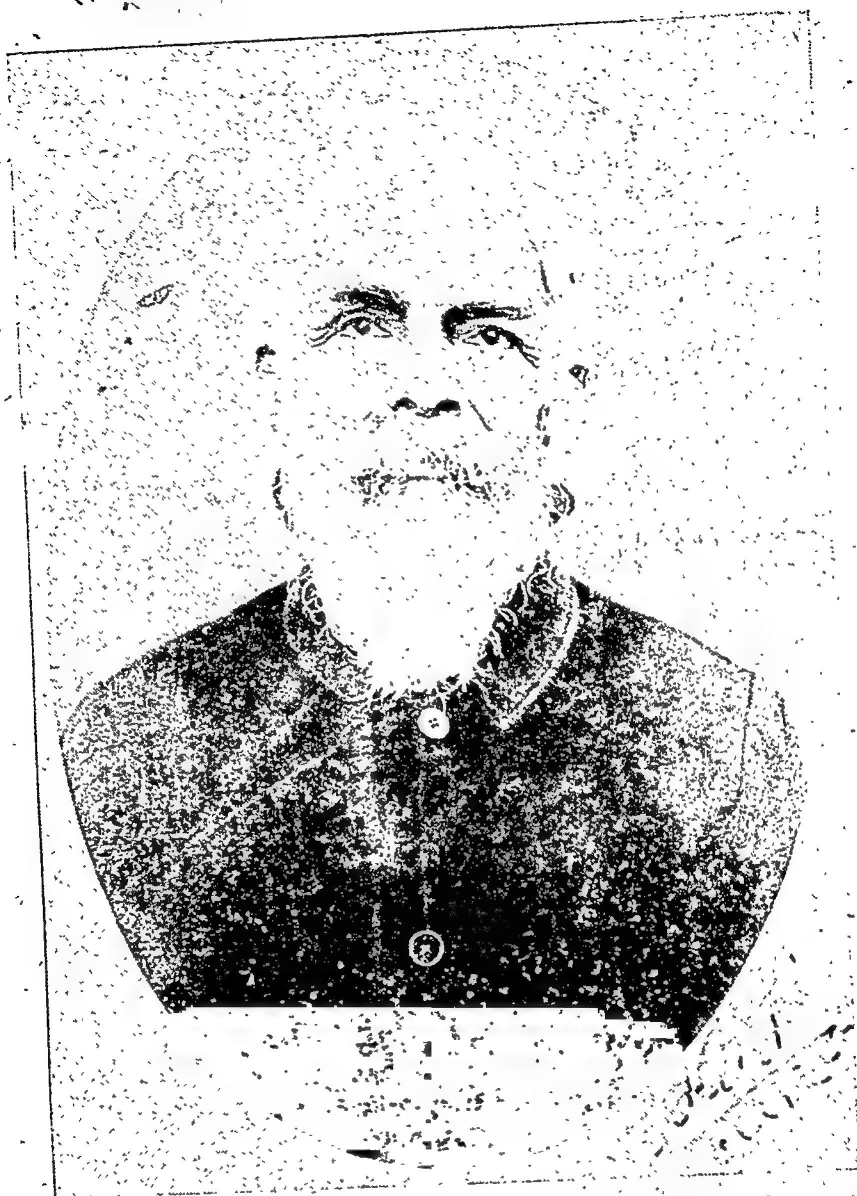
राजा एवं राजपूत भी ऐसे हैं जो चारण जाति के परम्परागत ऐक्य एवं प्रेम-संबंध को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते हैं, पलड़ा किस तरफ़ का भारी होगा यह समय ही बतावेगा।

अब हम थोड़ा अपनी तरफ़ भी देखें कि हमारे प्रति ऐसी कुत्सित भावना की जिम्मेदारी हम पर भी है या नहीं। लेखक के मत से इसके लिये राजपूतों से अधिक नहीं तो कम भी चारण दोषी नहीं। उन्होंने ही अयोग्य राजपूतों को भी पांच पैसों के लोभ से दान में कर्ण, भोज; वीरता में महावीर अर्जुन; सत्य एवं प्रण-पालन में रामचन्द्र और हरिश्चन्द्र तक कह कर उन्हें आसमान पर चढ़ा दिया। और इस तरह अपने-आपको बहुत ही गिरा दिया। यह नियम है कि जो अपनी इज़्ज़त खुद नहीं समझता उसकी कोई भी इज़्ज़त नहीं किया करता। हमारी इस हीन मनोवृत्ति का दुष्परिणाम हमारे लियेतो घातक हुआ ही है राजपूतों के लिये भी अच्छा नहीं हुआ, खैर।

अब तक हमने बहुत संक्षेप में अपनी वर्तमान दशा का विवेचन किया वह प्रत्यक्षतः जाति के पुरुषवर्ग ही से सम्बन्धित है। जाति के शेष आधे भाग के लिये यहां कुछ न कहा जायगा तो यह वर्णन अधूरा ही रहेगा।

सारे मानव-समाज में स्त्री की महत्ता के संबंध में मतैक्य है। हिन्दू भी " पितुःशत-गुणं माता " आदि कह कर इस महत्व को स्वीकार करते हैं। और हिन्दू जाति का अंगभूत चारण-समाज तो इस मातृशक्ति का विशेष रूप से आभारी है। चारण जाति की स्त्रियों में कुछ सौ वर्ष पूर्व ही वे देवियां हो गई हैं जो महाशक्ति के अवतार मानी जा कर राजा से लेकर रंक तक बड़े भक्ति-भाव से आज भी पूजी जाती है और जिन के प्रताप से चारण आज भी 'देवीपुत्र' कहलाने का गौरव पाते है। परन्तु आज चारणों की मातायें इस पवित्र देवी शब्द को सार्थक नहीं करतीं। उनमें भी अन्य साधारण स्त्रियों के समान ही ईर्ष्याद्वेष एवं कलह-प्रियता देखने में आती है। सास-बहू, देवरानी जिठानी, ननँद-भावज या एक से दूसरी कोई भी घर में हो उससे प्रेमपूर्वक रहना आज कल विरली ही स्त्रियाँ जानती है। सुस्ती, आलस्य प्रायः हर घर में छाया हुआ रहता है जिस के कारण न घर साफ़-सुथरा होता है और न घर को कोई चीज़। पुरुषों की ऊपर वर्णन की हुई अकर्मण्यता और अन्य कथित कारणों से गरीबी तो घर में घर किये हुए ही होती है और फिर पर्दे की अनावश्यक प्रथा प्रचलित होने से स्त्रियों को महीने २, दो २ महीनें तक नहाना नसीब नहीं होता है और न कपड़े ही इतने होते हैं कि उन्हें बदला जाया करे। इसलिये गंदे कपडे रात-दिन पहिने रहने से और पौष्टिक भोजन न मिलने आदि के कारण स्वास्थ्य भी उनका जैसा चाहिये वैसा उत्तम नहीं रहता

राष्ट्र-धर्म पर सर्वस्व आहुति करनेवाले



देशभक्त कविवर ठाकुर श्री केसरीसिंहजी सा० सौदा,

प्रमुख—अखिल भारतीय चारण-संमेलन

आयु ६६ वर्ष फोटो ता० ७-१-३८ (सं० १९९५ वि०)

दोहा

अजौं उपस्थित अपुन में, केसर-से नरनाह।
बीते दिन जाते बिहद, क्यों न उठाते लाह॥

—श्री अक्षयसिंहजी रत्नू (अलवर)

श्री केसरभाई बाटी (कलोल) के बंधु-कृत्य से]

और फलतः न वह रूप-लावण्य हर जगह दिखाई देता है जो उत्तम स्वास्थ्य का प्रतीक है। जब माताओं की यह हालत है तो उनके बच्चे-बच्चियों का लालन-पालन किस तरह का होगा इसकी कल्पना सहज ही में की जा सकेगी। प्रायः माता अपने वात्सल्य-भाव से पुत्र को और पत्नी अपने प्रेम एवं गृहकार्य-कुशलता से पति को संतुष्ट रखने में असमर्थ है। कई जगह पुत्रों का माताओं के साथ और पतियों का पत्नियों के साथ का व्यवहार भी सन्तोपजनक नहीं होता। कई जगह विधवायें उनके संबंधियों द्वारा रोटी-कपड़े तक के लिये कष्ट पाती है।

हमारी जाति की स्त्रियों की इस दयनीय दशा में एक बात अवश्य ऐसी है जो उनके लिये गौरव की है और वह है उनके सदाचार की। इस संबंध में आज भी वे आदरणीय एवं अनुकरणीय हैं। माना कि यत्र-तत्र शिकायतें भी सुनी जाती हैं परन्तु आज के दूषित वातावरण में ऐसी शिकायतें अपवाद-स्वरूप ही समझी जानी चाहियें। आज यदि कन्याओं की समुचित शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया जाय तो ऊपर दिखाये हुए दोष बहुत शीघ्र मिट जायँ और वे सचमुच देवियाँ होने लगें।

ऊपर के सब विवरण से यही निष्कर्ष निकलता है कि चारण जाति की सामाजिक अवस्था भूतकाल में कितनी ही उन्नत रही हो, वर्तमान काल में वह सन्तोषजनक नहीं और यदि समय रहते उस पर ध्यान दिया जा कर सुधार के कुछ कारगर उपाय शीघ्र नहीं किये गये तो भविष्य भी अन्धकारमय ही समझना चाहिये।

सम्मेलन ने अपने अधिवेशनों में इस अवस्था पर ध्यान दिया है और आवश्यक सुधारों के लिये प्रस्ताव पास कर जाति को अपनी दशा उन्नत करने का मार्ग दिखा दिया है। अब आवश्यकता है हर जगह ऐसे व्यक्तियों की जो सम्मेलन के प्रस्तावों को अमल में लाने का साहस दिखावें। यदि जाति के समझदार लोगों में यह साहस आ जाय तो अब भी हमारी सामाजिक अवस्था का सुधर जाना असाध्य नहीं है। सन्तोषप्रद रूप में नहीं तो भी शिक्षा का कुछ २ प्रचार हो चला है। जोधपुर के चारण-छात्रालय की स्थापना से मारवाड़ में इस दशा में अच्छी प्रगति है। उदयपुर व कोटा में भी छात्रालय स्थापित हो चुके हैं जयपुर व बीकानेर में एकत्रित धन से चारण विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। अलवर में छात्रालय स्थापित हो जाने की संभावना है और अन्य स्थानों पर भी सामूहिक रूप से और व्यक्तिगत रूप से शिक्षाप्रचार की तरफ़ प्रयत्न हो रहे हैं। ये शुभ लक्षण हैं। शिक्षित युवकों में और उनके सम्पर्क में आनेवालों में अपनी सन्तान को शिक्षित बनाने का अनुराग और हानिकर रूढियों के प्रति मानसिक और वाचिक विरोध शुरू हो गया है। यह अनुराग एवं विरोध व्यक्तिगत उदाहरणों से सब जगह फैल सकता है जिस का परिणाम रूढियों का नाश और शिक्षा का प्रचार अवश्यम्भावी है। जगदंबा, जाति के समझदारों में जातिहित की भावना से समय को पहिचानने की और तदनुसार व्यवहार की सुमति एवं साहस उत्पन्न करे।

तब और अब



(प्रथमाङ्क से आगे)



(ले० राजस्थान-केसरी देशभक्त ठा० सा० श्री केसरीसिंहजी बारहठ, कोटा)

राजा का व्यक्तित्व



यों तो प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में वैचित्र्य रहता ही है फिर भी एकीकरण की सामान्य पद्धति से मानवस्वभाव और चारित्र्य में सामंजस्य निरूपण करना समाजशास्त्र का सिद्धान्त है। उस निरूपण में कर्म, अकर्म, धर्म, अधर्म, नीति, अनीति आदि का विश्लेषण ही मनुष्यत्व को निखरा लेने की कसौटी है।

किसी जीर्णसंस्कारबद्ध भावुक व्यक्ति को राजा चाहे देवताओं का व ईश्वर का अंश क्यों न प्रतीत होता हो, परन्तु राजा भी है आखिर मनुष्य नामधारी प्राणी ही। काम, क्रोध, लोभादि षड्विकारों में लिप्त साधारण से साधारण व्यक्ति से कोई भी राजा, केवल राजा होने से ही ऊपर नहीं उठता। अतः उसके व्यक्तित्व को भी मनुष्यत्व के नाते प्रारंभिक दृष्टि से जांचना होगा; और फिर, वह सत्ता का प्रतिनिधि होने के नाते विशेष कसौटी से कसे जाने का पात्र है।

असंस्कृत मानवस्वभाव में मनुष्यत्व और पशुत्व का संमिश्रण रहता है। सात्विक चरित्र के अनुपात में ही मानव मनुष्यत्व के निकट पहुँचा हुआ कहा जायगा और तामसिक चरित्र उसे पशुत्वमें ही व्यक्त करेगा। यही कारण है कि चरित्र के पैमाने से ही किसी भी समाज या राष्ट्र का उत्थान और पतन नापा जाता है। यह सत्य है कि सामान्य व्यक्ति की चेष्टा उतनी सामने नहीं आती जितनी राजाकी, क्योंकि हज़ारों-लाखों आंखेंउसकी ओर निरन्तर घूरती रहती हैं। अतः वह सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा भी दया का पात्र हो जाता है। यह उसका सौभाग्य समझा जाय या दुर्भाग्य !

राजा का व्यक्तित्व कैसा होना चाहिये इस संबंध में तो आर्य जाति के श्रुति, स्मृति, महाभारत, रामायण, शुक्रनीति आदि धार्मिक और राजनैतिक महान् ग्रंथों में आदेश और आदर्श भरे पड़े हैं। उन्हीं आदर्शों पर अति सावधान होकर चलने के पुरस्कार में यह कहना अनुचित नहीं था कि "नराणां च नराधिपः।" परन्तु अब वे हमारे लिये काल्पनिक चित्र हैं। हमारा लक्ष्य तो वर्तमान राजाओं के व्यक्तित्व पर ही प्रकाश डालना है।

जहां विधानबद्ध राज्य-व्यवस्था है, जैसे कि इंग्लैंड, वहां राजा का व्यक्तित्व देश के हानि-लाभ, सुख-दुःख में महत्व नहीं रखता। परन्तु हमारे यहां राजसत्ता का सर्वेसर्वा केन्द्र एक ही राजा नामक व्यक्ति पर आ जाने से देश के सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति का वही मूल हेतु हो जाता है। हमारे सामने इंग्लैंड के साढ़े तीन राजा चले गये और षष्ठ जॉर्ज आ गये तथापि इस आने-जाने में न किसी का बना न बिगड़ा। परन्तु इधर देशी राज्यों में जानेवाले अच्छे-बुरे राजाओं की पुरानी जाजमें (फ़र्श) उठती रहीं और नयों के साथ सर्वथा नई जाज़में बिछती रहीं। कौन कह सकता है कि उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंहजी की ठोस आर्थिक व्यवस्था, अंग्रेज़ों के महलों में आने पर मार्ग तक की गंगाजल से शुद्धि, महाराणाओं के मद्यपान न करने की पाषाणलेखबद्ध प्रतिज्ञा; महाराणा सज्जनसिंहजी की देशकालानुसार बांधी हुई सुसंबद्ध राज्य-व्यवस्था, गौरवपूर्ण नीतिपटुता एवं महाराणा फ़तहसिंहजी का भारत के समस्त राजाओं और बड़े से बड़े ब्रिटिश अधिकारियों पर पड़नेवाला वह अनुपम प्रभाव, गवर्मेंट हिन्द तक को क़ायल करनेवाला वह स्वाभिमान आज भी शेष है? यह मैंने केवल उदाहरणरूप से एक राज्य का नाम लेकर बताया है; बाकी इन समस्त राज्यों में इतना नाटकीय परिवर्तन हो गया कि जहां दिन था वहां रात है और रात थी वहां धुँधला दिन। कारण वही है, नये ने पुराने पर झाड़ दिया और नई लीला रचाई। इस अस्थिर व्यवस्था में किसी को यह सांत्वना नहीं कि प्रजा का जीवन कल किस प्रवाह में बहेगा। जिस राज्यव्यवस्था से भाग्य का कोई संबंध नहीं, वहां प्रजा के हृदयपट पर तो यही लिखा है कि "राजा करे सो न्याव, पासा पड़े सो दाव।" अर्थात् सब उस अलख भाग्य ही का खेल है। संक्षेप में हमारे राज्यों की दशा और लाखों व्यक्तियों का भला-बुरा जीवन एक राजा के व्यक्तित्व पर ही निर्भर रहा है। ऐसी स्थिति में राजा के व्यक्तित्व को सामान्य उपेक्षा की वस्तु मानी ही कैसे जा सकती है।

आगे चलकर हम अधिकांश राजाओं की सामान्य दिनचर्या एवं भावोंका कुछ दिग्दर्शन करेंगे उससे स्पष्ट है कि उससे अपवादरूप जो राजा साधारण सज्जन व्यक्ति के अनुसार ही

रहते हैं वे भी लोकप्रिय हो जाते हैं। निष्कर्ष यही कि कथित राजभक्ति की पुरानी लकीर पर चलनेवाली बेचारी प्रजा जब राजा में सामान्य मनुष्य जितनी भी शीलता आज कल देखती है तो संतुष्ट हो जाती है। परन्तु आज सामान्य मनुष्यत्व भी राजाओं में दुर्लभ हो रहा है वहां आर्य-आदर्श राजचर्या की तो बात ही कहां?

इस पतन के हेतुओं की उपपत्ति ढूंढना कुछ कठिन नहीं है—

(१) यौवनमद, धनमद और राजमद ये एक एक ही अनर्थ के मूल हैं। जहां ये तीनों इकट्ठे हो जायँ वहां अनर्थ का तो ठिकाना ही क्या? इस तिधारे खड्ग पर सकुशल चले जाने-वाले वंदनीय क्यों न हों? होंगे कभी, क्योंकि पुराने पोथे कहते हैं कि थे। इतिहास के परि-शीलन से भी जाना जा सकता है कि, जब प्रतिक्षण सतर्क प्रजा के सामने उत्तरदायित्व और बाहरी आक्रमणों से राजा के प्राण मुट्ठी में रहते हों एवं राजभक्ति से परिचित लोक-सद्भावना पर और प्रजा की धन-जन से प्रबल सामूहिक शक्ति के पोषण पर ही राजसिंहासन के पाये अवलंबित हों, वहीं राजा का व्यक्तित्व संयमी, सरल, उदार एवं प्रजावात्सल्यादि गुणों से युक्त होना स्वाभाविक ही है। किन्तु अब तो मामला ही दूसरा है। अब केवल दो भूरी आंखों की कृपा चाहिये। निःसत्व लाखों काली आंखें घूरती हैं, घूरती रहें। राजसिंहासन के पायों का आधार ही दूसरे स्थान पर खिसक चुका। जन-शक्ति धन पर और धनशक्ति जूते के जोर पर आ ठहरी। अतः आंतरिक नियंत्रण हट जाने से राजा के व्यक्तित्व का प्रजा के पक्ष में उच्छृं-खल और विचित्र हो जाना ही स्वाभाविक हो गया।

(२) किसी भी राष्ट्र या जाति के जीवन का आधार है उसकी भाषा और संस्कृति। भाषा-परिवर्तन से संस्कृति स्वयं विकृत हो जाती है संस्कृति बिगड़ने से प्राचीन व्यवस्थाबद्ध पद्धति के विशृंखल होने में देर नहीं लगती। प्राचीन पद्धति के अभाव में अपने आपको उसी पूर्वरूप में टिकाये रखना हास्यास्पद-सा होता है। राजाओं के ह्रास की ओर परिवर्तन होनेका भी यहीं अनुक्रम है। वे अपनी संस्कृति और पद्धति में रहते हुए आज के जैसे काठ के पुतले बन नहीं सकते थे। इसी से ऊपर की कूटनीति ने सबसे प्रथम इनको अंग्रेजी भाषा के चोले में ढँकने के लिये ही इन राजाओं और इनके प्रधान अंग उमरावों, सरदारों, जागीरदारों के लिये मेयो कॉलेज, डेली कॉलेज, राजकुमार कॉलेज, एचिसन कॉलेज आदि विकृत शिक्षा के सांचे खड़े किये और हितैषिता के नाम पर राजाओं और सरदारों को दबा-दबा कर उनके राजकुमारों आदि को इन सांचों में ठूंसा गया। कर्नल लॉक (प्रिंसिपल, मेयो कालेज) के समय तक इन सांचों को कच्चे ही माने गये, अतः लॉर्ड कर्ज़न के फ़ौलादी पंजे

ने इनको फ़ौलादी और मनोवांछित बनाया जिनमें कोई कच्ची कौड़ी ढल जाने की गुंजाइश न रहे। जिस समय इस कॉलेज-संबंध में श्री वॉडिंग्टन, श्री जार्डन और श्री हिल लार्ड कर्ज़न का प्रतिनिधित्व कर रहे थे उस समय कुछ मन-चले सरदारों ने जिनमें लेखक भी एक था, आवाज़ उठाई कि इन कॉलेजों का पाठयक्रम हीन और थोथा है अतः यहां भी भारतीय युनिवर्सिटियों का पाठ्यक्रम रहे, वही बी० ए०, एम० ए०, की डिग्रियां रहें; परन्तु दुत्कार दिये गये। लॉर्ड कर्ज़न की सरकार ने इन गुड़िया सांचों को युनिवर्सिटी की शिक्षा से अछूत रखने में ही ब्रिटिशनीति की सफलता देखी; क्योंकि युनिवर्सिटियों की शिक्षाप्रणाली सदोष होते हुए भी उनमें से न्यायमूर्ति रानाडे, सर टी० माधवराव, लोकमान्य तिलक, गोखले, लाजपत, महात्मा गांधी, सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू जैसे निकल सकते हैं। परन्तु यहां तो उद्देश्य है इन 'गांठ के पूरे और अक्ल के अंधों' को प्रारंभ ही से विदेशी भाषा और संकर संस्कृति में ऐसे ढांक देना कि जिसके अंधकार में न अपना स्वरूप दिखाई दे न संसार को ही ठीक देख सकें। नाम मात्र की शिक्षा के साथ खूब खेलकूद और विलायती विलासिता की मोहिनी के रंग में रँगे जाकर ऐसे विचित्र प्राणी बनाकर निकाले जाते हैं कि जो घर के न घाट के। लेखक ने अनेक राजाओं को कहते सुना है कि कोई बात अंग्रेज़ी में लिखी हो तो हम फ़ौरन समझ जाते हैं। हिन्दी तो वाहियात है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भरतपुर के अधिवेशन में सम्मेलन के प्लेटफ़ॉर्म से हज़ारों व्यक्तियों को सम्बोधन कर जिनमें कविसम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी थे, भरतपुर के स्वर्गीय नरेश कृष्णसिंहजी ने कहा था कि "मुझे कहते हुए दुःख होता है कि हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं है। मेरी मातृभाषा तो अंग्रेज़ी बन गई, क्योंकि मैं मेरी माता की गोदी में नहीं पला, पला हूं इंगलिश लेडियों की गोद में और उन्हीं की लंबी सोहबत में। मैं इस समय जो कुछ हिन्दी बोल रहा हूं वह मेरे आंतरिक अंग्रेज़ी भावों का अनुवाद मात्र है। मैं अपने भावों को अंग्रेज़ी ही में ठीक२ प्रगट कर सकता हूं, हिन्दी में नहीं। मुझे स्वप्न भी अंग्रेज़ी में ही आते हैं। महाराजा कृष्णसिंहजी इस समय हमारे संसार में नहीं रहे परन्तु उनकी प्रतिमूर्तियां अनेक राजगद्दियों पर आज बैठी हुई हैं। ऐसी दशा में राष्ट्रभाषा एवं अन्य देशी भाषाओं के मार्मिक कवि एवं दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों के वे धुरंधर लेखक जो देशोद्धार के साथ राजाओं की भी हितैषिणा रखते हैं, अपने सारगर्भित भावों, विचारों और दलीलों के द्वारा देश की वास्तविक परिस्थिति पर राजाओं का ध्यान आकर्षित करने की धारणा रखते हैं, वे महान् भ्रम में हैं। राजा लोग अपनी भाषाओं को तो प्रायः छूते ही नहीं। अंग्रेज़ी पत्रों से भी व्यर्थ सरपच्ची करना पसंद नहीं करते। अलबत्तह इलस्ट्रेटेड वीकली लंडन, स्फ़ीअर, फ़ील्ड, पिक्चरल एज्युकेशन, पंच, मोटर ऐसे

विलायती पत्रों के ग्राहक रहते हैं जिनमें विलायती स्त्री-सौंदर्य, खेल, शिकार एवं कुत्तों की जातियों की ही विशेषता रहती है। इन पत्रों में भी केवल चित्रों को ही उत्सुकता से देखते रहते हैं! कोई कोई कभी कालक्षेप के लिये प्रेमी-प्रेमिकाओं के अंग्रेजी उपन्यास भी उठा लेते हों, यह दूसरी बात। घर में भी रात-दिन अंग्रेज़ी ही बोलना पसंद करते हैं, हो चाहे वह एक बुटलर के जैसी ही या उससे भी गई बीती। वे इस शिक्षा-सांचे में ढल कर न रहे हंस और न रहे कौवा। ऐसी दशा में यह तो कोई आशा ही कैसे करे कि ये पुरानी राजप्रथा के अनुसार ब्राह्ममुहूर्त में स्नान करके ईश्वर-उपासना में बैठें और शांतिपूर्ण दरबार भरे हुए गीता, महाभारत, रामायण आदि की कथायें सुने और ईश्वरतत्व या राजधर्म की विवेचना में सूर्योदय के सात्विक समय का लाभ लें। अब तो प्रातःकृत्य है "इंग्लिश मोर्निङ्ग" अर्थात् प्रहर दिन चढ़ने बाद बिस्तर छोड़ना और सबसे पहिले सिगारेट का धुआँ उड़ाते हुए शेविंग बाक्स सामने रख कर मूंछें घोटना और चाय पीकर शिकारी बंदूक या पोलो को मोलट उठाना। यह है भाषा-परिवर्तन के साथ ही आर्य-संस्कृति का अन्त।

(३) उपरोक्त शिक्षा की रंगाई पर फिटकिरी लगा कर रंग पक्का करने के लिये आवश्यकता हुई विलायतयात्रा की और लगे उधर धकेले जाने। कुछ भोले लोगों को आशा हुई थी कि हमारे नरेश विलायतयात्रा से लोकतंत्री शासन का व्यापक और उदार अनुभव प्राप्त कर के अपनी प्रजा को उन्नत दशा की ओर ले जाने में योग्य सिद्ध होंगे; किन्तु इस यात्रा के चसके का परिणाम निकला विपरीत। ये थोथे दिमाग ऐशआराम भोगविलास की अनुपम सामग्री के चाकचिक्य में फँस कर पूर्वसंचित राज्यकोष के लाखों रुपयों की मुक्तहस्त आहुति डाल कर वहां से विलायती विलासिता के सिवाय ला ही क्यां सकते थे? यदि कुछ सीखा तो यही कि संसार में यदि मनुष्य हैं तो इंग्लैंड में, परिस्तान है तो पैरिस में, जीवन-कृतार्थता है तो यूरपनिवास में। और हां, इंडिया व इंडियन्स? नोन्सेंस, डैम। यही कारण है कि प्राय इस समय के नवयुवक राजा गौधूम्रवर्ण की संतान पैदा कर चुकने पर भी भारतीय रंग और रहन-सहन से पूरी नफ़रत करने लगे, अपनी प्रजा से दूर से दूर होते गये। इतनी ही नहीं, अंगरेज़ों की सोसाइटी के बिना चैन मिलने से अपनी राजधानियों को भी विलायत का रुप देने के अनर्थ को न समझ सकें। उदाहरण देख लिया जाय। राजस्थान में आज कल जहां की चर्चा खूब है, वहां के वर्तमान महाराजा विलायती शिक्षा पाकर प्रथम बार लौटे और अपने पड़ोसी राज्य में मेहमान हुए, तब वहां के महाराजकुमार से प्रसंगागत बात करते हुए बोल उठे कि "देशी आदमी मूर्ख और बेईमान ही होते हैं" इस पर महाराजकुमार ने प्रियभ्राता को मीठी चुटकी लेते

हुए कहा कि "आप भी तो देशी ही हैं न?" इस पर महाराजा खिसिया कर मुसकुरा दिये। लेखक की आंखों ने उस मुसकुराहट में छिपाई जानेवाली खिसियाहट में यही पढ़ा कि महाराजा अपने अंगरेज़ी मे उठते हुए भाव का हिन्दी अनुवाद ठीक न कर सके। वह लज्जा अपने भाव पर नहीं, केवल भाषा पर थी। जहां सत्य के स्पष्टीकरण में एक पक्ष में उपरोक्त महाराजा के लिये स्पष्ट संकेत है वहां यह भी स्पष्ट करना उचित है कि ऊपर भाषा और संस्कृति के संबंध में जो कहा गया है उसमें वर्तमान उदयपुर-महाराणा भूपालसिंहजी, कोटा के लोकप्रिय महाराव उम्मेदसिंहजी, सीतामऊ के राजारामसिंहजी एवं उनके उदीयमान राजकुमार रघुबीरसिंहजी जैसे कतिपय न्यूनाधिक अपवादरूप भी हैं।

(४) राजाओं के घरों में विलासिता की पहिले भी कमी नहीं थी। परन्तु नई शिक्षा और नये प्रलोभनों ने संस्कार की स्वाभाविक रुकावट को ठुकरा कर यह कहावत चरितार्थ कर दी कि "गिलोय और नीम चढी"। चारित्र्यभ्रष्टता ने उच्छृंखल होकर सर्वतोमुखी प्रवाह बहा दिया। यह सच है कि सब यकसां नहीं हैं। प्रशंसायोग्य जीवनचर्यावाले राजा भी हैं; परन्तु है आटे में नमक के बराबर। अधिकांश राजाओं के खानगी जीवन में जो रोमांचकारी रहस्यमय रंगरेलियां नग्नरूप में हैं उनके संबंध में दिग्दर्शन के लिये केवल इतनासा कह कर हम मौन ही रहेंगे कि—

"धिक्कार है उन राजमहलों को,
जहां विष भर रहा।
नारकी है दृश्य सब,
शैतान ताण्डव कर रहा॥"

राजा के व्यक्तित्व के नाते इस चारित्र्यदोष का प्रजा पर क्या भयंकर परिणाम होता है, यह अखबारी दुनिया से छिपा नहीं। इसे छोड़ कर राजनैतिक दृष्टि से देखने पर भी कहा जायगा कि; राजाओं की इस समय जो दुर्गति हो रही है, पूर्वजों के बाहुबल से उपार्जित,-अंगरेज़ जाति के जन्म से भी अति प्राचीन, शक्तिशाली राजसिंहासनों पर बैठे हुए भी वे अनाथवत् कठपुतली के समान इशारों पर नचाये जा रहे हैं—इसके लिये अंगरेज़ उतने दोषी नहीं। यह दौर्बल्य इन राजाओं के वैयक्तिक दुश्चरित्रों ही का परिणाम है। इनके लोभ और कामवासना के सबके सब कारनामे पोलिटिकल डिपार्टमेंट में चुपचाप जमा होते रहते हैं। वायसराय जब अपनी नीति के लिये आवश्यक समझता है तब ऊपर से दो शब्द टपकते हैं कि "तुम या तो चुपचाप गद्दी छोड़ दो, या हमारे नियत किये हुए अँगरेज़ के हाथ में समस्त राजसत्ता सौंप दो—हां, ऐसी दशा में तुम्हारे नाम का प्रयोग अवश्य किया जायगा परन्तु खूब याद रक्खो कि कुछ भी दखल दिया तो सदा के लिये राजधानी से

दूर रख दिये जाओगे—यदि उपरोक्त बातें स्वीकार न हों तो अपने कुकर्मों की जांच के लिये कमीशन स्वीकार करो।" बस, इस सहसा वज्रपात पर राजा भौंचक्का रह जाता है, उसके ए० डी० सी० और कृपापात्र बगलें ताकने लगते हैं। उस समय उसके दुश्चरित्र एक-एक करके सब सामने आ खड़े होते हैं। दुनिया में रहते हुए भी वह क़यामत का दृश्य देखने लगता है। उस दिन वह अपनी असलियत पर आंख खोलता है, अतः यह कहने की हिम्मत रख ही नहीं सकता कि "आने दो तुम्हारे कमीशन को।" लाचार रोते हुए आत्मसमर्पण कर देता उसे दूसरे के हाथ की कठपुतली बनना ही पड़ता है। सत्य है "आत्मैव रिपुरात्मनः।"

इन राजाओं की व्यक्तिगत जीवनचर्या समान न होते हुए भी कुछ बातें ऐसी हैं जो सामान्यतः न्यूनाधिक रूप में प्रायः सब राजाओं में मिल सकती हैं। किसी में एक नहीं तो दूसरी होगी ही। ऐसी बातों का संक्षेप में दिग्दर्शन यों हो सकता है—

रात में जागना, दिन के आठ-नौ बजे बिस्तर से उठना, सब काम छोड़ कर शिकार के लिये भाग जाना, छोटे अर्थात् जिनको वे अपनेसे कम बुद्धि के समझें उन कृपापात्रों से या ज़नाने से घिरे रहना, दिमाग़ लड़ाने जैसे गूढ़ विषयों से झुंझला कर आधीन राजकर्मचारियों पर उन्हें छोड़ देना, प्रजा से दूर रहना, मनतरंगों पर जीवन के क्षण व्यर्थ बिताना, राजकोष को बपौती मान कर मनचाहा ख़र्च करना या दिखावे के लिये हथख़र्च (जरूरत से बहुत ज्यादः) लेकर उससे प्राइवेट व्यापार-लेनदेन करना और उस रकम को राज्याधिकार से बटोरना, अंगरेज़ चाहे किसी। हैसियत का क्यों न हो उसे खुश रखने में ही अपने सुख की गैरंटी समझना, कितना ही योग्य परन्तु देशी व्यक्ति या डेप्युटेशन मिलना चाहे तो खुशामदियों में निठल्ले बैठे गप्पें मारते या ताश के पत्ते खेलते हुए भी उत्तर दे देना कि अभी फ़ुरसत नहीं; घर ही के सरदारों या प्रतिष्ठित नागरिकों को सौभाग्यवश कभी मिलने का मौक़ा दिया भी तो चलती मुलाक़ात देना-जैसे कि अँग्रेज़ अफ़सर साधारण हिन्दुस्तानी को देता है, देशी भाषा को त्याज्य समझ कर घर में भी अँग्रेज़ी ही का बोलबाला रखना, अँग्रेज़ी भाषा न जाननेवाले या देशी पोशाक में रहनेवाले को दूर से ही मूर्ख मान लेना, अपने किसी भी कर्म की समालोचना पर मुँह चढ़ा लेना, कृपापात्र होने मात्र से ही अयोग्य व्यक्तियों को राज्याधिकार में स्थान दे देना, प्रत्येक सार्वजनिक कार्य से चौंक कर उसे तोड़ डालने में अपनी सावधानता समझना, स्वदेश, स्वतन्त्रता आदि शब्दों से भड़क कर इन्हीं में राजद्रोह घुसा देखना, गद्दी-बैठने के समय और कुछ समय बाद तक उदार और फिर घोर कृपण हो जाना, और रागरंग, मद्य, हाहा-हीही,

मोटर, वायुयान, शिकार, व्यभिचार की सुख-तरंगों में ही राजत्व की कृतकृत्यता मान लेना।

इन सब बातों के साथ जो एक बात इनके परिवर्तन और पतनकी मूलभूत सबमें समानरूप से पाई जाती है वह है इनके स्वाभिमान का नाश। इस आत्मस्वरूप की विस्मृति के कारणों का उल्लेख हम ऊपर कर ही चुके हैं। यदि ये राजा अपनी आधीन प्रजा के साथ ऐंठने को ही स्वाभिमान मानते हों तो वे महान् भ्रम में हैं। उस मिथ्याभिमान में तत ही क्या है? वह तो गौरवभ्रष्टता का प्रत्यक्ष चिह्न है और उसको कोई भी बेहयाई के नाम से अधिक पहिचान सकता है।

मेवाड़ के महाराणाओं को छोड़ कर राजस्थान के राजाओं में देशाभिमान, कुलाभिमान एवं धर्माभिमान की इतिश्री तो मुसलिमशाही के आगमन के साथ ही हो चुकी थी। महाराणा-वंश की वह वृत्ति भी मराठाशाही के समय से शिथिल हो चुकी। फिर भी हमने अपनी आयुष्य के प्रथमभाग में इन राजाओं में स्वाभिमान की जो शेष झलक देखी उसका भी आज कहीं पता नहीं। उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी, फ़तहसिंहजी, बूंदी के महारावराजा रामसिंहजी, एक छोटी-सी रियासत बांसवाड़ा के महारावल लक्ष्मणसिंहजी आदि स्वाभिमानी नरपतियों की वह तेजस्विता आज भी हमारे स्मृतिपटल पर प्रकाश डाल रही है। उस झलक को हम तीन-चार तरह के उदाहरणों से स्पष्ट करेंगे जिससे पाठक तब और अब का मार्मिक स्वरूप सहज जान सकें।

(१) संवत् १९४० में उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी मेहमान होकर जोधपुर गये। वहां जोधपुर-महाराजा जसवन्तसिंहजी ने महाराणा से कहा, "कि मैं एक असह्य घटना से विचलित हो रहा हूं और वह यह है कि मेरा ननिहाल और ससुराल नवानगर (जामनगर) में है वहां के वर्तमान नरेश जाम वीभाजी अपनी एक मुसलमानी खवास (पासवान, रखैली) के पेट से पैदा होनेवाले लड़के (काळूभा) को गोद लेकर राजगद्दी का वारिस क़रार दे दिया है और गवर्मेंट ने भी स्वीकार कर लिया है। इससे हमारा उस राज्य से सदा के लिये संबंध नष्ट होने जा रहा है। मैं अकेला कुछ नहीं कर सकता, आपकी मदद चाहता हूं। महाराणा सदा हिन्दूधर्म के रक्षक और राजपूत जाति के शिरोमणी रहे हैं"। इस पर महाराणा सज्जनसिंहजी ने सहायता देना स्वीकार कर लिया। दोनों ने सलाह करके उज्रदारी के तौर पर दो तार और दो ख़रीते गवर्मेंट-हिन्द के नाम लिखे और महाराजा जसवन्तसिंहजी ने वे अपने मुसाहिब पंजाबी श्री हरदयालसिंह के साथ जोधपुर के तत्कालीन रेज़िडेन्ट कर्नल बेली के पास भेज कर ज़बानी कहलाया कि जामनगर के जाम

साहिब भीमाजी ने मुसलमानी के पेट से पैदा हुए लड़के को अपनी गद्दी का हक़दार कायम करके गवर्नमेंट से मंजूरी ले ली है उसके उज़्रात बाबत महाराणा साहिब उदयपुर और मैं दोनों ही तार व बाज़ाब्ता खरीते देते हैं वे सरकार अंग्रेज़ी में पहुँचा दें। पोलिटिकल रेज़िडेन्ट ने वे तार-खरीते उस समय के एजेन्ट टु दि गवर्नर जनरल राजपूताना कर्नल जाडफोर्ड के पास भेज दिये और सूचना दे दी कि दोनों ही रईस आप से अजमेर में मिलेंगे।

महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुर लौटते समय महाराजा जसवन्तसिंहजी के साथ अजमेर पहुँचे। वहाँ ए० जी० जी० कर्नल जाडफोर्ड दोनों रईसों से मिलने के लिये किशनगढ की कोठी पर आये। उस समय ए० जी० जी० ने कहा "कि आप दोनों रईसों ने जामनगर के मामले में तार व खरीते भेजे वे बेजा हैं, क्योंकि हरएक रईस को अपनी ही रियासत के मामले में तहरीर देने व उज़्रात पेश करने का इख्तियार है। कोई रईस दूसरी रियासत के मामले में दखल नहीं दे सकता। इसके अलावा राजपूताने की रियासत का कोई मामला होता तो किसी खास सूरत में आपका कहना और मेरा सुनना कुछ ठीक भी समझा जाता। मगर जामनगर काठियावाड़ में है इसलिये आपका उज्र करना बेजा है, आप अपने खरीते वापस ले लें जाम बीभा के शादी की हुई रानियों से कोई औलाद नहीं है, वह अपनी खानेअंदाज़की हुई मुसलमान औरत के पेट से खास उसी के नुत्फे से पैदा हुए लड़के को अपना वलीअहद बनाना चाहता है तो उसे कैसे रोका जा सकता है। महाराणा साहिब की तो कोई रिश्तेदारी भी नहीं है।" इस पर महाराजा जसवंतसिंहजी तो चुप हो गये परन्तु महाराणा सज्जनसिंहजी ने उत्तर दिया कि किसी समय समस्त भारतवर्ष पर हम राजपूत जाति बहुत कम हो गई। फिर मुसलमान बादशाहों की लड़ाइयों में लाखों राजपूत मारे गये इससे हमारे राज्य गिनती के रह गये जिसका हमें दुःख है। अब इस अमन के ज़माने में भी राजाओं की खानेअंदाज़ मुसलमान व अंग्रेज़ औरतों के पेट से पैदा होने वाले दोगले लड़के रईस बना दिये जायँगे तो ये रही-सही रियासतें भी मुसलमान व ईसाइयों की हो जायँगी। इसको हम कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते। अपनी जाति की रक्षा करना हमारा फ़र्ज़ है। आप खुद अपनी कौम व मज़हब की तरक्की के लिये कैसी २ कोशिशें कर रहे हैं? पादरी लोगों की मिशन को दूर २ मुल्कों में, बल्कि हमारी रियासतों में भी भेजकर हर तरह की मदद देते हैं और उनके रहने व गिरजा वगैरह के लिये ज़मीन आदि देने के लिये हम लोगों पर दबाव डालते हैं। आपको अपनी कौम का खयाल है उसी तरह हमें भी अपनी कौम का खयाल होना स्वभाविक है। क्या हम मनुष्य नहीं हैं। जामनगर काठियावाड़ में होने से क्या हुआ? है तो राजपूतों का ही। मालूम होता है जाम का दिमाग बिगड़ गया है, मगर हमारा तो ठिकाने है। हम इस तरह राजगाद्दियों को भ्रष्ट नहीं होने देंगे। यह ठीक है कि आपका ताल्लुक काठियावाड़ से नहीं है। इसी लिये तो ये खरीते आपके नाम नहीं बल्कि वायसराय के नाम हैं। रही मेरी रिश्तेदारी की बात। रिश्तेदारी दो-तीन पीढ़ी तक ही चलती है, मगर मेरा संबंध उससे भी अधिक व्यापक और

चिरस्थायी है। चाहे आप माने या न माने परन्तु वास्तव में समस्त संसार उदयपुर के महाराणा को हिन्दूसूर्य कहता है और मैं भी अपनी उस ज़िम्मेवरी को मानता हूं। अतः जहां कहीं भी हिन्दू हो वहां तक मेरे अधिकार की सीमा है। यह मामला तो खास मेरी जाति के एक राजघराने का है और यही मेरे प्रबल प्रतिवाद का कारण है। हम अंग्रेज सरकार के भी दोस्त हैं इसलिये नहीं चाहते कि व्यर्थ में ऐसा बवण्डर उठे जो वायसराय को भी कठिनाई में डाल दे। इसलिये आप मेरे नाम से यह नेक सलाह वायसराय को भेज दें कि वे जाम विभा की मूर्खता पर स्वीकृति न दें"। महाराणा के इस उत्तर पर ए० जी० जी० निरुत्तर हो गये और कहा कि ठीक है, मैं आपकी मन्शा से वायसराय को परिचित कर दूंगा और खुद भी कोशिश करूंगा। उम्मीद है, गवर्मेंट जामनगर संबंधी फ़ाइल आपके पास देखने के लिये भेज दे।

थोड़े ही समय बाद वह फ़ाइल पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट ने उदयपुर भेज दी। परन्तु दुःख है, इसी अरसे में महाराणा का स्वर्गवास हो गया। फिर भी परिणाम यह हुआ कि वह कालूभा जामनगर का उतराधिकारी न रहा। कैसास्वाभिमान भरा था सज्जन का वह अनुपम व्यक्तित्व!

कालान्तर में उसी जाम वीभाजी ने दूसरी वार उसी मूर्खता भरी सनक से अपनी उसी या वैसी ही किसी मुसलमानी के पेट के दूसरे लड़के जसवंतसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया उस समय किसी राजा ने चूं तक न की, महाराजा जसवंतसिंहजी भी मन-मसोस कर रह गये, क्योंकि सज्जन की तेजस्विता का बल संसार से उठ चुका था। यह उदाहरण है हिन्दूसूर्य की आसमुद्रांचल भारत पर आत्मीयता का, कुलाभिमान का, स्वधर्माभिमान का और सर्वोपरि क्षात्रोचित स्वाभिमान का।

(२) संवत् १९३७ में मेवाड़ के मगरा ज़िले के हज़ारों भीलों ने मर्दुमशुमारी पर एतराज़ करके राज्य के विरुद्ध बलवा कर दिया। उस प्रजाविद्रोह को शान्त करने के लिये महाराणा सज्जनसिंहजी ने अपने पूर्ण विश्वस्त प्रधानमंत्री सुप्रसिद्ध कविराजा श्यामलदासजी को फ़ौज देकर मगरा ज़िले में भेजे। वे साम-दान आदि से युक्तिपूर्वक शान्ति-स्थापनं में लगे हुएथे। कुछ समय बीतने पर सरकार-हिन्द ने महाराणा को लिखा की" इतने अरसे तक भी मेवाड़ में भीलोंका बलवा नहीं दबा। मालूम होता है इस काम के लिये महाराणा की शक्ति नाकाफ़ी है। गवर्मेंट इस देरी को अपने लिये भी खतरे से खाली नहीं देखती, क्योंकि मेवाड़ से मिले हुए गुजरात के सरकारी इलाकों के भीलों पर भी बलवे का बुरा असर पड़ रहा है। इसलिये बलवा तुरन्त दबाया जाय या महाराणा गवर्नेंट से सैनिक सहायता मांगें।" महाराणा सज्जनसिंहजी ने गवर्मेंट की उपरोक्त तहरीर को उत्तर के लिये फ़ौजी केम्प में कविराजा श्यामलदासजी के पास भेज दी और उनके असली उत्तर को ही अपना उत्तर कहकर गवर्मेंट में भेज दिया जिस पर पोलिटिकल डिपार्टमेंट इस संबंध में सदा के लिये चुप हो गया। वह उत्तर यह था—" महाराणा बारह सौ वर्ष से जिस शक्ति के बल द्वारा अपनी इस प्रजा पर राज्य करते आ रहे हैं वह शक्ति-बल अब भी वर्तमान है। गवर्मेंट तो कल की आई

हुई है। हमें उसकी मदद की कोई आवश्यकता नहीं। यह मुक़ाबला किसी बाहरी शत्रु से नहीं है कि जिसमें सेनाबल का प्रयोग किया जाय। महाराणा अपनी प्रजा को मारकर शान्ति नहीं करना चाहते। प्रजा तो पुत्र के समान शान्ति से ही समझाई जा सकती है। यदि इस विलंब में गवर्नमेंट को अपने इलाक़ों का डर है तो वह अपने घर का आप प्रबंध करे। उसका उत्तरदायित्व इस राज्य पर कदापि नहीं।" यह उदाहरण है राजा-प्रजा के बीच 'दाल-भात में मुसलचन्द' बननेवाली तीसरी शक्ति को करारा उत्तर सुना देने की शक्ति रखनेवाले राजनैतिक स्वाभिमान के।

(३) अंग्रेज़ जाति अपनी दूरदर्शिता से जिस कूटनीति को निर्धारित करती है उसका बीज प्रारंभिक दशा में अति प्रच्छन्न-अज्ञेय स्थल पर रखती है और समयानुसार धीरे-धीरे रूपान्तर में उसका पोषण करती रहती है। प्रत्येक राज्य में प्रधान पदों पर अंग्रेज़ क़ायम करके राज्य की सर्व सत्ता पर अधिकार कर लेने की जो क्रिया आज खुल्लमखुल्ला व्यवहार में आ रही है उसके बीज आज से साठ वर्ष पहिले भी कुछ अंकुररूप में दिखाई पड़ने लगे थे। राजपूताना के एजेन्ट टु दि गवर्नर जनरल कर्नल वाल्टर ने महाराणा सज्जनसिंहजी को अपने आबू के अंग्रेज़ सेकिन्ड असिस्टेंट को राज्य में ले लेने का विनीत अनुरोध किया और उस असिस्टेंट की कार्यकुशलता की खूब ही प्रशंसा की। नीतिमर्मज्ञ महाराणा सज्जनसिंहजी भविष्य तक को ताड़ गये और उत्तर दिया कि मैं उसको यहां भी असिस्टेंट ही की जगह दे सकता हूं। ए० जी० जी० ने कहा कि एक अंग्रेज़ किसी देशी अफ़सर के नीचे कैसे रह सकता है!! महाराणा ने हँसते हुए उत्तर दिया कि मैं भी तो एक देशी ही हूं तो क्या आप चाहते हैं कि वह मेरा भी अफ़सर बन कर आवे? मुझे अपने सब देशी अफ़सरों (राजकर्मचारियों) की योग्यता पर पूर्ण विश्वास है। अंग्रेज़ की कोई ज़रूरत भी नहीं, आप मेरे मित्र हैं अतः आपकी सिफ़ारिश के कारण मुझे उतना-सा भी स्वीकार करना पड़ा। आशा है, अब आप भी आवश्यकता नहीं समझेंगे। यह उदाहरण है दूरदर्शिता और अपने घर के स्वाभिमान का।

(४) एक छोटा-सा परन्तु अनूठा उदाहरण हम और देंगे। वह है बांसवाड़ा जैसी छोटी सी रियासत के अति वयोवृद्ध सीसोदिया महारावल लक्ष्मणसिंहजी के स्वाभिमान का।

एक बार बांसवाड़ा के असिस्टेंट रेज़िडेन्ट मि० पिनही ने महारावल लक्ष्मणसिंहजी के नाम एक ख़ानगी चिट्ठी लिखी। उसके लिफ़ाफ़े पर लिखा था "प्राइवेट"। महारावल ने 'प्राइवेट' शब्द देखते ही उसे बाज़ाब्ता ख़रीते के साथ लौटा दी। ख़रीते में लिखा "कि मैं सोते, जागते, खाते, पीते, यहां तक कि शौचालय में होते हुए भी प्रत्येक क्षण राजा हूं। मेरे जीवन में कोई ऐसा क्षण ही नहीं कि जिस समय मैं अपने आपको राजा न मानता होऊं। ऐसी सूरत में मेरे यहां 'प्राइवेट' को कोई स्थान नहीं। हाँ, तुम्हारे लिये प्राइवेट और ऑफ़िशियल का भेद हो सकता है क्योंकि तुम्हारी निजी हैसियत कुछ और है और ओहदे की कुछ और। तुम यदि निजी हैसियत से मुझे लिखना चाहते हो

तो प्रार्थनापत्र के रूप में लिखो। यदि, ओहदे से लिखते हो तो नियमानुसार खरीता भेजो,,। साहब बहादुर इससे झल्ला उठे और ऊपर खूब लंबी, चौड़ी शिकायत की। परन्तु साहब के हक़ में इसका परिणाम विपरीत निकला। पोलिटिकल डिपार्टमेंट ने उनका आयंदा बांसवाड़े में रहना ही बंद करके नीमच में रहने का आदेश दिया। मि० पिनही इस पर बहुत लज्जित हुआ।

यह कथा हमने स्वयं महारावल लक्ष्मणसिंह के ज़बानी सुनी थी। इस उदाहरण से वर्तमान राजाओं के व्यक्तित्व को विचित्ररूप में ला देने-वाले "प्राइवेट लाइफ़" शब्द के रहस्यमय निर्माण का खुलासा हो जाता है। अर्थात् प्रायःसक जाति का प्रत्येक व्यक्ति सबसे पहिले कुछ चाहता है तो यही कि आधीन राष्ट्र की जनता उसे अधिक से अधिक सम्मान दे, फिर वह खुद चाहे कितनी ही गिरी हैसियत का क्यों न हो? किन्तु जहां बादशाह का अप्रत्यक्ष शासन नौकरशाही द्वारा चलता है वहां की जनता से वह सम्मान की मनो कामना उतनी पूर्ण नहीं हो सकती,। परन्तु देशी राज्यों में स्थिति दूसरी है। यहां पुरानी प्रथा के अनुसार वही सम्माननीय माना जाता है जिसे राजा सम्मान दे। और वह राजसम्मान राज्य के हित में पुश्तों तक सिर कटवानेवाले या असाधारण राजसेवा करनेवाले व्यक्तियों के वंशजों को ही मिलनेवाली चीज़ थी। राजा के बराबर तो कोई बैठ ही नहीं सकता, उसकी ख़ास बग्घी में सामने की सीट मिलना भी बड़े २ उमरावों के ही हक़ में हो सकता था। परन्तु प्रत्येक अंग्रेज़ और उनकी लेडियां तक भी चाहती हैं राजा की बगल में बराबर बैठना, राजा को सामान्य दोस्त के मुआफ़िक बरतना; क्योंकि ऐसी होने से ही वह प्रजा में स्वतः असाधारण प्राणी बन जाता है।

इसी लक्ष्य से नई शिक्षा का प्रथम पाठ ही यह है कि राजा हरघड़ी राजा नहीं रहता,—हां, राजाओं के लिये वायसराय या शाहन्शाह हरघड़ी वायसराय या शाहन्शाह रह सकता है—अपने शाही दरबार में सिंहासन या गद्दी पर बैठने आदि के कुछ समय तक ही वह सही मायने में राजा है; बाकी जीवन के शेष क्षणों में उसका अपना प्राइवेट जीवन है। इसी प्राइवेट की आड में सब अंग्रेज़ों के साथ व्यवहार होता है बराबरी का। बेचारे देशी व्यक्ति तो हरघड़ी ही अन्नदाता, ग़रीबनिवाज़ कह २ कर राजा ही मानेंगे, केवल त्याग हुआ है सम्मान-प्रतिष्ठा का तो अंग्रेज़ों के हक़ में। परिणाम क्या हुआ? लोगों की दृष्टि में कुछ भ्रम के दिन बीत जाने पर अब गोरी चमड़ी तो अपने असली स्वरूप में ही रह ग—ईन अन्नदाता बनी न भयंकर वस्तु। परन्तु राजाओं का वह प्राचीन वैयक्तिक महत्व जनता की दृष्टि से भी जाता रहा। संक्षेप में इनका सारा जीवन ही प्राइवेट हो गया और यही बड़ा परिवर्तन हुआ है **'तब और अब'** में।

(क्रमशः)

'टीका' और 'रीत' के दुष्परिणाम

(ले० श्री मोतीसिंहजी रोहड़िया, बी० ए०, जोधपुर)

विवाह-सम्बन्ध मनुष्य जाति के लिये आवश्यक और महत्वपूर्ण है। आवश्यक इसलिये कि इसके बिना समाज मे अव्यवस्था, अशान्ति और व्यभिचार फैल जायँगे और महत्वपूर्ण इसलिये कि मनुष्य-जीवन को शान्त और सुखमय अथवा अशान्त और दुख-मय बनाना इसी पर निर्भर है, और जहाँ विवाह-विच्छद की प्रथा प्रचलित नहीं है वहाँ तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि एक बार जिसको जैसा साथी मिल गया उम्र भर उसी के साथ निर्वाह करना ही पड़ता ह चाहे उनका मेल मिले या न मिले। तात्पर्य यह कि यदि यह कहा जाय कि घर को स्वर्ग या नर्क बनाना इसी सम्बन्ध पर निर्भर है तो इसमे अतिशयोक्ति न होगी।

ऐसा महत्वपूर्ण सम्बन्ध बहुत विचार व छानबीन के बाद होना चाहिये इसमे तो कोई इन्कार नहीं करेगा। हमेशा के व्यवहार की वस्तुहँ भी जब हम काफी छानबीन के बाद लेते हैं तब समूचे जीवन के एक साथी को चुनने में, जिसके साथ सारी ज़िन्दगी बितानी है और जो हमारे मानसिक सुख व शान्ति का कारण है बहुत विचार से काम लेना चाहिये इसमे दो राय कैसे हो सकती है?

विवाह-सम्बन्ध को स्थिर करने के दो तरीके हैं। पहिला वह जिसमें युवक-युवतियों के माता-पिता द्वारा सम्बन्ध स्थिर किया जाता है और दूसरा वह जिसमें युवक-युवती अपना साथ आप ही चुनते हैं। हमारे भारतवर्ष मे पहिला तरीका ही प्रचलित है। पश्चिम के संसर्ग में आने से कहीं-कहीं दूसरा तरीका भी अख्तियार कर लिया जाता है, पर ऐसे मामले इतने कम होते हैं कि यदि उनकी अवहेलना कर दी जाय तो कोई अन्याय न होगा। इन दोनों तरीकों में से कौन-सा अच्छा है यह बताना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। एक दूसरे की श्रेष्ठता के विषय में दोनों की तरफ से बहुत-सी दलीलें दी जा सकती है। पर इतना तो कहना ही होगा कि यदि पहिला तरीका (युवक-युवतियों का स्वयं अपनी साथी चुनना)

सोलहों आने ठीक होता तो पश्चिम के देशों मे जो तलाकनामों की धूम मची रहती है वह न होती। दूसरे हमारे यहाँ आमतौर पर युवक-युवतियों की शादी क्रमशः १८ व १४ वर्षो की उम्र मे हो जाती है और इस उम्र मे यदि उनको अपनी मरजी से ही अपना साथी चुनने को खुला छोड़ दिया जावे तो वे इसका सदुपयोग कर सकेंगे इसमे सन्देह है। युवक सौंदर्य के उपासक होते है इसलिये भय है कि कहा सुन्दरता के पीछे वे अन्य आवश्यक गुणों की अवहेलना न कर बैठे। अतः वर्तमान परिस्थिति मे हमारे समाज के लिये पहिला तरीका ही उचित मालूम पड़ता है। हाँ, जब शिक्षा का प्रचार हो जाय और शादी की उम्र बढ़ा दी जाय तो बात और है, पर अभी तो हमारी जाति मे वैसा वातावरण पैदा होने मे बहुत समय लगेगा।

यह मान लेने पर कि माता-पिता द्वारा सम्बन्ध स्थिर करना ही श्रेयस्कर है, यह प्रश्न सामने आता है कि सम्बन्ध करने में हमारी जाति में जो 'टीका' व 'रीत' की प्रथाएँ काम मे ली जाती हैं उनका लेना-देना कहा तक उचित है।

हमारे समाज मे जितने भी सामाजिक सुधार करने का प्रयत्न किया जाता है उनके विरोधियों का प्रथम व जबर्दस्त विरोध धर्म के नाम से होता है। सुधार की चर्चा शुरू हुई कि विरोधी लोग 'धर्म खतरे में है' की घंटी बजाने लग जाते हैं। 'टीका' व 'रीत' के पक्ष में कोई धर्म की दुहाई नहीं देता, पर यह दिखाने के लिये कि दूसरे सुधारों के समय धर्म की ओट लेनेवाले अपने स्वार्थ के मामलों में धर्म की ओर किस प्रकार आँखें मूँद लेते हैं-इन प्रथाओं को धर्म की कसौटी पर कसना आवश्यक प्रतीत होता है।

हिन्दू-शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह माने गये है—(१) ब्राह्म, (२) दैव, (३) आर्ष, (४) प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गान्धर्व, (७) राक्षस, (८) पैशाच,। इनमें से प्रथम दो प्रकार के विवाह उत्तम एवं और शेष छः मध्यम और वर्जित है। यह देखने के लिये कि 'टीका' और 'रीत' लेकर विवाह करनाकिस प्रकार का विवाह होगा-आठों प्रकार के विवाहों की परिभाषा नीचे दी जाती है—

(१) ब्राह्म—विद्यायुक्त, शीलवान् वर को बुलाकर वस्त्र व भूषणादि

पहनाकर वेद-मन्त्रों द्वारा कन्यादान करना।

(२) देव-यज्ञ मे भले प्रकार यज्ञ करानेवाले ऋत्वन् वरको भूषण पहनाकर कन्यादान कर देना।

(३) आर्ष-जो वर के पिता से कुछ धन लेकर किया जाता है।

(४) प्राजापत्य-जो वेद-मन्त्रहीन केवल वाणी से ही कन्यादान कर दिया जाता है।

(५) आसुर-वर के माता-पिता को उनकी इच्छानुसार धन देकर कन्या दान करना।

(६) गान्धर्व-अपनी इच्छा से कन्या और वर का विवाह होना।

(७) राक्षस-कन्या या उसके माता-पिता के मारपीट कर कन्या ले जाना।

(८) पैशाच-सोतो हुई और नशा की हुई प्रमादिनी कन्या को जहाँ मनुष्य न हो वहाँ होसे प्राप्न करना।

ऊपर की परिभाषा को देखने पर मालूम हो जायगा कि 'रीत' लेकर विवाह करना 'आर्ष विवाह' है। और 'टीका' लेकर करना 'आसुर विवाह' है। यह माना कि प्राचीन ज़माने में-जब यह धर्मशास्त्र बने थे, निन्दित विवाह होते थे पर इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि 'टीका' और 'रीत' लेनेवाले तो धर्मशास्त्रों के भी विरुद्ध आचरण कर रहे हैं।

यह कहा जा सकता है। कि कोइ भी धर्मशास्त्र हमेशा के लिये नहीं हैं। संसार परिवर्तनशील है और समाज के नियम, रीति रिवाज भी बदलते रहते हैं तब हमे व्यावहारिक हानि-लाभ का आश्रय लेना पड़ता है। अतः अब हमको इस बात पर विचार करना है कि व्यवहार एवं लोकमत की दृष्टि से 'टीका' व 'रीत' का क्या हानि-लाभ होता है।

यह हमें मानना ही होगा कि विवाह का मुख्य ध्येय समाज की सुव्यवस्था, गृहस्थी का सुचारु रूप से चलाना व सन्तानोत्पत्ति है। यदि इसको द्रव्योपार्जन का एक साधन बना लिया जाय तो इसका महत्व ही मारा जाता है।

परन्तु 'टीका' व 'रीत' लेने से बात इससे विपरीत होती है। लड़के-लड़की के अभिभावक पहिले यह देखते हैं कि अमुक जगह सम्बन्ध स्थिर करने में उनको कितना धन मिलेगा। लड़के-लड़की के चुनने का सवाल गौण हो जाता है और धन-प्राप्ति का मुख्य। ऐसी हालत में कितनी ही कोशिश क्यों न की जाय, सम्बन्ध सोलहों आने ठीक हो नही सकता। जहाँ माता-पिता लड़के-लड़की के हित को छोड़ अपने स्वार्थ को प्रधानता देते है, वहाँ ऐसा हो भी कैसे सकता है। कई 'टीका' लेनेवाले कहा करते हैं कि हम लड़की की छानवीन भी पूरी करते है और फिर धन भी लेते हैं, इनमें कौनसी हानि हुई। पर ऐसा क्या सभी विवाहों मे हो सकता है? उदाहरणार्थ दो लड़कियाँ हैं जिनमें एक बहुत सुन्दर, सुशील व समझदार है। दूसरी भी पहिली के गुण मौजूद है पर कुछ कम मात्रा मे पहिली का पिता ५००) दे सकता है जब कि दूसरा १०००) की बोली लगा देता है। ऐसी हालत में लडके का पिता पहिले को छोड दूसरे की लडकी के साथ सम्बन्ध स्थिर करेगा और यह कह देगा कि दोनों लडकियों में कोई विशेष अन्तर नहीं, तिस पर तुर्रा यह कि ५००) ज्यादा मिल रहे है। सारांश कि यदि 'टीका' की प्रथा न होती तो इस 'विशेष अन्तर, की आवश्यकता न रहती और पहिली लडकी ही के साथ शादी होती।

अन्य खराबियाँ 'टीका' की यह हैं कि इस नीलाम की बोली के कारण कम पैसेवाले व्यक्तियों की लडकी के लिये योग्य वर मिलना मुश्किल हो जाता है, अतः कई जगह लडकियाँ काफी वयस्क हो जाने तक क्वाँरी ही रहती हैं और बाद में उनसे कम उम्रके लडको के साथ उनका विवाह करना पडता है जो सर्वथा अनुचित है। कहीं-कहीं तो इस भय से कि हमें बाद मे लडका न मिलेगा लडकी वाले छोटी उम्रमे ही लडके-लडकी का विवाह कर देते हैं जो लडके की शिक्षा मे बाधक होते हैं और कभी-कभी उसका परिणाम बहुत भयकर होता है। कहीं तो ऐसा भी होता है कि ससुरालवाले लडकी को इसलिये तकलीफ देते है कि उसके पिताने उनकी इच्छा के मुताबिक दिया नहीं। यह अमानुषिक व्यवहार कुछ मामलों मे यहाँ तक बढ़ जाता है

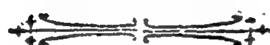
कि लडकी को जान से हाथ धोना पडता है। और यह बात तो केवल हमारी जाति तक ही सीमित नही है। 'टीका' के ही अनुरूप 'दहेज-प्रथा' की बालवेदी पर भारत की कितनी ही निर्दोष युवतियाँ प्रतिवर्ष अपना बलिदान चढ़ाती है।

'रीत' का परिणाम भी कम भयंकर नहीं है। प्रथम तो चारण जाति की आर्थिक दशा इतनी गिरी हुई है कि बहुतों के पास 'रीत' देने को पैसे नहीं होते और इसी वजह से बहुत-से युवक अविवाहित रह जाते हैं; और जो मर पच कर कुछ पसे इकठ्ठे करते हैं। उनको 'रीत' देने के बाद अपनी भावी पत्नी और भावी सन्तान के पेट पालने की फ़िक्र पहले से ही लग जाती है। वृद्धविवाह भी इसी प्रथा का परिणाम है जहाँ माता-पिता अपनी गरीबी के कारण या धन के लोभ से ज्यादा उम्र के वर के साथ अपनी लडकी का विवाह कर देते हैं। मारवाडी भाषा मे एक काहवत है कि वरहण देणी पण वरहाँण नहीं देणी पर 'रीत' लेकर ज्यादा उम्र के वर साथ अपनी लडकी का का विवाह करने वाले माता-पिता दोनों हानि करते है। 'वरहण' तो वरकी ज्यादा उम्र होने से है 'ही और वर के पास जो कुछ धन है उस को 'रीत' के रूप मे लेकर 'घरहण' भी कर देते हैं।

इन कुरीतियों का सारा दोष वृद्ध जनों को ही देना उचित नहीं। युवक-युवतियों का भी इस में कुछ हिस्सा अवश्य है क्यों कि वे इसका प्रतिवाद करना जानते ही नहीं। अशिक्षित और पर्दे की चहारदीवारी मे बन्ध युवतियों से तो कुछ आशा रखना दुराशा कहना मात्र है पर युवकों मे तो शिक्षित भी हैं, और जमाने को पहचानने वाले भी है पर वे भी मूक पशु की तरह जहाँ उनको बाँधा जाता है बंध जाते हैं। इससे मेरा मतलब माता-पिता के खिलाफ विद्रोह फैलाने का नही है। पर जहाँ युवकों को मालूम हो जाय कि उनके माता-पिता उनके सच्चे हित को प्रधानता न देकर केवल स्वार्थ को प्रधानता दे रहे है वहा नम्रता पूर्वक प्रतिवाद करना हरेक युवक का अधिकार है परन्तु आमतौर पर ऐसा न करने पर उनमे नैतिक साहस के अभाव का परिचय मिलता है। यह केवल लिखने की बात नहीं मेरी

आँखों देखी हुई बात है। मेरे एक परिचित शिक्षित सजातीय युवक को अपनी मरजी खिलाफ अपने माता-पिता की आज्ञा पालने के लिये विवाह करना पडाथा, पर उसको साहस न हुआ कि वह प्रतिवाद वाद करे। मुझे पता नहीं की उसका अब क्या हाल है। सारांश कि यदि भाग्यवश पाशा ठिक पड गया तो तो अच्छा, नहीं तो वास्तव में बडी दयनीय दशा है। कुछ इने-गिने युवक ऐसे भी मिलेगे जो माता-पिता की तरह धन के लोभ में अपने पैसे आप ही कुल्हाडी मारते है। वे और भी अधिक दोषी है क्योंक दूसरे के धनसे धनी होना चाहते हैं अपनी उन्नती में स्वालम्बन का सहारा ना लेकर विवाह द्वारा धनी भनने का प्रयत्न करते हैं। और जब तक विवाह में धन प्राप्ति को प्रधानता दी जाति रहेगी चाहे वह माता-पिता से हो अथवा युवकों से तब तक 'टीका' व 'रीत' की प्रथा का बन्ध होना असम्भव है।

चारण-वाणी



ओपाजी आढा के गीत

(गताङ्क से आगे)

[निम्नोक्त गीतों की कुछ पंक्तियाँ रेखाङ्कित की गई है, इसका तात्पर्य यह है कि, या तो वे पंक्तियाँ संदिग्ध–सीहैं या उनके लिखने का क्रम नहीं रहा। —सम्पादक]

दिये, व्याज दूणा लिये न मांगे दोकड़ो, रोकड़ो देखियां घणो राजी।
आगले घरं तेडावियो आंधळा, पाछला घरां री म कर पाजी ॥ १ ॥

लोभियो पराया खेत सदकै लिये, ढवावै आंकडा भरे ढाला।
आंगणै बेठ दरबार रा आदमी, कसी घरबार री आस काला ! ॥ २ ॥

पटीडै जौ ने गहूं बेचे परा, भाटके रूपिया करै भेळा।
राम रा हाथ रो दूत लायो रुको, बावळा ! जोवणो कितिक वेळा ॥ ३ ॥

न पावै राव मीठा कदै न जीमे, न पै'रै लूगड़ा कदे नीका।
डाकि जमराण सा प्रसण हेला दिये, कसी पर आवसी नींद काला ! ॥ ४ ॥

कळह रौ मूळ कड़षौ घणौ कुटुम्ब सूं, नारायण नाम मन मांय ना'णै।
ओठ रा दूत खोटी हुवै आंगणौ, जेतू ओ अठा री आस जाणौ ॥ ५ ॥

आपड़ा और है घणा काला अवर, खावला कमाई करै खोटी।
छाळियां चला ज्यूं पान गणिया चरै, मरण री न जाणौ खोट मोटी ॥ ६ ॥

आप संसार रंजियो घणो आतमा, अलख ना भेटियो कदे आंबो।
थोविये। दोह घडी हेक ना थोबियो, लोभियो पियाणौ कियो लांबो ॥ ७ ॥

"ओप" किव कहै मत भूलजो अनन्ता, वडवडा जोध जोधार वीता।
गावियो क्रसन ना गा जिके रीता गया, जाणियो परमगुर जिके जीता ॥ ८ ॥



७

गाड़ा मे नाव, नाव में गाडो, लेख विना कुण भेद लधे।
"ओपा" राम तणी गत अवळी, वणसै दिली ने दखण वधे ॥ १ ॥

चहरे गवाळ वळन्ती छाया, जिके पटतर सनमुख जोय।
सुवस बसावे सहर सतारौ, हथणापुर मे वे दन होय ॥ २ ॥

क्रोड प्रकार मनख रा कूडा, करता चाहे जिके करे।
वूडौ औरंग तणौ वेसणौ, तखत गनीमां तणौ तरे ॥ ३ ॥

खान नवाव दिलीपत खपिया, जागिया मरैठा जुवा जुवा।
हता धींग ज्यां किया रांक हर, हता रांक जे धींग हुवा ॥ ४ ॥



८

करे जीण घोडे और केक बांधे कमर, थोभिया नसख के वेठ थाळो।
एह संसार कूडा तणो "ओपला", वावळा चढाई कटक वाळी ॥ १ ॥

हेक सरदार असवार घोड हुवौ, पलाणौ मंडिया केक पाळा।
वुऔ संसार इम जाण दुनिया विचै, वाजिया नंगारा कूच वाळा ॥ २ ॥

केक हरवल हुवा भार लादै कयक, भिडज के मंगावे केक भाला।
देख रे प्राणिया! यह दुनियाण री, कटक रा कूच री जुगत काला ॥ ३ ॥

जाणियो क्रसन ज्यां सफळ है जमारो, चाढियो जमारो कसन चूलौ।
पामणौ रहै केता दिवस पालियौ, हालियौ वहै संसार हूलौ ॥ ४ ॥



महाकवि ठाकुर श्री सूर्यमल्लजी मिश्रण (बूंदी) रचित

वीरसतसई

(अपूर्ण)

(गताङ्क से आगे)

[गताङ्क में "वीरसतसई" के प्रारंभ में तीसरा दोहा भूल से नहीं लिखा गया और दूसरे दोहे के नीचे उसके अर्थ के स्थान में तीसरे दोहे का अर्थ लिखा गया है। अतः इस बार यहां प्रारंभ ही में तीसरे दोहे के साथ पुनः दूसरा दोहा अर्थ सहित दिया जाता है—

आणी उर जाणी अतुळ, गाणी करण अगूढ ।
वाणी जगराणी वळे, मैं चींताणी मूढ ॥ २ ॥

माता सरस्वती का अपनी मति–अनुसार वर्णन करने के लिये मैंने कई बार अतुलित आहवान किया और अब उस संसार-स्वामिनी वाणी का मुझ मूर्ख ने फिर चिन्तवन किया है।

बरण सगाई वाळियां, पेखीजे रसपोस ।
वीर हुतासण बोळ में, दीसै हेक न दोस ॥ ३ ॥

वर्णसंबंध का नियम न रखने से इन दोहों में वर्णित रस का पोषण ही दिखाई देता देता है। और यों, वीररस के हुताशनी रंग में सब दोष अदृश्य हो जाते हैं।

पूर्व प्रकाशित २७ दोहों में उपर्युक्त तीसरा दोहा मिलाने से २८ की संख्या होगी। नीचे आगे के दोहे दिये जाते हैं। अपनी इस कथित भूल के लिये हम पाठकों के समक्ष क्षमाप्रार्थी हैं।

—सम्पादक]

दोहा

खोयो मैं घर में अवट, कायर जंबुक काम ।
सींहां केहा देसड़ा, जेथ रहै सो धाम ॥ २९ ॥

हा! मैंने तो शृगालें के से कायरोचित कामों में चिन्तित रह कर घर ही घर में आयु खो दी। सिंहों के लिये–पराक्रमियों के लिये क्या देश और क्या विदेश! वे तो जहां रहें वही उनका घर।

काळी नाहक की डरै, खेती लाभ म खोय ।
धरती रा जेथी धणी, हूंकळ तेथी होय ॥ ३० ॥

'युद्ध की भयानकता से कालिका को भयभीत देख कर वीरांगना कहती है कि हे काली! तू व्यर्थ ही क्यों डरती है? तू तो अपने व्यवसाय-रक्तपान के लाभ को मत खो। जिसकी वजह से पृथ्वीपति होते हैं उससे युद्ध तो अपने होता ही है।

काळी करै बधावणौ, सतियां आयो साथ।
हथळेवै जुड़िया जिको, हमै न छूटै हाथ ॥ ३१ ॥

(सतियों का समूह युद्धभूमि में आया देखकर कालिका इन उत्साहवर्धक शब्दों से उनका अभिनंदन करती है कि पाणिग्रहण के अवसर पर जो हाथ जिस हाथ से जुड़ गया है वह भला अब छूटेगा थोड़े ही?

धीरा धीरा ठाकुरां, जमी न भागी जाय।
धाणीयां पग लूंबी धरा, अबखी ही घर आय ॥ ३२ ॥

किसी वीर के मुकाबिले के लिये जानेवालों से कहा गया है कि ठहरो ठाकुरो! जरा ठहरो। जमीन कहीं भागी चली नहीं जा रही है। याद रखना, जिन मालिकों के पैरों से उनकी जमीन बँधी हुई हैं वह आपके घर मुश्किल ही आवेगी अर्थात् जिनका जीवन उनकी पृथ्वी के साथ हैं वह पृथ्वी ले लेना सहज नहीं है।

भूल न दीजै ठाकुरां, पावक माथे पाव।
राख रहीजै दाझियां, तियां धरीजै चाव ॥ ३३ ॥

सती की उक्ति है कि हे सरदारो! भूल कर भी आप लोग आग पर पैर न रखना। जिसके स्पर्श से राख ही बाकी रहती है, उसमें स्नान करने की उमंग तो हम स्त्रियाँ ही रख सकती हैं।

भोळा की हठ ठाकुरां, रोळा हेक न राह।
गेह रहीजै रोवणौ, देह सहीजै दाह ॥ ३४ ॥

ए भोले सरदारो! यह भी कोई हठ है? ये उत्पात एक भी ठीक नहीं। इनसे आपके शरीर को सन्ताप होगा और आपके घर में रोना ही रोना रह जायगा।

सूता नाहर सारखा, साळ न छोडै सूर।
कंत विणठ्ठा काच-सा, दो ही विलखां दूर ॥ ३५ ॥

आप तो सिंह के समान निःशंक सो रहे हैं पर उधर वीर आक्रमणकारी भी मकान को नहीं छोड़ते हैं; इस परिस्थिति में विनष्ट काँच के समान हे कन्त! हम दोनों दूर ही दूर विलख रहे हैं।

कंत न छेडौ ठाकुरां, काळा जाण करंड।
इण भोगी रा जहर थी, दूज कौ जमदंड॥ ३६॥

ऐ ठाकुरो! इस खयाल से कि यह छवड़े में पड़ा हुआ काला विषधर है, मेरे पति को तुम मत छेड़ो। जानते नहीं हो इस भोगी (काले सांप) के जहर (क्रोध) से बढ़कर और यम-दण्ड कौन सा है?

नींदाणौ गिण टेकळो, पुळो, न छेडौ पीव।
णाय पुजावौ पावही, चूडो घण चिरजीव॥ ३७॥

इन प्रणवीर को सोये हुए समझ कर तुम लोग भाग जाओ और इन्हें मत छेड़ो। तुम्हारे चले जाने से तुम्हारी स्त्रियों का चूड़ा चिरजीवी होकर पूजा प्राप्त करेगा।

भोळा जाणौ भूलिया, वरसां आठां बाळ।
एथ घराणौ सींहणी, कँवर जणौ सो काळ॥ ३८॥

ऐ भोले लोगो! तुम क्या इस भ्रम में हो कि यह बच्चा आठ ही वर्ष का तो है? अरे भाई! इस घराने में तो सिंहिनी—वीरांगना जिस कुमार को जन्म देती है वह कालरूप ही होता है।

बाळ चाल म वीसरे, मो थण जहर समाण।
रीत मरन्तां, ढील की, ऊठ थियो घमसाण॥ ३९॥

ऐ वत्स! अपनी चाल को मत भूल। मेरे स्तन में जहर समाया हुआ है। युद्ध में प्राणोत्सर्ग करने की तो अपनी परम्परा ही है। फिर अब देर क्यों? उठ, घमासान युद्ध हो रहा है।

नागणजाया चीटला, सीहणजाया साव।
राणीजाया नहँ रुकै, सो कुळवाट सुभाव॥ ४०॥

नागिनी से उत्पन्न सर्पशिशु, सिंहिनी से प्रसूत शावक और रानियों से पैदा हुए राज-कुमारों का तो यह स्वभाव ही होता है कि वे अपने कुलमार्ग में कभी रुकते नहीं।

असिधावण तो पीव पर, वारी वार अनेक।
रण झाटकतां कंत रै, लगै न झाटकरा एक॥ ४१॥

ऐ शिकलगरनी! मैं तेरे खाविंद पर अनेक वार वलिहारी हूं कि उसने तलवार की धार इतनी तीक्ष्ण कर दी है कि उसे युद्ध में चलाते समय मेरे पति के एक भी झटका नहीं लगता।

लोहारी तो पीव रा, वळे न पूजूं हत्थ।
फूलंतां रण कन्त रै, कडी समाणी 'मत्थ ॥ ४२ ॥

ऐ लुहारिन ! तेरे पति के हाथों की अब मैं कभी पूजा नहीं करूंगी—मेरे प्राणाधार जब युद्ध में फूले अंग नहीं समाये तो टोप-बख्तर की कड़ी उनके शिर में घुस गई ! उसे इतना भी अंदाज नहीं।

सूतो देवर सैज-रण, प्रसव अठी मो पूत।
थे घर भाभी बांट थज, पाळौ उभय प्रसूत ॥ ४३ ॥

भावज ! आपके देवर रण- शय्या पर सो गये हैं और इधर मेरे पुत्र-प्रसव हुआ है। अब उचित यही है कि आप घर के दोनों बच्चों को अपना एक २ स्तन बांट कर पालन करें मैं सती होऊंगी।

साथण ढोल सुहावणौ, देणौ मो सहदाह।
उरसां खेती बीज धर; रजवट उलटी राह ॥ ४४ ॥

ऐ सखि ! मेरे सती होने के समय बड़ा सुहावना ढोल बजवाना। तू तो क्षात्रधर्म के इस उलटे रास्ते को जानती ही है कि बीज तो इस पृथ्वी पर बोया जाता है और उसकी खेती फलती है आकाश—स्वर्ग में।

ढोलण ढोली सूं कहै पळां उतावळ मांह।
भीडै वाह दुवाह चर, भीडैं नाह सनाह ॥ ४५ ॥

बडी जल्दी २ में ढोलिन ढोली से कहती है कि साईस घोडों पर सामान कस और मालिक बख्तर धारण कर रहे हैं—तुम भी तय्यार हो जाओ।

काळो फोल कडाह ले, की खप्पर तो हत्थ।
हेके साथ धपाडही, मोवे दळ गजमत्थ ॥

कालिके ! तैंने भी क्या हाथ में खप्पर ले रक्खा है ? तू तो विशाल कड़ाह हाथ में ले लेने जिसमें गजमस्तक डाल २ कर मेरे पति तुझे एकदम तृप्त कर देंगे।

नाग द्रमंका को पडै, नागण धर मचकाय।
इण भोगहणार जे, आज भिडाणा जाय ॥ ४७ ॥

शेषनाग से नागिनी पूछती है कि आज ये धमाके क्या पड रहे हैं ? नागिनी ! क्या तू नहीं जानती कि पृथ्वी आज इसलिये लचके खा रही है कि उसके उपभोगकर्ता परस्पर भिड गये हैं ।

निधडक सूतौ केहरी, तो भी विमुहा पाव ।
गज गेंडा धीर न धरै, वज्र पडै वधवाव ॥ ४८ ॥

केसरी निधडक सो रहा है तो भी हाथी और गेंडे आदि धैर्य धारण नहीं कर सकते। वे उलटे पांव लौट रहे हैं। उन्हें व्याघ्र गंध क्या आती है मानो उन पर वज्रप्रहार हो रहा है !

झंडा औछाडै गयण, वसुधा पाडै वाह ।
तो भी तोरण बींद तिम, धीरो २ नाह ॥ ४९ ॥

युद्धारंभ में आकाश झंडों से ढक गया और घोड़े बढने की त्वरा में पृथ्वी को खोद रहे हैं। प्राणनाथ तो तोरण पर जाते हुए दूल्हे के समान बिना किसी प्रकार के उद्वेग के धीरे २ बढ़ रहे हैं।

आज घरे सासू कहै, हरख अचानक काय।
बहू बळेवा हूलसै, पूत मरेबा जाय ॥ ५० ॥

सास कहती हैं कि आज घर में यह अकस्मात हर्ष क्या है ? ओह ! अब उन्हें मालूम हुआ कि पुत्र धारातीर्थ में स्नान करने जा रहा है और पुत्रवधु सती होने को हुलस रही है।

—क्रमशः



काव्य-कुंज

क्षत्रिय वही है

कवित

सदा ही सताये जात दीन बलवान हाथ।
अबलों में बात कटु गोली गिट जाने की।

परत्रान-कर्म ही में धर्म-मर्म पौरुषव का,
जानते न साहस के पुंज सिट जाने की।

आरत का हायनाद सुन सकते न वीर,
गाजि उठें दशा देखि दीन पिट जाने की।
क्षत्रिय वही है जिसे स्वाभिमान स्वत्व पर,
बिना दुविधा के चाह मर मिट जाने की॥ १॥

चारण वही है

कवित

चारण वही है जो स्वतंत्रता उपासक हो,
वाणी का वरद पुत्र जाने सत्य तत्व को।

अभय-अडोल अवलम्ब निज शक्ति पर,
क्षत्रियोंको देता पाठ व्यापक ममत्व को।

साहस की ज्वाला फूंकि मुरदे जगाय देत,
नाशवान देह दे खरीदे अमरत्व को।

वीररस-निर्झर वहाय-विथुराय स्वयं,
न्हाय के दिखाय देत मरन-महत्व को॥ २॥

रजपूताणी

तब और अब

दोहा

धव भागां धुधकारती, रजवट कुळ हिय रक्खि।
(अब) सौड़ घुसाड़ै सोहडी, 'अरे वाहरे' अक्खि॥ १॥

पहिले रजपूतानी अपने कुलाभिमान को धारण कर, युद्ध से भाग आनेवाले पति को बुरी तरह फटकारा करती थी और अब ऐसे अवसरों पर अरे वा'रे' कहकर उसे अपनी बगल में घुसा लेती है।

मंगळ मरण मनावती, रणचण्डी रच रास।
(अब) जीव बच्यां जलसा जुड़ै, रजपूतां-रणवास॥ २॥

रणचण्डीका रास रचकर जहां मरण-महोत्सव मनाया जाता था वहां अब प्राण बच जाने पर राजपूतों के रनिवासों (अन्तःपुरों) में जलसे किये जाते हैं।

राग सिन्धुवां रीझती, सुत धवडातां सोय।
(अब) लैला-मजनूं नाटकां, हरख जागरण होय॥ ३॥

पुत्र को स्तनपान कराते समय जो सिंधु (युद्धकालीन) राग से आंनन्दित हुआ करती थी वही अब लैला-मजनूं के नाटक देखने में जागरण कर प्रसन्न होती है।

ले खागां ललकारती, धक फळसै धाड़ांह।
(अब) कंपै पड़दै कामणी, लज भय लूंगाड़ांह॥ ४॥

कृपाण लेकर जो दरवाजे से आगे बढ़ डाकुओं को ललकारा करती थी वह अब पर्दे में बैठी हुई भी गुंडों से लाज बचाने के डर से थर थर कांपती है।

चळती नहँ कुळचाल थी, जळती जौहर झाळ।
(अब) 'हाय' करै बळती रहै, भोजन खरचां भाळ॥ ५॥

जो कुलमार्ग से विचलित नहीं होती थी और जौहर की ज्वाळा में जल जाया करती थी, वह अब घर में होनेवाले रोटी खर्च के लिये 'हायर २' करती हुई हृदय में जला करती है।

ऊठे नित देती अरघ, कधे न लज्जै कूख।
(अब) नाम सुणन्तां मरण रो, थुथकारै भर थूक॥ ६॥

जो हमेशा उठकर भगवान भास्कर को इस प्रार्थना के साथ अर्ध्य देती थी कि हे सविता? मेरी कुक्षि को कभी न लजाना; वही अब संतान के लिये मृत्यु का नाम सुनते ही मुँह में थूंक भरकर थुथकी डालती है!

चढती काठां चूड़लै, धव धर पर ढळियांह ॥ ७ ॥
(अब) खरच बँधावण ताखड़ी, लंबी कांचळियांह ॥ ७ ॥

पति के धराशायी होने पर पर जो सौभाग्यवती चितारोहण किया करती थी वह अब अपने वैधव्य के जीवन-निर्वाह के लिये प्रबंध को आतुर है।

धरतां पग धर धूजती, दाकलतां दिगपाळ ।
(तब) जणती रजपूताणियां, थण थी झाळबंबाळ ॥८॥

पहिले रजपूतानियां अपने स्तनों से ऐसे आग के टुकड़ों को पैदा करतीं कि दिग्पालों को ललकारकर जिनके पैर बढ़ाते ही पृथ्वी धूज उठती थी।

(अब) पोळ कढयां पग लडखडै, घर बारै घिघियाय ।
पडदै पूरी पदमण्यां, जोधा किण विध जाया ॥ ९ ॥

ड्योढ़ी से निकलते ही जिनके पैर लड़खड़ाने लगते हैं और घर से नतहिर होने पर जो घिघिया उठती हैं, वे पर्दे में ठूंसी हुई कोमलांगियां योद्धाओं को कैसे जन्म दे?

रुळगी रजपूताणियां, खूटी रतनां खाण ।
पूथळियां अब प्रेम री, प्रसव रही पाखाण ॥ १० ॥

अब रजपूतानियां ढुल गईं, रत्नों की वह खानि निःशेष हो चली; अब तो प्रेम-पुत्तलिकायें कंकड़-पत्थर निकाल रही हैं।

है सिंघणियां आज लग, निरबीजां धर नांह ।
वंस-उजाळक वाहुड़ी, मिळै झूंपडां मांह ॥ ११ ॥

इतने पर भी 'निर्बीज भूमि कबहू न होय इस उक्ति के अनुसार आज भी सिंहिनियाँ हैं, किन्तु वे कुल को उज्वल करनेवाली वे रजपूतानियां मिलेंगी सिर्फ़ झोंपडियों में।

—राजस्थान-केसरी देशभक्त कविवर ठा० श्री केसरीसिंहजी सौदा कोटा



बाघा कोटड़िया

(लैखक-स्व० कुंवर श्री आईदानजी बारहठ, बी० ए०, एल-एल० बी०, मथाणिया)

दोहा

कोटड़ियो बाघो कहै, आसो हाभी आज।
गवरीजै जस-गीतड़ाँ, गया भीतड़ाँ भाज ॥

—कविराजा बाँकीदासजी आशिया

जोधपुर के राजमहलों में

रिमझिम-रिमझिम बूँदें पड़ रही थीं। भादों की घनी अँधियारी रात्रि में चारों ओर प्रगाढ अंधकार छाया हुआ था। आकाश मेघों से घिरा हुआ था। जोधपुर के मदोन्मत्त नरेश राव मालदेव राजमहलों में बैठे हुए झरोखे के बाहर मुँह किए पावसऋतु का आनंद ले रहे थे कि विद्युत के प्रकाश में उन्होंनें एक पहेरेदार को हाथमेंनंगी तलवार लिए हुए टहलते देखा और आवाज़ दी -" कौन हैं पहरे पर ?

पहरेदारने नम्रभाव से प्रत्युत्तर दिया—

" अन्नदाता, बाघो कोटड़ियो "।

" ज़रा इधर आना। "

पहरेदार तुरंत अपने हाथ में तलवार लिए राव के महल की ओर बढ़ा। महल में पैर रखते ही एक नवयुवती को देख वह चौंककर बाहर निकलने लगा। राव ने कहा—" डरो मत; आ जाओ, यह तो भारमली हैं।"

मंद प्रकाश के साथ दीपक जल रहा था। बाघजीने राव को झुककर सलाम किया। राव शराब में मस्त होकर एक पलंग पर बैठे हुए थे और एक कोने में लावण्य की प्रतिमा-स्वरूप एक यौवन-सुंदरी खड़ी थी।

राव ने कहा—

"बाघजी ! अभी इसी दम बढ़िया से बढ़िया ऊंट पर सवार कर इस भारमली को तुम अपने गाँव कोटड़े ले जाओ और जब तक मैं न बुलाऊं, वहीं रहो।"

" जो हुक्म अन्नदाता, " कहते हुए बाघजी सलाम कर अपने साथ भारमली को ले चला और दोनों उसी समय ऊंट पर सवार होकर कोटड़े की ओर रवाना हो गए।

कोटड़े की करामात

भारमली राव मालदेव की रानी उमादे भटियानी के दहेज में आई हुई एक परम लावण्यमयी दासी थी। अपनी ही भूल के कारण अपने पति राव मालदेव के साथ उसका अनुचित संबंध हो जाने का संदेह कर उमादे उसके साथ-साथ अपने पति से भी रुष्ट हो गई। इस संदेह से निपटारा पाने के लिये राव मालदेवने भारमली को बाघा कोटड़िया के साथ सदा के लिये उसके गाँव कोटड़े भिजवा दी।

कोटड़े पहुँचकर बाघजी ने भारमली को अपने घर में रक्खा। जोधपुर से आए आज कल करते आठ-दस दिन हो गए थे, परंतु दोनों ने एक-दूसरे को भर नज़र देखा नहीं था।

पावसऋतु थी। सलसलाती हुई बिजली भी अपने प्रियतम मेघ से लिपट-लिपटकर आनंद मना रही थी। पृथ्वी अपने प्रियतम का संदेश पाकर हरित हो रही थी। उमड़ी हुई सरिताए मदोन्मत्त होकर समुद्र से मिलने को द्रुतगति से बहीं जा रही थीं। चारों ओर संयोग ही संयोग दिखलाई दे रहा था तो नवयुवा प्राणियों के चित्त ऐसे समय में किस तरह तटस्थ रह सकते हैं? जैसे बाघजी गौरवर्ण-लंबा-पूरा खूबसूरत जवान था वैसे ही सौंदर्य और सुकुमारता की प्रतिमा भारमली भी कुछ कम न थी। दोनों में एक दूसरे को भर नज़र देखते ही प्रेम हो गया। बस, फिर तो "मो मन लागो तो मना, तो मन मो मन लग्ग!" हीनकी दशा में "दिनड़ा जाय ताळी ज्यूं देता!" सचमुच,

> **"पनरा वरसां कांमणी, मगर पचीसां कंत।**
> **वे दिन वळे न आवसी, जोबन रा भहामंत॥"**

इसके पाँच वर्ष बाद

दरवार में राव मालदेव बैठे हुए थे। आसपास मुत्सद्दी, अमीर-उमरा, कवि-पंडित और अन्य दरबारी बैठे हुए थे। राव का चित्त कुछ उदास सा था। थोड़ी देर के बाद उन्होंने सबको संबोधित करते हुए कहा—

"अच्छा, अब सब जाइए मुझे बारहठजी आशाजी से कुछ बात करनी हैं।" और आशाजी को इशारा करके अपने पास बुलाया।

आशाजी की उम्र पचास वर्ष के लगभग थी। लंबी अर्द्ध श्वेत दाढी थी। मुँह से गंभीरता और अनुभव टपक रहाथा। राव के पास जा वे खडे रहे।

रावने कहा—

"बारहठजी, कोटड़े जाइए बाघजी और भारमली अगर आने में राज़ी हो तो उन्हें लिवा लाइए।"

"जो हुक्म अन्नदाता," कहकर वारहठजी रवाना हो गए।

आशाजी के आने का संवाद सुनकर वाघजी दौड़ता हुआ अपने गाँव की सीमापर उनके स्वागतर्थ सामने गया और जाते ही उनके पैरों की धूलि अपने मस्तक पर लगाकर कहा—"आज मेरा धन्य भाग्य है, जो आप मेरे घर पधारे।

वारहठजी का नाम सुना तो भारमली को भीअपार आनंद हुआ।

दोनों रात-दिन वारहठजी की टहल-वंदगी में रहने लगे। यहा तक कि वाघजी वारहठजी के वस्त्र धोता और वहुत मना करने पर कहता कि "मेरा अहोभाग्य है कि, मुझे इस तरह आपकी सेवा का लाभ मिल रहा है!"

एक दिन संध्या को भारमली वारहठजी के लिये भोजन-सामग्री थाल में सजाकर ले आई। स्वयं वाघजी हाथ में हाथ-मुँह पोंछने का अँगोछा लिए खड़ा था। भारमली भोजन परोसने लगी। वारहठजी के जी में इन दोनों के प्रेम को देख एक अद्‌भुत भाव पैदा हुआ! उन्होंने सोचा कि ऐसी युगल जोड़ी का वियोग किस तरह किया जा सक । है? रावजी चाहें जो कहें, मैं तो इनके वीच में वियोग की नदी नहीं वहा सकता। इतना ही नहीं, उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—

"तरुवर ज्यूं त्यूं मोरियो, ज्यूं सरवर त्यूं हंस।
वाघो ज्यूं ही भारमलि, दारू ज्यूं ही मंस॥"

"भाई वाघजी! मैं तो भारमली को लेने आया था, परंतु मैं तुम्हारे आनंदपूर्ण जीवन में वाधा-स्वरूप होना नहीं चाहता। अव तो मैं भी यहीं रहूँगा।"

वाघजी ने कहा—

"मेरा धन्य भाग्य है जो आप मेरे यहां रहेंगे। मेरा छोटा-सा घर आपके रहने से वड़े-वड़े महलों की वरावरी कर सकेगा।"

इतने दिन तक इन प्राणियों का केंद्र केवल दो जीव-धारियों तक ही सीमित था। परंतु अव तीसरे प्राणी वारहठजी के आ जाने से उन्हें वहुत आनंद हुआ। वाघजी इस वात की कोशिश करता कि जितना अच्छे से अच्छा भोजन हो वारहठजी को खिलाऊं, अच्छे से अच्छे कपड़े उन्हें पहिनाऊं और जैसे भी वने हर तरह से उन्हें संतुष्ट रक्खूं। रात-दिन सोते-वैठते वह वारहठजी की सेवा किया करता। एक पुत्र पिता की और छोटाभाई वड़ेभाई की सेवा एवं सत्कार इससे अधिक क्या कर सकता है। किसी भी वस्तु के लिये वाघजी यह नहीं कहता कि यह मेरी है और आपकी नहीं।

शांति के साथ यह जीवन-स्रोत वह रहा था। तीनों जीवधारियों का परस्पर का प्रेम संसार में दुःख क्या वस्तु हैं इस वात को भूल चुका था। रात-दिन कितनी तेज़ी से व्यतीत

होते यह किसी को खबर न थी। अकस्मात् उस शांत आनंद-स्रोत में एक प्रबल बहाव आ गया और सामने एक महान् रुकावट पैदा हुई जिसने उसके बहाव को फेर दिया।

बाघजी दो दिन बीमार रहकर इस संसार से सदा के लिये चले बसे!

भारमली के प्रेम का केंद्र, उसके जीवन का उल्लास, उसकी एकमात्र निधि सदा के लिये लुप्त हो गई! वह फूट-फूटकर रोने लगी!! उधर एक तो बाघजी सदृश परम मित्र का वियोग और दूसरी भारमली की तज्जन्य करुण दशा, इन दोनों ने मिलकर बारहठजी के जी को भी ज़बरदस्त धक्का पहुँचाया। बारहठजी पागल हो गए और रात-दिन "बाघा! बाघा!" कहकर इधर-उधर भटकने लगे। बाघजी के रहते जो चीजें उन्हें सुखप्रद थीं वे आज उनके लिये दुखदाई हो गईं। दिन के प्रकाश में-रात्रि के गहन अंधकार में बाघा की याद उन्हें सताने लगी। मजनूं का पागलपन तो एक सुंदरी के पीछे था, परंतु बारहठजी की चित्त-उद्विग्नता एक सच्चे मित्र का देहांत हो जाने पर थी। दिन को चैन कहाँ, रात्रि में नींद कहाँ, इधर उधर वे बस भटका ही करते!

एक दिन बाघजी का एक धनुष्य खूंटी पर टंगा हुआ बारहठजी ने देखा कि बाघजी की याद प्रबल हो उठी। निःश्वास डालते हुए उनके मुँह से तत्काल यह दोहा निकल गया-

"बाघाजी रे कोटड़ै, टंगी लाल कबाँण।
साजनियो सालै नहीं, सालै आई ठाँण॥"

(बाघजी के कोटड़े में उनकी लाल कमान टंगी हुई है। मित्र का वियोग इतना नहीं सताता जितना कि उसकी वस्तुए देखकर दुःख होता हैं!)

उदयपुर का आश्वासन

कई लोग आशाजी को देखकर हंसते कि, चारण ढोंग कर रहा है। कई सहृदय व्यक्ति उनकी अवस्था पर तरस खाते। कूपों-कूपिकाओं पर खड़ी सुंदरियाँ उनकी हालत देख, एक निःश्वास डालकर रह जातीं। बाघजी के बिना आशाजी को जीवन भाररूप हो गया। वे एक जगह से दूसरी जगह जाते, घर आते-बाहर जाते, कभी सोते-कभी उठते, परंतु हरदम वही याद उनको सताती थी। चित्तभ्रम हुए-से फिरते-घूमते वे उदयपुर पहुँचे। मारवाड़ के एक राजपूत सरदार उन दिनों महाराणा के पास रहते थे। वे आशाजी को अच्छी तरह पहिचानते थे, अतः अपने यहाँ उन्होंने इनको ठहराया। परंतु वहाँ भी आशाजी पागल की नाईं गली-गली "बाघा! बाघा!" का उच्चारण करते भटकते। कुछ दिन पश्चात किसी ने जाकर राणाजी को अर्ज़ कर दी कि "अन्नदाता! एक आदमी आया है जो पागल की नाईं "बाघा! बाघा!" कहता हुआ फिरा करता है।" उस समय मारवाड के वे सरदार भी वहीं उपस्थित थे। उन्होंने यह सब हाल विस्तारपूर्वक वर्णित किया और कहा कि, "हमने लाख उपाय किए, परंतु वे बाघजी के नाम को नहीं छोड़ते।"

यह सुनकर राणाजी ने कहा"—रुपयों का मोह ऐसा ज़बरदस्त होता है जो मुनियों का मन भी चलित कर देता है। वारहठजी को एक लाखपसाव का कहा कि धन के लालच में वे वाघा को तो क्या, अपने-आपको भी भूल जायँगे।"

राणाजी ने वारहठजी को बुलाया। वारहठजी के साथ में उनका लड़का था जो हरदम उनकी देखभाल रखा करता था। राणाजी ने वारहठजी का सत्कार किया और स्वयं खड़े होकर उनसे मिले। इधर-उधर की वातचीत होने के वाद राणाजी ने कहा—

"वारहठजी! मैंने सुना है कि आप वाघा, वाघा की रट लगाते हैं। यदि आप आज चार प्रहर तक वाघजी का नाम न लें तो रात्रि के प्रत्येक प्रहर के हिसाब से आपको चार लाखपसाव दूँगा।"

वारहठजी ने उत्तर दिया—

"अन्नदाता! वाघजी का नाम तो मेरे रोम-रोम में रम रहा है उसकी याद श्वास की गति के साथ वहती रहती है। उस मित्र को मैं कैसे भुला सकता हूँ?"

वारहठजी के पुत्र ने यह वात सुनकर उनसे वहुत अनुनय-विनय करके कहा कि—"पिताजी! मेरी आर्थिक अवस्था को तो देखिए! एक रात भर आप ज्यों-त्यों करके अपनेको रोकिए और वाघजी के नाम को न लीजिए।"

पुत्र के अत्यंत आग्रह से उन्होंने हृदय पर पत्थर रखकर इस वात की कोशिश रखने का प्रण किया।

राणाजी महल के झरोखे में विराज गए और वारहठजी नीचे दरीखाने में। ज्यों ही एक प्रहर रात्रि बीतने को थी कि वारहठजी को वाघजी की याद हो आई। वढ़ते हुए हृदय का वेग शब्दों से ही कम होता है। हृदय का वेग रह-रहकर वढ़ता था। वाघजी का नाम मुँह तक आकर रुक जाता था। आखिर वे इस प्रवल वेग को रोकने में असमर्थ हुए। उनके मुँह से यह दोहा निकल गया—

"बाघा आव वळेह, धर कोटड़ै तूं धणी।
जासी फूल झड़ेह, वास न जासी बाघजी!"

(हे कोटड़े का स्वामी वाघा! तू एक वार फिर आ। जैसे फूल झड़ जाते हैं, फिर भी उनमें सुगंधी वनी रहती है, वैसे तेरे इस लोक से चले जाने पर भी तेरी याद मुझसे भुलाई नहीं जाती।)

दोहा सुनकर झरोखे से राणाजी ने कहा—

"वारहठजी! अभी तो तीन प्रहर रात्रि वाकी है। मैं तीन प्रहर में चारों ही लाखपसाव दे दूँगा।"

मध्यरात्रि व्यतीत होने को थी। चारों ओर सुनसान था। अबतक आशाजी ने अपने जी को कड़ा रक्खा। परंतु ज्यों ही एक मुर्गे ने बाँग दी, बारहठजी के हृदय में ऐसा प्रतीत होने लगा मानों मुर्गा भी बाघजी के वियोग में व्याकुल हो रहा है। आखिर उनसे बाघजी का नाम लिए बिना न रहा गया। उन्होंने यह दोहा कहा—

" क्यूं कुरलायो कूकड़ा, गळती मांझल जोग।
विहंग थनै ई वींटियो, बाघा तणे विजोग॥ "

(हे मुर्गे ! इस अर्द्धरात्रि के समय तूने व्याकुल होकर क्यों कुरलाहट मचाई है क्या तुझे भी बाघजी के वियोग ने घेर लिया है, जो ऐसी दर्द भरी आवाज़ में चिल्ला रहा है ?)

अब तो उनके पुत्र से रहा न गया। उसने कहा—

" बाबाजी ! यह क्या करने जा रहे हो। दो लाखपसाव पर तो पानी फेर दिया ! कुछ मेरी स्थिति का भी ख़याल है या नहीं ? अब दो प्रहर तक तो मन को कड़ा रक्खो ? "

रात्रि का तीसरा प्रहर व्यतीत होने को था कि आशाजी को कोटड़े की याद हो आई। किस तरह वे दोनों मित्र सुखप्रद जीवन व्यतीत करते थे। अकस्मात् काल के झोंके ने आकर अपने मित्र का जीवनदीप किस तरह बुझा दिया। अब बाघजी के वियोग में कोटड़ा उन्हें कैसा प्रतीत होता है, यह एक दोहे में बताया—

" बाघाजी बिन कोटड़ो, लागे मो अहड़ोह।
जाँनी घरै सिधावियों, जाँणै माँहवड़ोह॥"

(बाघजी के बिना कोटड़ा ग्राम मुझे इस तरह सुनसान प्रतीत होता है जैसे कि बारात के रवाना हो जाने पर लग्न का मंडप-गृह।)

अब तो केवल एक प्रहर रात्रि शेष थी। बारहठजी को बाघजी की याद अधिकाधिक सताने लगी। एक तो सुनसान रात्रि, तिस पर वियोगाग्नि का हृदय के अंदर प्रज्वलित होना, इन दोनों ने मिलकर आशाजी के हृदय में तूफ़ान मचा दिया। उधर राणाजी ने झरोखे से आवाज़ दी—

" आशाजी ! अब तो केवल एक प्रहर रात्रि शेष है। यदि इसमें भी आप बाघजी का नाम न लें तो मैं आपको चारों ही प्रहर के चार लाखपसाव दे दूँ। "

यह कहना ही था कि बारहठजी बोल उठे—

" चींघण चाळवियांह, खह मांही खंखेरियां।
रांणा ! राख थयांह, वीसरसां जद बाघने ! ॥ "

(हे राणाजी ! अग्नि में प्रज्वलित होकर राख बनने के बाद ही इस शरीर से बाघजी का नाम भुलाया जायगा ।)

"थड़े मसांण थयांह, आतम पूगों अलख पद।
गंगा हाड गयांह, वीसरसों जद बाघने ! ॥"

(जब बाघजी के स्मशान की जगह के पास मेरा स्मशान बनेगा और आत्मा का संबंध परमात्मा से हो जायगा और मेरी हड्डियां गंगाजी की धारा में बहाई जायँगी तभी बाघजी का नाम भुलाया जायगा ।)

राणाजी झरोखे से तत्काल नीचे उतर आए और बारहठजी को गले लगाकर कहने लगे—

"बारहठजी ! आपका स्नेह धन्य है। मैंने तो आज तक कोई ऐसा उदाहरण नहीं देखा। सचमुच यही कारण है कि क्षत्रिय, चारणों को पवित्र और सच्चे पथ-प्रदर्शक मानते हैं। हमारी जाति और आपकी जाति का संबंध आजकल का नहीं वरन् परंपरा से निःस्वार्थ चला आता है। अब मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि आप यहीं पर रहें। मैं आपको चारों ही लाख-पसाव देता हूँ।"

राणाजी ने कहा बारहठजी के पुत्र को चारों लाखपसाव दे दिए।

राणाजी की यह भरसक कोशिश रहती कि किसी प्रकार मैं इस चारण के दुःख को दूर करूँ। खाने-पीने एवं पहनने-ओढ़ने में कोई कसर न रक्खी।

एक दिन महाराणा हौज़ पर नहाने गए और अपने साथ बारहठजी को भी ले गए। दोनों ने पास-पास ही अपने वस्त्र खोलकर रक्खे। बारहठजी नहाकर पहले आ गए। उन्हें चित्त-भ्रम दशा में कुछ विशेष ध्यान तो था नहीं, उन्होंने महाराणा की पोशाक पहन ली। पास में कोई नौकर भी न था जो उन्हें टोकता, क्योंकि नौकरों को अंदर आने की आज्ञा नहीं थी। पोशाक पहनकर बारहठजी एक ओर बैठ गए। पीछे से महाराणाने आकर बारहठजी को अपनी पोशाक पहने देखा तो कहा कि—

"बारहठजी ! आपने तो मेरी पोशाक पहन ली है !"

इतना सुनते ही बारहठजी को बाघजी की याद आई। अतीतस्मृति पुनः जागृत हुई। उनकी आँखों के सम्मुख साधारण कपड़े पहने हुए बाघजी, महाराणा से बहुत उच्च स्थान पर दिखलाई दिए। एक निःश्वास छोड़कर उन्होंने कहा—

"की कह की कह की करां, केहा करां बखाण।
थारो म्हारो नह कियो, पे बाघा अहनाण ॥"

(मैं अब क्या क्या कहूँ और बाघजी का क्या बखान करूँ ? उसकी तो पहिचान ही यह थी कि, वह किसी चीज़ को यह मेरी है और यह तुम्हारी है, ऐसा नहीं कहता था।)

बस, तुरंत ही उन्होंने महाराणा के वस्त्र उतार दिए और अपने वस्त्र पहनकर वे यह कहते चलने लगे—

"चाल मना रे! कोटड़ै, पग दै पावड़ियांह।
वाघा सूं वातां करों, गळ दै बांहड़ियांह॥"

(हे मन! इस हौज़ की सीढियां पर पैर रखकर कोटड़े को चल। वहाँ पर वाघजी के गले में बाँहें डालकर बातें करेंगे।)

राणाजी ने उनको रोकने के लिये बहुत कुछ अनुनय-विनय की, परंतु उन्होंने एक न सुनी और मारवाड़ को चल दिए।

पुनः कोटड़ा को

एक स्थान से दूसरे स्थान भटकते-फिरते आशाजी कोटड़े की सीमा में पहुँचे। वहाँ से कोटड़ा गाँव एक मील की दूरी पर था। वसंतऋतु थी, चारों ओर वृक्ष हरेभरे दिखलाई दे रहे थे। वावली के किनारे पर खड़े अपने पूर्वपरिचित एक वरगद के वृक्ष के पास कि जहाँ उन्होंने वाघजी के साथ कई वार वसंतऋतु में महफ़िलें मनाई थीं, खड़े रहे। वरगद को नीचे से ऊपर तक उन्होंने देखा तो मालूम हुआ कि वह हराभरा है। वस, क्या था उनकी पूर्वस्मृति जाग पड़ी। वाघजी का चिरवियोग हो जाने पर भी यह वरगद हराभरा है, यह उनके वियोगाग्नि से जलते हुए हृदय को कब सह्य हो सकता था? उन्होंने वरगद को लक्ष्य करके यह दोहा कहा—

"वड़ बावड़ी तणाह, नीमाणा नीलो थयो।
बाघा वीछड़तांह, साख तणो सूखो नहीं॥"

(हे वावली ऊपर के निर्लज्ज वरगद! मुझे आश्चर्य है कि, वाघजी का चिरवियोग होने पर भी तू शाखाओं तक सूखा नहीं और हराभरा है!)

थोड़ी दूर चलकर वे एकदम नीचे वैठ गए ओर चारों ओर निराशापूर्ण दृष्टि से देखने लगे। उनकी आँखों के सामने चारों ओर अंधकार फैल रहा था। वे थके-मांदे वहीं सो रहे।

उदयाचल की ओर से सूर्यदेव लालिमा लिए उदित हो रहे थे। समस्त संसार निद्रा से जाग उठा था परंतु एक आदमी आज सदा के लिये सो गया था। आज चिरकाल का वियोगी पक्षी पिंजड़े को छोड़ संयोग की ओर उड़ चुका था। जहाँ उसका जीवन-सखा वाघजी है वह मंज़िल उसने प्राप्त कर ली थी। अब तो उस वरगद के पास पड़ा था सिर्फ़ वारहठजी का निर्जीव शरीर कि जिसको घेरे आठ-दस आदमी खड़े थे। एक आदमी उनमें से वोल रहा है—

"गए वेचारे वारहठजी! परंतु वाघजी, क्षत्रियजाति और कोटड़े को तो वे सदा के लिये इतिहास में अमर वना गए।"

आज इस वात को ४०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, परंतु मारवाड़ ही क्यों समस्त राजपूताना एवं गुजरात-काठियावाड़ में वाघजी और आशाजी का नाम लोगों की जिह्वा पर है। जगह-जगह उनकी वात कही जाती है। क्षत्रिय और चारण जाति के पारस्परिक सच्चे स्नेह का यह उदाहरण दिया जाता है। ऐसा विरला ही क्षत्रिय या चारण होगा जिसे वाघजी का एक भी दोहा याद न हो।

सम्पादकीय टिप्पणियां



मेवाड़ के चारणग्राम

फाल्गुन कृष्णा १४ वि० सं० १९९५ को दीवान बहादुर ठाकुर पं० धर्मनारायणजी सा० काक, एम० ए०, बार० एट० लॉ०, सी० आई० ई०, मुसाहिब आला–राज्य मेवाड़ की सेवा में मेवाड़-चारण-सभा की ओर से जिस डेप्युटेशन के जाने का संवाद प्रकाशित हुआ है उसके द्वारा पेश किये गये आवेदनपत्र से मेवाड़ के चारणग्रामों की वर्तमान स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है, अतः पाठकों की जानकारी के लिये उसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है—

"अपरंच: अभी आपका पधारना श्रीमान् श्री जी हुजूर के साथ जब जोधपुर हुआ था तब वहां मारवाड़-चारण-सभा की ओर से एक डेप्यु-टेशन ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर मेवाड़ के चारणग्रामों की ज़ब्ती की कार्रवाई के सिल-सिले में आपसे जो अर्ज़ की और उसका जो सहानुभूतिपूर्ण उत्तर आपने डेप्युटेशन को दिया, उसकी सूचना मारवाड़वालों ने यहां दी है। इसके लिये हम लोग मारवाड़-चारण-सभा व आपके आभारी हैं।

मेवाड़वालों की ओर से अब तक इस संबंध में अर्ज़ मारूज़ न करने-कराने का कारण संक्षेप में यही है कि, कितने ही शुद्धभाव से हो, आजकल अपने सामाजिक कष्ट को मिटाने के लिये किये जानेवाले सामूहिक प्रयत्न को भी राज्य की ओर से शंका की दृष्टि से देखे जाने की प्रवृति का भय हम लोगों में से कुछ मुखिया लोगों को रहा है। परंतु जब हम देख रहे हैं कि जिस मुख्य हेतु से हम उक्त भय को इतना मानते हैं वही जब मिटाया जा रहा है तो अपने स्वार्थ व राज्य-हितकामना से भी अपनी दुःखगाथा राज्य के महामंत्री–आप दयालु महोदय के सामने निवेदन कर देना हमारे लिये लाज़मी हो गया है।

हम लोगों को जो माफ़ियां हैं वे हमारे पूर्वजों की सेवाओं से प्रसन्न होकर राज्य की ओर से बड़ी २ धार्मिक प्रतिज्ञाओं के साथ दी हुई हैं, जिस प्रकार कि आजकल भी राजालोग प्रसन्न होते हैं उन्हें देते हैं।

इन माफ़ी के गांवों पर हम लोगों का सैकड़ों बरसों का क़ब्ज़ा निरन्तर चला आ रहा है।

राज्य ने अब तक इनके तांबापत्र या पट्टे-परवानों के होने न होने का कभी सवाल नहीं उठाया और इन्हें बराबर बहाल रक्खा है।

किन्तु आजकल किसी भी सरकारी महकमे में माफ़ी के गांव का किसी भी शक़ का मामला पेश होते ही उसकी सनद तलब करने का आम उसूल, न मालूम क्यों, इख्तियार किया गया है।

इस रवैये से चारणों के क़रीब बीस-बाईस गांवों पर कुर्की व ज़ब्ती की कार्रवाई जारी है और कुछ के लिये तो ज़ब्ती के हुक्म भी हो गये हैं; जिससे हमारे बीसियों कुटुम्ब दाने २ के लिये मुहताज होने की हालत में आ गये हैं और उन्हें पूर्ववत् अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा क़ायम रखना असंभव हो रहा है।

सच अर्ज़ किया जाय तो आज मेवाड़ का प्रत्येक चारण राज्य के इस रवैये से अत्यन्त दुःखी और त्रस्त है।

आप जानते हैं कि चारण जाति में अपनी जायदाद के अमूमन भाईभाग होने का रिवाज है। ऐसी दशा में सनद किसी भाई के पास रह जाने से और उसकी औलाद की नाबालगी, नादारी या आपसी ईर्ष्याद्वेष आदि के कारण उसका खो जाना, गिरवी रख देना या इधर-उधर ऐसे हो जाना कि फिर पता न लगे;—साधारण समझ में भी आ जाने लायक है। और यह न मान कर यह कहना तो कितना बेबुनियाद है कि वे गांव जिनकी सनदें न मिलें, चारणों के दबाये हुए हैं!

इस परिस्थिति में सिर्फ़ सनद न होने के कारण पीढियों से चले आते हुए क़ब्ज़े को कि जिसको राज्य भी स्वयं अपने महकमों के कागज़ों में स्वीकार करता आ रहा हो, उठा देना न्यायधर्म के सर्वथा विपरीत है।

आपको बखूबी मालूम है कि मारवाड़ में ऐसा सवाल उठने पर क़ब्ज़े को ही महत्व दे कर सब माफ़ियाँ बहाल रक्खी गई हैं और साठ साल से पहिले की माफ़ी के लिये सनद का होना लाज़मी नहीं माना गया है। और राजपूताना के मुख्य राज्यों में चारणों पर ऐसा वज्रप्रहार कहीं नहीं हुआ है।

फिर, जिस राज्य की धर्मप्रियता, न्यायनिष्ठता एवं मर्यादापालन को दूसरे सब आदर्श मानते आ रहे हैं, उसमें हमारे साथ इस प्रकार का निर्दय व्यवहार,—और वह भी वर्तमान श्रीमान् यावदार्यकुलकमल—दिवाकर जैसे उदारचित्त, प्रजा-पालक, धर्मभीरु नरेश्वर के शासनकाल एवं आप जैसे न्यायप्रेमी सर्वोपरि अधिकारी के कार्यकाल में हो; यह हमारे लिये तो घोर दुर्भाग्य है ही, राज्य के लिये भी कहां तक शोभाप्रद है, इसके लिये हम क्या अर्ज़ करें!

हमारी विनम्र सादर प्रार्थना है कि जिन गांवों के लिये सनद पेश न होने से ही ज़ब्ती व कुर्की के हुक्म हुए हैं वे तुरन्त मन्सूख़ फ़रमाने की कृपा की जाय और भविष्य में इस प्रकार सनद-तलबी के रवैये को भी बंद किये जाने की आज्ञा प्रदान की जाय।"

× × ×

इसके बाद की ख़बर है कि डेप्युटेशन को दिये गये वचनानुसार श्री मुसाहिब आला साहिब ने श्रीमान् मेदपाटेश्वर की सेवा में अर्ज़ की तो श्रीमानों ने इस विषय पर कृपापूर्वक विचार करने के लिये फ़रमाया।

इसके पश्चात् यह भी समाचार है कि जिन चारणग्रामों पर ऐसी कार्रवाई हो रही है उनकी फ़हरिस्त महकमा ख़ास से तलब फ़रमाई गई है और श्रीमान् मेदपाटेश्वर के यह दर्याफ्त फ़रमाने पर कि चारण क्या चाहते हैं, खेमपुर ठा० सा० करनीदानजी ने कुछ लिख-लिखाकर पेश भी कर दिया है।

× × ×

इस अनुकूल परिस्थिति में भी मेवाड़ के जो चारण सरदार सपूती व योग्यता का दम भरते हैं, अपने प्रमाद, अहंकार व पारस्परिक ईर्ष्याद्वेष के कारण कुछ सफल प्रयत्न न कर सकें तो क्या जातिहित के लिये की गई इस अक्षम्य बेपरवाही का उन पर अमिट कलंक न रहेगा?

सम्मेलन का आगामी अधिवेशन

अ० भा० चारण-सम्मेलन के पांचवें अधिवेशन के अवसर पर छठे अधिवेशन के लिये मेवाड़ की ओर से आमंत्रण दिया गया था किन्तु अब तक मेवाड़ में इसकी कोई चर्चा नहीं; क्यों? इसका कुछ २ उत्तर नीचे के प्राप्त विवरण की पंक्तियां—जिन्हें हम बड़ी हिचकिचाहट और हार्दिक दुःख के साथ कर्तव्य-विवश हो प्रकाशित करते हैं, देंगी।

"उदयपुर में पांच-सात चारण सरदारों की हवेलियां हैं उनमें एक अरसे से दधिवाड़ियों और महियारियों का पारस्परिक द्वेष एक खुला भेद है। इनके इस द्वेष के कारण मेवाड़ी चारणों की तो अकथनीय हानि हुई और हो ही रही है, किन्तु अब उसका विषैला असर समस्त जाति तक भी पहुँच जाना चाहता है और वह इस तरह कि मेवाड़ की ओर से सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन (जोधपुर) के अवसर पर ही कुछ उत्साही जाति-हितैषियों ने आगामी अधिवेशन को मेवाड़ में आमंत्रित करने के उद्देश्य से निमंत्रण लिखकर हस्ताक्षररूप में अनुमति प्राप्त करने के लिये ठा० सा० करनीदानजी दधिवाड़िया के पास भी भेजा; परन्तु उपरोक्त जातिहितैषियों में महियारिया भी थे और ऐसे सत्कार्यों को टाल देने के लिये राजकीय भय का काल्पनिक भूत सदा ही उनके सिर पर सवार रहता है इसलिये वे हस्ताक्षर करने से इन्कार हो गये। फलतः दूसरे लोग भी ठिठुक गये और निमंत्रण न दे सके; हालांकि जोधपुर सम्मेलन में पहिले किसी अधिवेशन में शरीक़ न हुए उतने मेवाड़ी प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे।

पंचम अधिवेशन का स्थान (राजकोट), मेवाड़ से बहुत दूर पड़ता था इसलिये मेवाड़ से सिर्फ़ एक-दो व्यक्ति ही पहुँच पाये। जिनमें प्रतिनिधिरूप से तो ठा० सा० प्रतापसिंहजी महियारिया ही थे। उन्होंने इस विश्वास पर कि ऐसे सामाजिक काम में राजकीय तो कोई बाधा हो ही नहीं सकती प्रत्युत राजकोट-नरेश के समान ही सम्मेलन को हर तरह की सहायता की परमदानी श्रीमान् हिन्दूसूर्य से भी आशा ही है, और विरोधभाव रखनेवाले भी जब देखेंगे कि मेवाड़ के नाम पर निमंत्रण दे दिया गया है तो वे भी अपने रागद्वेष को छोड़ सहयोगी हो जायँगे, जातिसेवा की भावना से निमंत्रण दे दिया।

इसी बीच में सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय को जब यह ज्ञात हुआ कि मेवाड़ में सम्मेलन को न चाहनेवाले लोग श्रीमान् महाराणा साहिब के नाराज़ हो जाने का डर लोगों को दिखाते हैं, तो उन्होंने श्रीमन्मेदपाटेश्वर के प्राइवेट सैक्रेटरी महोदय पं० रामगोपालजी सा० त्रिवेदी को इस संबध में लिखा। उत्तर में सैक्रेटरी सा० ने अध्यक्ष महोदय को इस आशय से सूचित किया कि श्रीमान् श्री जी हुज़ूर का कभी ऐसा ख़याल नहीं है, अतः यदि अर्ज़ करवाई जायगी तो सम्मेलन के लिये बखुशी आज्ञा हो जायगी।

परन्तु परिस्थितिवश विरोधियों की अनुकूलता प्राप्त होना सम्मेलन-प्रेमी भी आवश्यक समझते हैं और वह अभी तक अप्राप्य है, इसलिये अभी तक न तो श्रीमन्मेदपाटेश्वर की सेवा में अर्ज़ करवाई जा सकी है और न कोई अन्य प्रबंध सम्मेलन के अधिवेशन संबंधी हो रहा है।

क्या ही अच्छा हो, जिस प्रकार नई पीढ़ी के दधिवाड़िया (श्री कविराजा साहिब शक्तिदानजी आदि, व महियारिया (ठा० सा० प्रताप-

सिंहजी आदि) जातिहित के कार्यों में आपसी रंज़िश को बीच में लाना पाप समझने लगे हैं उसी प्रकार इन दोनों खाँपों के वृद्धजन भी समझने लगें । ”

ऊपर वर्णन की हुई परिस्थिति में उचित यही प्रतीत होता है कि सम्मेलन के प्रधान पदाधिकारी अपने प्रभावशाली प्रयत्न से मेवाड़ के सम्मेलन-प्रेमियों के अनुकूल, विरोधभाव रखनेवालों को बना दें या फिर स्वयं श्रीमन्मेदपाटेश्वर की सम्मेलन के अधिवेशन के लिये स्वीकृति प्राप्तकर मेवाड़ के सम्मेलन-प्रेमियों को सूचना दे दें। और यदि ऐसा करना ठीक न मालूम हो तो फिर सम्मेलन-पदाधिकारियों को अपने नियमानुसार मेवाड़ में या कहीं सम्मेलन का अधिवेशन करने की योजना करनी चाहिये, क्योंकि बिना सम्मेलन के प्रभाव के निकट भविष्य में मेवाड़ में सम्मेलन होने के आसार नज़र नहीं आते ।

अंत में हम मेवाड़ के सम्मेलन एवं जाति-हित-विरोधियों से तो राष्ट्रभाषा के प्रमुख कविवरों के शब्दों में निवेदन करेंगे कि——

“ सुन्दरता है व्यर्थ, व्यर्थ वह कुलीनता है ।
जिन मूढ़ों में नहीं जाति की कुछ ममता है ।
जिन में हठ, दुर्भाव भयङ्कर भरे हुए हैं ।
जीते ही वे सभी पूर्णतः मरे हुए हैं ॥
धिक् जिसका व्यवहार नहीं कुछ भी सच्चा है ।
अब भी सोचो ज़रा स्वार्थजीवन कच्चा है ॥
कहते हो कुछ और, हृदय में और भरा है ।
करते हो कुछ और कौन यह परम्परा है ?
हुआ वही भूभार और जननी दुखदाता,
परोपकृति के लिये दुःख जो नहीं उठाता ।
रुपयों ही के लिये शास्त्र क्या पढ़े-पढ़ाये ?
सुकवि बने क्या ख़ाक ! काव्य कर लिये किराये !!
देख जाति-दुर्दशा पसीजी तनिक न छाती ।
मुखिया फिर भी बने रहे, क्यों लाज न आती !!
बिना हुए निःस्वार्थ काम क्या चल सकता है ?
बिना गले क्या बीज कभी भी फल सकता है ?
वस्त्रहीन · गृहहीन तुम्हारे प्यारे भाई—
कलप रहे हैं किन्तु तुम्हें हा ! दया न आई !!”

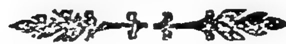
—श्री रामचरित उपाध्याय
(किंचित् शब्दपरिवर्तन के साथ)

× × ×

“रहो न भूल के कभी मदान्ध तुच्छ वित्त में ।
सनाथ जान आपको करो न गर्व चित्त में ॥
अनाथ कौन है यहां त्रिलोकनाथ साथ हैं ।
दयालु दीनबन्धु के बड़े विशाल हाथ हैं ॥ ”

—श्री मैथिलीशरण गुप्त

शोक-सम्वाद



हा ! देशभक्त राव साहिब श्री गोपालसिंहजी राष्ट्रवर !!

गत १२ मार्च १९३९ को खरवा के राव सा० गोपालसिंहजी राष्ट्रवर का ६६ वर्ष के आयु में दुःखद स्वर्गवास हो गया। अजमेर ज़िले में राठोड़ों के कई ठिकाने हैं जिनके स्वामी अमूमन इस्तमरारदार कहलाते हैं । इन्हीं में से एक स्वर्गीय राव साहिब भी थे । परन्तु अपने अनेक सद्गुणों के कारण अपने ज़िले से बाहिर सारे राजपूताना के अलावा देश के अनेक भागों में वे सुविख्यात

थे। आजकल राजपूत सरदारों के रहन-सहन और आकृति-प्रकृति से प्रायः विलासिता ही परिलक्षित होती है किन्तु राव साहिव गोपालसिंहजी के व्यक्तित्व में राजपूती वांकापन और शौर्य मूर्तिमन्त दिखलाई देता था। इतना होते हुए भी आप अक्खड़ नहीं थे वल्कि वड़े मिलनसार और सहृदय थे।

राव साहिव में अपने कुल और धर्म का वड़ा अभिमान था और था ज्वलन्त देशप्रेम। अपने धर्मप्रेम के कारण वे हिन्दू-महासभा के एक अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए थे और देशप्रेम के कारण पाँच वर्ष की नज़रबंदी हो सदा के लिये ठिकाने के अधिकार से वंचित हुए थे। चारण जाति के साथ राव साहिव का सहज प्रेम था और वे इसे वड़ी आदर की दृष्टि से देखते थे। उनके निधन से राजपूताना-मालवा का प्रत्येक परिचित चारण अपने को एक प्रकार से निर्धन हुआ-सा अनुभव करता है और राव साहिव के घनिष्ठ मित्र ठा०सा० केसरीसिंहजी वारहठ (कोटा) के शब्दों में दुःखी हो कहता है—

"परम उदार त्यागमूर्ति पुंज साहस को,
क्रांति को पुजारी दुख देश को सह्यौ नहीं।
भारती-स्वतंत्र-वलिवेदी पै विहँसि चढ्यौ,
दासता विलासिता की धार में वह्यौ नहीं।
धीरज-धुरीण सहि संकट अटल रह्यौ,
ईशभक्ति भिन्न अन्य आश्रय गह्यौ नहीं।
राष्ट्रवर राव श्री गोपाल के सिधाते स्वर्ग
आज राजपूती को नमूनो हू रह्यौ नहीं!!!"

हा! कुँवर श्री आईदानजी सा० वारहठ!!

अन्यत्र प्रकाशित संवाद से पाठकों को ज्ञात होगा कि मथाणिया (मारवाड़) निवासी कुँवर श्री आईदानजी सा० वारहठ, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, का युवावस्था में ही गत २० मार्च को जोधपुर में अचानक दुःखद स्वर्गवास हो गया!

आईदानजी सा० से लेखक का प्रथम परिचय वि० १९९४ के फाल्गुन में जोधपुर हुआ था और तत्पश्चात् राजकोट-सम्मेलन के अवसर पर कुछ दिन साथ रहने और वहां से श्री द्वारिका तक की यात्रा सम्मेलन के अन्य राजस्थानी प्रतिनिधियों के साथ साथ करने का सुखद संयोग प्राप्त हुआ था। इस अल्प परिचय से भी उनके व्यक्तित्व एवं निश्छल प्रेमपूर्ण व्यवहार और जातिहित-कामना की जो छाप हृदयपट पर अंकित हुई वह अमिट-सी है। उनके आकस्मिक परलोकगमन से ऐसा मालूम हो रहा है जैसे कोई घनिष्ठ मित्र धोखा देकर चला गया हो। हृदय में वड़ी वेदना होती है और निःश्वास के साथ मुँह से रुकते २ शब्द निकलते हैं—

हँसमुख करतो जातहित,
मन न रखे अभिमान।
कुण अब वो थां ज्यूं करे,
दिलसुध आईदान!!

आईदानजी सा० के सुयोग्य व्यक्तित्व से उनके परिवार को तो न मालूम क्या २ आशायें होंगी ही जाति को भी उनसे वड़ी आशा थी। जातिसेवा के लिये अपने समय का कुछ भाग वे प्रतिदिन देते रहते थे। सम्मेलन के इस मुखपत्र के लिये भी हर अंक में अपनी तरफ़

से एक कहानी देने का उन्होंने वादा किया था और जहां दूसरे कई युवक विद्वान् "चारण" के लिये एक लाइन भी लिखकर नहीं भेज सके हैं, उन्होंने दो कहानियाँ "वाघा कोटड़िया" और "औसर" नामक लिखकर भेज भी दी थीं। खेद है, इनमें से एक भी वे प्रकाशित न देख सके! "औसर" शीर्षक कहानी में उन्होंने मृत व्यक्ति के पीछे किये जानेवाले भोजों के दुष्परिणाम का कारुणिक वर्णन किया है। पता नहीं, उनके पीछे इस कुरीति का पालन किया गया या त्याग?

जगदम्बा से हम आईदानजी सा० की आत्मा के लिये सुख-शान्ति की प्रार्थना करते हैं और उनके सन्तप्त परिवार के साथ अपनी हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

खेद है कि, नोक (मारवाड़) निवासी ठा० धनसिंहजी कविया—सब इन्स्पेक्टर पुलिस का देहावसान हो गया!

ज़रा इस ओर ध्यान दें—



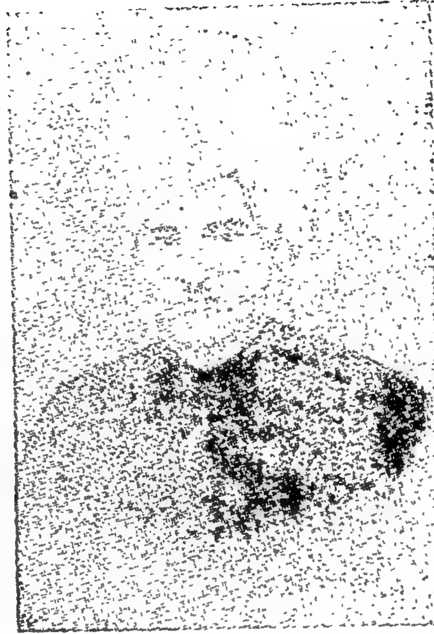
मि० डब्ल्यू० ब्रीग्ज़ ने नाथ-संप्रदाय एवं उसकी यौगिक प्रणालि के विषय में 'गोरखनाथ एन्ड द कनफट्टाज़' नामक अँगरेज़ी भाषा में एक संशोधनात्मक ग्रंथ लिखकर अभी प्रसिद्ध किया है। चारण जाति में भी उस संप्रदाय के बारह योगी हुए हैं, जिनमें महात्मा चर्पटनाथ तो उस संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों में होने से परम प्रसिद्ध हैं। इतिहास लेकर एम० ए० होनेवाले सजातीय विद्यार्थीबंधु भी क्या उनके विषय में एक ग्रंथ लिखेंगे?

प्रसिद्ध राजस्थानी विद्वान् सेठ श्री कन्हैयालालजी पोद्दार महाकवि श्री सूर्यमल्लजी मिश्रण, श्री स्वरूपदासजी एवं गोस्वामी गणेशपुरीजी की कविता के विषय में आलोचनात्मक लेख लिखने के लिये उनकी जीवनियाँ प्राप्त करना चाहते हैं।

यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं कि पोद्दारजी हिंदीभाषा के सुप्रसिद्ध कवि और अलंकारशास्त्र के उद्‌भट विद्वान् तो हैं ही, अपने को महाकवि सूर्यमल्लजी की शिष्य-परंपरा में भी मानते हैं। हम आशा करते हैं कि, हमारे जो बंधु इन कवियों की जीवनियों से परिचित हैं, वे फ़ौरन ही उनके इस पते पर लिख भेजेंगे—सेठ श्री कन्हैयालालजी पोद्दार, पोद्दार-भवन, मथुरा



कुँवर श्री आईदानजी सा० बारहठ (मथाणिया) के असामयिक स्वर्गवास पर शोकसभा एवं श्रद्धांजलियाँ



अत्यंत दुःख की बात है कि विगत ता० २१–३–'३९ को रात्रि के पौने ग्यारह बजे कुँवर श्री आईदानजी सा० बारहठ, बी०ए०, एल्-एल्० बी० (मथाणिया-निवासी), प्रोवेशनरी नायब हाकिम का जोधपुर में अचानक असमय ही में देहांत हो गया!

आप मरुधरा के सुयोग्य, कर्मशील, लोकप्रिय एवं होनहार पुत्र थे और अपनी योग्यता एवं विद्वता के कारण जागीरदार-ऐसोसिएशन, जोधपुर राज्य; मारवाड़ प्रांतीय चारण-सभा; श्री उम्मेद चारण-छात्रालय-प्रबंधसमिति एवं अखिल भारतीय चारण-संमेलन आदि सार्वजनिक संस्थाओं के मंत्री-उपमंत्री थे और उनका सुचारु रूप से संचालन कर रहे थे।

आपकी स्वर्गस्थ आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करने और उनकी हृदयवेधक एवं दुखद असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिये श्रीमान् रा० ब० ठाकुर जयसिंहजी सा० (ठिकाना–उम्मेदनगर) की अध्यक्षता में ता० २६–३–'३९ को सायंकाल साढ़े पाँच बजे श्री उम्मेद-चारण-छात्रालय (जोधपुर) में एक विराट् शोकसभा हुई थी। जिसमें कई वक्ताओं ने आपकी स्वर्गीय आत्मा के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित कर परमात्मा से प्रार्थना की थी कि वह आपकी पवित्र आत्मा को सद्गति एवं शाश्वत शांति प्रदान करे।

इस शोकसभा में निम्नोक्त प्रमुख नागरिकों और राज्यकर्मचारियों ने भाषण किए थे—

श्री अनूपसिंहजी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, असिस्टेंट लीगल रिमैम्बरेंसर, जोधपुर; श्री द्वारिकादासजी राठी, बी० कॉम०, ज्वाइंट कोतवाल नं० २, जोधपुर; श्री रंगरूपमलजी, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री रामगोपालजी, अवसर-प्राप्त कामदार–श्रीमती माजी चौहानजी साहिबा; श्री सूर्यराजजी व्यास, बी० ए०, विशारद, महकमाख़ास, जोधपुर; ठाकुर श्री दुर्जनसिंहजी सा०, दासपाँ; श्री हरलालजी, टाइपिस्ट, जोधपुर; श्री बदरीदानजी कविया, वकील, चीफ़कोर्ट, जोधपुर; श्री उदयराजजी उज्वल, पट्टा आफ़िसर, जोधपुर; श्री गुलाबचंद्रजी चूडामणि, अध्यापक–श्री सुमेर-स्कूल, जोधपुर और श्री चिमनलालजी आर्य, वकील, जोधपुर।

उपर्युक्त वक्ताओं में श्री अनूपसिंहजी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ने अपने अँग्रेज़ी भाषण में स्वर्गीय आत्मा के जीवन एवं सेवाकार्य्यों पर भी प्रकाश डाला था। अतः वह विशेष उल्लेखनीय होने से उसका अक्षरशः अनुवाद नीचे दिया जाता है—

"आज हम श्रीयुत् आईदानजी वारहठ, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, के चिरवियोग पर शोक प्रगट करने के लिये एकत्र हुए हैं, जिनकी अल्पकालीन बीमारी के बाद ता० २१–३–'३९ की रात्रि को असामयिक मृत्यु हो जाने से उनके समस्त मिलनेवालों में गहन शोक एवं उदासी के कारण सन्नाटा छा गया है और उनके परिवार पर अत्यंत भयंकर आपत्ति आ पड़ी है!

मैं यहाँ संक्षेप में स्व० श्रीयुत आईदानजी की जीवनी और उनके द्वारा संपादित सत्कार्यों का वर्णन करता हूँ।

सन् १९१२ ई० में मथाणिया गाँव के प्रतिष्ठित चारण-परिवार में जन्म लेकर उन्होंने उम्मेद-चारण-छात्रालय में रहते हुए श्री दरबार-हाईस्कूल, (जोधपुर) में दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्तकर सन् १९३१ ई० में वे जसवंत-कॉलेज (जोधपुर) में प्रविष्ट हुए। वहाँ बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त कर सन् १९३५ ई० में काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हुए, जहाँ से वे एल्-एल्० बी० (प्रथम वर्ष) और एल्-एल्० बी० (द्वितीय वर्ष) –दोनों कक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। शिक्षा समाप्त होनेपर सन् १९३८ ई० में उन्होंने वकालत शुरू की, परंतु थोड़े ही दिन बाद उसे छोड़ दिया और जोधपुर राज्य ने उन्हें प्रोवेशनरी हाकिम के पद पर नियुक्त किया। तबसे स्वर्गवास तक वे उक्त पद जोधपुर शहर की कोतवाली में कार्य्य करते रहे।

अपने संपूर्ण शिक्षा-काल एवं राजकीय कार्य्य-काल में वे बहुत ही लोकप्रिय सज्जन सिद्ध हुए। वे सामाजिक, साहित्यिक, एवं शिक्षा आदि सभी प्रकार के सत्कार्य्यों में भाग लेते थे। उनका मानसिक दृष्टिकोण अत्यंत विस्तृत और उनकी सुरुचियाँ विभिन्न थीं। अपने सरल स्वभाव, चित्ता-कर्षण शिष्टाचरण, शीतल प्रकृति, सुस्मित अवस्था, खरापन और हार्दिक सचाई आदि महान् सद्गुणों के कारण उन्होंने अपने इष्टमित्रों एवं परिचितों के हृदय में बहुत ही सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। वे अत्यंत सहनशील और उदारवृत्ति के व्यक्ति थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने कभी किसी के साथ, जो उनसे मिला, मतभेद या गलतफ़हमी होने का मौक़ा नहीं दिया। उनमें सबसे बड़ा सद्गुण था परोपकार से प्रेरित उनका जनसेवा-प्रेम। जिसका ज्वलंत प्रमाण यह है कि अपने अल्पकालीन जीवन में वे चार से भी अधिक संस्थाओं के मंत्रित्व का कार्य्य करने के लिये समय निकाल सके; यथा--मंत्री, मारवाड़-जागीरदार-ऐसोसिएशन; मारवाड़ प्रांतीय चारण-सभा; उम्मेद-चारण-छात्रालय-प्रबंध-समिति और सहायक मंत्री, अखिल भारतीय चारण-संमेलन।

उनके निधन से हमारे देश ने एक उपयोगी नागरिक, जोधपुर राज्य ने एक होनहार पदाधिकारी, चारण जाति ने एक सुयोग्य होनहार नेता और उनके इष्टमित्र-समुदाय ने एक सच्चा एवं अंतरंग मित्र खो दिया। जीवन के यौवनकाल में इस महान् व्यक्ति का स्वर्गवास मुझे इस अँग्रेज़ी कहा-वत का स्मरण दिलाता है—"जिन्हें परमात्मा प्यार करते हैं, वे यौवनावस्था में ही मर जाते हैं।"

वारहठ आईदानजी के आकस्मिक, असाम-यिक एवं हृदयविदारक निधन से उनके परिवार की जो अमिट हानि हुई है वह वर्णनातीत है।

उनके परिवार की सब आशाएं और अभि-लाषाएं, जो उन पर अवलंबित थीं सहसा चूर-चूर हो गईं। उनका परिवार जो अभी होली के त्यौहार के अवसर पर सुखमग्न था, आज अत्यंत

असहाय और दुःखग्रस्त हो गया। उनके वृद्ध पिता कि जिन्होंने उनकी उच्चशिक्षा में वहुत कष्ट उठाकर ख़र्च किए गए धन का भारी वोझा उठाया, उन श्री जैतदानजी की दशा आज अपने पुत्ररत्न् के अचानक छीन लिए जाने के कारण पागल मनुष्य की-सी हो रही है। स्वर्गस्थ आईदानजी अपने पीछे एक असहाय विधवा एवं दो छोटे-छोटे वच्चे छोड़ गए हैं, जिनकी दुखद दशा अत्यंत करुणोत्पादक है।

मैं सभी उपस्थित सज्जनों से निवेदन करता हूँ कि वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से स्व० आईदानजी की आत्मा को चिरशांति एवं सद्गति तथा उनके परिजनों को इस असीम दुःख को सहन करने की शक्ति देने के लिये प्रार्थना करें।

मैं उपस्थित महानुभावों से यह भी प्रार्थना करता हूँ कि वे स्व० आईदानजी के अत्यंत दुःखी परिवार के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करें और जोधपुर राज्य से उनकी असहाय विधवा और छोटे निराधार वच्चों के भरण-पोषण के लिये आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सहयोग दें *।"

इस शोकसभा में निम्नोक्त गण्यमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे—ठाकुर श्री देवीसिंहजी सा० (भाद्राजुन); कुँवर श्री अमरसिंहजी सा० (जसोल), सेशन्स जज, जोधपुर; श्री वलदेवरामजी सा०, सिटी पुलिस सुपरिंटेंडेंट, जोधपुर; श्री प्रतापमलजी मेहता, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री हेमराजजी सा०, एम् ए०, प्रोफेसर, जसवंत-कॉलेज, जोधपुर; श्री श्यामलदानजी उज्ज्वल, एम् ए०, इंस्पेक्टर, कोओपरेटिव सोसाइटीज़, मारवाड़; श्री अमृतराजजी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री सरदारसिंहजी, बी० ए०, पर्सनल असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट, कॉर्ट ऑव् वार्डज्, जोधपुर; ठाकुर श्री जोरावरसिंहजी सा०, पाटौदी; श्री सी० जे० फरनेन्सडिस, अध्यक्ष, पशुसुधार-विभाग, जोधपुर; श्री टी० जी० वाली, बी० ए०, हेडमास्टर, श्री सुमेर-स्कूल, जोधपुर; श्री पन्नालालजी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, सुपरिंटेंडेंट, होम-सेक्शन, महकमा खास, जोधपुर; श्री दीनदयालजी शर्म्मा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, क्लेम सुपरवाईजर, रेलवे-विभाग, जोधपुर; श्री कविराजा

* श्री अनूपसिंहजी ने अजमेर से प्रकाशित होनेवाले **"क्षात्रधर्म"** मासिक के अप्रेल १९३९ के अंक में भी पृष्ठ ४१ पर श्री आईदानजी के स्वर्गवास का संवाद इस प्रकार प्रकाशित कराया है—

श्रीयुत आईदानजी वारहठ का स्वर्गवास

गत २१ मार्च को मारवाड़ के सुयोग्य विद्वान श्री आईदानजी वारहठ बी० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रोवेशनरी नायव हाकिम का आकस्मिक निधन हो गया। आप वड़े ही कर्मशील एवं लोकप्रिय व्यक्ति थे। कई संस्थाओं का संचालन-भार आप सुचारु रूप से वहन कर रहे थे। आपसे मारवाड़ को वहुत-सी आशाएं थीं, किंतु खेद है कि मारवाड़ को अब उनसे वंचित रहना पड़ेगा। हम मृतात्मा के प्रति ईश्वर से प्रार्थना करते हुए उनके शोक-संतप्त परिवार के साथ समवेदना प्रकट करते हैं।

स्वर्गीय वारहठजी को श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिये २० मार्च को जोधपुर में रायवहादुर ठाकुर जयसिंहजी, ठिकाना–उम्मेदनगर के सभापतित्व में सभा हुई थी, जिसमें अनेक गण्यमान्य सज्जनों की उपस्थिति में शोक-सूचक प्रस्ताव भी पास हुआ था।

तेजदानजी, जोधपुर; श्री वैजदानजी वारहठ, ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री ठाकुर मालूमसिंहजी सा० वड़गाँव; रावराजा श्री इंद्रसिंहजी सा०, जोधपुर; कुँवर श्री फतहसिंहजी, विसलपुर; श्री उत्सवलालजी ऐडवोकेट, जोधपुर; श्री लक्ष्मीदानजी साँदू, बी० ए०, जुडीशल सुपरिंटेंडेंट, फलोदी एवं श्री मगरूपमलजी भंडारी, बी० ए०, कोतवाल, जोधपुर।

विविध वक्ताओं के भाषण के पश्चात् श्री अमृतराजजी महेता; बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ने अँग्रेज़ी में शोक-सूचक प्रस्ताव पेश किया, जिसका निम्नलिखित हिंदी अनुवाद श्री रंगरूपमलजी, ऐडवोकेट ने पढ़ा—

"यह सार्वजनिक सभा श्रीयुत् आईदानजी बारहठ, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, प्रोबेशनरी नायब हाकिम; सैक्रेटरी, जागीरदार-ऐसोसिएशन; मंत्री, मारवाड़-चारण-सभा एवं उम्मेद-चारण-छात्रालय-प्रबंधसमिति और सहकारी मंत्री, अ० भा० चारण-संमेलन के असामयिक, आकस्मिक एवं दुखद स्वर्गवास पर महान् शोक और उनके शोकाकुल परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रदर्शित करती है और सर्वशक्तिमान् ईश्वर से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति एवं अक्षय शांति तथा उनके व्यथित परिजनों को इस असह्य हानि को सहन करने की शक्ति व धैर्य्य प्रदान करे।

इस वात को ध्यान में रखते हुए कि श्रीमान् आईदानजी जो मरुधरा के एक सुयोग्य, होनहार एवं सुशिक्षित नवयुवक थे, राजकीय सेवा में प्रविष्ट होते ही असहाय विधवा और दो छोटे वच्चों को विना किसी भरण-पोषण के साधन के छोड़कर असमय में ही अचानक चल वसे, यह सार्वजनिक सभा श्रीमान् परम कृपालु हिज हाईनेस श्री महाराजा साहव वहादुर की गवर्नमेंट को, जिसकी दानशीलता, उदारता एवं दुःखग्रस्त सरकारी नौकरों के परिजनों को उनके आपत्तिकाल में सहायता देने की लगन सुविख्यात है, सादर प्रार्थना करती है कि कृपया वह मृत व्यक्ति के कुटुंब की हृदयद्रावक एवं दयनीय अवस्था पर पूर्ण सहानुभूति से विचार करे और उनकी विधवा के लिये आजीवन भरण-पोषण एवं छोटे वच्चों की शिक्षा के लिये ख़ासतौर से समुचित मासिक आर्थिक प्रवंध करने की परवरिश फरमावे।"

इस प्रस्ताव को सभासदों ने अपने-अपने स्थान पर खड़े होकर स्वीकार किया और उसकी एक नक़ल श्रीमान् हिज़ हाईनेस महाराजा साहव बहादुर की सेवा में भेजने को अध्यक्ष महोदय को प्रार्थना करने के पश्चात् यह सभा विसर्जित हुई।

—सहकारी संपादक, हिंदी विभाग

महान् आत्मा

(रचयिता—श्री गुलावचंद्रजी चूड़ामणी, अध्यापक, सुमेर-स्कूल, जोधपुर)

दोहा

भलपण वहु सद्गुण भर्यो, विसद हुतो विद्वान।
(हा!) क्यूँ की ओछी ईसवर, (थारी) ऊमर आईदान! ॥ १ ॥
जात-सुधारक हो जवर, प्रिय छात्रालय-प्राण।
(हा!) क्यूँ की ओछी ईसवर, (थारी) ऊमर आईदान! ॥ २ ॥
सद्विद्या अर सुजनता, मुख पर मृदु मुसकान।
(हा!) क्यूँ की ओछी ईसवर, (थारी) ऊमर आईदान! ॥ ३ ॥



राजस्थान केसरी



देशभक्त कविवर ठाकुर श्री केसरीसिंहजी सा० सौदा,

जन्मदाता—अखिल भारतीय चारण-संमेलन

आयु ५९ वर्ष | दोहा | फोटो सं० १९८८ वि०

मुग्ध राजनैतिक रसिक, सुजस-सुगंध-समीर।
'केसर' सम केसर जहाँ, कुल चारण कसमीर॥

श्री दाजीभाई वाटी (कलोल) के बंधु-कृत्य से] —श्री अक्षयसिंहजी रत्नू (अलवर)

યા ચ ના

યાચક : આઇ શ્રી પુનાદે

રાગ–પ્રભાતી

ભણુતીસું કાનજી કાળા ! મીઠી મોરલિયુંવાળા ! ટેક

પાંચસેં તો મોયે પોઠિયા દેજે, પાંચસેં ગુણાળા;
લાંબી આંવડલીએ ચારણ દેજે, ગાયું ગાવાળા. ભણુતી૦

પાંચ તો મોયે પૂતર દેજે, પાંચે છોગાળા;
છઠ્ઠી તો મોયે ધીહુડી દેજે, આણાં ઘોડાળાં. ભણુતી૦

ડેલી ને મોયે ડાયરા દેજે, અફીણના ગાળા;
મે'માનુંની મોકળું દેજે, પીનારા ભોળા. ભણુતી૦

કાળી ને વળી કુંઢિયું દેજે, ગાયુંના ટોળા;
વાંકે નેણે વૈવારૂ દેજે, ઘૂમરડે ગાળા. ભણુતી૦

ગોમતી કાંઠે ગામ અમારાં ને, બરડો અમારો દેશ;
ચારણ્ય 'પુનાદે' એમ ભણે, મોસે લીલો રાખ્યે નેસ. ભણુતી૦

ગુજરાત–કાઠિયાવાડ અને કચ્છમાં ભાગ્યે જ એવી કોઈ ચારણ–વ્યક્તિ મળી આવશે, જેને બરડાવાસી આઈ પુનાદેના આ યાચના–ગીતની એક–બે પંક્તિ પણ યાદ ન હોય, અથવા જેણે રાવળદેવોને મોંઢે પણ તેને ગવાતું ન સાંભળ્યું હોય.

આ આઈ પુનાદે ક્યારે થઇ ગયાં, તેઓ કયા ગોત્રમાં અને કયા ગામમાં જન્મ્યાં તેમજ પરણ્યાં હતા, તથા તેમણે બીજી કાંઇ કવિતા રચી છે કે કેમ, વગેરે તેમના જીવનચરિત્ર સંબંધી હકીકત જાણવામાં નથી. પરંતુ તેઓ આ એક જ ગીત વડે અમર છે, એમ કહેવું અતિશયોક્તિભર્યું નહિ ગણાય.

આ સીધા–સાદા ગીતની એ વિશિષ્ટતા છે કે, તેમાં સ્વાવલંબી અને શ્રમયુક્ત જીવનને ઉત્તમ લેખનાર એ આઈએ આપણા રાજાશ્રિત, પરાવલંબી ચારણ–સમાજની મહિલાઓની જેમ જમીન–જાગીર કે પોતાના પતિ પર કોઇ નૃપતિની કૃપાદૃષ્ટિની માગણી ન કરતાં

ગ્રામ-વાસ, મર્દપ્રકૃતિનો પતિ અને તેવોજ ખડતલ પરિવાર, ગાય, ભેંસનાં ટોળાં, દધ-દહીંની છોળો, દાતારી અને ચારણ જાતિના પ્રાચીન વ્યવસાય-વેપારી પોઠોની ઊગતે પ્રભાતે શ્રીકૃષ્ણચંદ્ર પાસે યાચના કરી છે. એટલું જ નહિ પણ ' મોસે લીલો રાખ્યે નેસ ' એ પંક્તિથી આજના ચારણ-માનસ માટે વિરલ પોતાના પાંચ પાડોશી બલ્કે સમસ્ત નેસ-વાસીઓને પણ સુખી વાંચ્છી હિંદુધર્મની 'પાડોશીધર્મ'ની ઉદાત્ત ભાવના વ્યક્ત કરી છે. જો કે તેમાં આળસુઓના ઉતારા સમાં 'ડેલી ને ડાયરા' માટે 'અફીણના ગોળા' પણ માગ્યા છે, પરંતુ એ તો ગયા જમાનાની ગાંડી પરોણા-ચાકરી અને ઉદારતાની એક વિશિષ્ટતા લેખાતી. છતાં યે એટલો દોષ બાદ કરીએ તો નેસવાસી ચારણોની સ્વાભાવિક ભાષામાં રચાયેલું આ ગીત ઘણું અર્થયુક્ત અને સુંદર છે.

—સંપાદક : 'ગુજરાતી વિભાગ'



આજનું આપણું માનસ-ચિત્ર



લેખકઃ—શ્રી જીવણલાલજી નાથાભાઈ વરસડા, ભાદરવા (મધ્ય ગુજરાત)

આમાં નથી કટાક્ષ કે પક્ષપાત, તેમ નથી સ્નેહ કે દ્વેષ, માત્ર સર્વ વ્યાપી વિશુદ્ધ પ્રેમની દિવાલ પર અંકિત થયેલું દેશ, કાળ અને સંજોગો પરત્વેનું આપણું—ચારણોનું હાલનું માનસચિત્ર-દર્શન છે.

આ ચિત્રની રેખાઓ દોરતાં કલમ અટકે છે, ફરજ અને જવાબદારી તેની સ્વતંત્રતા ખેંચી લે છે. પરંતુ સમભાવના કેમેરામાં તો એ ચિત્ર ક્યારનું યે પ્રગટ થઈ જાય છે, અને તેથી જગતના અરીસામાં આજે તે દેખાય છે. એ ચિત્ર વ્યક્તિનું છે કે સમાજનું ? માયાનું છે કે બ્રહ્મનું ? કોણ જાણે ! **नरो वा कुंजरो वा !** ! લેખકે પણ સત્યનારાયણનો થોડોક દ્રોહ પોતાની અપૂર્ણતાને લીધે કરવો જ પડશે ને ? આનું જ નામ માયાઃ ત્રિલોકને વશ કરનાર મહામાયા. ભોક્તા બનનારને પોતાના ખપ્પરમાં ખપાવી દેનાર એ જોગમાયાના પુત્રો—ચારણોને આ ચિત્રદર્શનની સમાલોચના જરૂર દિશાસૂચક છે, અને તેથી બિચારી કલમ તેને ન છૂટકે અપૂર્ણ સ્વરૂપમાં એ પ્રગટ કરે છે; એમ સમજી વાચકો વિચારશેઃ સમજુ પુરૂષો અસારમાંથી સાર ગ્રહણ કરશેઃ હંસવૃતિના વિચારકો નીર-ક્ષીર જુદાં કરશેઃ તો સમજાશે શું ? **આજનું આપણું માનસ !**

આપણું માનસ સમજવાને પ્રથમ આપણે કોણ છીએ, એ વિચરીએ તો જગતના મહાન અરીસામાં આપણે પોતે જ રજુ કરેલા આપણા આ માનસ-ચિત્રનું દર્શન કરી શકીએ. એટલુંજ નહિ પણ ભૂતકાળ અને વર્તમાનની વચ્ચે ઉભી થયેલી આંટીઓનો ઉકેલ લાવી ભાવિ નવસર્જનની ક્રિયામાં આપણા પોતાના ભાગ્યવિધાતા તરીકે આપણે ઉત્તમ ફાળો આપી શકીએ. બીજાના ભાગ્ય પર આપણો આધાર ન રાખતાં, એટલે કે પોતાનાં સ્વતંત્ર જીવન પાણીને મૂલ્યે

વેગ્રી ન નાંખતાં આપણે આપણી કોમના અને સ્વદેશના ભાગ્યસ્રષ્ટા બની શકીએ. સમાજની સેવા માટે સુંદર તૈયારી સાથે દેશ અને જાતિના સાચા સુપુત્રોને સ્વકર્તવ્યની નિઃસ્વાર્થ પ્રેરણા આપી, આપણે દેશ અને જાતિની સ્વતંત્રતા યુક્ત સાચી ઉન્નતિ સાધી શકીએ. આપણી સ્વતંત્રતાપ્રિય-સત્યપ્રિય-કર્મવીર દેવજાતિનો પુરાતન આદર્શ જીવનમાં મૂકી ભારતવર્ષની જૂની જાહોજલાલી અને મુક્તિનાં સ્વપ્ન સિદ્ધ કરી શકીએ. દેશ અને સમાજની મુક્તિ માટે બલિદાન બનેલા રાષ્ટ્રવીરોને પવિત્ર અંજલિ આપી ચારણ તરીકેનું જીવન સફળ બનાવી શકીએ શુદ્ધ ક્ષાત્રતેજને અજવાળી શકીએ. શિષ્ટ સાહિત્યના સાચા પૂજારી બની દેવચારણોનો સજીવન અક્ષરો લખવાનો હક્ક હંમેશને માટે જાળવી શકીએ. કોઈ પણ જાતિને સબળ બનાવવા માટે આ નવયુગમાં આથી વધુ ઊંચો આદર્શ શો હોઈ શકે?

આપણે કોણ છીએ; કેવા છીએ, શું કરીએ છીએ, એ પ્રશ્નો જો આપણે આપણા આત્માને પૂછીએ તો આપણાં સર્વ દુઃખોનો એક સામટો અંત આવી જાય. પરંતુ એ પ્રશ્નો પૂછે કોણ? જગત બધું જ્યારે સદીઓ જૂની નિદ્રા ખંખેરીને કર્તવ્યને પંથે દોરાઈ રહ્યું છે, ત્યારે આપણે તો હજી વધુ ઊંઘવું છે. ક્રાંતિનો નૂતનયુગ સમીપ આવતો દેખાય છે, અને તેનો પ્રવાહ વંશપરંપરાના ઝંડાધારીઓના સડેલા હક્કોનો નાશ કરતો સૌ કોઇ જોઈ શકે છે. ત્યારે આપણે તો નિદ્રા સમાધિની સ્થિતિનો અનુભવ લઇ રહ્યા હોઇએ તેમ આંખો મીંચીને, ભાગતા યુગની ગઈ રાત્રિનાં પુરાતન સ્વપ્નાં સેવીએ છીએ. આજે દુનિયામાં શું બની રહ્યું છે, આ કર્મભૂમિમાં આપણું સ્થાન ક્યાં છે; તે જાણવાને, જોવાને, વિચારવાને કે સાંભળવાને પણ આપણને નથી પડી ત્યાં હક્કરક્ષા કે કર્તવ્યની પ્રેરણા તો સૂઝે જ ક્યાંથી?

કેટલા સખેદાશ્ચર્યની વાત છે કે, જે દેવત્વનો આપણે દાવો કરીએ છીએ, તે અત્યારે કેટલી અધોગતિએ પહોંચ્યું છે; તેનો ખ્યાલ સરખો પણ આજે આપણે કરતા નથી! ખરે, દેવ હોવાની વાત તો દૂર રહી, પરંતુ મનુષ્યનામને યોગ્ય ગુણોની ખીલવણી કરવાને પણ આપણે આજે અશક્ત બન્યા છીએ! એક વખત માની

લઈએ કે મનુષ્યજીવનથી દેવજીવન જરૂર શ્રેષ્ટ છે, પરંતુ આજે આપણે જે પ્રકારનું જીવન જીવી રહ્યા છીએ, તેમાં દેવજીવન કે મનુષ્ય જીવનનો છાંટો સરખો યે છે? **'યતો ભ્રષ્ટ, તતો ભ્રષ્ટ'** જેવી જિંદગી પસાર કરવી એને કાંઈ જીવનનાં લેખાં છે! આપણે ચારણ તરીકે રાજાઓના આશ્રિત-અને વફાદાર હોવામાં ગર્વ લઈએ છીએ' પરંતુ આપણા બાપદાદાઓ અને ચારણજાતિના અનેક નરરત્નોએ ખરી અણીની વખતે જે રાજ્યોની ખોળાધરીઓમાં અને સમરભૂમિમાં હરોલે ઊભા રહી પોતાના ભેજા અને ભુજાના બળ વડે મુંડકટીમાં પ્રાપ્ત કરેલા ગામ-ગિરાસો, એ રાજ્યોના આજના આપણા શુભેચ્છક ગણાતા મુકુટધારીઓએ-પ્રતાપી ક્ષત્રિયવંશના વારસોએ-આજના સુધરેલા કહેવાતા આપણા બાપુઓએ દમનનીતિ અને કુટિલતા વડે સામટા જપ્ત કરી લીધા છે! જામનગરના બારાડીના વીપ્રકૃતિના તુંબેલ ચારણોનાં બાર ગામ હાથ ધરીને ભિક્ષાવૃત્તિમાં નહિ, પણ મુંડકડીમાં મેળવેલાં હતા. એ ગિરાસના તેઓ સાચા હક્કદારો હતા. પરંતુ સત્તાના મદમાં અંધ બની-પોતાનું પશુબળ દાખવી જેને આપણે **'જામનાં ઘર કે રામનાં ઘર'** કહીએ છીએ, એ પવિત્ર ઘરના મહુંમ વિશ્વવિખ્યાત અધિપતિએ ચારણ જાતિના પુરાતન સંબંધને ઠોકરે મારી ઠંડે કલેજે હોઇયાં કરી લીધાં છે. વધુ દુર્ભાગ્યનો વિષય તો એ છે કે, એ વીર તુંબેલ ચારણોના બલિદાનોનો કોઇ ક્ષત્રિય જાયાએ પક્ષ પણ લીધો નથી. અને આપણે ખુદ ચારણો તો એ નૃપવરની રાજનીતિ અને ક્રિકેટકુશળતાનાં આજ સુધી સહર્ષમુખે વખાણ કરતા આવ્યા છીએ! '**જામ-રામ**' ના ઘરવાળા એ મહુંમ નૃપતિએ એ વખાણ એકથી વધુ વખત સાંભળી બારગામ ગળી ગયાના સંતોષના ઓડકાર ખાધા હતા. તુંબેલ ચારણોના ગામ ગિરાસ જાય તેમાં પોતાને વિશુદ્ધ ચારણ તરીકે માનતા, 'પરજ' અને 'મારૂ' વંશના સપૂતોને શું? અને એ સ્થિતિમાં હાલમાં ખંભાળિયાની આસપાસના ચારણોના ગિરાસપર એ ઘરના હાલના નૃપતિ તરફથી પણ કાંઈ આફતના ઓળા ઊતરે તો તેમાં નવાઈ જેવું શું?

આવી તો ઠેર ઠેર હોળી સળગેલી મોજૂદ હોવા છતાં, પણ આજના આપણા આગેવાન ગણાતા પૂજ્ય કવિરાજો સિંહસી

પાસે બકરી આંખો મીંચીને બેસી જાય તેમ કાન બંધ કરીને જીવતે મૂવેલા બની શ્વાસ ખેંચી રહ્યા છે! દેશી રાજ્યોના એવા કલંકિત ઇતિહાસનાં તાજાં ઉદાહરણો મોજૂદ હોવા છતાં પણ ક્ષત્રીવટના સ્થંભ ગણાતા આજના એ રાજવીઓને અમારા કવિરાજો એક શબ્દ પણ શિખામણનો કહેવાની હિંમત દાખવી શકતા નથી. ત્યાં ધરણા કે સત્યાગ્રહની તો વાત શી કરવી!

રાષ્ટ્રનું ચણતર ચણવામાં જે જાતિએ એક વખત નિઃસ્વાર્થવૃત્તિથી આગેવાની ભર્યો ભાગ લઈ **દોઢશૂરાનું** બિરુદ પ્રાપ્ત કર્યું, જેના કુળમાં જોધપુર, બીકાનેર, ભાવનગર જેવાં વિશાળ રાજ્યોના પાયા નાંખનાર કરણીજી, ખોડિયાર આદિ જગદંબાઓના જન્મ થયા, જેણે દેશને અમર કવિઓ, યોદ્ધાઓ, સત્યાગ્રહીઓ અને પ્રભુભક્તો આપ્યા, તે જાતિ આજે તેની કીર્તિનો આથમતો સૂર્ય જોઈને પણ દિલગીર થતી નથી, બલ્કે પોતાની પડતી દશાનો તેને ખ્યાલ સરખો યે નથી! જેના નિવાસસ્થાને એક વખતે આઝાદીનો મુલકમશહૂર ધ્વજ ફરકતો હતો, જે મુડદામાં પણ ચેતનના મંત્ર ફૂંકી 'વણુંપઢિયો વાતું કરનાર' હોય તો યે 'ચોથો વેદ' ગણાતો, તે ચારણને આજે જોઈએ છીએ, તો જોવા મળે છે, **ગુલામી માનસ અને નિસ્તેજ ચહેરો!**

આપણાં આજનાં કર્મોનો આપણે ભલે ઢાંકપિછોડો કરીએ, પરંતુ કુદરત એને શું સાંખી લેશે? એ તો દોકડા-બદામનો હિસાબ ગણીને તેનો બદલો આપશે; અને તેનો ભોગ આપણે તથા આપણી ભાવિપ્રજાને પણ થવું પડશે.

આજે આપણું સમાજમાં શું સ્થાન છે, તેનો આપણે કોઈ દિવસ વિચાર સરખો યે કર્યો છે? શું આપણે અધઃપતનને કિનારે પહોંચ્યા નથી? આપણી સામે આજે કયા કયા મુખ્ય આદર્શો છે? આપણા ગુણ-કર્મોનું આપણે કોઇ દિવસ આત્મ-નિરીક્ષણ કર્યું છે?

બિલકુલ નહિ. આપણે તો તમો-ગુણની ગાઢ નિદ્રામાં આસુરી સ્વપ્નાં

સેવ્યા કર્યાં છે. રાજદરબારી વ્યસનોના ચક્કરમાં પડતાં 'डील्ह दराज दीसता हारण' એ ઉક્તિને કવિ-કલ્પનાની વસ્તુ બનાવી આપણે આપણા આરોગ્યને અને ભાવિ પ્રજાના શરીર-બંધારણને પારાવાર નુકસાન પહોંચાડયું છે.

ઉદ્યોગ અને વિદ્યાને અભાવે સંગઠન વિનાના આજના ચારણ અને ભૂતકાળના સ્વાર્થત્યાગી-બલિદાનની આહુતિ બનનાર ચારણ વચ્ચે ઉત્તર અને દક્ષિણ ધ્રુવ જેટલું અંતર પડયું છે. 'હજારો કંઈ નિરાશામાં આજનો ચારણ એની' અમર આશા, ગુમાવી બેઠો છે. એના સમાજ–જીવનનું નાવ આજે અધઃપતનના વમળમાં ડામાડોલ થઈ રહ્યું છે, એની જીવન નૌકાનો સૂકાની આજે ખોવાઈ ગયો છે. એની પાસે આજે નથી પ્રાચીનજીવનકેનથી નવજીવન. લુગડાનો મેલ લુગડાને ખાય એવી અધમ પરિસ્થિતિ આજે તેની સમક્ષ ખડી થઈ છે. ગમે તેમ કરી પાપી પેટનો ખાડો પૂરવો, પેટપાળુ બનીને પણ જીવન વીતાવવું, એ આજે એનો મુદ્રાલેખ બન્યો છે.

અને આવી જીવંતમૃતક સ્થિતિમાં યે આપણે 'अजै न छोड़े सायबो, मूछाँ तणो मरट्ट' ની પેઠે આપણી કહેવાતી પ્રાચીન મહત્તાની ખયાલી દુનિયામાં રાચતું આપણું માનસ બદલી શકતા નથી, એ શું ઓછા દુઃખનો વિષય છે? આપણે એટલે આભમાંથી પડેલી કોઈ એકલવાયી દૈવી વસ્તુઃ આપણે એટલે કાયમની ફર્સ્ટ ક્લાસની ટિકિટ કપાવી લાવેલા માનવંત મુસાફરોઃ આપણે એટલે સંપૂર્ણતા ને શ્રેષ્ઠતાની પ્રતિમાઃ આપણે એટલે અનાદિ કાળના દેવોના બાપકર્મી આળસુ દીકરાઓ તેથી આપણને અને જગતને કશોય સંબંધ નહિ; એમ પણ આપણે કલ્પી લેવાનું નથી. આપણે એટલે ખુશામદિયા, આપણે એટલે હાજી હા, બાપુ કહેનારા કે મીઠા ઝેર જેવા પણ નહિ. આપણે એટલે રાષ્ટ્રદ્રોહી–જાતિદ્રોહી કે ભિક્ષુકોની હરોળમાં ઊભા રહેનારા સ્વમાનહીણા પેટભરા પણ નહિ. અને જો આમાંનું થોડુંક પણ આસુરી ભાતું આપણી પાસે હોય તો કુલીન કે દેવપણાનો, ક્ષત્રિયોના ઉપદેશકોનો, સમાજના સાચા પ્રચારકોનો, શિષ્ટ સાહિત્યના હિમાયતીપણાનો આપણો દાવો આપણે હિંદીમહાસાગર

માં ફુલાવી આવવો; તે આપણા તથા આપણી ભાવિપ્રજા માટે આવકારદાયક લેખાશે. કેમકે પ્રકૃતિદેવીનો એક મહા નિયમ છે કે, **આગળ વધો કે નાશ પામો.**

દુનિયાની બીજી સંગઠિત જાતિઓ સૂકાને લીલું બનાવવાના અને અશુદ્ધને શુદ્ધ બનાવવાના ભગીરથ પ્રયત્નો કરી રહી છે. ત્યારે આપણે દેવહૃદયવાળા લીલાને સૂકું અને શુદ્ધને અશુદ્ધ બનાવવામાં મઝા માણીએ છીએ. યુગવિરોધી આ ક્રિયાની આપણને જે શિક્ષા થઇ છે, તેનાથી હજુ વધુ કેમ નહિ થાય! આપણી સન્મુખ આપણા એક જાતિબંધુની યોગ્ય પ્રશંસા થતી હોય, અને તેના ઉપકાર તળે આપણે દબાયેલા હોઇએ, તો યે આપણે તે સાંભળતાં જ મોઢું ફેરવી લઇ પેલા ચોરના દીકરાની પેઠે કાનમાં આંગળીઓ કે રૂનાં પેલ ખોસી સાંભળીએ છીએ. અને પંચમાં પૂછાતા હોઇએ તો એ વાતને મળમાંથી વાઢવાને કમર કસીએ છીએ. **આનું નામ જ તેજોદ્વેષ.** આ ગુણ પણ દેવપણાના વારસામાં બ્રાહ્મણ–ચારણને ભોગે વધારે આવેલો જોવામાં આવે છે. અને ત્યાં પછી ઉન્નતિની આશા હોય જ શેની!

એક પ્રશ્ન વિચારીએ: શું આપણે ક્ષત્રિયો પર ઉપકાર કરીને અધઃપતનને પાત્ર થયા છીએ? ના, તેમ નથી. એ માટે આપણે પોતે જ જવાબદાર છીએ. આપણા અને પશ્ચિમની પ્રજાના માનસનું પૃથક્કરણ કરીશું તો સ્પષ્ટ જણાશે કે આપણે આપણા સમાજમાં વિભાગ વધારી સંગઠન ગુમાવ્યું. તેમણે સંપ અને ઐક્ય વડે આપણા જેવી ઊંઘતી પ્રજાઓ પર સ્વામીત્વ સ્થાપ્યું. આપણે હાય હાય! કરતા સંસારને વળગી રહેવા છતાં ‘ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।’ એ સૂત્રના રટણમાં માયાને ખોટી માની, ત્યારે તેઓ તેને સાચી માની તેના ત્રિગુણાત્મક ગુણદોષને તપાસી વળ્યા. આપણે આત્માને ઘટ–ઘટ વ્યાપક બ્રહ્મસ્વરૂપ માનવા છતાં એ શુદ્ધ તત્ત્વના અનેક વિભાગ પાડી તેને ચૂંથી નાંખ્યું, તેમણે અશુદ્ધમાંથી અસાર દૂર કરી હંસવૃતિથી સાર ગ્રહણ કર્યો. આપણે સંસારમંથનમાંથી દ્વેષ લઇ પરાધીન અને પતીત થયા, તેઓ પ્રેમ કેળવી સ્વતંત્ર બન્યા. કુદરત ગુપ્ત રીતે પણ પક્ષપાત રહિત દરેકને તેના કાર્યનો ભલો–બૂરો બદલો આપ્યે જ જાય છે. આપણને પણ આપણી વૃત્તિનો બદલો મળ્યો છે. અને વધુ વખત એ વૃત્તિ ચાલુ રાખીશું તો વ્યાજ સાથે વધુ મળશે!

ચારણ : એ વખતનો અને આજનો



[સંવત ૧૯૯૩ ના આસો માસમાં ચારણ હિતવર્ધક સભાનું તૃતીય અધિવેશન સોરઠમાં વડિયા મુકામે ભરાયેલું; તે પ્રસંગે કાઠી-ક્ષત્રિય સમાજના હિતાર્થે પ્રકટ થતા 'કાઠી રાજપૂત' માસિકના સુયોગ્ય તંત્રી કાઠી રાજપુરોહિત શ્રીયુત ભગવાનજીભાઈ સાવરકરે એ પત્રના જાન્યુઆરી સને ૧૯૩૮ ના અંકમાં 'શ્રી વડિયામાં ચારણ સંમેલન' એ નામથી એક વિસ્તૃત અને મનનીય લેખ લખેલો. તેમાંનો નીચેનો ભાગ મહત્ત્વનો હોવાથી અત્રે ઉતારીએ છીએ. **તંત્રીઃ ગુજરાતી વિભાગ]**

"...........ચારણ જાતિ ભારતવર્ષમાં એક દેવપંક્તિની જાતિ ગણાય છે. એક ધંધાદારી માનવ જેમ પોતાનાં બાળકને પોતાનો ધંધો શીખવતો જાય છે, તેમ પૂર્વેના ચારણોએ પોતાના સંતાનોને સત્ય અને સદ્ધર્મના સિદ્ધાંતો શીખવ્યા હતા. કર્નલ જેમ્સ ટોડ અને એલેકઝાંડર કિન્લોક ફાર્બસ મેવાડ અને ગુજરાતના ઈતિહાસ લખતા હતા, ત્યારે ભારતવર્ષના તેત્રીસ કરોડ માનવોમાંથી કોઈ પણ કોમના વિદ્વાનોની વાણી પર ભરોસો નહિ રાખતાં માત્ર ચારણ કોમના એ વખતના માત્ર દસ બાર કવિઓ પર ભરોસો રાખી તેમણે મહાન ગ્રંથો આલેખ્યા હતા. આજે ટોડ રાજસ્થાન અને રાસમાળા એ બે ગ્રંથો ઐતિહાસિક ગ્રંથોમાં અમૂલ્ય ગણાય છે. એ અમૂલ્ય ગ્રંથો ચારણી ભેજાંઓએ સાચવી રાખેલી બીનાઓના આબાદ નમૂના છે.

પ્રાચીન જમાનામાં ચારણશક્તિ રાજદરબારે પૂજાતી અને આજે પણ પૂજાય છે. ચારણ એટલે ખાનદાની અને ઈશ્વરી વાકયોની ટંકશાળ: ચારણની એક જ જીભાને ફાંસીના માંચડા પર ચડેલા ખૂનીઓ અને રાજદ્રોહીઓ મુકત થતા: ચારણની એક જ જીભાને અગણિત બાળવિહોણાં ઘરોમાં પારણાં બંધાતાં: ચારણની એક જ જીભાને જૂનાગઢ જેવાં મહાન રાજતખ્તો પણ ઉથલી પડતાં.

જે વખતે ગાયકવાડી પેશકશી ઊઘરાવાતી ત્યારે દરેક નાદાર તાલુકદાર–ગિરાસદારના ચારણો હામી થતા. ચારણ જેનો હામી થાય એને સરકાર પણ ન બોલાવે! આટલો બધો એ જમાનામાં ચારણ કોમ પર વિશ્વાસ હતો. આજનો ચારણ અને એ વખતનો ચારણ જમીન–આસમાન જેટલું અંતર બતાવી રહ્યો છે.

ચારણોને ઘરે ગામ-ગિરાસ હતાં, અને છે. એ બધા ગિરાસો તેમણે બતાવેલી ખાનદાનીના નમૂનાઓ છે. એ ગિરાસો ચારણના એકવચનીપણાની શાખ પૂરે છે: એ ગિરાસો ચારણની શાહુકારીના થાળરૂપ છે. ચારણસંસ્કૃતિનો અજાણ માણસ ભલે આ વાતને ન માને, પણ ચારણસંતાન એ જૂના જમાનામાં ભારતનું જવાહીર ગણાતો; અને અત્યારે પણ કેટલાક ભાઈઓ ચારણોના ભૂષણરૂપ મોજૂદ છે, એ જાણી અમારૂં હૃદય ઠરીને હિમ થાય છે.

ચારણ રાજદરબારે અને ચોરે બેસી કાવ્યો લલકારતો તેમ નહિ, પરંતુ રણક્ષેત્રમાં પણ તેની હાજરી રહેતી. ભાલા, બરછી અને તલવારોનાં યુદ્ધ વચ્ચે ચારણસંતાન ઊભો રહેતો, અને દરેક ક્ષત્રિયમાં શૂરાતન રેડતો. રણક્ષેત્ર–માંથી નાસી જનાર રણયોદ્ધાઓને પોતાની દિવ્યવાણી વડે પાછા રણક્ષેત્રમાં લાવી શકતો. જેના પક્ષે ચારણ હોય, તેનો વિજય જ થાય. ચારણ જે યુદ્ધમાં ન ગયો હોય તે યુદ્ધમાંથી સેંકડો યોદ્ધાઓ, સુભટો અને સેનાપતિઓ ચારણની દિવ્યવાણીના અભાવે પરાજયની કાળી ટીલી લઈને પાછા આવતા.

ચારણીકાવ્યો એ ભારતભૂમિની અમૃતધારા છે. ચારણીકાવ્યોએ અનેક માનવોને મુગ્ધ બનાવ્યા છે. વાર્તાઓ, ગાથાઓ, પવાડાઓ, દોહાઓ, સમસ્યાઓ, ઈતિહાસો, આખ્યાનો, એ બધાં ચારણનાં કોઠાસંતાનો છે. ચારણીકાવ્ય આજે પણ બધાં કાવ્યો કરતાં અવ્વલ નંબરે પહોંચે છે. ચારણી–કાવ્યોના અર્થ જેવા તેવા માણસોથી થઇ શકતા નથી, કારણ કે એ દેવીભાષા દેવીપુત્રોના મુખમાંથી જ નીકળેલી છે. માટે જ એનું એ મહત્ત્વ છે.

આજકાલ ચારણોએ પોતાની સરસ્વતીને અવળે રસ્તે દોરી છે. દુર્વ્યસનો અને કંગાલિયતમાં ડૂબી જઈ પોતાના ચારણધર્મને ખસી કરી નાંખ્યો છે. અને એના પ્રતાપે ભારતની લીલી વાડી સમું ચારણકુળ થરપારકર અને સહરાના રણ જેવું ભયાનક બનતું જાય છે. લાપસી અને ચોખાના સ્વાદમાં આજ ચારણીવિદ્યા ગિરવી મૂકાણી છે.

દરેક કોમ પર કુદરતી નિયમે પોતાની જાળ પાથરી છે, તેમ ચારણ ઉપર પણ કુદરતે પોતાનો ભરતીઓટનો અચળ નિયમ સ્થાપિત કર્યો છે. છતાં યે દેવીપુત્ર તો દેવીપુત્ર જ રહ્યો છે. સ્ત્રીજાતિને દેવીની ઉપમા અપાય છે, છતાં સ્ત્રીથી જન્મેલા બધા દેવીપુત્ર નથી કહેવાતા. એ તો ચારણને જ એ પ્રમાણપત્ર મળ્યું છે.

ચારણમાં કાવ્યશક્તિનો વારસો એ જ દેવીપુત્રપણાનો તાદૃશ પૂરાવો છે. લાખો અને કરોડો માણસોમાં ચારણસંતાન કદી પણ છાનો ન રહે. ચારણ એની વાચાળશક્તિથી પોતાની ઓળખાણ આપે છે. વાચાળશકિત એ એને મળેલો વારસાહક્ક છે.

આજનો ચારણ પૂર્વના ચારણોને હિસાબે ઘણો જ લાસ્ટ નંબર બતાવે છે. આજના ચારણોએ પોતાની કેટલીક વિદ્યા નોકરીમાં જોડી છે. કેટલાકે પોતાની સત્ય કહેવાની જૂની પ્રણાલિકાને અસત્યના રૂપમાં ઉઘાડી કરી છે. રામાયણ, મહાભારત અને ભાગવત જેવાં ધાર્મિક અને ઐતિહાસિક પુસ્તકો ચારણોના કોઠામાં રહેતાં, હાલ એમાંનો એક પણ શબ્દ ચારણીશબ્દકોશમાં નથી મળતો. આજ બટકું રોટલા માટે ચારણોએ લોભિયાને ભોજ અને વિક્રમની શ્રેણીમાં મૂકી દીધો છે.

આજ તેમણે પરદેશીઓની કલમ નીચે ઇતિહાસોને કેદ કરાવ્યા છે. મને બીક લાગે છે કે, સાચા વીરનરોની રહી સહી કીર્તિગાથાઓ પણ પાંચ દિવસ પછી ચારણોના કોઠામાંથી વિદાયગીરી લેશે. આજના કેટલાક પેટમેલા ચારણોએ

કેટલુંક જગતને ચરણે ધરવા જેવું જ્ઞાન પોતાના કોઠામાં સાચવી રાખી ભોંય લીધા જેવું મુડદાલ કરી નાંખ્યું છે. આજનો ચારણ પૂર્વના સત્યવક્તા ચારણોને ભોંઠા પાડે છે. પૂર્વનો ચારણ મહાન દૈવી પત્રકાર હતો. આજનાં પત્રો જે કામ કરી રહ્યાં છે, એ કાર્ય પૂર્વે ચારણોનું હતું. દાનવીરો, નરવીરો, સત્યવીરો અને ધર્મવીરોની કીર્તિ ચારણોની જ મારફતે દેશપરદેશ પહોંચી જતી. ચારણ એટલે ક્ષત્રિયકુળનું ત્રાજવું: સમસ્ત ક્ષત્રિય વીરોના ગુણ-અવગુણના કાર્યવ્યવહારો ચારણની જીભે જ તોળાતા. ચારણસંતાન અધર્મીઓને ડારતો. શૂરવીરોને શૌર્ય પાતો અને નંદ જેવા મહાવલંદા લોભીને પણ દાન દેવા પ્રેરતો.

મહાન નેપોલિયન બોનાપાર્ટે કહ્યું છે કે, જે કોઈ પ્રજાના ગૌરવનો નાશ કરવો હોય, તેની જાહોજલાલીવાળી વિદ્યા, કળા, હુન્નર અને ભવ્ય સંસ્કૃતિને સળગાવી દેવી હોય, તો એના ઇતિહાસનો નાશ કરો. એવી રીતે ભારતીય જનસમાજે જે ચારણો પર વિશ્વાસ રાખી પોતાનો સંસ્કૃતિશાળી ઇતિહાસ સાચવી રાખ્યાની ટ્રેઝરી સમાન ગણ્યા હતા; તે ચારણોએ ક્ષાત્રઇતિહાસને ભૂલી જઈ સમસ્ત ભારતની સંસ્કૃતિના વિધ્વંસકાર્યમાં સાથ આપ્યો છે. જે મોંઢામાં સરસ્વતીનો વાસ હતો, એ મોંઢામાંથી સરસ્વતીને તગડી મૂકી ઉભત્યોથી પોતાનું મોંઢું ગંધવી મૂક્યું છે.

હાલના ચારણો પોતાના પૂર્વજોને પગલે નહિ ચાલે તો ઇતિહાસના નાશના કારણરૂપ એમને માની હાલનો જનસમાજ અધોગતિ અને પાયમાલીનો બધો પોટલો એમને શિર ઓઢાડી દેશે. જે બુદ્ધિએ આખા જગતને છક્ક કરી નાંખ્યું હતું, તેવી બુદ્ધિવાળા ઈસરદાસ, નરહરદાસ અને બ્રહ્માનંદ જેવા ચારણ મહાપુરુષોની હિંદુસ્તાનને આજ ખોટ પડી છે.

બાપદાદાના વારસારૂપ કાવ્યો અને વાર્તાઓ પર આજે ચારણોનો હક્ક રહ્યો નથી. કાયદાએ એને સંન્યસ્ત અપાવ્યું છે, કોર્ટ સુધી દાદ માગવામાં એને માટે ખંભાતી લાગી ગયાં છે, આજે એને જડબેસલ લાગી ગયાં છે.

ખોવાઇ ગયેલી વસ્તુ કોઇને પણ હાથ આવે અને મૂળ માલિકને જાણ થાય તો ઘર ભેળી કરી દીધા પછી પણ માલિકને પાછી સોંપવી પડે છે. ત્યારે ચારણીકાવ્યો હાલ નધણિયાતી મિલ્કત સમાં બની ગયાં છે; અને જેને ફાવે તે તેને બાપનાં કરવા લાગ્યા છે.

પુરાણી વાતો સાચવી રાખવાની વિશ્વાસુ પેઢી સમાન આ ચારણકોઠાએ ભારતીય જનસમાજની થાપણ ઓળવવા માંડી છે; અને થોડા ટાઈમમાં તેના કપાળમાં 'મૉરગેજ ઈન પઝેશન'નું બોર્ડ લાગી જશે. જે જે વાતો હિંદની મિલ્કત સમી ચારણીકોઠામાં 'બુલિયન એકસચેંઇઝ'ની માફક સલામત હતી, તે હવે પરાયે હાથે વેડફાવા લાગી છે. જે મિલ્કત સમસ્ત આર્યત્વને અજવાળતી, કિંમતી બનાવતી, શ્રીમંત ગણાવતી, તે મિલ્કત પર આજ સૌએ હાથ નાંખવા માંડ્યો છે.

ચારણ એટલે ભારતનો કીર્તિસ્તંભ: ચારણ એટલે આર્યસંસ્કૃતિની લાયબ્રેરી: ચારણ એટલે નિરભિમાની, સત્યવચની અને જેવી તેવી બક્ષીસમાં સંતોષ માની જીવનભર અહેસાન માનનાર દૈવી વ્યક્તિ. આજનો ચારણ જો ચારણ બનવા ધારતો હોય તો તેણે તેના પૂર્વજોના સદ્‌ગુણોનું સત્વર આહ્‌વાન કરવું ઘટે છે. નહિતર એ કટકા ભૂંડા બોલતા સનેપાતિયામાં અને આજના ચારણમાં જરા યે તફાવત નથી.

આમાં એક ચારણોનો જ કયાં દોષ છે? પુરાણી વાતોને અને ઈતિહાસોને જિહ્વાગ્રે રાખનારની ભારતીય જનસમાજે કદર નહિ કરતાં એ નિખાલસ અને પરોપકારી આત્માની હાંસી કરી છે. એને ભિક્ષુક માની લઈ રોટલાના બટકા માં જ એ બધું કરતો હોય, એમ સમજી એની ઠેકડી કરી છે. એનો બદલો હવે મળવાની તક આવી પહોંચી છે. હજારો વિદેશીઓ ભારતીય ઈતિહાસને હાંસીરૂપ બનાવવા ખાઈપીને પાછળ પડ્યા છે. ઘણા અટકચાળાઓએ તો ભારતીય ઈતિહાસને ઉઝરડા પણ કરવા માંડયા છે. અને એ ગુલાબના છોડને

ઊખેડી નાંખવા માટે એમણે કુહાડા અને ધારિયાં સજવા માંડયાં છે. ભારતના એ તેજસ્વી કલેવરને વધારે ડાઘ લગાડવા કોલસા પાડવા શરૂ કર્યા છે. જગતમાં સર્વોપરિ ગણાતી સત્ય ઘટનાથી ભરેલી ગાથાના ગૌરવને સળગાવી દેવા એણે હાથમાં કુંભારણું લીધું છે. કરોડો ક્ષત્રિયોનો જેમાં ભવ્ય ભૂતકાળ ભર્યો છે, અને સમસ્ત ભારતીય જનસમાજની ઉન્નતિનાં જેમાં બીજ રહેલાં છે; એવા પ્રાત: સ્મરણીય ઇતિહાસને ગપાટા ગણવા મોંઢાની લગામ છૂટી મૂકી દીધી છે. નહિ ચેતે તો રહ્યું સહ્યું ગૌરવ નાશ પામશે.

કવિત્વશક્તિ એ તો ચારણોની કોઠાવિદ્યા છે, અને એથી જ દરેક ચારણને કવિનું બિરદ મળ્યું છે. ચારણ કવિઓએ ભારતને ચરણે જેવા કિંમતી ગ્રંથો ધર્યા છે, એવા ગ્રંથો કોઈ પણ કોમે ધર્યા નથી. નરહર કવિએ રામાયણ લખીને હાથ ધોઈ નાંખ્યા છે. પ્રવીણસાગર ગ્રંથ લખવામાં રાજકોટના સદ્‌ગત ઠાકોર શ્રી મહેરામણજીને જસા લાંગાએ જ મુખ્ય મદદ કરી હતી. ઇસરદાસ જેવા અને બ્રહ્માનંદ જેવા ચારણ કવિભક્તોએ પણ ભારતીય ભક્તજનસમાજમાં અનેરી છાપ પાડી છે. આ બધાં ચારણવંશવૃક્ષનાં અમૂલ્ય રત્નો છે. ”



ચારણજાતિ: તેની પડતીનાં કારણો અને ઉપાયો



લેખક: શ્રી નારણભાઇ મેકરણભાઇ રોહડિયા, બી૦ એ૦ સિંધાવદર



[ગતાંકથી ચાલુ]

આપણી પડતીનું બીજું કારણ છે આપણામાં ઘર કરી ગયેલી પરદોષ જોવાની અને પારકાં દૂષણો શોધવાની વૃત્તિ. આ વૃત્તિ આપણને બીજાઓના સદ્દગુણો જોતાં અને સારા સદ્દગુણોનું અનુકરણ કરતાં અટકાવે છે. જગતમાં ચાલી રહેલ સમાજ ઉદ્ધાર કે દેશઉદ્ધારનાં બળો આપણને આ દોષવૃત્તિનાં પડળોથી દેખાતાં નથી. માટે બીજું આપણે એ શીખવાનું છે કે, બીજાઓના દોષો જોવાનું ભૂલી જવું જોઈએ. કોઈપણ વ્યકિત પરિપૂર્ણ હોતી નથી. પરિપૂર્ણ તો એક પરબ્રહ્મ પરમાત્મા છે. કારણ કે તે આપણાથી અગમ્ય અને અગોચર છે. દશ્યમાન વસ્તુ એટલી બધીયમાં એક નહિ તો બીજો, ગમે તેવો નજીવો દોષ પણ ગોતવા બેસીએ તો શોધી શકાય. જ્યાં સુધી માણસ એ માણસ જ રહેશે ત્યાં સુધી તેમાં એક અથવા બીજા પ્રકારની ત્રુટિઓ મળી આવવાની.

જ્યારે માનવી ઈશ્વરકોટિએ પહોંચશે, ત્યારે પછી આપણે તેને વિશે કંઈ પણ કહી શકીશું નહિં. બીજું જોવાનું આપણાથી છોડી ન શકાય તો એટલું તો અવશ્ય કરવું કે પોતાના દોષો પહેલાં નિહાળી, પછી બીજાઓનાં દૂષણ જોવાં. આવી તુલના કર્યા પછી દરેકના સમજવામાં આવશે કે આપણાથી દરેક અન્ય વ્યકિત સારી હોય છે. દરેક જ્ઞાતિહિતૈષી વ્યકિત આટલું કરવાની જરૂર કૃપા કરે.

આપણી દુર્દશાનું ત્રીજું કારણ અજ્ઞાનતા છે. આ અજ્ઞાનતાને દરેક ધર્મમાં દુર્ગુણોની જનની ગણવામાં આવેલ છે. આ અજ્ઞાનતાને અંગે આવતા વહેમો, વ્યસનો, પ્રમાદ અને આળસ જેવા બીજા દુર્ગુણોથી આપણે મુકત નથી. આપણામાં આ દુર્ગુણો ઘર કરી રહેલ છે. સરસ્વતી

ના બાળકોનું વિરૂદ્દ પામેલ–ચારણજ્ઞાતિના આપણે પનોતા પુત્રો અત્યારે અભણ અને અજ્ઞાન દશામાં છીએ. દરેક સમજુ, ભણેલ, અને જ્ઞાતિપ્રેમી વ્યકિતની એકજ ફરજ છે કે, ચારણ જ્ઞાતિમાં વિદ્યાપ્રચાર માટે પોતાનાથી બનતું અવશ્ય કરવું.

આજની શોચનીય દશાનું ચોથું કારણ છે આપણી માગણવૃત્તિ, અને તેને લીધે આવતી ખુશામતખોરીની વૃત્તિ. ખોટી ખુશામત એ માગણવૃત્તિનું મુખ્ય સાધન છે. માગણો અને ખુશામતિયાઓને માનાપમાન જેવું કશું હોતું નથી. આપણે કેટલી હદ સુધી નીચે ગયા છીએ તે જોવું હોય તો રાજ્યોમાં, તાલુકાઓમાં કે જાગીરદારોને ત્યાંના વિવાહ પ્રસંગોએ એકઠા થતા આપણા ભાઈઓ ને નિહાળવા. ટોળાબંધ અહીં તહીં ભટકતા. ખાવાપીવાની અને ઉતારાપાણીની સગવડ રહિત એ ભાઈઓને બીજાઓને ત્યાં આથડતાને રોટલા જેવી બાબતમાં બીજાઓની ખુશામત કરતા, જ્યારે જોઈએ છીએ ત્યારે આપણને શોચ થયા વિના રહેતો નથી! લાખો રૂપિયાના અયોગ્ય દાનને ઠોકરે મારનાર, એ પૂર્વજોના બાળકોને અલ્પ રકમ માટે બીજા વ્યવસાયો છોડી અપમાન સહન કરતા નિહાળી કયા જ્ઞાતિ-પ્રેમીની આંખોમાં આંસુ નહિ આવે? અરે, કોળી, વાઘરી જેવી સમાજમાં નીચી ગણાતી કોમોની સ્ત્રીઓને પણ તેમના વિવાહ પ્રસંગનાં લગ્નગીતોમાં “ચારે ગવડાવો **ચારણ** ભાટ રે,” એવું ગાતી સાંભળીએ છીએ ત્યારે તો આપણે આપણી માગણવૃત્તિથી કેટલા અધમ બની ગયા છીએ તેનું ભાન થતાં હૃદય હાથ રહેતું નથી! એટલે કે દરેક ચારણ ભાઈએ પોતાના સ્વમાનને ભોગે, ભિક્ષા-વૃત્તિથી મળતા લાભને જતો કરવો જોઈએ. જે માગણવૃત્તિથી ચારણોએ સમાજમાં એક વખત પ્રાપ્ત કરેલ અપૂર્વ સ્થાન ગુમાવ્યું છે તે માગણ વૃત્તિને છોડી દેવી જોઈએ. અને મહેનત-મજૂરીથી મેળવેલ ધનથી સંતોષ માનતા શીખવું જોઈએ. પોતાને યોગ્ય સન્માનથી બોલાવવામાં આવે, દરેક પ્રકારનું માન જળવાય તોજ ચારણોએ રાજ્યોના વિવાહ, ગાદી કે જન્મ જેવા પ્રસંગે જાવું.

આપણી હાલની સ્થિતિ ઉપર વિચાર કરવા બેસીએ તો પાનાંનાં પાનાં ભરાય તેટલું લખી શકાય. આ ટુંકા લેખમાં

મને દેખાયાં છે તેટલાં, મુખ્ય કારણો મેં દર્શાવેલ છે. દરેક ચારણ આ સ્થિતિથી અજાણ નથી. અને દરેક ચારણની ફરજ આપણી જ્ઞાતિનો ઉદ્ધાર કેમ થાય, આપણે આપણું પૂર્વ સ્થાન કેવી રીતે મેળવીએ, તે વિચારવાની અને તે પ્રમાણે વર્તવાની છે.

આપણી પ્રાચીન અને અર્વાચીન સ્થિતિ ઉપર વિચારતાં આપણા હિત માટે બૃહદ ગુજરાત ખાતે પ્રયાસ કરી રહેલ શ્રી ચારણ હિત વર્ધક સભા વિશે લખું તો તે અસ્થાને નહિ ગણાય.

છેલ્લાં ચાર વરસથી ચારણોની દુર્ગતિ જોઈ તેમાં પ્રવર્તી રહેલ આળસ, અજ્ઞાનતા, વ્યસનો આદિ દુર્ગુણો દૂર કરવા, અને જ્ઞાતિની સામાજિક ઉન્નતિ સાધવા માટે, શ્રી ચારણ હિત વર્ધક સભાની સ્થાપના થયેલ છે. ચાર ચાર વર્ષથી આપણે સંમેલનો ભરીએ છીએ, ભાષણો કરીએ છીએ, રિપોર્ટો છપાવીએ છીએ, અને બીજું જ્ઞાતિહિતનું કાર્ય વિચારીએ છીએ. ઉપર ઉપરથી પણ આપણે જોઈએ તો આપણને લાગશે, કે દર વરસે આપણી ચા૦ હિ૦ સભાના સભ્યો વધતા જાય છે. દર વરસે સંમેલનોમાં આગલા સંમેલનો કરતાં વધારે માણસો હાજરી આપતા જોવામાં આવશે. પરંતુ આપણે આપણી પ્રગતિના ચાર વરસના સમય ઇતિહાસને તપાસીશું તો જણાઈ આવશે, કે સામાજિક ક્ષેત્રમાં આપણી સંસ્થાએ કંઈ કરેલ નથી. ચાર ચાર વરસો થયાં હોવા છતાં આપણે આપણી સંસ્થાનો પ્રચુર પ્રચાર કરી શકયા નથી. (આ વરસથી આ દિશામાં કંઈક પગલાં લેવામાં આવેલ છે. શ્રી ચા૦ હિ૦ સભા તરફથી એક પ્રચારક ભાઈને નીમવામાં આવેલ છે.)

આમ થવાનું કારણ આપણે સમજી લેવાની જરૂર છે. મારી દૃષ્ટિએ અને સંસ્થા સાથેના મારા શરૂઆતથી આજ સુધીના સંબંધે, મને મુખ્ય કારણ એ દેખાયું છે કે આપણી સંસ્થા પાસે કાર્યકરોનો અભાવ છે. આપણી પાસે ફંડ નહિ જેવું જ છે, એટલે પ્રચારનાં સાધનો જેવાં કે મુસાફરી, પત્રિકાઓ વગેરે માટે આપણે ખર્ચ કરી શકીએ તેમ નથી. બીજું કારણ ઘણું જ દુઃખ-પૂર્ણ દેખાયું છે કે, ચારણોના ભલા

માટે પ્રયાસ કરતી, આ સભાને ચારણોનો પૂરેપૂરો સાથ મળતો નથી. ચારણ ભાઈઓ પાસેથી જ્યારે જ્યારે કોઈ પણ હકીકત જાણવા માટે પ્રયાસ થયેલ છે ત્યારે ત્યારે દિલગીરી સાથે કહેવું પડે છે કે, કોઈ પણ ભાઈએ માગેલી હકીકત મોકલવા તસ્દી લીધી નથી. ત્રણ ત્રણ સંમેલનોમાં નીમવામાં આવેલ, પ્રાંતિક પ્રતિનિધિઓએ જરાપણ જ્ઞાતિ-હિતનું કાર્ય કરેલ ન હોવાથી આ વખતના સંમેલનમાં તો પ્રાંતિક કમિટિઓને કાઢી નાખવામાં આવી છે. શ્રી ચારણ હિત વર્ધક સભા અને શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલયના ફાળા ઉઘરાવનાર કાર્યકરોને અનુભવ થાય છે કે ઘણા ચારણભાઈઓ પોતાની સ્થિતિ સારી હોય અને સમજતા હોવા છતાંય મહામુશીબતે ફંડમાં નજીવી રકમ આપે છે એટલુંજ નહિ પણ ઘણા ઘણાખરા ભાઈઓ તો, મદદ આપવી એક બાજૂ રહી, પરંતુ કાર્યકરો, અને સંસ્થાને, વખોડવામાં પાછું વાળીને જોતા નથી. આના કારણ માટે આપણી જ્ઞાતિની ગરીબાઈ અને સંસ્થા તરફથી થવા જોઈતા પ્રચારનો અભાવ પણ સંભવી શકે. પરંતુ ઘણા દાખલાઓમાં મને એક ત્રીજું જ કારણ દેખાયું છે. તે કારણ તે પૂર્વકથિત આપણામાં રહેલ પરદોષ જોવાની, અને બીજાના ગમે તેવા સારા કાર્યને નિંદવાની વૃત્તિ. ફંડ-ફાળો ઉઘરાવનાર ભાઈને જોઈએ તેવી ફતેહ ન મળતી હોય તેનું ચોથું કારણ મને એ લાગે છે કે કાર્યકરને તે પ્રદેશના કે ગામના સ્થાનિક કાર્યકરના અભાવે ચારણોમાં થોડા સમયમાં છાપ પાડતાં ઘણી જ મુશ્કેલી પડે છે.

આપણી સંસ્થા સામાજિક ક્ષેત્રમાં કામ ન કરી શકતી હોય તેનું અન્ય મુખ્ય કારણ મને એ લાગે છે કે શ્રી ચારણ હિતવર્ધક સભાને આશ્રયે શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલય ચાલતું હોવાથી, આપણા અગ્રગણ્ય નેતાઓ તેના ફંડ ફાળા વગેરેના કાર્યમાં રોકાઈ રહેછે. અને તેથી સામાજિક પ્રવૃત્તિઓ માટે બહુ જ મુશ્કેલી ઊભી થાય છે. શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલય પાસે પણ બહુજ નાનું ફંડ કહી શકાય, કે જે ફંડના વાર્ષિક વ્યાજમાંથી, માંડ છ વિદ્યાર્થીઓ વિદ્યાભ્યાસ કરી શકે. એટલે કે જેને આપણે આપણી પ્રવૃત્તિનું મુખ્ય અંગ માનેલ છે, તે શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણ

વિદ્યાલય પણ મહામુશીબતથી ચાલી શકે તેમ છે. વિદ્યાલયને કાયમી જીવન આપવા માટે આપણા મુખ્ય નેતાઓ પ્રયાસ કરી રહેલા હોવાથી, જ્ઞાતિહિતની બીજી બાબતો ગૌણસ્વરૂપ પકડતી જાય છે.

એક બાજૂ આપણામાં ઘર કરી રહેલ દુર્ગુણોને કાઢવાની જરૂર છે, અને બીજી બાજૂ આપણી સંસ્થાની ઉપર મુજબ સ્થિતિ છે, તો તેમાંથી કેવી રીતે અને કેવો માર્ગ કાઢવો તે સમજવું સૌને અગત્યનું છે.

ચારણ જ્ઞાતિનો ઉદ્ધાર ઈચ્છવો અને તે માટે પ્રયાસ કરવો તે દરેક ચારણની ફરજ છે. આપણામાં રહેલ દુર્વ્યસનો આપણે દૂર કરવાં જોઇએ. દુર્વ્યસનોથી માણસ દુર્ગુણો તરફ સહેલાઇથી ઘસડાઈ જાય છે; માટે દુર્વ્યસનો તજવાં જોઈએ. વળી આપણી જ્ઞાતિ બહુ જ ગરીબ જ્ઞાતિ છે. તેથી આપણને દુર્વ્યસનોમાં પૈસા ઊડાડવા પોષાય તેમ નથી. જે માગણ–વૃત્તિએ આપણને સમાજમાં હલકા પાડેલ છે, તે માગણવૃત્તિને તો પહેલી તકે છોડી દેવી જોઈએ. પોતાનાં બાળકોને યોગ્ય કેળવણી આપવાની દરેક ચારણ માબાપની અનિવાર્ય ફરજ છે. કેળવણીથી જ આપણે આપણામાં રહેલ એ દુર્ગુણોને કાઢી શકીશું.

બૃહદ ગુજરાતના ચારણોના હિત મા પ્રયાસ કરતી શ્રી ચારણ હિતવર્ધક સભાએ પણ આ દિશામાં પગલાં લેવા માટે ઉપાયો યોજવા જોઈએ. તેના કાર્યકરોએ, જુદા જુદા ઠેકાણે વસતા ચારણોના સહેવાસમાં આવવું જોઈએ. આ માટે ચારણોના વસવાટના પ્રાંતોને વિભાગવાર વ્હેંચી નાખવા જોઈએ. કાર્યવાહક કમિટિના દરેક સભ્યને એક એક વિભાગમાં પ્રચાર વગેરે કાર્ય કરવાનું સોંપવું જોઈએ. વધુ નહિ તો વરસમાં એક વખત પણ દરેક સભ્યને માટે પોતાને સોંપેલ વિભાગમાં ફરવાનું ફરજિયાત હોવું જોઇએ. તે સભ્ય પોતાના વિભાગમાં આવેલ ચારણોના સહવાસમાં આવે, તેમનાં સુખ દુઃખ સમજે, અને ગામવાર કે પ્રાંતવાર સેવાભાવી ભાઈઓને તૈયાર કરી તાલીમ આપે. પ્રાંતોમાં આ પ્રમાણે તૈયાર કરેલ ભાઇઓ, જ્ઞાતિહિતને માટે પોતાના પ્રાંતમાં રહેલ ગામડાઓને વ્હેંચી નાખી અવાર નવાર પોતાને ભાગે આવેલ ગામડાંઓમાં જઈ ત્યાં વસતા ચારણોના સતત્ સહવાસમાં રહ્યા કરે. ઓછામાં ઓછું વર્ષમાં એક વખત બધા પ્રાંતિક કાર્યકરોનું સંમેલન યોજવું જોઇએ. જેથી વરસ આગાના અનુભવો

ની આપ લે કરી શકાય, અને મળેલા અનુભવમાંથી ભવિષ્યના માર્ગો યોજી શકાય.

મારી અલ્પબુદ્ધિ પ્રમાણે આપણી સંસ્થાના પ્રચારનો અને તે રસ્તે જ્ઞાતિબંધુઓની સેવા કરવાનો મને આ ઉપાય દેખાય છે. હું ધારૂં છું કે જો આ પ્રમાણે પ્રવૃત્તિ કરવામાં આવે, તો થોડા વરસોમાં આપણે બૃહદ ગુજરાતના ગામે ગામ આપણી સંસ્થાના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરી શકીએ.

છેવટે મારે એક જ વાત લખવાની રહે છે કે, દરેક ચારણબંધુએ જ્ઞાતિહિત માટે પ્રયાસ કરતી શ્રી ચારણ હિતવર્ધક સભાને અને તેને આશ્રયે ચાલતા શ્રી કૃષ્ણકુમાર ચારણવિદ્યાલયને પોતાથી બનતી તન, મન, અને ધનની દરેક પ્રકારની મદદ કરવી જોઈએ. જેટલી આપણે આપણી સંસ્થાઓનો મદદ કરીશું, તે પ્રમાણે તે કાર્ય કરી શકશે, અને તેટલા પ્રમાણમાં આપણી જ્ઞાતિનો ઉદ્ધાર થશે. માટે દરેક જ્ઞાતિપ્રેમી ચારણ સ્ત્રી કે પુરૂષ જ્ઞાતિહિતના આ કાર્યમાં પોતાનો યોગ્ય ફાળો આપે એજ પ્રાર્થના.



મધ્યયુગનો છેલ્લો સંસ્કારમૂર્તિ ચારણ

'લાસ્ટ મીન્સ્ટ્રલ' ગયો!

શ્રી પિંગળશીભાઈની પ્રતિભાને ગુજરાતે ગુમાવી છે!

મધ્યયુગી સાહિત્ય-સંસ્કારના, જૂનવટના, ચારણ બિરદાઈઓના અને ભકિતરસના છેલ્લા અવશેષ, એકના એક પ્રતિનિધિ કવિરાજ પિંગળશીભાઈ પાતાભાઈ ભાવનગર મુકામે ફાગણ શુદ બારશની રાત્રિના સાડાબાર બજે પોતાના મકાનમાં દેવ થયા છે.

ભાતું બાંધીને બેઠેલા

બ્યાશી વર્ષની એની અવસ્થા હતી. રાગ-દ્વેષોથી મુક્ત દિલાવરી, માનવ-પ્રેમ અને ઈશ્વરભક્તિથી રંગાએલું એનું જ્ઞાની હૃદય જીવનલીલા સંકેલવા માટે સંપૂર્ણ સુસજ્જ હતું. એક ઉત્તમ ખોળિયામાં વસનારા ઉન્નત આત્માનો એ સ્વભાવિક વિકાસ હતો. આંખો સામે પુત્રો-પૌત્રોની લીલી વાડી હતી. વિશુદ્ધ જીવન જીવી ગયાનો સંતોષ હતો. ભાતું બાંધીને જ બેઠેલા હતા પિંગળશીભાઈ.

પંદર દિવસ પહેલાંની જ વાત

પંદર જ દિવસ પર આ લખનારને એમનો એક કલાકનો સમાગમ સાંપડેલો. મેરૂના શૃંગ સમા બેઠા હતા, એ જ સાવઝ સમા ચહેરા-મોરાનો ઠાઠ હતો, એ જ પોરસવંતી વાતો કરી, પૂછેલા પ્રશ્નના જવાબમાં ભરપૂર મેઘકંઠે તડાકાબંધ વાર્તા પ્રસંગો ને કાવ્યો લલકાર્યાં હતાં. બાળક જેવા હાસ્યે ભર્યા ને પ્રફુલ્લિત હતા, પુત્રો-પૌત્રો પાસે કાવ્યોના પાઠ કરાવ્યા હતા.

ફાગણ શુદ ૭ના રોજ તો યુવરાજના જન્મ પ્રસંગે નીલમબાગ મહેલમાં જઈ, મહારાજાને કાવ્યો સંભળાવ્યાં ને રજા લેતી વખતે કહ્યું:

'હરિ! હરિ!'

"કશું બાકી નથી. તમારી કૃપાથી બધું જ છે." પછી પોતાના ઈનામી ગામ શેઢાવદર જઈ આંબાવાડિયામાં વિહર્યા ને ઠાકરના પુજારીને ગાય દાન દીધી. ને ભાવનગરમાં અવસાનની રાત્રિએ સાડા દસ સુધી તો આનંદની વાતો

કરી આરામ લેવા હિંમતભેર દાદર ચડી મેડીએ ગયા. રાત્રે સાડા બારે સ્હેજ છાતી દુ:ખી ને 'હરિ! હરિ!' કરતે કરતે દસ જ મિનિટમાં દેહ છૂટયો.

બળવાની પહેલાં જન્મ

ઇ૦ સ૦ ૧૮૫૬માં (બળવાની અગાઉ એક વર્ષે !) વિક્રમ સં૦ ૧૯૧૨ના આસો શુદિ ૧૧ના દિને પુરાતન ગોહિલ–પાટનગરી પહાડી શિહોરમાં જન્મ: પિતાજી ગોહિલ–કવિ પાતાભાઈ: માતાજી આઇબા. મોસાળ ગામ શેવાળિયા. 'જસુ-વિલાસ' બિરદ–કાવ્યના કર્તા પાતાભાઇનો પુત્ર પિંગળશી કવિતાને તો ગળથુથીમાં જ પીવે, ને માતાનાં ધાવણમાં જ ધાવે એમાં શી નવાઈ!

પ્રતાપી પિતાનો વારસો

પ્રતાપી તાત નીચે એણે ચારણી, ગુજરાતી, હિંદી અને વ્રજભાષાની કાવ્ય-વાણી સાધી લીધી. અને કાવ્યરચનાનાં અસલી ડિંગળી મરોડ તેમજ વ્રજભાષાની લાક્ષણિક પ્રવાહિતા તો પિંગળશીભાઈના કંઠમાં આસાનીથી રમવા લાગ્યાં. એ કરતાં ય વધુ ખૂબી તો હતી એની ભજન–વાણીની. શબ્દાડમ્બરી અને જોશીલી ચારણી કવિતાના ઉપાસકોને અસલી સંતોની સરલ સ્વભાવિક નિરાડમ્બરી લોક–વાણી પર સહેજે હથોટી કે ફાવટ નથી મળી જતી. પિંગળશીભાઈ એમાં અપવાદ નીવડયા. કારણ તો દેખીતું જ છે. પિંગળશીભાઈ કેવળ રાજકવિ ને રાજબિરદાઈ નહોતા, એ તો પ્રભુભકત હતા. મધ્યયુગી સંતોના માર્ગવિહારી હતા. વાણી તો એના આત્મસંસ્કારોને શોધતું આવતું સ્વરૂપ હતું.

સાચું જળ સીંચાયું

એના સંત–હૃદયને સાચું જળ તો સ્વ૦ મહારાજ તખ્તસિંહજીએ સીંચ્યું. તખ્તસિંહજીનાં સખાવતી કામો સાથી પિંગળશીભાઈ હસ્તક જ ચાલતાં. ગરીબોને દાણા, વસ્ત્રો ને ઉનાળે કેરીઓ વહેંચતા, તળાવ તેમ જ નદીકાંઠે શિયાળાની કડકડતી ટાઢમાં હુંઠવાતાં પડેલાં કંગાલોને ઓશીકે મહારાજાની આજ્ઞાથી અસલી બનાતનો એક એક ચકસો એ જ મૂકી આવે, ને પાંચ પચીસ રૂપિયાની પોટલી પણ મૂકી આવે. યાત્રાઓનાં બધાં સ્થળોએ પણ મહારાજાના એ સંગાથી. એટલે જ એનું હૃદય વધુ આર્દ્ર બન્યું ને એમાંથી અસલી સંત–વાણી પ્રગટ થઇ.

કવિતાની ઉપાસના

સવારના ચાર વાગે જાગતા, દાતણપાણી કરી હાથમાં કલમ લેતા, ને આત્મસ્ફુરણા લખાવે તેમ લખતા. રાત્રિએ સૂવે ત્યાં સુધીમાં પણ સહેજ વખત મળે કે કવિતાને જ ઉપાસતા. એવા પિંગળશીભાઈનાં પ્રભુવિહારનાં, આત્મબોધનાં ને રસોદ્રેકનાં પદો આજથી પાંત્રીસ ચાલીશ વર્ષો પૂર્વે પણ કાઠિયાવાડને દૂર દૂરને ગામડે ગામડે એકતારાઓ પર ગવાતાં થયેલાં. આ લેખકે પોતાની દસેક વર્ષની વયે ધારીગુંદાળી નામના ગામડામાં સાંભળેલું પદ સચોટપણે યાદ છે કે—

"કહે કવિ 'પિંગળ'
મુરતી મહા મંગલ!
મારા રૂદિયામાં વસો તો
મારે શું છે બીજું કામ?
ગોકળીયું નાનું ગામડિયું
શા માટે આવો શામ!"

ને ગાનારાઓ તો એમ જ માનતા કે 'પિંગળ' નામના કોઇક પુરાતન સંતની આ વાણી છે. હું પોતેય એમ જ સમજતો.

બહોળો રોટલો

સ્વ૦ પિંગળશીભાઈની વાણીમાં માનવતા પૂરનાર બીજું તત્ત્વ પણ હતું. એની ડેલી મુલકમશહૂર કરનાર બહોળો રોટલો. એ રોટલાએ આ રાજ–ચારણનો સામાન્ય લોકો સાથેનો હાર્દિક સમાગમ સદાય સજીવન રાખ્યો. એમની પહોળી પલાંઠીદાર બેઠક દિવસભર અને અરધી રાત બસ ડેલીની ચોપાટમાં જ. એને બેસવાના આસનમાં ને અન્ય આવેતુઓને અપાતા આસનમાં ફરક નહિ. એની પાસે તો ડાયરો અવિરામ ચાલુ: સાધુઓ ને બાવાઓ આવે, લોટની તાંબડી ફેરવતા બ્રાહ્મણો આવીને બેસે, લાન્સરના લશ્કરીઓ ને પોલીસના સિપાહીઓ ત્યાં પહોરો ખાય, કે દેશવિદેશથી, દૂર તેમજ નજીકથી પધારતા મહાન કવિરાજો પણ એના ડાયરામાં શામિલ થાય. સર્વ કોઇને માટે એક જ બેઠક, એક જ હોકો, એક જ આદરબોલ, એક જ પ્રકારનું વર્તન: ન કોઈથી દિલચોરી, કે ન કોઇને વિશિષ્ઠ વિવેકની બનાવટ: ન કોઈની આઘાપાછી કે ન

હલકા શબ્દને ત્યાં સ્થાન. બાળક આવીને બોલાવે તો બાળક જેવડા બનીને રોનક મચાવે આ રાજકવિ. વિનોદ તો એના સ્વભાવનું સ્વાભાવિક વહેણુ હતું.

એ પૌરૂપ-રૂપ નહિ વીસરાય

એ ડેલીની ચોપાટમાં બેસતા સ્વ૦ પિંગળશી બાપુના ડાયરાનો ચિતાર તો મારી નજરમાં અણુ-યે અણુ અંકિત થઈ ગયો છે. સપ્તરંગી આગંતુકોની વચ્ચે એકરંગીલા બનીને બેસતા એ અડીખમ પુરૂષનું પૌરૂષ-રૂપ નહિ વીસરાય. મધ્યયુગના મહાન ખંડિયેરને તળિયે ચગદાઈ ગયેલી સંસ્કૃતિના સહેલામાં સહેલા મર્મ-ઊકેલ માટે સ્વ૦ પિંગળશીભાઈના આ ડેલીએ બેઠેલા વ્યક્તિત્વનું દર્શન ભારી સાધન હતું.

"એકરંગીલા"

એને દેખ્યા પછી મેં કલ્પી જોયા છે-મહારાજ વજેસંગ, આતાભાઈ, અને જાગીદાસ ખુમાણ: એમને દીઠા પછી મારી મધ્યયુગમાં ભમવા જતી કલ્પનાને વર્તમાનની ભૂલભૂલામણી નડી નથી. એને દીઠા પછી મને જાણે કે સામા મળતા ગયા છે પુરાતનતાના ધુમ્મસમય પ્રદેશમાં ભમતા યોદ્ધાઓ, યોગીઓ, રાજપૂતાણીઓ ને જોગમાયા ચારણ્યો. પિંગળશીભાઈના પરિચય-કર્તાઓને માટે 'જૂનવટ' અને 'જૂનવાણી' એ તિરસ્કારના શબ્દો નથી, ગેરસમજની પણ બાબતો નથી.

પિંગળશીભાઈનો અવાજ પણ કોઈ દિવસ જરાય ઊંચો કે નીચો થયો મેં જોયો નથી. એને માટે તો એક જ શબ્દ કહું: "એકરંગીલા."

ડિંગળીના ઊકેલનાર

જર્જરિત જૂના ચોપડાઓમાંથી ડિંગળી ભાષાના બોડિયા અક્ષરો ઊકેલવાની એની ફાવટ ભારી હતી. ડિંગળી વાણીના ધુરંધર લેખે એનો જાડીદાર આજે જડવો દુર્લભ છે. (રહ્યા છે એ; એના અવશેષ-ઠારણભાઈ.) અને અસલી પ્રાસાદિકતા પૂરેપૂરી સાચવીને નવીન કવિતાના રચનાર પણ એ જ એક અજોડ હતા. એમની રચનાના મરોડો અનોખા જ હતા.

એમનો કંઠ અને કહેણી

એ કરતાં પણ વિશેષ ખૂબીદાર તો એમનો કંઠ અને એમની કહેણી હતી. દૂલાભાઈને મેં જ્યારે કહ્યું કે વાર્તા કહેનારાઓ લુપ્ત થયા છે એવા આ જમાનામાં તમે જે જે ભાઇઓ અસલી પાતાળફૂટ કંઠ ધરાવો છો તેઓ તો એ કળાને પાછી ખીલાવો! ત્યારે દૂલાભાઇએ મનેકહ્યું, "વાર્તાકારની શી વાત કહું! એ તો કહી જાણ્યું માઇના પૂત એક પિંગળશીભાઇએ." ચાહે તેવડા નાના અથવા મોટા ડાયરાની સમક્ષ નજરને બસ ધરતી તરફ જ સ્થિર કરી, ઊંચું કે આગળ પાછળ જોયા વગર, શ્રોતાઓના મોં પર પડતી અસરોની કશી જ મદદ લીધા વગર, પોતે પણ જરીકે લાગણીવશ અથવા વિચલિત થયા વગર એક અવધૂતની માફક જ્યારે વાગ્ધારા વહેતી મૂકતા, સમા સ્વરે કથ્યે જતા, ધોધમાર વર્ણન આલેખતાં ગીતો–કવિતો ટાંકતા જતા, વાર્તામાં રજૂ થતા એકેએક ભાવને છંદ, છપ્પય કે કાવ્યની અખૂટ ખાણુમાંથી વેરતા જતા. 'નિરુદ્ધ શૃંગાર' વગેરે કાવ્યોના અજોડ કથાકાર પિંગળશીભાઈના એ ગુજરી ગએલા સમયની, એમની એ પ્રૌઢાવસ્થાની તમને આજે કલ્પના જ નહિ આવે. વાર્તા કહેતા પિંગળશીભાઈ પણ માનવી પિંગળશીભાઈની જ પ્રતિકૃતિ હતા. એ જ સંયમ, એ જ ખામોશ, એ જ અવિચ્છિન્ન જીવનધારા સાહિત્યધારા બની જતી. ને શ્રોતા-સમૂહ પ્રત્યેક ભાવમાં ઘસડાતો હોય ત્યારે કથાકાર એકલો આત્મસ્થ બેઠો હોય.

આ બધું જાણીએ છીએ ત્યારે આજે સાહિત્યકાર અને સાહિત્યકારના જીવનને લગતી જે બેઉ પક્ષે વાહિયાત વાતો ચાલી રહી છે. તેનાથી જુદું એક સત્ય સ્પષ્ટ થાય છે. પિંગળશીભાઇ સાહિત્યના વિજ્ઞ તરીકે મોટા, કે જીવન જીવનાર તરીકે મોટા? એ પ્રશ્ન જ અર્થહીન છે. એનામાં પોતાનું પોતાપણું–નિજત્વ, સ્વત્વ હતું, એટલું જ કહેવું બસ થશે.

કોઇએ સાચો લાભ ન ઊઠાવ્યો

એમની પ્રખર કાવ્ય–શક્તિ, તેમજ એમની સાહિત્ય–ઈતિહાસ વગેરેની ઊંડી સાન: એ બેઉનો સાચો લાભ નથી રાજ્યે લીધો, કે નથી લીધો ગુજરાતી પ્રજાએ. રાજ્યની ખરી ખાનદાની કે ત્રણ ત્રણ પેઢીઓએ, તેમજ ચોથી પેઢી એડમિનિસ્ટ્રેશને આ પુરૂષની અજબ રખાવટ કરી. ભાવનગરનું ઓઢણું ઓઢનારનાં ભાવનગરે સ્વમાન અને શીલ અણિશુદ્ધ સાચવ્યાં. ભાવન-

ગર રાજ્યે પોતાના કવિનો સ્વાધીન સંસ્કારી સંભાળ્યો, ને ઊજળો કરી દેખાડ્યો. એક પણ અવસરે એની પાસેથી જૂઠી વાણી ન ઉચ્ચરાવી. કવિના આત્મગૌરવની આવી સાચવણ તો આજના લોકયુગમાં લોકસંસ્થાઓ ને લોકમાન્ય પુરુષો પણ નથી કરી જાણતા.

સાહિત્યકારની સ્વતંત્રતાનો સીધી રીતે નહિ તો આડકતરી રીતે તેજોવધ ચાલતો જોવાય છે. એ દૃષ્ટિએ ભાવનગર રાજ્યને ધન્યવાદ છે.

સર્જનશકિતનો પૂંજ

પરંતુ ૮૩ વર્ષનું વિશાલ એ કવિજીવન જો વાઙ્મયની દૃષ્ટિએ કોઈકે હાથમાં લીધું હોત ને, તો એ પુરુષની સાથે જ સ્મશાને સૂતેલી અઢળક વિદ્વતાને મહાન નવી રચનાઓ નીપજાવવા માટે જોતરી શકાઈ હોત.

એવી જોતરનાર શક્તિના વાંકે સ્વ૦ ની કાવ્યપ્રતિભા એની સાચી સમૃદ્ધિ વચ્ચે પણ બેકાર બની રહી હતી. ગુજરાત જેની પાસેથી હોમર, વાલ્મીકિ કે તુલસી શૈલીનાં મહાકાવ્યોનું સર્જન થોડાક જ પ્રોત્સાહને કરાવી શક્યું હોત, તેવો એ એક જ પુરુષ હતો—મહાદવિનો કોઈ ઓલવાયેલો જ્વાલામુખી જાણે !

એથી કરીને આજે એમની જે થોડીક રચનાઓ ઉપલબ્ધ છે, તેમાંથી એમની સાચી કાવ્યપ્રતિભાની કણિકાઓ ચમકતી હશે, પણ તેમની ભાવિ કાવ્ય–શકયતાઓનો ખ્યાલ નહિ આવી શકે, એ ખ્યાલ તો એમનો પરિચય સાધનારાઓ જ પામી શકેલ છે.

એમની કૃતિઓ: 'ભાવભૂષણ' નામે ગોહિલ કુળની તવારીખનો બિરદ ગ્રંથ: "તખ્તપ્રકાશ" પણ એવો જ ગ્રંથ: ઇશ્વરદાસજી કૃત "હરિરસ"નું સંપાદન-કાર્ય: દશમસ્કંધ પરથી ઊતારેલ "શ્રી કૃષ્ણ બાળલીલા કાવ્ય," "ચિત્ત ચેતાવની" નામનો કવિતા-સંગ્રહ: વગેરે.

——શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણી

('ફૂલછાબ' તા૦ ૧૦-૩-૩૯ના અંકમાંથી ઉદ્ધૃત)



ચારણ જાતિ-વૃત્તાંત.

એક નમ્ર નિવેદન



ચારણજાતિ એ હિંદુસ્તાનની આર્ય જાતિઓમાંની એક છે. તેની પ્રાચીનતા શ્રેષ્ઠતા તેમજ તેના અન્ય ગુણોનું વર્ણન હિંદુ ધર્મશાસ્ત્રો- જેવાં કે શ્રી વાલ્મીકિ રામાયણ, શ્રી મહાભારત, શ્રીમદ્ભાગવત, શિવપુરાણ, ગણેશપુરાણ, પદ્મપુરાણ, બ્રહ્મપુરાણ, વગેરે-માંથી જાણી શકાય છે. હિંદુસ્તાનનો મધ્યકાલીન ઈતિહાસ શૃંખલાબદ્ધ મળતો નથી. છતાં પણ કોઇ કોઇ સાહિત્યકારોનાં પુસ્તકો જેવાંકે- શાકુંતલાનાટક, હર્ષચરિત્ર, પ્રસન્નરાઘવનાટક તેમજ રાજતરંગિણી વગેરે ઈતિહાસ ગ્રંથો અને જૈનધર્મનાં પુસ્તકોમાં ચારણો વિષે સારા પ્રમાણમાં ઉત્તમ ઉલ્લેખો મળી શકે છે.

મુસલમાનોના આધિપત્ય કાળમાં પણ ચારણો હિંદુ જાતિમાં મહત્ત્વનું સ્થાન ભોગવતા હોવાના અનેક ઉલ્લેખો મળેછે. અને અંગ્રેજ ઇતિહાસકારોએ પણ પોતાનાં અનેક પુસ્તકોમાં ચારણજાતિની પ્રસંશા કરી છે.

ક્ષત્રિય જાતિ સાથેનો ચારણ જાતિનો સંબધ અત્યંત નિકટનો અને ઘનિષ્ઠ છે. ચારણોએ ગુરૂ, ઉપદેશક, કવિ, સલાહકાર, વિષ્ટિકાર અને વિશ્વાસપાત્ર મિત્રો બનીને ક્ષત્રિય જાતિની ઉત્કૃષ્ટ પ્રકારની સેવા કરી છે તથા તેના અર્થે તન, મન, ધન સર્વસ્વ અર્પણ કરેલછે. ચારણોની આ સેવાના બદલામાં ક્ષત્રિયોએ પણ કૃતજ્ઞભાવથી તેમને પોતાના પૂજ્ય ગણીને ગામ ગરાસ તેમજ માન અકરામની ભેટ ધરી છે. આ કથનની સાક્ષી સ્વરૂપ અનેક વૃત્તાંત ઈતિહાસોમાં મળી શકે છે.

વર્તમાન કાળના ચારણોનાં રહેણી કરણી, વ્યવસાય અને જીવન તરફ દૃષ્ટિ કરીએ તો સ્હેજજ આપણને જણાશે કે ચારણ જાતિ એ એક શ્રેષ્ઠ જાતિ છે અને તેને મળેલ વારસો ભવ્ય હોવો જોઇએ.

હિંદુઓના સર્વ વર્ણોમાં દેવીપૂજા (દેવીભકિત) પ્રચલિત છે. દેવીઓમાં પણ જુદા જુદા નામવાળી અનેક દેવીઓ પૂજાય છે. આ દેવીઓમાંથી મોટા ભાગની દેવીઓએ ચારણજાતિમાંજ જન્મ લીધો છે. તદુપરાંત ચારણ જાતિમાં અનેક મહાન્ ભકતો, શૂરવીરો, સાહિત્યકારો, કવિઓ, રાજનીતિજ્ઞો, ઉપદેશકો, દેશભકતો

અને સત્યાગ્રહી વીરોએ જન્મ લઈને ગૌરવમાં વૃદ્ધિ કરી છે.

આ બધું હોવા છતાં પણ ચારણજાતિના ભવ્ય ઇતિહાસથી અજાણ એવી કેટલીક વ્યકિતઓ તથા કેટલાક વિદ્વેષીઓ તરફથી ચારણ જાતિ સંબંધી કપોલ-કલ્પિત હકીકતો ફેલાવવામાં આવેછે. એમ માલૂમ પડયું છે. સાથે સાથે એ પણ સ્પષ્ટ છે કે, સ્વ૦ પૂજ્ય પુરોહિત શ્રી ગૌરીશંકર ગોવિંદજી એ લખેલ એક નાનકડા પુસ્તક ' ચારણધર્મ અને જાગૃતિ ' સિવાય ગુજરાતી ભાષામાં ચારણજાતિ વિષે પ્રમાણભૂત હકીકત આપતું એક પણ પુસ્તક લખાયેલ નથી. હિંદી ભાષામાં આ વિષયને લગતાં બે ત્રણ પુસ્તકો લખાયાં છે, તેમાં મુખ્ય નીચે મુજબ છે-૧ 'ચારણ કુલ પ્રકાશ'-કર્તા સ્વ૦ કવિરાજ શ્રી કૃષ્ણસિંહજી સોદા (શાહપુરા-મેવાડ), ૨ 'ચારણોત્પત્તિમીમાંસામાર્તંડ'-કર્તા સ્વ૦કવિરાજ શ્રી ભભૂતદાનજી વીઠૂ (બીકાનેર). આ બે પુસ્તકોમાં ઇતિહાસની દૃષ્ટિએ પહેલું પુસ્તક શ્રેષ્ઠ છે. બીજા પુસ્તકમાં ચારણ જાતિની ઉત્પત્તિની હકીકત વિસ્તારથી ચર્ચવામાં આવેલ છે. બન્ને પુસ્તકો શ્રેષ્ઠ પંકિતનાં છે. આ સિવાય સ્વ૦કવિરાજ શ્રી મુરારિદાનજી આસિયા (જોધપુર) કૃત 'ચારણ ખ્યાતિ' નામનું એક નાનકડું પુસ્તક પણ પ્રસિદ્ધ થયેલ છે, તેમજ ગુજરાતી અને હિંદી ભાષામાં ચારણ જાતિ સંબંધી ઘણા લેખો લખાયા છે, અને ભાષણો થયાં છે તથા પુસ્તકોમાં પણ ઉલ્લેખો થયા છે.

ઉપર દર્શાવેલ નામવાળાં પુસ્તકોમાં ચારણ જાતિની ઉત્પત્તિ તથા ઇતિહાસ સારી રીતે સ્પષ્ટ કરવામાં આવેલ છે. પરંતુ તેની ભાષા હિંદી હોવાથી કચ્છ-કાઠિયાવાડ - ગુજરાતમાં તેનો પ્રચાર બહુ થયો નથી, એટલે ગુજરાતી ભાષા-ભાષી ચારણો તથા જનતાને ચારણ જાતિના ઇતિહાસની માહિતી ન મળી હોય એ સ્વાભાવિક છે. ઉપરાંત ઉપરોક્ત હિંદી પુસ્તકોમાં વિસ્તાર ભયથી તેમજ અન્ય કારણો ને અંગે વળી ધર્મશાસ્ત્રો સિવાય અન્ય પુસ્તકો, લેખો, ભાષણો વગેરેનો તથા ચારણજાતિના રીતરિવાજો, સાહિત્ય, જીવન, અન્ય જાતિઓ સાથેનો સંબંધ, તેની વિશિષ્ટતાઓ અને અન્ય ઘણી જાણવા યોગ્ય હકીકતોનો સમાવેશ કરવામાં આવ્યો નથી; અને આ બધા ઉપરાંત ઘણા અણસમજુ માણસો તથા વિદ્વેષીઓ ચારણ જાતિ સંબંધી કપોલ-કલ્પિત હકીકતો ફેલાવતા માલૂમ પડયા છે; એટલે ગુજરાતી ભાષા-ભાષી જનતાને ચારણ જાતિના ઇતિહાસથી પરિચિત કરવાની તથા જનતા પાસે સત્ય વસ્તુ પૂર્ણરીતે મૂકવાની આ દેશની શ્રી ચારણહિત-

વિર્ધક સભાની ફરજ છે. આ ફરજને અંગે તેની વતી હું ચારણ જાતિના ભૂત-કાળ અને વર્તમાનકાળ વિષે યોગ્ય વસ્તુ પ્રસિદ્ધ કરવા માગું છું.

ચારણ જાતિ વિષે હું જે કંઈ પણ લખીશ તે બધું કંઈ નવું નથી. એ બધું તો એક યા બીજા સ્વરૂપે ઉપર દર્શાવેલ નામવાળાં પુસ્તકો તથા લેખો, ભાષણો વગેરેમાં ક્યારનું યે કહેવાઈ ગયું છે. ફક્ત એક સંગ્રાહક તરિકે એ બધું તેમજ બીજું અન્ય જે કંઈ મળી શકે તે બધાને યોગ્ય રૂપમાં ગોઠવવાનું મારું કામ છે. હું કોઈ મોટો વિદ્વાન છું નહિ, જે લખીશ તે બધું ઉપરોક્ત સામગ્રી માંથી જ અને તે પણ ફક્ત ગુજરાતીભાષાભાષી જનતાની જાણ માટે. મારા લખાણમાં ક્યાંય ભૂલચૂક જણાય તો કૃપાળુ પાઠકગણ મને મારી ભૂલનું ભાન કરાવે એમ પ્રાર્થના છે.

વિશેષમાં ખાસ વિનંતિ કરવાની કે, જે ભાઈઓ પાસે ચારણજાતિના ઇતિહાસ, ઉત્પત્તિ, કાર્યો, વ્યવસાય, ચારણજાતિમાં ઉત્પન્ન થએલ ભક્તો, દેવીઓ, શૂરવીરો, કવિઓ, રાજદ્વારીઓ, ઉપદેશકો, અને અન્ય મહાન પુરૂષો, ચારણ-જાતિના રીતરિવાજ, ભાષા, રૂઢિ, પહેરવેશ, ગામગરાસ, સાહિત્ય, અને તેને લગતી અન્ય કંઈ પણ માહિતી જૂની અથવા નવી હોય તે તેમણે વિના વિલંબે મને મોકલવાની કૃપા કરવી. ચારણજાતિની શાખો, પાડાઓ, ભેદો વગેરે સંબંધી કંઈ પણ પ્રમાણબદ્ધ હકીકત કોઈ ભાઈની પાસે હોય તો તે પણ મોકલવાની વિનંતિ કરવામાં આવે છે.

ચારણજાતિને લગતી માહિતીના બધા પુરાવા, પુસ્તક, લેખ વગેરે યોગ્ય ઉપયોગ થયા પછી મૂળધણીને પાછાં મોકલવામાં આવશે. વિશેષમાં વિનંતિ કરવાની કે ચારણ અથવા ચારણેતર-અન્ય કોઈ પણ બંધુ તરફથી ચારણજાતિના લખવા ધારેલા આ ઇતિહાસ સંબંધી સૂચન-સલાહ મળશે તો મહદ્ ઉપકાર થશે.

ચારણજાતિના ઇતિહાસની આ હકીકત "શ્રી અ૦ ભા૦ ચારણ-સમ્મેલન' ના મુખપત્ર 'ચારણ' પત્રમાં (સંપાદકોની અનુજ્ઞાથી) ક્રમે ક્રમે પ્રગટ કરવાની મારી નમ્ર અભિલાષા છે. મારી શક્તિ અલ્પ છે, અને મને તેનું ભાન પણ છે, પરંતુ જ્ઞાતિબંધુઓ તેમજ અન્ય કૃપાળુ સજ્જનોનો સહકાર મળશે એવી પૂર્ણ આશાથી આ કાર્ય કરવાને તત્પર થયો છું, આ ઐતિહાસિક હકીકત પૂર્ણ રીતે લખાઇ

રહેતાં એક પુસ્તકાકારે પ્રસિદ્ધ કરવાની ઈચ્છા છે. ભગવતિ જગદંબાની પૂર્ણ કૃપાની આશા સાથે આ કાર્ય હાથમાં લીધું હોઈ એ દયાળુ મા મારા આ નમ્ર મનોરથને પૂર્ણ કરે, એજ અભ્યર્થના.

ચારણજાતિના લખવા ધારેલા આ ઇતિહાસમાં નીચેની તથા અન્ય બાબતો નો સમાવેશ થવાનો સંભવછે.

ભૂતકાળ

૧ ચારણ શબ્દનો અર્થ, ૨ ચારણોની ઉત્પત્તિ, ૩ શાસ્ત્રોમાં ચારણોના ઉલ્લેખો અને તેનાથી નિષ્પન્ન થતું ચારણોનું નિવાસસ્થાન, વ્યવસાય, તે વખતના સમાજમાં સ્થાન વગેરે, ૪ મધ્યકાલીન ઉલ્લેખો, ૫ જૈનધર્મનાં પુસ્તકોમાંના ઉલ્લેખો. ૬ મુસલમાની આધિપત્ય વખતે ચારણોનું સ્થાન, ૭ ચારણો-અંગ્રેજ ઇતિહાસકારોની દૃષ્ટિએ, ૮ રાજપૂતો સાથેનો ચારણજાતિનો સંબંધ, અને તેને અંગેની અન્ય વિશિષ્ટતાઓ, ૯ ચારણ ભકતો, દેવીઓ, કવિઓ, રાજનીતિજ્ઞો અને શૂરવીરોની હકીકત, ૧૦ ચારણજાતિ વિષેનાં ઐતિહાસિક વિધાનોનું મનન કરતાં માનવ-ઇતિહાસમાં ચારણજાતિનું સ્થાન, ૧૧ ચારણજાતિનું ક્રમે ક્રમે થયેલું પતન તથા તેનાં કારણો.

વર્તમાન કાળ

૧ વર્તમાનકાલીન ભેદો-સ્થાન, ભાષા, રીતરિવાજ, વ્યવસાય, પહેરવેશ વગેરેના.

૨ આપણી વર્તમાન દશા-વ્યસનો, અવિદ્યા, કુસંપ, વહેમો, તથા અન્ય દુર્ગુણો તેમજ સદ્‌ગુણો.

૩ અવનત દશામાંથી નીકળવા માટે ઐકય, જાગૃતિ, વિદ્યાવ્યાસંગ, ધર્મપાલન વગેરેની જરૂરિયાત.

૪ જ્ઞાતિની ઉન્નતિ અર્થે થયેલાં મંથનો, અને તેની હકીકત.

૫ હવે શું કરશું ?

૬ સાંપ્રત કાળના મહાન્ ચારણોનો પરિચય.

પાડા તથા શાખાઓની વિગતનું પરિશિષ્ટ

૧ ચારણ જાતિનાં ગોત્ર, શાખો, પાડાઓ વગેરેની હકીકત

ઉપર દર્શાવેલ બાબતો તેમજ ચારણ જ્ઞાતિને લગતી અન્ય હકીકતોનો સમાવેશ લખવા ધારેલા આ પુસ્તકમાં કરવા વિચાર છે. સર્વે બંધુઓ માગેલી સહાય તથા સલાહ-સૂચન આપી ઉપકૃત કરે, એમ ફરીથી પ્રાર્થના કરું છું.

સેવક

પિંગલશી પરબતજી પાયક

મંત્રી-શ્રી ચારણહિતવર્દ્ધક સભા,

ભાવનગર

તંત્રી-નોંધ

વડોદરા-નરેશનો રાજ્યાભિષેક—

સ્વ૦ શ્રીમંત મહારાજા સર સયાજીરાવની પછી તેમના પૌત્ર શ્રીમંત મહારાજા શ્રી પ્રતાપસિંહ ગાયકવાડ ગયા એપ્રિલ માસમાં વડોદરાની ગાદીએ બેસતાં, તેનો અઠવાડિયા સુધી પૂર્ણ ઉમંગથી સમારંભ ઊજવાયો. સાર્વભૌમ સત્તા સાથે સીધો સંબંધ ધરાવતાં હિંદનાં ચાર મોટાં રાજ્યો પૈકી વડોદરા એક હોવા ઉપરાંત મર્હુમ વિશ્વવિખ્યાત મહારાજા સાહેબના યશસ્વી સુદીર્ઘ રાજ્યઅમલને લીધે તેનું સ્થાન દેશી રાજ્યોમાં ઘણું આગળ પડતું છે. એટલુંજ નહિ પણ મફત પ્રાથમિક શિક્ષણ, પુસ્તકાલય અને ગ્રામોદ્ધાર આદિ બાબતોમાં તો તે બ્રિટીશ ભારતથી પણ આગળ ઊભું છે.

નવીન મહારાજાએ નિષ્ણાત શિક્ષકોના હાથ નીચે ખાનગી રીતે અને પ્રજાનાં બાળકો સાથે બરોડા કૉલેજમાં ઈંટર આર્ટ્સ સુધીનું ઉચ્ચ શિક્ષણ લેવા ઉપરાંત તેમના મર્હુમ પિતામહની સીધી દેખરેખ નીચે વર્ષો સુધી વહીવટદારથી માંડીને નાયબ દીવાન સુધીના જવાબદારી ભરેલા ઓહદાએ કામ કર્યું છે. ગાદીએ બેસતા પહેલાં મર્હુમ મહારાજાના સ્મારક રૂપે પોતાની ખાનગી મિલકતમાંથી એક કરોડ રૂપિયા જેટલી બાદશાહી રકમ તેમણે પ્રજાકીય કાર્યો માટે કાઢી છે. અને રાજ્યારોહણની ખુશાલીમાં, ચારેક માસ પૂર્વે મર્હુમ મહારાજાએ પાંચ વર્ષ માટે એકવીસ-બાવીસ લાખ રૂપિયા જેટલો મહેસૂલી ઘટાડો કરેલો તેને કાયમનો જાહેર કરી, પ્રજાને રાજકાર્યમાં સક્રિય ભાગ લેતી કરવા માટે પ્રાંત પંચાયતો તથા અ વર્ગની સુધરાઈઓને ચૂંટણીનો પ્રમુખ આપવા ઉપરાંત ધારાસભા-વિસ્તારની યોજના પણ અમલમાં મૂકી છે.

અમે આ શુભ પ્રસંગે વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણ કોમ તરફથી એઓ નામદારને અભિનંદન અર્પી જણાવવા માગીએ છીએ કે, સને ૧૯૩૧ની છેલ્લી વસ્તીગણત્રી મુજબ વડોદરા રાજ્યમાં ચારણ જાતિની વસ્તી ૨૬૭૦ માણસોની છે. મર્હુમ મહારાજા સાહેબે જે કેળવણી-પછાત કોમોને શિક્ષિત બનાવવા માટે ઉમદા સવલતો આપેલી છે, તેમાં એક વખતની સંસ્કારી પરંતુ અત્યારે ગરીબી અને અવિદ્યા-અંધકારમાં ડૂબેલી આ ચારણ કોમનો પણ સમાવેશ થતો હોવા છતાં, બીજી કોમોને મુકાબલે સંખ્યામાં નાની હોવાથી તેને એ સવલતોનો બહુ ઓછો લાભ મળ્યો છે.

કાઠિયાવાડના રાજા મહારાજાઓની ઉદાર દેણગીથી બે એક વર્ષ પૂર્વે બૃહદ ગુજરાતની ચારણ જાતિએ ભાવનગરમાં એક બોર્ડિંગની સ્થાપના કરી છે, પરંતુ વડોદરા રાજ્ય અને અમદાવાદ, ખેડા આદિ બ્રિટીશ જિલ્લાઓમાં વસતા ચારણોને એ સ્થળ ખર્ચાળ અને બહુ દૂર પડતું હોવાથી કલોલ જેવા મધ્ય સ્થળે એક બોર્ડિંગ સ્થાપવા માટે વડોદરા રાજ્યમાં વસતા કેટલાક ચારણો પ્રયાસ કરી રહ્યા છે. તો તે ખાતે શ્રીમંત મહારાજા સાહેબ સંગીન

મદદ આપી વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણ જાતિને આભારી બનાવશે, એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

અંતમાં શ્રીમંત મહારાજા સાહેબે તેમના રાજ્યારોહણ-પ્રસંગે ચારણ જાતિના ખોટી ખુશામદથી પર એવા એક સંસ્કારમૂર્તિ યુવાન શ્રી મેરૂભાને માનપૂર્વક નિમંત્રી જે નિવાજેશ કરી છે, તે બદલ સમસ્ત ચારણ જાતિ એઓ નામદારને ધન્યવાદ અર્પે છે.

ગુજરાતી-વિભાગ અને તેનું તંત્રીપદ—

અ૦ ભા૦ ચારણ-સંમેલનના રાજકોટ મુકામે મળેલા વિગત અધિવેશનમાં તેના મુખપત્ર 'ચારણ' ને ત્રૈમાસિક રૂપે પુનર્જીવિત કરવાનો સર્વાનુમતિથી નિર્ણય થતાં ચારણ જાતિના વસવાટના બે મુખ્ય દેશો— રાજપૂતાના-માલવા અને ગુજરાત-કાઠિયાવાડને એક-બીજાની વધુ નજીક લાવવા માટે તેને હિંદી અને ગુજરાતી ભાષામાં કાઢવાનું નક્કી થયું હતું. પરંતુ ગુજરાતી-વિભાગની જવાબદારી ઊપાડી લેવા માટે તે પ્રસંગે કોઇ તૈયાર ન થવાથી ચા૦ હિ૦ સભાના મંત્રીજી અને બીજા બે ચાર આગવાનોની આજ્ઞાથી અમે તે કામ કરવાનું કબૂલ કરેલું, અને તદનુસાર તેનો ભાર વહન કરતા આવ્યા છીએ.

પરંતુ અમારે દુઃખ સાથે જણાવવું પડે છે કે, અમે જે જે ઉચ્ચ કેળવણીપ્રાપ્ત બંધુઓ તરફથી જાતીય પ્રશ્નોની વિવિધ દૃષ્ટિબિંદુથી છણાવટ રજૂ કરતી લેખ-સામગ્રી મળવાની આશાએ–અમારી પત્ર ચલાવવાની અયોગ્યતાનો અમને પૂરો ખ્યાલ હોવા છતાં —આ જવાબદારી લીધેલી, તેમના તરફથી બિલકુલ સહાય મળી નથી. એ ખાતે અમે વારંવાર કરેલી પ્રાર્થના નિષ્ફળ ગઈ છે. એટલું જ નહિ પણ રાજકોટ અધિવેશનમાં અમુક સંખ્યા ગ્રાહકો બનાવી દેવાનું વચન આપનાર બંધુઓમાં પણ ભાગ્યે જ એક-બે બંધુઓએ એ ખાતે પ્રયાસ કર્યો છે. જાતીય અધિવેશનોમાં તીખાં-તમતમતાં ભાષણો કરનાર એક વયોવૃદ્ધ બંધુએ તો અનિયમિત રીતે પત્ર નીકળે તો તેમણે બનાવેલા ગ્રાહકો તેમને ઠપકો આપે, તેથી પોતાનું વચન મોકુફ રાખવાનું જણાવ્યું, ત્યારે બીજા એક બંધુએ વચન તો આપ્યું હતું, તેમણે કહેલા પચીસે ગ્રાહકોનું લવાજમ તેમના પર વી૦ પી૦ મોકલી વસૂલ કરવાનું; પરંતુ પ્રથમાંક પ્રસિદ્ધ થવાની તેમને ખબર આપતાં જે તે બંધુઓ પર વી૦ પી૦ મોકલવાનો આદેશ કર્યો, પછી ભલે ને તેઓ પરત વી૦ પી૦ વાળે. અને થયું પણ તેમજ. એટલે કે કોઇ પણ પત્રને ચિરંજીવી બનાવવા માટે જે બે મુખ્ય બાબતો ગણાય છે, તે લેખ-સામગ્રી અને ગ્રાહક-સંખ્યાના વિષયમાં વર્ષ દરમિયાન નિરાશા જ અનુભવવી પડી છે.

બીજી જાતિઓને મુકાબલે આપણે કેળવણીમાં ઘણા પાછળ હોવા છતાં યે બૃહદ્ ગુજરાતમાં આપણામાં પાંચ-સાત ગ્રેજ્યુએટ અને પંદર-વીસ મેટ્રિક થયેલા બંધુઓ છે. પરંતુ તેઓ પૈકી એક પણ વ્યક્તિનું નામ આજના ગુજરાતી-સાહિત્યમાં ગોત્યું જડતું નથી. જાણે કે પ્રાચીન કાળમાં ચારણ જાતિએ સાહિત્યિક જીવન જીવી જાણ્યું હોવાથી એ કાળની બિન સાહિત્યિક કોમોની આજની ઉચ્ચ શિક્ષાપ્રાપ્ત વ્યક્તિઓને એ ખાતે માર્ગ કરી

આપવા માટે સાહિત્ય-સેવા કરવામાં પાપ લેખતા હોય! જો કે આ સ્થિતિ એકલા ગુજરાત-કાઠિયાવાડની જ નથી, રાજપૂતાના-માળવાના યુવકોની પણ એ જ સ્થિતિ છે. પરંતુ જેમને શિક્ષિત બનાવવા માટે જેણે બોર્ડિંગો સ્થાપી છે, અને સ્થાપ્યે જાય છે; જેમને પદવીધર બનેલા જોઇ જે પોતાને ગૌરવશાળી માને છે;— એ જ્ઞાતિમૈયાના આ એક માત્ર મુખપત્ર માટે પણ તેઓ બે શબ્દ ન લખી મોકલે, એ તો બહુ જ દુઃખદાયક વસ્તુ છે. અને એ સ્થિતિમાં બીજે વર્ષે ગુજરાતી-વિભાગના તંત્રીપદે ચાલુ રહી વધુ હાંસી ન કરાવવા માટે રાજીનામું આપવું અમે ઉચિત સમજીએ છીએ. સંમેલનની પ્રતિસ્પર્ધી ચા૦ હિ૦ સભા કે જે ગુજરાત-કાઠિયાવાડ અને કચ્છ ઉપર એક છત્રે શાસન ધરાવે છે, તેને ગુજરાતી-વિભાગની અગત્ય જણાતી હોય તો તેણે સંમેલન સાથે સમજુતી કરી—પત્રને સર્વાંગ-સુંદર બનાવવા માટે અર્દ્ધો અર્દ્ધ નાણાંની મદદ આપવી કબૂલ કરી—પોતાના તરફથી કોઇ સેવાભાવી ગ્રેજ્યુએટ બંધુની તેના તંત્રી તરીકે નિમણુંક કરાવી લેવી.

સમાચાર—સંગ્રહ

ભારતના લોકજીવનનાં ચિત્રો ઊતારવા માટે લગભગ બે વર્ષથી હિંદમાં આવેલાં હંગેરિયન ચિત્રલેખા માતાપુત્રી-મીસીસ સાસ બ્રુનર અને મીસ ઇલીઝાબેથ બ્રુનરે, ભારતનું લોકસંગીત એકઠું કરવા માટે ઑક્સફર્ડ યુનિવર્સિટી તરફથી હિંદમાં આવેલાં હોલેંડવાસી બાકે દંપતી સાથે, ગયા ફેબ્રુઆરી માસમાં કાઠિયાવાડના પ્રવાસે આવતાં, ચારણ કોમના પ્રસિદ્ધ વાર્તાકાર શ્રી મેઘાણંદભાઈ લીલાનું લાઠી મુકામે ચિત્ર દોરી તેમને અમર બનાવ્યા છે.

ભાવનગર-સાહિત્ય-સભા તરફથી તા૦૪-૪—૩૯ના રોજ ભાવનગરના દીવાન સાહેબ શ્રી અનંતરાય પટ્ટણીના પ્રમુખપદે સ્વ૦ કવિરાજ શ્રી પિંગળશીભાઈના અવસાન-નિમિત્તે જાહેર શોકસભા મળી હતી. તેમાં શ્રી દુલા ભગત,પ્રોફેસર ડૉ૦ રમણલાલ યાજ્ઞિક, શ્રી નટવરલાલ સૂરતી અને શ્રી ગજાનન ભટ્ટે યોગ્ય વિવેચન સાથે મર્હુમને અંજલિઓ અર્પી હતી.

વડોદરાના નવીન મહારાજા શ્રી પ્રતાપસિંહ ગાયકવાડના રાજ્યારોહણ-પ્રસંગે શ્રી મેરૂભા લીલાને આમંત્રણ મળ્યું હતું, અને સારી કદર થઇ હતી, કહે છે.

બીજી કેળવણી-પછાત કોમો માટે વડોદરા રાજ્યે બોર્ડિંગો સ્થાપી છે, તેમ વડોદરા રાજ્યમાં વસતી ચારણ કોમ માટે કલોલ જેવા મધ્યસ્થળે એક બોર્ડિંગ સ્થાપી આપવામાં શ્રી મેરૂભા લીલા તેમની વડોદરા રાજ્ય સાથેની લાગવગ અને વડોદરા-નરેશની મહેરબાનીનો ઉપયોગ કરશે, એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

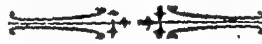
અખિલ કચ્છ-મારૂ-ચારણ-સભાનું તૃતીય અધિવેશન આગામી દ્વિતીય શ્રાવણ સુદિ ૧૫ ના રોજ મોરઝર મુકામે ભરવાનો તેની કાર્યવાહક સમિતિએ ઠરાવ કર્યો છે.

રાધણપુર-નિવાસી શ્રી શંભુદાનજી રત્નૂ અયાચીને કચ્છ-નરેશે માસિક વેતન બાંધી આપ્યું છે. ધન્યવાદ !

અખિલ કચ્છ-રાજપૂત-છાત્રાલયના સંચાલકો ચારણ-ક્ષત્રિય સંબંધની અભિન્નતા અને કચ્છ દેશના ચારણોની આર્થિક સ્થિતિ સામું જોઈ ઉક્ત છાત્રાલયમાં અમુક ટકા ચારણ બાળકોને પણ દાખલ કરવાની ઉદારતા દાખવશે, એવી કચ્છી ચારણો આશા સેવે છે.

જો કોઇ બંધુ ચારણ જાતિનો ઇતિહાસ લખવા તૈયાર થાય તો કચ્છ-ભુજની વ્રજ-ભાષા-પાઠશાળાના આચાર્ય કવિ શ્રી હમીરદાનજી ખડિયા, તે ખાતે ઐતિહાસિક પ્રમાણો આદિ સામગ્રીની સારી સહાય આપવાની તીવ્ર ઇચ્છા ધરાવે છે; એવું કચ્છના એક જવાબદાર બંધુ જણાવે છે.

પાંચેટિયા (મારવાડ) નાં સુયોગ્ય બંધુવર્ય ઠાકુર શ્રી સત્યદેવજી આઢા, કાશી-હિંદુવિશ્વ-વિદ્યાલયની એમ૦એ૦ પદવી માટે અંગ્રેજી ભાષામાં તેમણે લખેલા ચારણ જાતિના ઇતિહાસને હિંદી ભાષામાં પણ સંશોધન સાથે બહાર પાડવાના છે. આપણી તરફ શ્રી પિંગળશીભાઈ પાયક ગુજરાતી ભાષામાં આપણો ઇતિહાસ લખવાની ઇચ્છા ધરાવતો હોઈ, તે બદલ અન્યત્ર પ્રકાશિત તેમના લેખ તરફ કવિ શ્રી હમીરદાનજીનું લક્ષ્ય દોરી અમે આશા રાખીએ છીએ કે, તેઓ એ બન્ને બંધુઓને તેમની પાસે જે જે સામગ્રી હોય તે વિના વિલંબે મોકલી આપશે, અને એ વિષયમાં જાણકારી ધરાવતાં બીજા બંધુઓ પણ સહાય કરવાનું ચૂકશે નહિ. સૌ જાતિબંધુઓ સાથ આપશે તો જ આપણો સર્વાંગ-સંપૂર્ણ ઇતિહાસ તૈયાર થશે.



ॐ

॥ श्री जगदीश्वरी विजयते ॥

चारण

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

वर्ष १] रक्षाबंधन [अङ्क ४

विक्रम सम्वत १९९६

सम्पादक :

ठाकुर ईश्वरदान आशिया

सहकारी सम्पादक :

भँवर शुभकर्ण कविया, M. A., LL. B.,

गुजराती विभाग सम्पादक :

खेतसिंह नारायणजी मिश्रण

प्रकाशक :

शंकरदान जेठीभाई देथा, लींबड़ी

वार्षिक मूल्य २)] [एक अङ्क के ।।।)

लेख-सूची

टाइटल 'पटेल प्रिन्टींग प्रेस' [illegible] कड़ी (उत्तर गुजरात) मां छाप्युं.

चारण जाति के महान् नररत्न्



महामहोपाध्याय कविराजा श्री मुरारिदानजी सा० आशिया, जोधपुर

जन्म	मृत्यु
वि०सं० १८८९ माघ वदि २	वि०सं० १९७० आषाढ सुदि ५

दोहा

देश निरोगो मरुधरा, नृप जसवंत उदार।
उत्तम चारन कुल जनम, भागन लह्यौ मुरार॥

श्री जीवणलालजी सा० वरसड़ा के बंधुकृत्य से]

ॐ

श्री जगदीश्वरी विजयते

चारण

अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन

का

त्रैमासिक मुखपत्र

सत्य अभय स्वातंत्र्य उपासक,-सिखा मरण-जीवन का मर्म।
क्षात्रधर्म-उद्बोधक 'चारण', - रहा सदा साधक युगधर्म ॥

वर्ष १] रक्षाबंधन [अङ्क ४
विक्रम सम्वत् १९९६

करनी-स्तुति

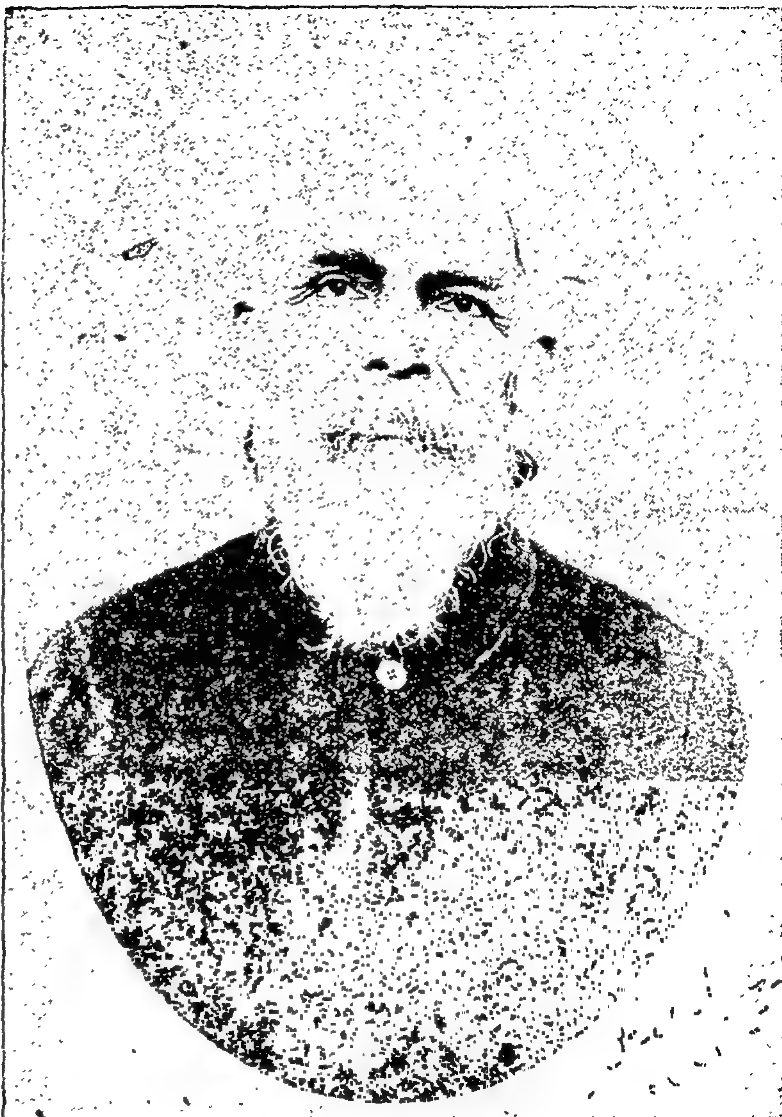
(स्व० कविराजा श्री बाँकीदासजी आशिया कृत)

गीत

ऊंडा पाणियां नदियां उतरंतां; झड़ मंडियां खग-झाटां।
सगती! कीजै स्हाय सेवगां; बहतां घाटां-बाटां ॥ १ ॥
मेवासां मांझल ठग मळियां; नाहर आयां नेड़ां।
कुसळ आपरां राखै "करनी;" वैठां सायर बेड़ां ॥ २ ॥
वैरी विषधर सरव निवारै; बळती लाय बुझावै।
लोवड़ियाळ तणा भुज लांबा; आंच न दासां आवै ॥ ३ ॥
डाकण भूत कुवै पग डगतां; कड़की बीज अकासां।
करतां याद मेहासुत "करनी;" देव! उबेलौ दासां ॥ ४ ॥
बडांबडी किनियाणी "बांका;" पोष पूजगां पाळै।
देस-विदेस मँहीं डाढाळी; राजदवार रुखाळै ॥ ५ ॥

—सह०सम्पादक

बिदा



मुझे वचपन-ही से अपने पूज्य पितुःश्री के अतिरिक्त, उदयपुर के सुप्रसिद्ध प्रातःस्मरणीय स्वनामधन्य महामहोपाध्याय कविराजा श्री स्यामलदासजी से शिक्षा और संस्कार प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। वे महानुभाव चारणजाति के सुधार और अभ्युदय की अपनी तीव्र इच्छा को अपूर्ण ही संसार में छोड़ गये। उनकी उस जातिसेवाभावना को मैंने अपने ऊपर ऋण समझा, और मेरा निज का सहज कर्तव्य भी यही था; अतः नम्रसेवक के नाते मैंने अपनी तुच्छ शक्ति-अनुसार जो कुछ वना, किया: जिसका प्रारंभ आज से ४७ वर्ष पूर्व हुआ था। फिर भी दुःख है कि मैं अपने संतोष-योग्य परिणाम पर न पहुंच सका। कारण? कारणों को कहां तक गिनाऊं! राजसेवा, विशालसेवाक्षेत्र की ओर संलग्नता और आहूति, अभावमय विपजीवन, जो समय मिला उसमें भी "कुल्हाड़ा मोटा और घा चीकणा" अर्थात् मेरी शक्ति की अपेक्षा छेद्य कुसंस्कारों के आवरण की मोटी और कठोर सतह आदि आदि।

अब शारीरिक अस्वास्थ्य एवं वृद्धावस्था-जन्य स्वाभाविक विस्मृति का संचार और उपराम-भाव मुझे इस जातीय सेवाक्षेत्र से विरति-विश्राम पाने की प्रेरणा दे रहा था और इसके लिये मैं दो तीन वर्ष से सचेष्ट था।

अखिल भारतीय चारण-संमेलन के गत राजकोट-अधिवेशन में मैंने अपने से अधिक साक्षर एवं नवस्फूर्तिसम्पन्न, देशकालोपयोगी स्वजातीय नवयुवक रत्नों पर स्वजाति-सेवा का भार सौंपकर अपने आप को हलका किया। मेरे न चाहते हुए भी संमेलन ने फिर एक वर्ष के लिये मुझे अपने प्रधानाध्यक्ष के पद पर बैठा दिया और मैंने भी उस विशेष आग्रह के सामने सिर झुकाकर नाममात्र का संबंध स्वीकार किया। वह समय भी समाप्त हो चुका।

अब संमेलन का व्यावहारिक भार उपप्रधानाध्यक्ष श्री हेतुदानजी साहब उज्वल, एम्० ए०, एल-एल० बी० (मारवाड़) के सुयोग्य हाथों में सौंपकर सर्वतोभाव से अपने आपको निवृत्त करता हूं। अब मे जिस किसी को संमेलन-संबंधी लिखापढी करना हो वे हेतुदानजी सा०, सोजत (मारवाड़) के पते से करें।

मैं इस अंतिम विदा के साथ ही उन सब स्वजातीय सज्जनों एवं ठाकुर सा० डूंगरसिंहजी जैसे राजपूत महानुभावों का हृदय से आभार मानता हूं, जिनके उत्साहपूर्ण सहयोग से जातीय अनुष्ठानस्वरूप अ० भा० चारण-संमेलन का प्रारंभ और परिचालन होता रहा। विशेषकर ठा० सा० ईश्वरदानजी आसिया (मेवाड़) का आभारी हूं कि जिन्होंने संमेलन के प्रारंभ से गत वर्ष तक संमेलन के प्रधानमंत्री-पद पर अथक और सतत जागृत परिश्रम करके एवं निजी स्वार्थ-हानियां उठाते हुए भी मुझे अनुपम सक्रिय सहयोग दिया है और जिनकी जातीय सेवा आदर्शरूप से आज भी "चारण" के सुचारु संपादन में प्रत्यक्ष है।

मनुष्य के काम सर्वथा निर्दोष नहीं होते अतः कुछ भी त्रुटियां रही हों, उनके लिये नम्रसेवक के नाते क्षमायाचना मेरा स्वाभाविक धर्म है।

माणिक-भवन, **कोटा**
आषाढ शुक्ला ४ संवत् १९९६

स्वजाति का विनीत अकिंचन सेवक
केसरीसिंह

(पृष्ठ ८ का शेष)

अत्युक्ति न होगी। लेख समाप्त करने के पहिले हम यह आशा प्रकट करते हैं कि यदि पाठकों का उत्साहपूर्ण सहयोग रहा तो राजस्थान-रिसर्च-सोसायटी-कलकत्ता एवं अखिल भारतवर्षीय चारण-सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन पर डिंगल-साहित्य की अप्रकाशित पुस्तकों की खोजकर प्रकाशित करने के अर्थ स्थापित कमेटी के सदस्यों के परिश्रम से राजस्थान के चारण एवं चारणेतर कवियों के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ, साहित्यप्रेमियों के सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें प्रकृति-चित्रण आदि का रसास्वादन करायेंगे और उन प्रकृति-उपासक कवियों के प्रकृति अर्पित मुर्झाये हुए श्रद्धा के पुष्प भी एक बार फिर से खिल उठेंगे और सारे संसार में अपनी सुगन्ध फैलायेंगे।

राजस्थानी कवियों का प्रकृति-प्रेम



(ले०-भँवर श्री उदयसिंहजी दधिवाड़िया, एम्० ए०, एल्-एल् बी०
(द्वितीय वर्ष), हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी)

कवि स्वभाव से ही प्रकृति का उपासक होता है। एक साधारण मनुष्य तो प्रकृति में केवल मूकभावना का आभास मात्र पाता है, परन्तु कवि को प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में सजीवता दृष्टिगोचर होती है। क्या वृक्ष के नीरव अवयवों में, क्या समुद्र की शांत लहरों में, क्या पत्रों की मर्मरध्वनि में, क्या मेघों की गंभीर गर्जना में, क्या कुमुद की कौमुदी में और क्या वायु-कम्पित वनों में—सबमें ही कवि सदैव सजीवता की अनुभूति और प्रकृति के गूढ़ रहस्यों की उपलब्धि करता रहता है। पृथ्वी, पहाड़, नदी, पेड़, समुद्र, आकाश, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि समस्त प्राकृतिक वस्तुओं तक कवि की पहुंच है। उसकी अनुभूति प्रकृति के सब पदार्थों में परिष्कृत रूप में रहती है। उसे लता-पादपों की आन्तरिक वेदना तक का वास्तविक ज्ञान रहता है।

संसार के साहित्यिक इतिहास के पन्ने उलटने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि प्रत्येक साहित्य में समय-समय पर ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने प्रकृति-चित्रण में अपनी अतुलनीय कुशलता प्रदर्शित की है। उदाहरणार्थ अंगरेज़ी साहित्य को ही लीजिये—वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैली आदि प्रकृति-उपासक कवियों का नाम प्रत्येक अंगरेज़ी-साहित्यप्रेमी जानता है। संस्कृत में भी कालिदास, बाण इत्यादि का नाम किसी भी संस्कृत-ज्ञाता से छिपा नहीं है। हिन्दी के प्राचीन कवियों में जायसी, सूर तुलसी आदि कितने ही कवि हो गये हैं,जिन्होंने प्रकृति-वर्णन में ख्याति प्राप्त की है; और वर्तमान कवियों का तो कहना ही क्या—कविताक्षेत्र में पैर रखते ही उन्हें प्रकृतिदेवी की शरण में जाना ही पड़ता है। उर्दू के शायरों की प्रकृतिविषयक कविता तो हम रातदिन उर्दू भाषा-भाषियों के मुख से सुनते ही रहते हैं—

> "इस शान से इठलाते हैं ये जवानाने चमन;
> लेती है शवा गोद में तो जाते हैं मचल ॥"

यही हाल राजस्थानी साहित्य का भी है। प्राचीन चारण एवं चारणेतर कवियों ने प्रकृति-चित्रणकला में कुछ उठा नहीं रखा है।

चारण जाति के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में चारण लोग सुमेरु, हिन्दूकुश आदि पर्वतों की पार्वत्यभूमि पर निवास करते थे और आज तक भी प्रकृति-देवी के क्रीड़ास्थल ग्रामों में ही निवास करते आये हैं। अतः जो जाति प्रारंभकाल से ही प्रकृतिदेवी की गोदी में पलती आई है। उसके साधारण से साधारण पुरुष में भी प्राकृतिक

वस्तुओं के प्रति अपनी कवित्वशक्ति-द्वारा श्रद्धा के दो-चार फूल अर्पण करने की शक्ति पाई जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। फिर ऐसी परिस्थितियों में पले हुए चारण कवियों का तो कहना ही क्या? यह बात प्रायः देखने में आती है कि जहां कवि अपनी अनुभवशक्ति से काम लेता है वहां कल्पनाशक्ति से कार्य करनेवाले कवि को पीछे ही स्थान मिलता है; चाहे वह अन्य विषयों में पहिले कवि से कितना ही गुरुतर हो। अतः यदि हम यह कहने का साहस करें कि प्रकृतिदेवी के आश्रित चारण-कवि, हिन्दी तथा अन्य साहित्यों के कवियों की अपेक्षा कुछ अंश में प्रकृति-चित्रण करने में अधिक सफल हुए हैं तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

यों तो चारण जाति में छोटे-बड़े अनेक कविरत्न उत्पन्न हुए हैं; जिन्होंने किसी-न-किसी प्रकार से—किसी ने अपने ग्रन्थों के किसी कोने में स्थान देकर और किसी ने चलते ही कोई तुक भिड़ाकर छोटे-से दोहे या सोरठे के रूप में अपनी श्रद्धांजली प्रकृतिदेवी के अर्पण की है —जिनका यदि संग्रह किया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। किन्तु प्रस्तुत लेख में स्थानाभाव के कारण पाठकों के परिचय मात्र के लिये चारण एवं चारणेतर कवियों के प्रकृति-चित्रण के कुछ उदाहरणों को रखना ही पर्याप्त होगा—

सर्व प्रथम प्रकृति-चित्रण में वही कवि सफल समझा जाता है जो अपनी अनुभवशक्ति-द्वारा मनुष्य के हृदय में उत्पन्न भावों का प्रकृति में उत्पन्न भावों के साथ सामञ्जस्य दिखाता है। इसमें प्रकृति का रुदन एवं हास्य मनुष्य-हृदय के रुदन और हास्य के साथ दिखाया जाता है। यह बात राजस्थानी कवियों की कविता में खूब भरी पड़ी है। वे यह दिखाने में पूर्ण सफल हुए हैं कि किस प्रकार एक ही तरह की प्राकृतिक वस्तुएं, संयोगिनी को तो आनन्ददायक और विरहिणी को दुःखद प्रतीत होती हैं।

उदाहरणार्थ—वसंतऋतु के शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन के विषय में एक वियोगिनी और संयोगिनी में परस्पर वाद-विवाद हो रहा है कि—

गुण-गन्ध-ग्रहित गिलि गरल उगलित, पवणवाद ए उभय पख।
स्रीखंड सल संयोग संयोगिण, भणि विरहणि भुयंग भख॥

वियोगिनी तो कह रही है कि "यह पवन सर्प का भक्ष्य है अर्थात् सर्प-द्वारा निगला-जाकर उगला हुआ विष है लेकिन संयोगिनी कहती है कि वह चन्दन वृक्षोंवाले पर्वत (मलयाचल) के संयोग से उसके गुणों को (शीतलता और गन्ध को) ग्रहण किये हुए है।

इसी प्रकार संयोगिनी तीज के त्यौहार पर अपने रसिक प्रेमी से कहती है कि—

मोर शिखर ऊंचा मिळे, नाचे हुआ निहाल।
पिक ठहकै झरणा पड़ै, हरिये डूंगर हाल॥

घनघोरां जोरां घटा, लोरां वरषत लाव।
वीज न मावे वादळां, रसिया तीज रमाव॥
इन्द्र धनुस तणियो अजब, चातक धुन मन चाव।
वीज न मावे वादळां, रसिया तीज रमाव॥

दूसरी ओर वियोगिनी के हृदयोद्गार पर भी दृष्टिपात कीजिये —

बड़कत तड़कत बीजळी, धड़कत तड़कत गाज।
कोप करे आवै घटा, आ कुण ऊपर आज॥
गाज नगारो, चमक खग, बरसत बांण तड़ाक।
घटा नहीं आ काम की, आवै फोज लडाक॥
मोर सोर कर कर मसत, तरवर बैठया जाय।
घण वूठै छूटै घटा, मो तन ऊठै हाय॥
तरत भरत स्रुकत सरत, दादर मरत दुरंत।
प्रीतम घर नहिं पेखतां, बैरण बणी बसंत॥

हिन्दी के प्राचीन कवियों में जायसी ने अपने प्रसिद्ध प्रवन्धकाव्य " पद्मावत " में नागमती के हृदयोद्गार भी इसी प्रकार से अंकित किये हैं तथा तुलसी ने भी सीता का विरह कुछ अंश में इसी प्रकार का दिखाया है।

द्वितीय प्रकार का प्रकृति-चित्रण वह है जिसमें प्रकृति आलंकारिक रूप में हमारे सामने आती है। इसमें प्रकृति के प्रति कवि का अनुराग प्रगट हो जाता है। इसके भी अनेकों उदाहरण पाये जाते हैं—

तरुलता पल्लवित तृणे अंकुरित, नीलाणी नीलम्बर न्याई।
प्रथमी नदि में हार पहरिया, पहिरे दादुर नूपुर पाई॥

लताएं और वृक्ष अब पल्लवित हो गये हैं, तृणों से अंकुर निकलने लग गये हैं, पृथ्वी, हरी साड़ी पहनी हुई नायिका की भांति हरीभरी हो गई है। उसने नदी रूपी हार पहिन लिया है और पैरों में दादुर रूपी नूपुर पहिने हैं।

हुवइ घटि नदी हेम हेमाळे, विमळ शृंग लागा वधण।
जौवनागम कट कृस थावै जिम, थावै थूळ नितंव थण॥

नदियां घटने लगीं और हिमालय पर्वत पर बर्फ के शृंग बढ़ने लगे जिस प्रकार कि यौवन के आने पर किसी नायिका की कमर पतली तथा उरोज और नितंब स्थूल हो गये हों।

वनवन घरोघर तरवर सरवर, पुरुष नारि नासकापथ।
वसंत जनम री देण वधाई, रमै वास चढ़ि पवन रथ॥

वसन्त के जन्म होने की वधाई देने के लिये सुगन्ध रूपी वधाईदार पवन के रथ पर चढ़कर वन-वन में, नगर-नगर में, घर-घर में, तरु-तरु में, सरोवर-सरोवर में और समस्त नर-नारियों के नासिकापथ में विचरण कर रहा है।

अति अम्ब मौर तोरण अजु अंबुज, कळी सुमंगळ कळस कर।
वन्नरमाळ वँधांणी वल्ली, तरवर एक बिये तर॥

घनी आम्रमंजरी तो मानो तोरण है और जो कमल की कलियां हैं वे ही मानो मंगल कलश है और एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर लिपटी हुई लताएं मानो वंदनवार बांधी गई है।

आयो इळ वसंत वधावण आई, पोयण-पत्र जळ पण पर।
आणँद वणे काच में अंगण, भामण मोत्यां थाळ भर॥

पृथ्वी पर वसंत आया है। नलिनी के पत्र पर जलकण इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं जैसे काच के बने आंगन में आनंदित सुंदरियां मोतियों से थाल भर वधाने आई हों।

सबळ जळ सुभिन्न सुगंध भेट सजि, डिगमिग पांव वाव क्रोध डर।
हल्यौ मलयाचळ हूंत हिमालय, कामदूत हर प्रसन्न कर॥

जल से भीगा होकर सबल हुआ, रुद्र के डर से डगमगाते हुए पैरों वाला, सुगन्ध की भेंट सजाकर महादेव को प्रसन्न करने के लिये कामदेव का दूत शीतल-मंद-सुगंध वायु मलयाचल से हिमालय की ओर चला।

तीसरे प्रकार का प्रकृति-वर्णन वह है जहां प्रकृति धार्मिक रूप में हमारे सामने आती है। इसमें प्रकृति द्वारा उपदेश देनेवाली वस्तुओं का सहारा लिया जाता है। महाकवि नरहरदासजी बारहठ ने अपने प्रसिद्ध काव्य "अवतार चरित्र" में जहां जहां आश्रमों का वर्णन किया है वहां इसी प्रकार का प्रकृति-चित्रण मुख्य है। जैसे—

विविध सिंह मृग व्याहरत, बसत विचित्र विहंग।
मत्त पुंज गुंजत मधुप, जहँ निर्झरनि तरंग॥
तरुन प्रफुल्लित फलित तरु, पत्र हरित नित पाइ।
सीतल मंद सुगंध सुख, सेवत वात सुभाइ॥

अंतिम प्रकार से प्रकृति का चित्रण उस प्रकार से किया जाता है जहां प्रकृति चित्रपट के रूप में हमारे सामने रखी जाती है। इसके उदाहरण भी "अवतार-चरित्र" के कृष्णावतार अध्याय में वहुत मिलते हैं। जैसे—

फूले सरनि सरोरुह सोहत, मिलि मधुमत्त मधुप मन मोहत।
अति सुख भास विहंगम अन अन, तांडव मत्त मयूर चित्रतन।

स्व० कविवर फतहकरणजी उज्ज्वल मेवाड़–निवासी रचित "पत्र-प्रभाकर" में कि जिसमें मेवाड़ आदि का वर्णन किया गया है, इसी प्रकार का प्रकृति-वर्णन विशेषतः मिलता है।

फुटकर कविताएं भी अनेकों ऐसी मिलती हैं जिनमें प्राकृतिक दृश्यों के मनोमुग्धकारी एवं सजीव चित्र बड़ी सुन्दरता से अंकित हैं–जिनमें से एक-न-एक दोहा प्रत्येक चारण-साहित्य-प्रेमी की जिह्वा पर आज भी विद्यमान है। उदाहरणार्थ—

लूंवां झड़ नदियां लहर, बक-पंगत भर बाथ।
मोरां सोर ममोलियां, सावण लायो साथ॥
कोयल करै टहूकड़ा, पपिया करै पुकार।
घन धुर अंबर धुंमडियो, धर झर मेहां धार॥

वागां वागां वावडियां, फुलवाड़ां चहूं फेर।
कोयल करै टहूकड़ा, अइ हो धर आमेर॥
काळा वादळ वरसिया, मोर हुआ महमंत।
सहरां सहरां संचरी, वादूं वाद खिवंत॥

अंत में हम निःसंकोच कह सकते हैं कि राजस्थानी कवि भी प्रकृति-चित्रणकला में अन्य कवियों से किसी अंश में कम नहीं रहे हैं। हिन्दी के अन्य कवियों ने तो कई स्थानों पर प्रकृति-चित्रण करते समय अनेक भूलें भी की हैं। जैसे, किसी ने कहीं तो केवल वृक्षों के नाम गिना दिये हैं, किसी ने केवल वाह्य पक्ष को ही अपनाया है और जहां आंतरिक पक्ष चित्रण करने का अवसर आया भी है वहां उसे ठुकरा दिया है। उन्होंने सब प्रकार के प्रकृति-चित्रण की ओर ध्यान दिया है और जैसा अवसर हाथ लगा उसे कभी कोरा नहीं जाने दिया। अतः यदि हम राजस्थानी कवियों के ग्रन्थों को प्रकृति-चित्रणकला का अमूल्य भंडार कहें तो कोई

(शेष पृष्ठ ३ पर)

मेवाड़ी चारण बंधुओं से

—o—

"बिन आदर बरतीह, रही घणा दिन राज रै।
(अब) धणियां सूं धरतीह, जाती करै जुहारड़ा॥"

बंधुओ! पीछे तो जँचे सो करना किन्तु एक बार इस नम्र-निवेदन को ध्यान पूर्वक पढ़ लेने की कृपा तो अवश्य करना।

सभी ओर सब जातियाँ उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचने का प्रयत्न कर रही हैं और "जिन खोजा तिन पाइया" के अनुसार वे सफल भी हो रही हैं। इसी हेतु से चारण जाति ने भी "अखिल भारतीय चारण-सम्मेलन" की स्थापना की और प्रायः सब प्रांतों के सजातीयों ने उसे अपना उद्धारक समझा एवं उसके आदेशानुसार कुछ २ कार्य कर सभ्य संसार के सम्मुख इस भूली-भुलाई हुई जाति को पुनः किंचित् प्रकाश में ला दिया। किन्तु हम कतिपय क्षुद्राशय पुरुषों के वशीभूत हो सम्मेलन से उदासीन और विरुद्ध भी रहे हैं। सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री एवं दश-पांच मेवाड़ के सरदार सम्मेलन में शरीक होते रहे हैं उन्होंने यथाशक्ति कोशिश की कि मेवाड़ी बंधु भी सब जातिभाइयों के साथ सम्मेलन में सम्मिलित होकर लाभ उठावें। लेकिन उनका सत्य-संदेश हँसी में उड़ा दिया गया एवं आज भी यही दशा है। वन में रोने से तो किसी पथिक का सहानुभूति से उसे सुनना संभव है किन्तु आपके हित की बात आप ध्यान से सुन कर उस पर चलें यह असंभव-सा हो रहा है। हा दुर्दैव! ठीक भी तो है—विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।

आपने विद्या से तो पहिले ही दुश्मनी कर ली, लक्ष्मी को कलालों के हवाले की, स्वाभिमान और जातिगौरव का नाम ही भूल गये और कितनी ही कुप्रथाओं के दास हो गये जिनका उल्लेख "चारण" के सम्पादक महोदय ने अपने लेख "हमारी मौजूदा हालत" में किया है। आपकी इस हालत में अब आपके जीते रहने का ज़रिया भी टूटता हुआ नज़र आता है—आपके पुरखों की क़ायम की हुई जायदाद की वे सदाव्रतें भी टूटती हुई दीखती हैं जिन पर अब तक आप ज़िंदगी के दिन काटते आ रहे हो।

आप कहते हो, आपस में शादी-ग़मी के मौक़ों पर मिलते हो तब बातें करते हो—इन गांवों पर हमारा इस प्रकार हक़ है, इन पर हमारा इतने सौ वर्ष का निरन्तर चला आता हुआ क़ब्ज़ा है, राज्य हम पर ज़ुल्म कर रहा है, इतनी पुरानी सनदें हमारे पास कहां से आवें, आदि आदि। परन्तु ये बातें आपने कभी इकट्ठे होकर श्रीमान् श्री जी हुज़ूर की सेवा में मालूम भी कराई हैं? एक दफ़ा किसी भले आदमी की कोशिश से इकट्ठे होकर दश-पांच आदमियों के मेवाड़-चारण-सभा के डेप्युटेशन के रूप में मुसाहिब आला साहिब के पास जाने और उन्हें अपनी स्थिति का परिचय कराने से ही कुछ आशाप्रद वातावरण हो गया था। उसके बाद उस संबंध में आपमें से

किसी ने क्या कुछ किया है? क्या फिर एक भी दफ़ा उसी तरह या व्यक्तिगत रूप से जा कर याददिहानी के लिये फिर किसी ने आपका दुखड़ा रोया है? किन्तु और कोई क्यों रोवे? जिनके गांव ज़ब्त हो गये हैं या जिनके गांवों के लिये कार्रवाई शुरू है उन लोगों को भी इस तरह कोशिश करने की नहीं सूझती कि जिससे उनका लाभ हो जाय—उन पर होनेवाला जुल्म मिट जाय, तो फिर और किसको दोष दिया जाय? क्या लोग आपको डराते हैं कि इस तरह कोशिश करने से राज्य ख़फ़ा हो जायगा? प्रथम तो राज्य इस तरह से कभी ख़फ़ा नहीं हुआ करता क्योंकि वह जानता है कि दुखी-दर्दी और किसके पास जावें। और कदाचित् लोभ या अहंकारवश राज्य आपकी इस प्रकार की शांत और उचित कार्यवाही से भी नाराज़ होता है तो ऐसे राज्य से आपको फिर क्या आशा हो सकती है जिसके कारण आप डरें। नाराज़ होने से जिस भय की आपको आशंका हो सकती है वह तो आपके शिर पर छा ही रहा है।

किन्तु इतने गहरे उतरा ही क्यों जाय? ये सब बातें तो तब सोचने की थीं जब मेवाड़ पर कोई निर्दय जुल्मी राजा राज्य करता होता। आपके-हमारे सौभाग्य से मेवाड़ के सिंहासन पर जो विराजमान हैं उनकी सरलहृदयता सर्व-श्रुत है और सुना है उनके पवित्र हृदय में है दया का स्रोत। वे नहीं चाहते कि किसी पर जुल्म हो। ऐसे दयालु मालिक को पाकर भी आप दुःख भोगते हो तो इसका दोष किस को है? आपकी जीविकायें जावें और आप इतना भी न कर सको कि सब अपने मालिक की सेवा में पहुँचकर उन्हें अपनी दुःखगाथा सुनाओ, तो फिर आपके लिये कोई अच्छी उम्मीद नहीं हो सकती।

ज़मीन के उपभोग और रक्षा के लिये, याद है, स्व० महाकवि ठाकुर सूर्य्यमल्लजी मिश्रण क्या कह गये हैं—

घोड़ां घर ढालां पटळ,
भालां थंभ बणाय।
जे ठाकर भोगै जमी,
और किसो अपणाय॥

भालों के खंभों और ढालों की छत से घोड़ों पर ही घर बनाकर जो शूरवीर पृथ्वी का उपभोग करते हैं उनसे उनकी ज़मीन कौन ले सकता है?

पहल मिळे धण पूछियौ,
किण कीधा किण हत्थ।
बीजड़ साहे बोलियौ,
इण डाकण भू अत्थ॥

प्रथम मिलन में पत्नी ने अपने हृदयेश से पूछा कि हाथ में ये आँटण (खुरदरापन) किस कारण से है? पति ने तलवार उठाकर कहा कि भूमि के लिये इस डाकिनी ने ये आँटण किये हैं।

खाटी कुळ री खोवणा,
नेपै घर घर नींद।
रसा कँवारी रावतां!
वरती को ही वींद॥

हे कुलोपार्जित भूमि के खोनेवालो! तुम्हारे यहाँ तो आजकल घर २ आलस्य और प्रमाद ही तरक्की पर है। बहादुरो! यह रसा तो कुमारिका है जिसके दूल्हे बनकर उपभोग तो विरलों ने ही किया है।

परन्तु बन्धुओ! आपको तो इस समय इस तरह घोड़ों पर घर करने की भी तो ज़रूरत नहीं है और न अपना यह तरीक़ा ही है और नहीं है ज़रूरत अपने परम्परागत शस्त्र "धरणे" को काम में लाने की। आपको तो अभी इतनी-सी ज़रूरत है कि जैसे सन्तान अपने मातापिता से अपनी इच्छापूर्ति के लिये अड़ जाता है वैसे ही अपने मातापिता-स्वरूप दयालु स्वामी की सेवा में पहुँचकर अड़ जाओ और तब तक "आड़ा" करते रहो जब तक आपका दुःख दूर न हो। मुझे तो आशा है इस तरह आपकी प्रथम प्रार्थना से ही आपकी दयनीय दशा पर आपके महान् स्वामी का हृदय द्रवित हो जायगा और आपका सब संकट दूर हो जायगा। आप लोग किसी के भुलावे में मत आओ और न किसी के डराये डरो। भूपालसिंहजी जैसे स्वामी सब समय कहां मिलते हैं? सब मिलकर उनकी शरण में जाओ तो सही, वे आपको अवश्य अभयदान देकर अपने "शरणायां साधार" विरुद की रक्षा करेंगे।

इतना तो जाति के छोटे-बड़े सबसे निवेदन। अब दो शब्द उनसे जो मेवाड़ी चारण जाति में सपूत माने जाते हैं और कुछ हैसियतवाले और समझदार समझे जाते हैं। इनमें मुख्यतया कविराजा सा०, बारहठजी सा० प्रभृति उदयपुर की हवेलियोंवाले और इनमें भी दधिवाड़िया बंधुद्रय ठा० करनीदानजी, खेमराजजी; ठा० नाथूसिंहजी महियारिया और बाहिर गांवों के ठा० केसरीसिंहजी बारहठ, सोन्याणा; ठा० किशनसिंहजी आशिया, मेंगटिया; ठा० चंडीदानजी कविया, दावा; ठा० बखतावरसिंहजी गाडण, मीमखंड; ठा० पृथ्वीराजजी आशिया; पसूंद; ठा० खूमाणसिंहजी बारहठ, बरवाड़ा; ठा० कालूसिंहजी, जसकर्णजी खड़िया, जैतपुरा; ठा० अंबादानजी सिंढायच, मंढा; ठा० रामलालजी सौदा, बड़ला और ऐसे ही दूसरे सब सज्जन जो इनकी श्रेणी में आते हों उनसे निवेदन है कि आप लोगों ने सारी उम्र अपने घर के लिये परिश्रम करने में बिताई। कभी कुछ जातिहित का कार्य भी किया होगा तो धन्यवाद। परन्तु आप जानते हैं अपने यहां कहावत है—"जीव जाज्यो पण जीवाई मत जाज्यो।" आज जाति की वह "जीवाई"—जीविका जा रही है। आप जैसे सपूतों के बैठे हुए उसके लिये कुछ भी उपाय नहीं हो रहा है इसकी क्या आपको लज्जा नहीं है? क्या आपको नहीं मालूम कि डूंगरपुर-बांसवाड़े के चारणों पर जब ऐसी ही आपत्ति आई थी तब स्व०महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदानजी सा० आशिया (जोधपुर) आदि ने उनसे हो सकी उतनी मदद की थी और उनके उस उद्योग में अपने यहां से भी क़रीब चार सहस्र रुपये उन्हें दिये गये थे। जिनके हृदय में जाति के दुःख का दर्द होता है वे इस प्रकार दूसरे राज्य के राजा के पास जाकर भी कोशिश करते हैं और दूसरे राज्य के चारणों से चंदा भी लाते हैं। किन्तु आज न तो वे कविराजा हैं और न उनके साहसी साथी—ठा० शंकरदानजी आढा व ठा० मुरारिदानजी बारहठ! आज काम आपसे है। आपको तो उनके समान किसी दूसरे राज्य के चारणों के लिये किसी दूसरे राजा से कुछ नहीं कहना है। आपको तो अपने लिये, अपने ही मालिक से अपनी कष्टकथा निवेदन कर देना है। क्या आप लोगों से यह भी नहीं होता? क्या आप लोग भी किसी कल्पना से भयभीत हो रहे हो? आश्चर्य!! या इतने स्वार्थांध हो रहे हे

कि अपने २ घरों का कुछ काम कुछ दिनों या महीनों के लिये बिगड़ने के ख़याल से जाति भर की होनेवाली महान् क्षति को आप देख ही नहीं सकते? हा दैव!!

महरबानो! जरा सोचो। आप लोगों के मिलकर थोड़ा उद्योग करने से जाति का भला हो जाने की संभावना है। अतः काल्पनिक डर को दूरकर और कुछ समय के लिये गृहकार्य का नुकसान बर्दाश्त कर आप मुखिया लोग ही जो मेवाड़-चारण-सभा के प्रतिनिधि कहे जा सकते हो, आगे आओ और मिलकर श्री मालिकों की सेवा में अपनी दुःखगाथा पहुँचाओ। समय, अवसर निकल जाने पर केवल पश्चात्ताप ही शेष रह जायगा और आप लोगों के शिर पर जाति के इस संकटकाल में भी स्वार्थ या प्रमादवश कुछ भी उद्योग न करने का, क्षमा करें, अमिट कलंक का टीका लग जायगा। अतः दीर्घसूत्रता में कालक्षेप मत कीजिये और जगदम्बा का नाम लेकर आगे बढ़िये।

अन्त में, मैं, उदयपुर-निवासी सजातीय तीनों मारवाड़ी महानुभाव—उज्वल बन्धुद्वय ठा०विजय-कर्णजी, शुभकर्णजी एवं ठा०जसकर्णजी रत्नू से सविनय प्रार्थना करता हूं कि वे भी उनसे हो सके उतना इस कार्य में तन-मन से सहयोग देने की कृपा करें। यह काम किसी एक का नहीं है। जिस किसी को जाति से कुछ भी प्रेम है वह इस सत्कार्य में सहयोग देकर यश एवं पुण्य का भागी हो सकता है। जय जगदम्ब! मेवाड़ेश्वर की जय!

विनीत

आप में से ही एक

हा! आईदानजी!!

(रचयिता—श्री बदरीदानजी कविया (बासनी), वकील, चीफ़कोर्ट, जोधपुर)

दोहा

हा! अनरथ मोटो हुओ, जिको सह्यो नह जाय।
क्यूं 'आदल' ने कोसियो, हाय! विधाता हाय!! ॥ १ ॥
कमल-फूल कुमलाय गो, खिलतों ही पहली खास।
'आदल' रो मरणो सुणे, हुय गा सरब हतास ॥ २ ॥
जैता री गत जोयने, होय रह्या हैरान।
क्यूं थे बदलो काढियो, दिन इण आईदान! ॥ ३ ॥
हुआ कुटुंबी हैं हमें, साराइ मृतक समान।
मरने क्यूँ दीधो महा, दुःख ओ आईदान! ॥ ४ ॥
जातिहितैषी हो जबर, हिंमतवर हुसियार।
बन चारण किम बीसरे, (थने) दिन-निस आईदान! ॥ ५ ॥
इसी मौत नह व्ही अठे, इण बरसों में और।
घबराया सुणने घणा, जिण रो व्हें की जोर! ॥ ६ ॥

चारण-वाणी

---o---

(१) हरिभक्त ओपाजी आढा के गीत

(गताङ्क से आगे)

९

क्यूं पड़पंच करै नर कूड़ा, बिलकुल दिल में धार विवेक।
दाता जो बाधी लिख दीनो, आधी लिखणहार नहिं एक ॥ १ ॥
पर आसा तज रे तज प्राणी, परमेसर भज रे भरपूर।
सुख लिखियौ दुख नाँह सांपजै, दुख लिखियौ सुख होसी दूर ॥ २ ॥
काला जीव लोभ रै कारण, खाली मती जमारौ खोय।
करता जो लिखिया कूंकू रा, काजळ तणा करै नहँ कोय ॥ ३ ॥
भज रे तरणतारण ने विषया! दूजां री काज़ी मत देख।
क्रोड़ प्रकार टळै नहँ किण सूं, लिखिया जिके विधाता लेख ॥ ४ ॥

१०

नहचळ अत रहण कना ना रे ना, आगम काळनदी आ रे आ।
खाट म दाट कहो क खा रे खा, गिर-जळ जिम दिहड़ा गा रे गा ॥ १ ॥
भरै खजाना धरती भेदे, चोर-कटक लेसी घर छेदे।
बांट बांट कहियो इम वेदे, दीह भजाणा ताळी दे दे ॥ २ ॥
लोभी! मनख जमारौ लाधौ, बे नजरयां पाटौ किम वाधौ।
ऊमर तणौ भरोसौ आधौ, खोळा रौ धन खाधौ खाधौ ॥ ३ ॥
बिसन समर लौ मीठी बाणी, बावर लौ धन देह बिराणी।
"ओपा" या ऊमर यूं जाणी, परवत हूंत बिछूटा पाणी ॥ ४ ॥

११

माटी रौ ठाम जोत तिण मांहे, घण तिय फेरै घणै घरै।
घुड़लौ कितीक वार घूमसी, फोड़णहारा लार फरै ॥ १ ॥

गोरी मळे गीत सह गावै, जतन रखावै जुवा जुवा।
फेरूं हवै किता घर फिरसी, हेरू लोचपलोच हुवा ॥ २ ॥
अत जतने माथे ऊपाड़े, रंभा दोळी थकी रहै।
आस किसूं राखीजै ईं री; वैरी छोरा पास वहै ॥ ३ ॥
रतन तणी विध जतन राखतां, खड़ग तणी घा खमियौ।
पोहर तणौ हतो पामणौ, गावतड़ांइ ज गमियौ ॥ ४ ॥
मटियौ तेज जोत मुरझाणी, पड़ियो कुंभ पियारौ।
अध खण मांहे हुवौ अचींतो, अजवाळै अँधियारौ ॥ ५ ॥
यो घट घुड़लौ जाण "ओपला!" गोविंद काय न गावै।
खळ जमराण काढियै खांडै, आतुर कीधां आवै ॥ ६ ॥
मोटो प्रसण डांग लै मोटी, काळ घणा नर कूटै।
काचो कुंभ मनख री काया, फिरतां इ गिरतां फूटै ॥ ७ ॥



(२) महाकवि ठा० सूर्य्यमल्लजी मिश्रण (बूँदी) रचित

वीरसतसई

(अपूर्ण)

(गताङ्क से आगे)

थाळ वजंतां हे सखी, दीठो नैण फुलाय।
बाजां रै सिर चेतणौ, भ्रूणां कवण सिखाय ॥ ५१ ॥

नवजात शिशु की ओर संकेत करके माता अपनी सखि से कहती है कि प्रसूतिकाल के समय बजते हुए थाल को इसने आंखें फाड़ २ कर देखा था। सखि! बाजा सुनते ही उत्तेजित हो जाना इन बच्चों को गर्भ में ही न जाने कौन सिखा देता है?

धण आखै जागो धणी, हूंकळ कळळ हजार।
विण नूंता रा पाहुणा, मिळण बुलावै बार ॥ ५२ ॥

पत्नि कहती है कि पतिदेव! जागिये। हजारों लोगों का घोर युद्धरव हो रहा है और वे अनिमंत्रित अतिथि आपको मिलने के लिये बाहर बुला रहे हैं।

देख सखी होळी रमै, फौजां में धव एक।
सागर मंदर सारखौ, डोहै अनड़ अनेक ॥ ५३ ॥

सखि! देख, शत्रुसेना में एकाकी मेरे पति कैसी होली खेल रहे हैं। ऐसा मालूम हो रहा है, अनेक अनम्रों को वे, समुद्र में मंदराचल के समान, विलोड़ित कर रहे हैं।

देख सहेली मो धणी, अजकै वाग उठाय।
मदप्यालां जिम एकलौ, फौजां पीवत जाय ॥ ५४ ॥

हे सखी! देख, मेरे उद्धत पति घोड़े की वाग उठाकर अकेले ही शत्रुसेनाओं का ऐसे शोषण कर रहे हैं जैसे कोई मद्यपी मद्य के प्याले खाली करता जा रहा है।

पग पाछा छाती धड़क, काळौ पीळौ दीह।
नैण मिचै साम्हौ सुणे, कवण हकालै सीह ॥ ५५ ॥

जिस सिंह को सामने सुनने से ही दिन लाल-पीला नज़र आने लगता है, आंखें मिच जाती हैं, छाती धड़कने लगती है और पैर पीछे पड़ते हैं, उसे ललकारने का साहस तो भला कौन कर सकता है?

धुर सूती मरियौ धवळ, सकट हचक्का खाय।
तिण रौ वाळौ वाछड़ौ, तंडै खंध लगाय ॥ ५६ ॥

वलवान् वैल के मर जाने से गाड़ा हिचके खा रही है और उसकी धुरी जमीन पर पड़ गई। परन्तु धन्यवाद है प्रभु का कि उस वलवान् का वत्स धुरी के कंधा लगाकर घोष करने लग गया है।

तुंडां गज फेटां तुरी, डाढां भड़ औझाड़।
एकण कौले घूंदिया, फौजां पाथर पाड़ ॥ ५७ ॥

शूर शूकर ने फ़ौजों में अकेले ही अपनी तुंड से हाथियों के, फेटों से घोड़ों के और डाढ़ों की मार से वहादुरों के विछौने-से कर दिये और उन्हें रौंद डाला।

वंबी अंदर पौढियौ, काळौ दवकै काय।
पूंगी ऊपर पाधरौ, आवै भोग उठाय ॥ ५८ ॥

विल के अन्दर सोया हुआ काला सांप पूंगी की आवाज़ सुनकर भी क्या दवका हुआ रह सकता है? वह तो फन उठाकर सीधा उस पर आता है।

कंकाणी चंपै चरण, गीधाणी सिर गाह।
मो विण सूतो सेज री, रीत न छंडै नाह ॥७१॥

कंकाणी उनके पैर दबा रही है, गिद्धिनी शिर खुजला रही है—देख तो सही, रणशय्या पर मेरे विना सो रहे हैं तो भी नाथ हमेशा का नियम नहीं छोड़ रहे हैं।

नीला वळिहारी थई, हण टापां खळ-झुंड।
पहली पड़ियौ टूक व्हे, खड़ै धणी रै रुंड ॥ ७२ ॥

हे अश्व! तुझ पर निछावर हूं। तू शत्रुसमुदाय को अपनी टापों से हननकर तेरे स्वामी के रुण्ड के खड़े रहते खुद टुकड़े २ होकर पहिले ही गिर पड़ा।

नीला! मो पहली पड़े, कीध उतावळ काय।
वाल्हा कवलां पाळियौ, पड़तौ मूझ पुगाय ॥ ७३ ॥

हे अश्व! मैंने तुझे बड़े प्रेम के ग्रास खिला २ कर पाला था। मुझे पहुँचाकर तो गिरता। तैंने मुझसे पहिले ही काम आकर इतनी जल्दी क्यों की?

हूं पाछै आगै हुवे, आणी नाह घरेह।
जे वाल्ही धण जीवहूं, आगै मूझ करेह ॥ ७४ ॥

विवाह-समय स्वामी मुझे पीछे रख और स्वयं आगे होकर घर लाये थे परन्तु यदि पति-निधन के बाद तक मैं जीवित रही तो उन्हें सती होने के समय मुझे आगे करना पड़ेगा।

कंत घरे किम आविया, तेगां रौ घण त्रास।
लहँगै मूझ लुकीजियै, बैरी रौ न बिसास ॥ ७५ ॥

वीरांगना कायर पति से कहती है कि पतिदेव! घर कैसे पधार आये? क्या तलवारों का बहुत डर लगा? ठीक है, तो आइये, मेरे लहँगे में छिप जाइये। शत्रु का भला क्या भरोसा? घर पर भी आ जाय!

—क्रमशः



(३) मन को उपदेश

(कर्त्ता—स्व० भक्त-कवयित्री श्री सम्मानबाई कविया, सं० १८९०–१९४५ वि०)

सवैया

मन ! नीकी सिखावन देत हौं मैं, गुनचोर है तू जो गनै न गनै।
कन ओस को-सो है भरोसो कहा, तन को या बिलूला तनै न तनै।
परदेह के काज सरै न कछु, जननी नरदेह जनै न जनै।
भजु साँस-उसाँस सियावर कौं, फिरि साँस को ऐबो बनै न बनै।

---

(४) इन्द्र का आह्वान

गीत

(कवि हमीरजी रतनू)

घणा बणावौ बादळां रूप चौवड़ी रचावौ घटा।
　　छलावौ तळावां, नदी हलावौ अछेह ॥
पलावौ पवंन हमै प्रघळा करावौ पाणी।
　　महाराजा इन्द्र आवौ बरस्सावौ मेह ॥ १ ॥
विराजै अंबरां गाज सेहरां बळक्कै बीजां।
　　खळक्कै ताल रा सीस पालरां रा खाळ ॥
अन्नचरां जळचरां थळच्चरां थारी आस।
　　सुरांपती कीजै धरा ऊपरै सुगाळ ॥ २ ॥
पखाळीजै गिरां गात्र हमाळीजै जळांपूर।
　　वाळीजै वखत्त भली दिखाळीजै वार ॥
विमाळीजै नहीं ताळ निकाळीजै काळ वेगा।
　　सँभाळीजै पृथीनाथ ! पाळीजै संसार ॥ ३ ॥
संभरमी हुए वात आदमी वरत्ते सुखी।
　　कमी रहै नहीं, मिटै हुकम्मी कळेश ॥

धरम्मी गमीजै तृखा धरे अमी जसी धार।
विसम्मी न दीसै जमी, धरै नीला वेस ॥ ४ ॥
पस्सरौ लगस्सां पूर परग्घरौ नूर पृथी।
नीर रौ दपट्टे भरौ जित्त रौ नित्राण ॥
राज रौ आसरौ खरौ तिके रौ विरद राखौ।
मग्घवा मेघ रौ करौ सिद्ध रौ मँडाण ॥ ५ ॥
कुदरत्ती जत्ती विहूं पाखती भुरज्जां काढौ।
देवराजा करामती दौलती दातार ॥
वीनती सांभळौ हमै जती सती जोवै वाट।
आवीजै धरत्तीपती करे इळक्कार ॥ ६ ॥
सामठा दादुरां सोर चात्रगां बकोर साद।
जाझा मोर वैठा वोलै गिरिंदा झिंगार ॥
वादळां तणा उलोर उत्तराधी कोर वधै।
वेघूंवे सजोर घटा मंडै घणं घोर ॥ ७ ॥
सँजोगणी पदम्मणी कामणी सिंगार सजै।
सुहामणी लिये घणी दामणी सिलाव ॥
धावणी खलक्क तणी भुज्जावणी इसी भांत।
आपणी राखणी रीत वडा धणी आव ॥ ८ ॥
वस्त्र चैन पाये सको सुवाये वधाये वांटै।
करस्सा निपाये धान भराये कोठार ॥
मोकळी वियाये गाये मही रा मँडाये माट।
किताईक सट्ट जाये, थाये जै जै कार ॥ ९ ॥
वरत्तै धरम्मचारौ प्रजा रौ करम्म वळै।
कृपा रौ आसरौ थारौ महत्ता कल्याण ॥
करारौ निवारौ घाट, सधारौ "हमीर" कहै।
पधारौ वसन्धा तणौ वधारौ प्रमाण ॥ १० ॥

(५) चारणों की प्राचीन दशा का दिग्दर्शन

—o—

(रचयिता-स्व० कविवर ठाकुर श्री किशोरसिंहजी सा० सौदा बारहठ)

पद

त्रिलिङ्ग पादात्मक भोजक छन्द

(मात्रा २२; यति १२+६+४ उल्लाला २३ मात्रा)

नीपण कवि 'पागल' सुरसत्ती सिर नावै।
　　　　गढव्यां री लुपियोड़ी कीरत-कथ गावै ॥
पूरबला पातां री पांगी रा खसरा।
　　　　रूड़ा व्रत भोजक में भाखूं मधुरस रा ॥
बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे।
　　　　जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ १ ॥

निपुण (चारण) कवि 'पागल' देवी सरस्वती को नमस्कार करके गढ़पतियों (चारणों) की लुप्तप्राय कीर्तिकथा का गान करता है। वह प्राचीन चारणों की तारीफ़ का खसरा मीठे रस वाले सुन्दर भोजक छंद में खींचता है। भारत के हितचिंतक चारणों की बलिहारी, जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

भारत रा उद्धारण कारण सारण छा।
　　　　डारण मदवहतोड़ा वारण चारण छा ॥
कमळां नूं सतियां रा श्रीफळ सम कहता।
　　　　गहली री जेघड़ ज्यूं जीवण निज गहता ॥
बळिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे।
　　　　जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ २ ॥

वे भारत के उद्धारकार्यों को करनेवाले थे, वे निःशंक चारण, मद बहते हुए हाथियों के समान थे, वे अपने शिरों को सतियों के नारियल के समान कहते थे और अपने जीवन को पगली के सिर पर रक्खे हुए मिट्टी के घड़ों के समान समझते थे—उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

शैशव री छोळां में असमर री चोळां।
जोवन में घांसाहरवाळी घमचोळां॥
आंघोळण वाणासां हिवड़ा ऊससता।
रीठां नूं प्रसणां सिर कसतां रस लसता॥
वळिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे।
जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ ३॥

जिनके वचपन में युद्ध का ही हँसी-मज़ाक रहा करता था और यौवन में उसी युद्ध ही का खेल था, जिनके हृदय असिधारा-तीर्थ में स्नान करने को फूला करते थे और जो शत्रुओं पर प्रहार करते हुए आनन्द का अनुभव करते थे—उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की वलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की वलैयां।

धूंकळ री हूंकळ सुण खाथा रण खड़ता।
रुंडां सूं लड़ता अर मुंडां हड़हड़ता॥
मैंगळ मदमाटां पर बीजड़ यूं वहती।
ज्यूं मेचक जळहर में चपळा लहलहंती॥
वळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे।
जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ ४॥

युद्ध का नाद सुनकर उसमें शामिल होने को जो आतुर रहते थे, जो अपने धड़ों से लड़ते और मुण्डों से युद्ध में अट्टहास किया करते थे, जिनकी तलवार मस्त हाथियों पर चलती हुई ऐसी प्रतीत होती थी जैसे श्याम जलधर में बिजली चमकती हो—उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की वलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की वलैयां।

जमडाढां हिंदवां रा अरियां उर जड़ता।
आर्य्यां रा राजस हित रवदां आहुड़ता॥
पीधा अरि-श्रोणित ज्यां पड़ियाळग पारी।
वां वेढीगारां पर जाऊं वळिहारी॥
वळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे।
जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ ५॥

जो हिन्दुओं के शत्रुओं की छातियों में कटारियां प्रविष्ट कर देते थे, आर्यों के राज्य के लिये जो शत्रुओं से भिड़ते रहते और जिनकी तलवारों ने तृप्त होकर अरि-शोणित का पान किया था—उन महाशूरवीरों की बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

त्रंबाटक राटक सुण असिनाटक रचता।
माढ़ रणराढ़ जमसाढ़ सा जचता॥
वीरारस मूरत री सूरत पर वारी।
सगत्यां रा छूनां पर जाऊं बळिहारी॥
बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे।
जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ ६॥

रणभेरियों का शब्द सुनकर जो असिनाटक रचा करते थे, जो रण के देव—पुरुषपुंगव यमराज के साढ़-से मालूम होते थे—उन मूर्तिमन्त वीररस की सूरतों पर मैं न्यौछावर, उन शक्ति के पुत्रों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों पर बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

रजकुळ री महळां नूं धी कर घर राखी।
लुपियोड़ा रजवाड़ा राख्या निज साखी॥
खागां सूं खेली रण फागां हद खारी।
भाणव भुरजाळां पर जाऊं बळिहारी॥
बळिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे।
जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ ७॥

जिन्होंने राजपूत रमणियों को पुत्रियों के समान अपने घरों में रक्खीं; जिन्होंने खोये हुए राज्यों को अपनी साक्षी मात्र से रख लिये, जिन्होंने युद्धभूमि में अति तीव्र तलवारों से फागें खेलीं—उन सुदृढ शूर चारणों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिंतक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

छत्रियां नूं मांहोमह लखता रण रचता।
दुकथी वण संधी कज दुहुं घां हित वहता॥

तिण "दूथी" "हेतव" अर "रैणव" पद धारी।
अवरी रा केहड़ पर जाऊं बळिहारी॥
बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे।
जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ ८॥

जब कभी क्षत्रियों को आपस ही में लड़ते देखते तो उनकी संधि के लिये जो वसीठी बनकर दोनों का हित-साधन करते और इसी लिये "दूथी," "हेतव" और "रैणव" कहलाते हैं—उन अवरी के वंशधरों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिंतक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

वाकां में वाणी ब्रहमाणी विलसंती।
वाखर सा आखर जुत पंती उचरंती॥
कायर उर बयणां रा कीधा छत कारी।
वीदग बरियामां पर जाऊं बळिहारी॥ ९॥
बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे।
जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ ४॥

अमृतोपम अक्षरों की पंक्तियों का उच्चारण करती हुई वाणी ब्रह्माणी का जिनके मुखों में विलास होता रहता था, जिन्होंने कायरों के हृदयों में अपने तीव्र वचनों से भयङ्कर घाव कर दिये—उन विदग्ध वीरों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

प्राणां रे सादस पिण कहता नहँ कूड़ी।
कविराजा कविता में रटता सच रूड़ी॥
श्री राघव जूजसठळ हरियँद मगचारी।
संतत सचबोलां पर जाऊं बळिहारी॥
बळिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे।
जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ १०॥

प्राणों की बाजी लगने पर भी जो कभी झूँठ नहीं कहते थे, जो कविराज अपने काव्यों में सदा सत्य वर्णन किया करते थे, जो श्री रामचन्द्र, युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्र के पदानुवर्ती

थे—उन सतत सत्यवक्ताओं पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिंतक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

सम्पादक सांप्रत जो निज भूकज सारे।
　　बहता छा चारण उण मारग तिण वारे॥
भारत पर आसत निज सासत सह वारी।
　　आर्याव्रत-भगतां पर जाऊं बळिहारी॥
बळिहारी भारत-हित-चिंतक चारणां रे।
　　जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ ११॥

वर्तमान समय में जो कार्य पत्र-सम्पादकगण अपनी मातृभूमि के लिये सर्वत्र करते हैं वही काम चारण पूर्वकाल में करते थे, भारतवर्ष पर उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था—उन आर्यावर्त के के भक्तों पर बलिहारी, उन भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

वैभव व्रव दीनां चा दाळद वीहंडिया।
　　क्रन हंदे काकणिये मुद भर पग मंडिया॥
"लख-कोटी वरसण" री पदवी जग पाई।
　　अज्जाचक अभिधा में ओठम अधिकाई॥
बळिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे।
　　जनु-भूमी-भगतां रा लीजै वारणा रे॥ १२॥

अतुलित दान दे २ कर जिन लोगों ने दीनजनों का दारिद्रय दूर कर दिया, जिन्होंने महादानी कर्ण के मार्ग पर प्रसन्न हो पैर रक्खे, जिन्होंने संसार में "लाखों-क्रोड़ों देनेवाले (लाखवरीस-क्रोडवरीस) की उपाधि (याचकों से) प्राप्त की, जिन्होंने अयाचकता में बड़ाई और गौरव माना—उन भारत-हित-चिंतक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

कुळ चारण कीरत अब कादा मँझ कळगी।
　　गीतां में गवती सो रिद्धी हा रुळगी॥
किरपा कर इसड़ी पिण ओजूं किनियाणी।

"पागल" निधि प्रामै जिम पूरब पुरखाणी ॥
बलिहारी भारत-हित-चिन्तक चारणां रे।
जनु-भूमि-भगतां रा लीजै वारणा रे ॥ १३ ॥

अब चारणकुल की कीर्ति कीचड़ में फँस गई है, उसकी जो रिद्धि गीतों में गाई जाती थी वह आज न मालूम कहां चली गई, अतः "पागल कवि" प्रार्थना करता है, हे किनियाणी –मा करनी! तू फिर ऐसी कुछ कृपा कर कि चारणजाति अपने पूर्वपुरुषों की उसी निधि को पुनः प्राप्त कर ले।

भारत-हित-चिन्तक चारणों की बलिहारी, उन जन्मभूमि के भक्तों की बलैयां।

[ऊपर की कविता रचयिता द्वारा प्रकाशित "पागल-प्रमोद" पुस्तिका से ली जाकर उसका भावार्थ लिखा गया है। ——सम्पादक]



(६) वेदना

(स्व०कविवर ठा०सा०श्री कृष्णसिंहजी सौदा बारहठ, शाहपुरा)

दोहा

घणी स्त्रियां रा घेर में; रचियोड़ा दिन रात।
राजा मदमाता रहै; प्रजा महा दुख पात ॥
कौडी नहँ खरचै कदै; पहु मेटण पर-पीर।
हाकम राजी करण हित; धन धूपटै सधीर ॥
वडो राज ले, भूप वण; पाळण में व्हे पूण।
फोगटपण लीधां फिरै; गरदभवाळी गूण ॥
की जाणै गुण री कथा; की जाणै जस-काम।
ओछी संगत उळझिया; निरलज भूप निकाम ॥
ओछी संगत आदरी; ओछा कामां आग।
कवि सूरा विद्वान रो; लागै तठै न थाग ॥
नाजर तो हाजर नवै; रहै दूर रजपूत।
रांडीचारां राज रो; सुधरै किण विध सूत ॥

छोटी ऊमर छोकरा; राजां तणी हजूर
रहण लगा तो किम रहै; सुकवि, सुभट, वुध, सूर ॥
विधवां जिम खूणै वसै; राजां री तज रीत।
ज्यां रो जस इण जगत में; फैलै किण विध फीत ॥
जळ सूं हड़क्या जीव जिम; किना तीर सूं काक।
राजा यूं डरता रहैं; वुध-कविलोकां वाक ॥

———०———

छप्पय

जेन केन रचि जाळ, धरा उदकी लेवण धर।
पुनि पुनि फंद पसाय, निलज फांसै नित नित नर ॥
वडकां धरम विचार, करे सांसण दत कीधी।
केती जस रै काज, दान कर धरणी दीधी ॥
सो, दीन जाण खोसै सरब, आप वणै जग ओगणों।
जम-जाळ बीच जीवण जतन, भायो रौरव भोगणों ॥

[उपर्युक्त पद्य क़रीव पैंतीस वर्ष पूर्व लिखी हुई उक्त स्वर्गीय कविवर की "कृपणोपदेश" नामक अप्रकाशित पुस्तक से लिये गये हैं। —सम्पादक]



चारण जाति की क़द्र पहिले क्यों थी ?

(ले०—ठाकुर श्री हेतुदानजी सा० उज्वल, एम्०ए०, एल्-एल्०बी०, ज्युडिशियल सुपरिन्टेन्डेन्ट, सोजत-मारवाड़; एवं उपाध्यक्ष-अ०भा०चारण-सम्मेलन)

वारहवीं शताव्दी से, जव से कि मुसलमानों के धावे हिंदुस्तान पर शुरू हुए और अंगरेज़ी राज्य अच्छी तरह से क़ायम होने तक इस देश में वड़ी अशान्ति रही थी। राजपूताना, गुजरात व काठियावाड़ में राजपूतों की कई रियासतें क़ायम हो चुकी थीं; किन्तु प्रत्येक राजा को युद्ध के लिये हर समय तैयार रहना पड़ता था। इन राजाओं की फौजों में लड़नेवाले राजपूत ही होते थे, इसलिये हर राजपूत को लड़ाई के लिये हर वक्त तैयार रहना पड़ता

था। राजपूतों के बादशाही व बाहर की दूसरी जातियों की फौजों से लड़ाइयों के अलावा आपस में भी कई झगड़े-फ़िसाद होते रहते थे। राजपूतों के लिये मरना व मारना एक साधारण बात थी। कई राजपूत, नौजवान उम्र में ही लड़ मरते थे। अतः उनके लिये यह कहावत हो गई थी कि—

"मरदां मरणों हक्क है,
मगर-पचीसी मांय।"

अर्थात् मर्द आदमी को पचीस साल की उम्र --भरजवानी में ही लड़ मरना ठीक है।

इस प्रकार लड़ मरनेवाले वीर राजपूतों को और तो कोई इच्छा नहीं होती थी, लेकिन इतना वे जरूर चाहते थे कि जिस वीरता के साथ वे मर मिटे हों, उसकी बात जगत में क़ायम रह जावे या कम से कम उनके घरवालों को व रिश्तेदारों को तो उनके मरने के हालात की पूरी ख़बर मिल जावे। इस काम का बीड़ा चारण जाति ने उठाया था और इस काम को उसने किस हद तक कर दिखाया, यह बात जग-जाहिर है।

इस काम को करने के लिये यह भी आवश्यकता थी कि चारण भी लड़ाई के समय लड़ाई के मैदान में राजपूतों के साथ मौजूद रहें। मगर इस बात की भी आवश्यकता थी कि वे चारण लड़ाई में मारे न जावें क्योंकि लड़ाई का हाल सुनानेवाले ही मार दिये जावें तो जो काम उनके सिपुर्द किया हुआ था वह असफल रहे। इसलिये राजपूत जाति ने चारणों को मौजूदा Red cross की तरह मान लिया था। और जिस राजपूत-पार्टी की हार होती थी उसके चारणों को, जीतनेवाले राजपूत भी उतने ही सम्मान से रखते थे; क्योंकि वे जानते थे कि अगर चारण को मार दिया तो शत्रुओं के घाव को सराहनेवाला भी कोई बाक़ी नहीं रहेगा और कभी उनकी हार होने पर उनके चारण भी भी मारे जायँगे और उनका नाम क़ायम रखने-वाला कोई भी नहीं रहेगा।

चारणों के इस महद् कार्य के विषय में नीचे लिखा दोहा प्रसिद्ध है—

मातपिता सह वीसरै, बन्धू वीसारेह।
सूरांपूरां वातड़ी, चारण चींतारेह॥

अब सोचा जा सकता है कि जिस चारण को वीर राजपूत अपना नाम संसार में क़ायम रखनेवाला मानते थे, वह उनको कितना प्यारा होगा! उसकी वे कितनी इज्जत होंगे!!

जब लड़ाई न भी होती थी तब भी चारणों को राजा लोग व राजपूत सरदार अपने पास ही रखते थे और उनसे अपने पूर्वजों की वीरता व अच्छे गुणों का हाल सुनते थे।

चारणों ने भी अपने इस काम के लिये ज़रिया कविता का सोचा और उसके लिये भाषा ख़ास कर डिंगल को पसंद किया, जो वीररस के लिये बहुत उचित है। वीरता का वर्णन जितना अच्छा और प्रभाव के साथ कविता से हो सकता है उतना साधारण तरीक़े से कहने पर कभी नहीं हो सकता, इसलिये चारणों को

कविता का धंधा भी अख्तियार करना पड़ा। कविता अलावा प्रभावशाली होने के मनोरंजक भी होती थी और जैसे लड़ाई में चारण, कविता से राजपूतों में वीररस भरते थे वैसे सुलह के ज़माने में कविता से उनका दिल वहलाव करते थे।

राजपूतों के लड़कों को वचपन से ही लड़ाई के लिये तैयारी करनी पड़ती थी और घोड़े चढ़ना व शस्त्र चलाना सीखना पड़ता था; और वे पढ़ना-लिखना नहीं सीख सकते थे इसलिये खुद पढ़ने-लिखने के वजाय चारणों से कविता व कहानियाँ सुन करके शिक्षा (Education) पाते थे। यह शिक्षा (Education) देने का काम बहुत पुराने समय में तो ब्राह्मण लोग किया करते थे मगर ब्राह्मणों के व राजपूतों के खानपान में फ़र्क होने से यह काम राजपूतों ने चारणों के हाथ में दे दिया था या चारणों ने अपने हाथ में ले लिया, जिनका खानपान-व्यवहार राजपूतों से विलकुल एक-सा था।

जव चारणों ने यह धंधा अख्तियार कर लिया तो उनकी जीविका के लिये भी कोई इंतज़ाम होना ज़रूरी था, इसलिये राजपूत राजा एवं सरदारों ने चारणों को आजीविका में कई गाँव दिये। राजपूतों की जागीरें तो वदलती रहती थीं, आज एक के है तो कल दूसरा छीन लेता था या राजा ही वदल देते थे, मगर चारणों को जो गाँव दिये जाते थे उनमें यह प्रतिज्ञा होती थी कि वे कभी वापिस नहीं लिये जावेंगे।

इन चारणों के गाँवों से राजपूत सरदारों को एक यह भी सुभीता था कि जब वे देखते कि दुश्मन ज़्यादा ताक़तवर है और उनके हारकर मरने की सम्भावना ज़्यादा है तो वे अपनी औरतों व वच्चों को चारणों के घरों में रखकर लड़ाई में चले जाते थे। अगर वे राजपूत लड़ाई में मारे जाते और वापिस न लौटते तो चारण उनके वच्चों का पालन-पोषण करते और लड़ाई के लिये शस्त्रादि चलाना सिखाकर होशियार कर देते थे। जो राजपूतों की स्त्रियाँ इस तरह चारणों के घरों में रहती थीं उनको चारण अपनी मा-वहिन के समान रखते थे। इतिहास में चारण-राजपूतों के सम्बन्ध में एक भी ऐसी मिसाल नहीं है कि जिसमें किसी चारण ने, इस प्रकार रक्खी हुई किसी राजपूत स्त्री के साथ मा-वहिन के सिवाय और तरह का वर्ताव किया हो। चारण इस तरह से रक्खे हुए राजपूतों के वाल-वच्चों को अपनी पवित्र थाती (Sacred trust) समझते थे और जहाँ तक वन पड़ता, उनके पालन-पोषण में कसर नहीं आने देते थे।

जोधपुर राज्य के स्थापित करनेवाले राव चूँडाजी भी इसी तरह कालाऊ ग्राम के एक चारण के घर में पले थे। जिसकी स्मृति दिलानेवाला यह सोरठा वहुत प्रसिद्ध है—

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

काव्य-कुंज



वाह दुबारा वाह !

(कवि श्री शंभूदानजी सा० आशिया, मेंगटिया-मेवाड़)

दोहा

घर ओढण नहँ गूदड़ी, फाकण नहँ फूलाह।
तो पण प्यालौ नहँ तजै, वाह दुबारा वाह॥

करज कलाळी रौ कढै, तिण सूं हुवै तबाह।
चोरी कर दारू चखै, वाह दुबारा वाह॥

पीतां ही सुख व्है प्रगट,-दुखद हिया रौ दाह।
स्वान देह चाटै सरव, वाह दुबारा वाह॥

प्याला दुय पीधां पछै, लाव लाव कह लाह।
वातां, पी अलवल बकै, वाह दुबारा वाह॥

घर में तिय सोचै वणी, आया कंत न आह !
पिय मग में पड़िया रहै, वाह दुबारा वाह॥

सोरठा

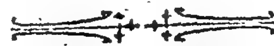
हुवै भवन धन-हाण, व्याधी कई लागै वपू।
अंग तणौ आपाण, गटकायां मद रै घटै॥

छानै ले ले छाक, वप रै क्यूं वांसै पड़या।
अब पीणौ पराक, त्यागौ काबू चित रखे॥

पोशीदा मद पैग, पी पी वार पधारवौ।
दुनिया आंख्यां देख, पीधोड़ौ जाणै परौ॥

ज़िन्दगानी सूं जाय, आसव थी अधकाळिया।
मेल्यो क्का इण मांय, पीणौ मद छोडौ परौ॥

हालत मद सूं होय, देखी वा दाखी दुरस।
करो रीस मत कोय, किणी एक पर नहँ कही॥



नौकरी के नुस्खे

(रचयिता—कविवर श्री " रसिक ")

मनहर

मान लो सलाह मेरी करनी है नौकरी तो,
　　अकड़ तुम्हारी अरे एक ओर धर दो।
ख़ातिर खुशामद तो आला अदना की करो,
　　रिश्वत खिलाओ खाओ खूब घर भर दो।
हाकिमों में होने की तुम्हारी होय इच्छा गर,
　　आला अफ्सरों की यार! ज़ेब गर्म कर दो।
रहना हो रईस पास " रसिक " तुम्हें तो एक,
　　अच्छी सी...लाके भेट उन्हें कर दो॥ १॥
मान लो सलाह मेरी करनी है नौकरी तो,
　　बचाकर वक्त थोड़ा यार सुबू-शाम ही।
रोज़-रोज़ जाकर के हाकिमों के पास ज़रा,
　　झुक-झुक किया करो ज़ोर से सलाम ही।
हाज़िर, हुज़ूर, बड़ा हुक्म है-ऐसे लफ्ज़,
　　हाथ जोड़ बोला करो पड़े जब काम ही।
बच्चों को खिलाया करो उनकी नज़र आगे-,
　　दे दे कर चुटकियां ले ले बापू नाम ही॥ २॥

पंजाब-केसरी

(स्व०कविवर ठाकुर जवानसिंहजी आशिया, मेंगटिया-मेवाड़)

सिक्ख महासिंह जू के पूत भौ सपूत ऐसो,
मन मज़बूत भुवि-भारत अभीत भौ।
धारत भौ धर्म दृढ मारत भौ म्लेच्छन कौं,
सारत भौ राजकाज सकल सुनीत भौ।
पंच-आबपती छत्रपति भौ लहौर पट्ट,
सेना त्रय लक्ख ठट्ट लेकै जगजीत भौ।
रंकता तैं राजा भो निवाजा भौ ग़रीबन को,
राजा रनजीत जैसो राजा रनजीत भौ॥

[इन महाराजा रणजीतसिंह की १००वीं निधन-तिथि गत आषाढ शुक्ला ११ (ता० २७ जून) को सारे भारत में मनाई गई थी। —सम्पादक]



(पृष्ठ २९ का शेष)

चूंडा नावै चीत,
काचर काळाऊ तणां।
भड़ थायो भैभीत,
मंडोवर रा माळियां॥ *

इस तरह चारणों के गाँव लड़ाई के समय में तटस्थ सीमा (Neutrality zones) का काम देते थे और चारणों के गाँवों को कोई भी राजपूत कभी नहीं लूटता था और न किसी तरह का दख़ल करता था।

इस तरह चारण जब लड़ाई में मारे जाने-वाले वीरों का संसार में नाम अमर करते थे और कुटुम्ब का पालन-पोषण करनेवाला कोई न होने की हालत में उनकी औरतों को मा-बहिन की तरह रखते हुए बच्चों को होशियार कर उनके पूर्वजों के योग्य बनाते थे और सुलह के समय में मनोरंजक कविता से उनको सदुपदेश देते थे, तो क्या आश्चर्य की बात है कि राजपूत सरदार, चारणों का इतना मान रखते थे!

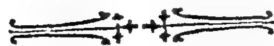
आजकल के समय में न तो राजपूत सर-दारों को लड़ाइयों में मारे जाने का डर है और न वीरता दिखाने का ख़याल है, और न बाल-बच्चों की परवरिश चारणों के सिपुर्द करने की सम्भावना है, तब चारणों की क़द्र पहिले मुजिब अब कैसे रह सकती है? अब राजपूत खुद पढ़ते-लिखते हैं, अपना इतिहास खुद पढ़-लिख सकते हैं और मनोरंजन के लिये तरह-तरह की सामग्रियाँ भी मौजूद हैं, तब चारणों की उन्हें क्या आवश्यकता है? यही सब कारण हैं कि चारणों की जो क़द्र पहिले थी वह अब नहीं है।

* अर्थात् हे चूंडा! तुझे अब कळाऊ की बरसाती ककड़ियाँ याद नहीं आतीं। क्यों आवें? अब तो तू मंडोवर के राजप्रासादों में मदमत्त हो रहा है।

यह सोरठा चूंडाजी को उनकी मुसीबत में पालन-पोषण करनेवाले चारण महानुभाव का उस समय कहा हुआ बतलाया जाता है जब चूंडाजी युवा होकर मंडोवर के स्वामी इंदा राजपूत की कन्या के पाणिग्रहण से दहेज में मंडोवर प्राप्तकर वहां निवास करने लगे थे। चूंडाजी के इस उत्कर्ष की सुखद ख़बर पाकर उक्त चारण महानुभाव उनसे मिलने को मंडोवर पहुँचे। परन्तु चूंडाजी तक उनकी शीघ्र पहुँच न हो पाने से उन्होंने उल्लिखित सोरठा चूंडाजी को सुनाया था।

—सम्पादक

चिट्ठी-पत्री



प्रांतीयता के भाव से अ० भा० चा० संमेलन को हानि पहुँचाने के संपादकीय आक्षेपों का सविनय प्रत्युत्तर

'चारण' के प्रथमांक में 'सम्मेलन का पाँचवाँ अधिवेशन' शीर्षक लेख के पृष्ठ ४ पर संपादक महोदय लिखते हैं कि—

"......प्रांतीय कार्यकर्त्ताओं की प्रांतीय कार्य-संलग्नता के कारण सम्मेलन कार्य को गौणता प्राप्त हो जाना। इस बात के लिये अधिकांश सम्मेलन-प्रेमी बहुत उद्विग्न रहे थे। वे यह देखकर खिन्न-से होते थे कि सम्मेलन के लिये एकत्रित लोगों से सम्मेलन के कार्यालय-खर्च, प्रचार-कार्य व उसके मुखपत्र और रिपोर्ट छपवाने के लिये अत्यावश्यक धन-संग्रह के लिये तो अपील करने का विरोध किया जाय और उन्हीं लोगों को प्रेरणा कर हज़ारों रुपये प्रांतीय-कार्य के लिये इकट्ठे कर लिये जायँ! किन्तु वातावरण को अशान्त न करने और परस्पर सहयोग में अड़चन पैदा न होने देने के ख़याल से उन्होंने अपने मन को समझा लिया कि, उस प्रांत को कि जहाँ सम्मेलन हो रहा है, सम्मेलन के बहाने से कुछ लाभ होता है तो वह सम्मेलन को तो अभीष्ट ही होना चाहिये। परंतु इसका अनिष्ट परिणाम यह हुआ कि, आज सम्मेलन के पास राजकोट अधिवेशन की रिपोर्ट छपवाने लायक भी पैसे नहीं हैं, फिर और ज़रूरी बातों की तो बात ही कहाँ!"

× × ×

"प्रांतीय कार्यकर्त्ताओं की इसी मनोवृत्ति के कारण 'श्री चा० हि० सभा' जैसी जमी हुई प्रांतीय सभा होते हुए भी उन्हें सम्मेलन से संबंध बनाये रखने के लिये 'बृहत् गुजरात-चारण-सभा' का ढाँचा खड़ा करना पड़ा। सम्मेलन-कार्यकर्त्ताओं की समझ में अब तक न आया कि प्रांतीय कार्यकर्त्तागण 'चा० हि० सभा' को ही सम्मेलन से संबंधित प्रांतीय सभा मान लेने में इतने क्यों चौंक पड़े थे? शायद वे भयभीत-से थे कि 'चा० हि० सभा' के इकट्ठे किए हुए पैसों पर कभी सम्मेलन अपना अधिकार न कर ले। किन्तु इसका कारण? खैर, उन्होंने जो ठीक समझा, किया और सम्मेलन ने भी उसे मान लिया। अब देखना चाहिये कि 'बृहत् गुजरात-चारण-सभा' सम्मेलन के अंगस्वरूप होकर वास्तव में कुछ करता है या एक सभा मात्र सिद्ध होती है।"

श्री संपादक महाशय के उपरोक्त आक्षेपों के उत्तर में निवेदन करते हुए 'चा० हि० सभा' के स्थिति-संयोगों को स्पष्ट करना मैं उचित समझता हूँ।

'अ० भा० चा० संमेलन' के चतुर्थ अधिवेशन (जोधपुर) के अवसर पर कच्छ-काठियावाड़ एवं गुजरात के जिन दो-चार प्रतिनिधियों ने सम्मेलन का पंचम अधिवेशन काठियावाड़ या गुजरात में कराने का आमंत्रण दिया था, उनमें मैं भी एक था। परंतु उस समय प्राइवेट वातचीत में मैंने श्री संपादक महाशय से कि जो उस समय संमेलन के प्रधानमंत्री थे एवं संमेलन के अन्य एक-दो कार्यकर्त्ताओं से, निवेदन किया था कि, यह पंचम अधिवेशन 'चा० हि० सभा' के चतुर्थ अधिवेशन के साथ-साथ ही होगा। और यही कारण है कि 'चा० हि० सभा' के तृतीय अधिवेशन के प्रसंग पर उसी वातचीत के अनुसार हम लोगों ने सभा के आगामी चतुर्थ अधिवेशन के साथ ही संमेलन का पंचम अधिवेशन राजकोट में कराने का निश्चित किया था।

संपादक महाशय ने देखा ही होगा कि, इन दोनों संस्थाओं के अधिवेशनों का समय-विभाग अलग-अलग रक्खा गया था और तदनुसार दोनों का कार्य अलग-अलग एवं एक-दूसरे के पश्चात् हुआ करता था। ऐसी दशा में 'चा० हि० सभा' के कार्यकर्त्ताओं द्वारा संमेलन-कार्य को गौण रूप प्रदान होना कहना कहाँ तक उचित है? फिर भी मैं 'चा० हि० सभा' की ओर से शपथपूर्वक स्पष्ट करता हूँ कि सभा के कार्यकर्त्ताओं के दिल में संमेलन-कार्य को गौण रूप बनाने की वृत्ति का ही जन्म नहीं हुआ था। यहाँ तक कि 'चा० हि० सभा' के अधिवेशन-कार्य के लिये जितना समय निश्चित किया गया था, उससे कहीं अधिक समय की आवश्यकता प्रतीत होते हुए भी सभा के कार्यकर्त्ताओं ने कई अत्यावश्यक प्रश्नों के निर्णय को स्थगित रखकर संमेलन के अधिवेशन की समय-मर्यादा का पालन किया था और जैसे भी हो संमेलन-कार्य को अधिक महत्त्व देने का प्रयत्न किया था।

संपादक महाशय का 'चा० हि० सभा' के कार्यकर्त्ताओं पर दूसरा आक्षेप यह है कि, उन्होंने संमेलन के कार्यालय-खर्च, प्रचार-कार्य, मुखपत्र एवं रिपोर्ट छपवाने के लिये धन-संग्रह की अपील न करने दी। मैं इसके उत्तर में यह निवेदन करना चाहता हूँ कि, इस खर्च के लिये जोधपुर-अधिवेशन में अपने-अपने हिस्से का चंदा नियमित देते रहने का वादा करने पर भी सिवा मारवाड़ के संमेलन से संबंधित मेवाड़, ढूंढाड़, बीकानेर, अलवर आदि प्रांतों ने इस विषय में कुछ भी सहायता नहीं दी है, इस हालत में संमेलन के राजकोट-अधिवेशन में उपस्थित प्रतिनिधियों से कि जिनमें अधिकांश गुजरात-काठियावाड़ एवं कच्छ के थे और जो संमेलन के कार्य-प्रदेश से प्रायः अनभिज्ञ थे,

संमेलन के उपरोक्त कार्यों के लिये चंदे की अपील करना कहाँ तक ठीक था, इसका संमेलन के पदाधिकारियों को विचार करना चाहिये।

संमेलन के कार्यकर्तागण बड़े बुद्धिमान और शिक्षित हैं, परंतु सेवाभाव की दृष्टि से मेरी समझ में उनमें स्वार्थत्याग की भावना बिलकुल कम है। संभव है, इसमें मेरी नासमझी या मिथ्यादोष-दृष्टि ही कारणभूत हो। फिर भी यह बात तो सच है कि, बिना अपना खून निकाले पराई वेदना का अनुभव नहीं होता अर्थात् निजी स्वार्थत्याग किये बिना कोई सेवाकार्य सफल होना कठिन है, क्योंकि सेवायज्ञ में स्वार्थत्याग ही उसकी वेदिका-स्वरूप है।

उदाहरण-स्वरूप संमेलन के पंचमाधिवेशन की विषय-निर्वाचिनी समिति में इस प्रश्न की चर्चा के समय मैंने अपना दृष्टिबिंदु स्पष्ट करते हुए कार्यकर्त्ताओं को अपनी-अपनी जेब से कम से कम दस-दस रुपये निकालकर आदर्शरूप बनने के लिये प्रार्थना की थी। हालां कि चतुर्थ अधिवेशन से पंचम अधिवेशन तक मैं भी संमेलन का एक कार्यकर्त्ता चुना गया था, इस लिये अन्य सहकारी कार्यकर्त्ताओं के साथ यथाशक्ति आर्थिक सहायता देना मेरा कर्त्तव्य था और इसके लिये मैं तैयार भी था, परंतु राजस्थानी कार्यकर्त्ताओं ने मेरे सूचन पर कोई ध्यान नहीं दिया। यदि उन्होंने मेरी प्रार्थना को स्वीकार किया होता तो उपस्थित प्रतिनिधियों से बिना अपील किए अकेले संमेलन के कार्यकरों से ही कम से कम १२५) रुपये उस समय एकत्र हो जाते और मुझे विश्वास है, इसकी देखा-देखी काठियावाड़-गुजरात के भी अन्य संमेलन-प्रेमी सज्जन चंदे में यथाशक्ति कुछ अवश्य लिखवाते।

इसके साथ मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि, 'चा० हि० सभा' के कार्यकर्त्ताओं ने संमेलन के कार्यकर्त्ताओं को धन के लिये अपील करने की मनाही नहीं की थी। हाँ, यह निवेदन अवश्य किया था कि इधर के प्रतिनिधियों से 'चा० हि० सभा' की सदस्य-फ़ीस के साथ-साथ श्री 'कृष्णकुमार-चारण-विद्यालय' के स्थायी फंड के लिये भी अपील की जानेवाली है, इस हालत में संमेलन के लिये अपील करने से अधिक सहायता मिलना कठिन है, परंतु अपील करना ही चाहें तो अवश्य करें। संभव है, इस निवेदन की बात संपादक महोदय के भी स्मरण-पट में हो।

अब रही संमेलन के मुखपत्र की बात। इसके पुनर्जीवन का प्रस्ताव तो जोधपुरीय अधिवेशन में स्वीकृत हो चुका था और इसके प्रारंभिक व्यय के लिये कुछ चंदा भी किया गया था। जहाँ तक मुझे स्मरण है, इस चंदे की रक़म ८०) रुपये के क़रीब हुई थी। हालां कि ठा०सा० श्री किशोरसिंहजी के देहांत से मुखपत्र शुरू न हो सका, परंतु इस रक़म से वह प्रसिद्ध तो अवश्य किया जा सकता था। इतना होते हुए भी जब विषय-निर्वाचिनी समिति में मुखपत्र

के नंद का प्रश्न रक्खा गया तो संपादक महाशय ने जिन लोगों पर प्रांतीयता के भाव का आरोपण कर संमेलन को हानि पहुँचाने का आक्षेप किया है, उन्हीं में के एक श्री शंकरदानजी देथा (सांवड़ा) ने मुखपत्र शुरू करने की जिम्मेवरी अपने ऊपर ले, उसके लिये प्रतिवर्ष १००) रुपये तक हानि सहन करते रहने का वादा किया था और उसका वे इस समय बराबर पालन कर रहे हैं।

संपादक महाशय लिखते हैं कि, " संमेलन के लिये एकत्रित लोगों से......उन्हीं लोगों को प्रेरणा कर हज़ारों रुपये प्रांतीय कार्य के लिये इकट्ठे कर लिये जायँ।" मैं उनके इस कथन से सर्वथा सहमत हूँ कि, वे लोग संमेलन का नाम सुनकर आये थे, परंतु साथ-साथ यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि, वे सब 'चा० हि० सभा' के अधिवेशन में साथ देने एवं 'श्री कृष्णकुमार-चारण-विद्यालय' के स्थायी फंड में कुछ सहायता देने को भी आये थे।

इन एकत्रित लोगों में से केवल एक महानुभाव श्री कालिदासजी जीजीभाई बारट (वीरवदरका -काठियावाड़) ने ही १,००१) रुपये 'श्री कृष्ण-कुमार-चारण-विद्यालय' को और द्वितीय उदार महानुभाव श्री जीवणलालजी वरसड़ा (भादरवा -गुजरात) ने १००) रुपये 'श्री उमेद -चारण-छात्रालय' (जोधपुर) को सहायता-स्वरूप प्रदान किये थे। हाँ, अन्य बंधुओं से भी 'श्री कृष्णकुमार-चारण-विद्यालय' को कुछ न कुछ आर्थिक सहायता अवश्य मिली थी, परंतु हज़ारों की तादाद में जैसा कि संपादक महोदय लिखते हैं, सिवा उपरोक्त एक महाशय के अन्य किसी से नहीं मिली। 'चा० हि० सभा' के लिये प्रायः सभी व्यक्तियों से जो रुपये लिये गये थे, वे तो उनकी सदस्य-फ़ीस के थे और वह सालाना लिये जाते हैं। परंतु इस सदस्य-फ़ीस का आंकड़ा भी कोई वर्ष हज़ार रुपये तक तो नहीं पहुँचा।

× × ×

अब रहा 'चा० हि० सभा' का 'अ० भा० चा० संमेलन' से संबंधित रहने-न रहने का प्रश्न। इस प्रश्न को सुलझाने के लिये दोनों संस्थाओं के उद्भव, नियम, कार्यपद्धति, इतिहास आदि—दोनों संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं को—समझना चाहिये।

'अ० भा० चा० संमेलन' का जन्म चारण जाति की सर्वांगीण उन्नति के लिये हुआ था। उसके अबाधित रूप से तीन अधिवेशन भी हुए। जिनमें अच्छे-अच्छे प्रस्ताव पास हुए और कुछ सक्रिय कार्य भी हुआ। परंतु यह सब हुआ राजस्थानी बंधुओं के प्रयत्न से और कार्यक्षेत्र भी राजस्थान तक ही सीमित रहने से उसके नियमादि बनाये गये राजस्थानी चारण-समाज की परिस्थिति के अनुकूल। गुजरात-काठियावाड़ के तो बहुत ही कम व्यक्ति संमेलन के इन अधिवेशनों में उपस्थित हो सके थे। और सिवा

इसके इधर के प्रदेशों में उसका कोई प्रचार-कार्य नहीं हुआ। काठियावाड़-गुजरात एवं राजस्थान के बीच भाषा, रीति-रस्म आदि का बड़ा अंतर है। संमेलन की मर्यादित शक्ति उसको मिटाने में सफल न हुई। संभव है, इसी कारण से संमेलन का इधर किसी प्रकार का संबंध स्थापित नहीं हुआ, और उसका संदेश भी शुद्ध रूप में यहाँ तक पहुँचा नहीं। इस हालत में प्रचार-कार्य तो दूर की बात है। इसके पीछे तो--तृतीय अधिवेशन के पश्चात्-संमेलन ही मृतप्राय हो गया।

इसी बीच भगवती जगदंबा की कृपादृष्टि एवं श्री शंकरदानजी देथा (लींबड़ी) और श्री रामदानजी टापरिया (बावड़ी) के प्रयत्न से गुजरात-काठियावाड़ एवं कच्छ के चारण-बालकों के लिये एक छात्रालय की स्थापना करने एवं जाति में सामयिक सुधार करने के लिये 'चा० हि० सभा' का जन्म हुआ। भक्त कवि श्री दूलाभाई काग ने उसकी ज़िम्मेवरी का भार अपने कंधे ऊपर ले लिया। इन तीनों महानुभाव के सतत् प्रयत्न एवं अन्य सजातीयों की हार्दिक सहायता से छात्रालय एवं इस सभा की स्थापना होकर इधर की चारण जाति में कुछ जागृत्ति आई। संक्षेप में इस तरह 'चा० हि० सभा' का जन्म, नियम-कार्यादि का आयोजन और जातीय संगठन बिलकुल स्वतंत्र ढंग से हुआ और आज तक गतिमान है।

जोधपुर में संमेलन का चतुर्थ अधिवेशन करवाकर मारवाड़ी बंधुओं ने राजपूताने में संमेलन की ज्योति को पुनः प्रकटित की। परंतु कच्छ-काठियावाड़ एवं गुजरात के अधिकांश जातिप्रेमी व्यक्ति राजकोट-अधिवेशन तक उसके उद्देश, नियम एवं कार्यादि से अपरिचित थे।

ठीक इसी समय 'चा० हि० सभा' ने संमेलन को राजकोट में आमंत्रित किया। इस अधिवेशन के अवसर पर राजस्थानी बंधुओं ने बिना इधर की परिस्थिति का सर्वग्राही दृष्टि से कुछ विशेष अभ्यास किये इस हठाग्रह को सामने रक्खा कि, इसी अधिवेशन से 'चा० हि० सभा' को संमेलन की मातहत प्रांतीय सभा बनाई जाय, परंतु इधर के चारण नेताओं के लिये यह प्रश्न बिलकुल नया था। आज दिन तक 'चा० हि० सभा' प्रधानतः शिक्षा-प्रचार का ही कार्य कर रही है। इस दशा में संमेलन से संबंधित होने से संमेलन की नियमावली के अनुसार उसको अन्य सामाजिक कार्यों के साथ संमेलन का योग्य आर्थिक भार भी उठाना पड़ता। यही कारण है कि जो लोग संमेलन के उद्देश, नियम, कार्य-प्रदेश आदि से बिलकुल अनभिज्ञ थे, उनसे अपनी बात स्वीकृत करा लेने का संमेलन के कार्यकर्त्ताओं का आग्रह मेरी समझ में उचित नहीं था।

ऊपर स्पष्ट कर ही दिया गया है कि, 'चा० हि० सभा' अभी तक प्रायः [illegible] वर्ष का कार्य कर रही है। [illegible]भारोह के साथ

लिये उसने जो कुछ प्रयत्न किया वह प्रायः निष्फल गया। यही कारण है कि दोनों संस्थाओं के कार्यप्रदेश में अंतर होने से 'चा०हि० सभा' के कर्णधारों ने उसको संमेलन की मातहत प्रांतीय सभा स्वीकृत कर आर्थिक एवं अन्य जिम्मेवरियों को उठाने में उसको असमर्थ पाया और उत्तर में वैसा निवेदित किया। इसमें 'चा०हि० सभा' ने एकत्र किये हुए पैसों की बात ही न थी, क्योंकि, यह पैसे तो पहले से 'कृष्णकुमार-चा० विद्यालय' की संपत्ति बन गये थे।

उपर्युक्त परिस्थिति होते हुए भी राजस्थानी बंधुओं के आग्रह को मानकर संमेलन से संबंध जोड़ने के लिये इधर के अग्रगण्य व्यक्तियों ने 'बृहत् गुजरात-चारण-सभा' स्थापित की। परंतु जहाँ संमेलन का वर्षों से प्रचार एवं उसके कर्णधारों का निवास है, उस राजपूताने की ही प्रांतीय सभायें सिवा मारवाड़ प्रांतीय चारण-सभा के प्रायः निष्क्रिय रही हैं, वहाँ इस नवजात सभा से ठोस कार्य-शक्ति की आशा तो नहीं रक्खी जा सकती, परंतु फिर भी मैं विश्वास दिलाता हूँ कि, यह सभा अपने कर्त्तव्य का अवश्य पालन करेगी।

मुझे डर है इस निवेदन से कोई यह मान लेगा कि मैं संमेलन का विरोधी हूँ। परंतु वास्तव में मैं भी तो उसका एक नम्र सेवक हूँ और उसके प्रधान उद्देश-आंतरप्रांतीय जातीय संगठन के महत्त्व को पहिचान सकता हूँ। परंतु यह सब स्पष्टीकरण तो इसी लिये किया गया कि, संपादक महोदय के जो-जो विधान मुझे चर्चास्पद मालूम हुए, उनका निरसन कर 'चा० हि० सभा' के कर्णधारों का संमेलन के विषय में जो दृष्टिबिंदु प्रारंभ से आज तक है, स्पष्ट करना उसके मंत्री के नाते मेरा धर्म है।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि, संपादक महोदय चारण जाति के एक रत्न हैं। अतः मैं यह मानने को तो हर्गिज़ तैयार नहीं कि, उन सदृश बड़े आदमी ने उपर्युक्त आक्षेपार्ह विचार ज़ानबूझकर प्रकट किये हैं। वास्तव में 'चा०हि० सभा' की आंतरिक परिस्थिति से अनभिज्ञ होने के कारण ही उन्होंने ऐसे विचार प्रकट किये हैं, उनमें कुछ ऐसा आ गया जिसका मुझे यह उत्तर देना पड़ा है।

इस निवेदन से संपादक महाशय या अन्य किसी बंधु का दिल दुखाने का मेरा बिलकुल आशय नहीं। बल्कि मैं विश्वास दिलाता हूँ कि चाहे कहीं विचार-भेद हो, परंतु संमेलन को हानि पहुँचाने के कारणभूत तो 'चा०हि० सभा' कभी न होगी। संपादक महोदय मेरे गुरुजन हैं, मैं उनका सेवक हूँ और सदैव रहूँगा।

पिंगलसी परवतजी पायक,
मंत्री—चारण-हितवर्द्धक सभा, **भावनगर**

-चारण-छात्र।

प्रदान किये थे। हाँ,

[अनन्य जाति-सेवक वन्धुवर श्री पिंगलशी भाई पायक बी०ए०, एल्-एल्०बी०-मंत्री, श्री चारण-हितवर्द्धक सभा ने "चारण" के प्रथम अंक में प्रदर्शित सम्मेलन के राजकोट-अधिवेशन -संबंधी कुछ सम्पादकीय विचारों के लिये जो उपरोक्त भाव प्रकट किये हैं उनसे ज्ञात होता है कि उक्त सम्पादकीय विचारों से पायकजी एवं उनसे सहमत उधर के सम्भ्रान्त सजातीयों के हृदय को कुछ ठेस पहुँची है और इसी लिये उन्हें यह स्पष्टीकरण अक्षरशः प्रकाशित करवाने का आग्रह करना पड़ा। उनके इस आग्रह को मान देकर अन्य आवश्यक लेखादि रोक हम इसे स्थान दे रहे हैं।

श्री पायकजी के लेख का ब्यौरेवार उत्तर देने के लिये न तो स्थान है और न आवश्यकता ही। इस स्पष्टीकरण के अनुसार ही वस्तुस्थिति रही हो और हो एवं सम्मेलन के प्रति श्री पायकजी के समान ही उनके अन्य सहयोगियों की भी श्रद्धापूर्ण सक्रिय सद्भावना हो और कोई कारण नहीं है कि श्री पायकजी सदृश निर्मल -हृदय सज्जन के शब्दों पर विश्वास न किया जाय, तो और अभीष्ट भी क्या था और है?

हमें खेद है कि, अपने विचारों के कारण वंधुवर पायकजी को दुःख हुआ और इतने लंबे स्पष्टीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई। आशा है, श्री पायकजी और उनसे सहमत सज्जन यह जानकर हमें क्षमा करेंगे कि प्रदर्शित विचार न केवल एक सम्पादक ही के थे प्रत्युत और भी कई प्रतिनिधि वन्धुओं के थे और उन्हें प्रकाशित करने में किसी प्रकार का मलिन हेतु नहीं था।

—सम्पादक]

सम्पादकीय टिप्पणियां

प्रताप-जयन्ती

कुछ वर्षों से देश के अनेक भागों में हिन्दू-सूर्य महाराणा श्री प्रताप की पुण्य जयन्ती उनके शुभ जन्मदिन ज्येष्ठ शुक्ला ३ को उत्साहपूर्वक मनाई जाती है। इस वर्ष भी यह पवित्र उत्सव विभिन्न स्थानों पर समारोह के साथ मनाया गया था। परंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि मेवाड़ और खास कर उदयपुर में यह उत्सव जिस शान के साथ मनाया जाना चाहिये उस शान के साथ नहीं मनाया जाता। हमारे खयाल से इसका मुख्य कारण उत्सव को राजकीय सहयोग का न मिलना ही है।

इन्दौर की स्वनामधन्या महाराणी श्री अहिल्यावाई की जयन्ती के अवसर पर कुछ वर्ष पूर्व हम इन्दौर में थे। उस समारोह के साथ

यदि हम उदयपुर में होनेवाली प्रताप जयन्ती की सभा की तुलना करें तो ज़मीन आसमान का अन्तर नज़र आता है। इन्दौर में हमने देखा था कि जिस सजे हुए विशाल भवन में इस प्रसंग पर सभा हुई थी उसमें, महाराजा होल्कर उस समय विलायत में होने के कारण तत्कालीन सर्वोच्च राज्याधिकारी श्री बापना साहिब श्रीमन्त महाराजा होल्कर का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। जिस सभा में शरीक होना महाराजा का प्रतिनिधि कर्तव्य समझे उसमें भला कौन अफ़सर ग़ैरहाज़िर रह सकता है? इस प्रकार राज्याधिकारियों के साथ उस विशाल भवन में जनता उमड़ पड़ी थी। ख़ूबी यह थी कि सभा में सब राज्यधिकारियों की उपस्थिति होते हुए भी किसी प्रकार का आतंक का वातावरण न था। सबसे बड़े राज्याधिकारी और जनता के साधारण व्यक्ति को उस अवसर पर अपने भाव प्रकट करने का समान अधिकार था। और जब हाथी पर महाराणी के चित्र का जुलूस निकला तो राज्य की पल्टन, रिसाला, बैंड, लवाज़मा सब कुछ साथ में था। नागरिकों ने जुलूस के रास्तों को उत्साहपूर्वक सजा रखे थे। शहर के सब अखाड़ों एवं व्यायामशाला आदि के लोग अपने २ रंग विरंगे झंडे लिये हुए जुलूस की शोभा बढा रहे थे। मालूम होता था राज्य और प्रजा उस स्वर्गीय आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति प्रकट करने में आनन्दविभोर हैं।

यह दृश्य महाराणा प्रताप की जयन्ती के दिन उदयपुर में कहां है? जिस नरकेसरी की दहाड़ से शत्रु साम्राज्य कम्पित हो उठता था, जिस प्रणवीर की स्वधर्म एवं स्वदेश-रक्षा की अटल प्रतिज्ञा विकट से विकट परिस्थिति का मुक़ावला करना एक साधारण वात समझती थी, जिसके स्वातंत्र्यप्रेम के कारण मेवाड़-निवासी ही नहीं सम्पूर्ण भारत का हिन्दूसमाज अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है और जिस नरपुंगव के आजीवन क्षात्रधर्म-परिपालन के कारण मेवाड़ के स्वामी आज भी हिन्दूसूर्य कहलाते हैं उस महापुरुष की पुण्य स्मृति का उत्सव मनाना प्रजा ही ने तो शुरू किया और आज भी उसे जैसे तैसे प्रजा ही मनाती है। क्या हुआ कुछ छोटे बड़े अफ़सर और जागीरदार शौकिया उसमें शरीक हो गये? राज्य की यह उदासीनता देखकर सहृदय प्रजाजन खिन्न होकर रह जाते हैं।

जिस उत्सव के लिये प्रजा से अधिक राज्य को उत्साह होना चाहिये उसको मनाने में प्रजा के स्वेच्छाकृत हार्दिक सहयोग को आनन्ददायक अवसर मानकर उसे हर तरह से प्रोत्साहन देना क्या राज्य के लिये उचित नहीं है? क्या महाराणा प्रताप का जन्मदिन, और किसी के लिये हो या न हो, उनके वंशजों के लिये होली, दिवाली,, गनगौर या रक्षावन्धन के त्यौहारों से भी कम महत्व और कम आनन्द का है? यदि नहीं तो इस उत्सव को भी कम से कम इन त्यौहारों के समान तो मनाया जाना चाहिये और क्या हर्ज है इस उत्सव को जनता के संपर्क का साधन बना लेना श्रीमन्मेदपाटेश्वर पसंद

फ़रमा लें? उस दिन जनता की विराट सभा में श्रीमन्मेदपाटेश्वर के पदार्पण के बाद शानदार जुलूस भी निकाला जाय।

इस प्रसंग पर श्रीमन्मेदपाटेश्वर की सेवा में यह भी निवेदन कर देना अनुचित न होगा कि श्रीमान् के उदार शासनकाल में जहां लाखों रुपये प्रतिवर्ष अन्य इमारती कामों में खर्च हो रहे हैं वहां यदि लाख-दो लाख रुपये नीचे लिखे कामों में आवश्यक सावधानता के साथ खर्च कर दिये जायँ तो श्रीमान् की कीर्ति अधिक उज्वल होकर स्थायी बनेगी—

१—महाराणा प्रताप की छत्री का और उनके प्रिय घोड़े चेटक के चबूतरे का जीर्णोद्धार एवं इनको सुन्दर स्वच्छ रखने की स्थायी व्यवस्था।

२—महाराणा प्रताप-स्मारक-ग्रंथः—जिसमें महाराणा का विस्तृत प्रामाणिक जीवनचरित्र, उनके संबंध में देशी-विदेशी विद्वानों के विभिन्न दृष्टिकोणों से लिखे हुए लेख एवं महाराणा संबंधी उत्तमोत्तम काव्यों का संग्रह आवश्यक चित्रों के साथ हो।

३—उदयपुर में एक विशाल "सार्वजनिक प्रताप-भवन" जो उदयपुर नगर का टाउन हॉल हो।

आशा है, उपरोक्त विनम्र सूचनाओं पर ध्यान दिया जाकर कार्य में परिणत किया जायगा।

संयुक्त प्रांतीय क्षत्रिय-सभा का २५ वां अधिवेशन

सं॰प्रां॰ क्षत्रिय-सभा का २५ वां अधिवेशन गत ९ अप्रेल से ११ तक आगरा में श्रीमान् राजा साहिब महेन्द्र मानसिंहजी, भदावर राज्य के सभापतित्व में बड़े समारोह से सफलता पूर्वक हो गया। संयुक्तप्रान्त की करीब डेढ़ हजार क्षत्रिय जनता ने इस उत्सव में प्रान्त के विभिन्न ज़िलों से आकर भाग लिया था।

इस अधिवेशन को आगरा में श्रीमान् राव साहिब केप्टिन कृष्णपालसिंहजी महोदय, आवागढ़ ने आमंत्रित किया था और आप ही स्वागताध्यक्ष थे। हमें प्रसन्नता है कि श्रीमान् राव साहिब अपनी जाति के उत्थान के लिये प्रयत्नशील हो रहे हैं और सं॰प्रांत का क्षत्रिय-समाज आपकी ओर श्रद्धा, विश्वास एवं आशा की दृष्टि से देखता हैं। हमारी यह प्रसन्नता इसलिये विशेषता लिये हुए है कि श्रीमान् राव साहिब के विद्यार्थीकाल में उनके और उनके ज्येष्ठ भ्राता आवागढ़-नरेश श्रीमान् राजा साहिब सूर्यपालसिंहजी के ट्यूटर एवं गार्डियन एक चारण महानुभाव-श्री ठा॰ अंबादानजी सा॰ सिंढायच, बी॰ए॰, (ठि॰मरवा-जयपुर राज्य) थे। एक सच्चे चारण की शिक्षा से जो भाव एक सच्चे क्षत्रिय राजकुमार में आने चाहियें वे आपमें विद्यमान हैं। तभी तो श्रीमान् राजा साहिब तिर्वा ने उपरोक्त अवसर पर कहा था—मैं यह बात गर्व के साथ कहता हूं कि मेरे मित्र राव साहिब पहिले तो किसी काम में हाथ डालते नहीं हैं और जब किसी काम को हाथ में ले लेते हैं तो उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं।

और राव साहिबने कौनसा काम हाथ में लिया है वह उन्हीं के इन शब्दों से पाठकों को ज्ञात होगा—मेरे सामने अब केवल एक ही उद्देश्य है और वह है क्षत्रिय जाति का संगठन और उसमें शिक्षाप्रचार। अगर मैं इसमें सफल न होऊंगा तो भारत में रहना ही छोड़ दूंगा!

जगदम्बा राव साहिब के सदुद्देश्य में उन्हें सफल मनोरथ करे।

मेवाड़ के चारणग्राम

गतांक में, मेवाड़ के चारणग्रामों के संबंध में मेवाड़-चारण-सभा की ओर से जो आवेदन-पत्र मुसाहिब आला सा०–राज्य मेवाड़ की सेवा में पेश किया गया वह प्रकाशित हुआ है। सुना है इस आवेदनपत्र को प्राप्तकर मुसाहिब आला सा० ने श्रीमान् मेदपाटेश्वर की सेवा में यथोचित निवेदन किया और श्रीमान् मेदपाटेश्वर ने उक्त आवेदनपत्र में प्रकट किये अनुसार होनेवाली अनुचित कार्यवाहियों पर अनभिरुचि प्रकट करके आवेदनपत्र में की गई प्रार्थनानुसार कुछ सलीका कर देने का उदारतापूर्ण आदेश प्रदान किया। फलतः रेवेन्यू कमिश्नर पं०कमलाकरजी साहिब ने इस संबंध में उनसे तलब की गई सम्मति उच्चाधिकारियों के पास भेज दी है जिस पर विचार हो रहा है।

यदि उल्लिखित संवाद सत्य हो और मेवाड़ी बंधुओं पर होनेवाले अन्याय का अन्त हो जाय तो उनके लिये सिर्फ़ मेवाड़ की चारणजाति ही नहीं अखिल भारतीय चारणजाति श्रीमन्मेद-पाटेश्वर की चिर कृतज्ञ होगी। श्रीमन्मेदपाटेश्वर के परमोदार महान् व्यक्तित्व से हमें आशा रखना चाहिये कि वे अपने वीरवदान्य पूर्वजों की मर्यादा का पालन करके चारणों के जो गांव सैंकड़ों वर्षों से उनके अधिकार में हैं उन्हें केवल सनद न होने के बहाने से वापस लेने की निषेधाज्ञा शीघ्र प्रचारित कर यश एवं पुण्य के भागी बनेंगे।

श्री करनी-मन्दिर–पुष्कर, मथुरा

पाठक शायद जानते होंगे कि राजस्थानांतर्गत पुष्कर क्षेत्र में और संयुक्त प्रांतान्तर्गत मथुरा पुरी में चारण जाति की ओर से बनाये हुए श्री जगदीश्वरी करनीजी के प्राचीन मन्दिर हैं जिन की देखभाल एवं माताजी की पूजा तीर्थों में रहनेवाले चारण जाति के तीर्थगुरु ब्राह्मणों के सिपुर्द है। ये मन्दिर बहुत प्राचीन होने से जीर्णशीर्ण अवस्था को प्राप्त हो गये थे।

मथुरा के करनी-मन्दिर (विश्राम घाट) का तो एक हिस्सा गिर ही गया था या गिरनेवाले था, इसलिये सम्मेलन के जोधपुर-अधिवेशन के समय तीर्थगुरु लालजी ने मंदिर के जीर्णोद्धार के लिये सम्मेलन से प्रार्थना की। उस पर विचार करके तीर्थगुरु को इस संबंध में चंदा करने के लिये सम्मेलन की ओर से एक प्रमाणपत्र एवं रसीदबुकें दी गई और चंदे की रकम ठा०सा० मुरारिदानजी कविया, जयपुर के पास जमा करने की हिदायत की गई। प्रसन्नता की बात है कि

पर्याप्त चंदा इकट्ठा होकर ठा०सा० मुरारिदानजी की देखभाल में इस मद्रिर का जीर्णोद्धार हो गया है। इसके लिये ठा०सा० मुरारिदानजी, तीर्थगुरु एवं वे सब सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने चंदा देकर इस सत्कार्य को सम्पन्न कराया।

मथुरा के इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हो जाने से सुना है, उसको तीर्थगुरु घर के समान काम में ला रहे हैं और उसी में रहना शुरू करके अपने घरू मकान को किराये पर दे देना चाहते है। यदि यह सत्य हो तो तीर्थ गुरुजी का यह व्यवहार बेजा है।* आशा हैं, वे ऐसा न करेंगे और मन्दिर की मर्यादा को यथावत् बनी रक्खेगे और इस संबंध में उन्हें कुछ अधिक कहने सुनने का मौक़ा न आने देंगे।

पुष्कर के करनी-मन्दिर के जीर्णोद्धार का विचार तभी से शुरू हुआ जब सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन पुष्कर में हुआ था। परन्तु जोधपुर-सम्मेलन तक इस संबंध में कुछ न हो सका। जोधपुर-सम्मेलन में फिर यह तै किया गया कि श्रीमान् बीकानेर-नरेश से इसके लिये प्रार्थना की जाय। तदनुसार सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय ठा०सा० केसरीसिंहजी ने बीकानेर-नरेश्वर के कोटा पधारने पर इस संबंध में रोबरू अर्ज़ की। अध्यक्ष महोदय से आवश्यक दर्याफ्त के बाद प्रसन्नता पूर्वक प्रार्थना स्वीकृत करके श्रीमानों ने इस कार्य को सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय के विचार-सहयोग से करने की आज्ञा आर्मी मिनिस्टर जनरल श्री हरिसिंहजी सा० सत्तासर, को उसी समय दे दी। उन्होंने आज्ञानुसार इस कार्य को बड़ी तत्परता से किया और अभी गत ज्येष्ठ मास में ठा०सा० केसरीसिंहजी को कोटा तार द्वारा सूचना दी कि मैं पुष्कर अमुक तिथि को पहुँच रहा हूं, आप भी आ जावें सो देख लें कि अब क्या काम बाक़ी है। अतः अध्यक्ष महोदय ने पुष्कर पहुँच कर देखा कि मद्रिर का काम प्रायः सम्पूर्ण है।

* यह बात बिलकुल ठीक है। विगत वर्ष जन्माष्टमी पर कलोल (उत्तर गुजरात) के सम्भ्रांत चारण युवक श्री केशरभाई बाटी मथुरा गए थे तब करनी-मंदिर के दर्शनार्थ जाने पर उन्होंने वहाँ ठहरने की इच्छा प्रकट की तो चौबेजी ने इन्कार कर दिया। ठीक इसी समय वे अधिक पैसे देनेवाले चारणेतर व्यक्तियों को मंदिर में ठहरा रहे थे। यह देखकर केशरभाई ने राजकोट-अधिवेशन पर उक्त मंदिर के जीर्णोद्धार के चंदे में अपनी ओर से दो रुपये दिए गए थे इसकी याद दिलाकर उनके इस अनुचित व्यवहार के विषय में डांट बताई तब उन्हे ठहरने दिया और यह बात किसी सम्भ्रांत चारण व्यक्ति के सम्मुख न करने की चौबेजी ने प्रार्थना की। सम्मेलन के पदाधिकारियों को चाहिए कि आइंदे वे भावुकता के जोश में ऐसे किन्हीं सुदूरस्थ जातीय स्थानों की मरम्मत के लिये उनके धोखेबाज़ ठेकेदारों को चंदा उगाहने की आज्ञा खूब सोच-विचार के पश्चात् प्रदान करें, अन्यथा उनकी प्रतिष्ठा को धब्बा लगेगा।

—सम्पादक, गुजराती विभाग

प्रथः इसलिये कि मंदिर का जीर्णोद्धार तो पूरा हो गया और साथ ही अहाते का कोट व उस में यात्रियों के ठहरने के लिये सुविधाजनक पांच कमरे भी बन गये हैं। परन्तु स्नान के घाट व भोजनशाला का मकान नहीं बना। इनके लिये श्रीमान् बीकानेर-नरेश्वर से प्रार्थना की गई है। आशा है कि यह शेष कार्य भी उनकी उदारता से शीघ्र सम्पन्न हो जायगा। जगदंबा अपने इन अनन्य भक्त नरेश्वर को चिरायु करे।

श्री भूपाल-चारण-छात्रालय, उदयपुर

द्वितीयांक में इस छात्रालय संबंधी जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसमें, छात्रालय में मीटिंग होकर कई प्रस्ताव पास होने का उल्लेख है। उन सभी प्रस्तावों को अमल में लाना जातिहित की दृष्टि से परमावश्यक है। परन्तु मौजूदा हालत में यह बात केवल सैक्रेटरी सा० की इच्छा पर निर्भर है। उक्त प्रस्तावों में एक प्रस्ताव छात्रों की संख्यावृद्धि के लिये छात्रालय की भोजन-फ़ीस में दो रुपये माहवार की कमी करने का था। इसके लिये अरसे से सैक्रेटरी सा० को कहा जाता रहा परन्तु उनके ध्यान में यह बात नहीं आती थी। अब सौभाग्य से उन्होंने इस प्रस्ताव का तो अमल शुरू कर दिया है जिससे छात्रालय खुलते ही इस वर्ष मेवाड़ी छात्रों की संख्या क़रीब तिगुनी हो गई है। सैक्रेटरी सा० को धन्यवाद।

इसी प्रकार यदि सैक्रेटरी सा० बहुमत के द्वारा निर्णीत नियमों के अनुसार छात्रालय का सब कार्य होने दें और मेवाड़-चारण-सभा को नियमानुसार संगठित होने दें तो उनका तो कुछ भी अहित नहीं है और जाति का हित स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे। क्या वे ऐसा करेंगे?

सुना था, उक्त मीटिंग के प्रस्तावानुसार छात्रालय का अब तक का विवरण एवं हिसाब छपवाने के लिये सैक्रेटरी सा० तय्यार करवा रहे हैं। अच्छा हो यह ख़बर सच निकले।

"चारण" का सम्पादन

इस अंक से 'चारण' का प्रथम वर्ष समाप्त होता है। इस वर्ष में 'चारण' समय पर नहीं प्रकाशित हो सका इसके लिये प्रकाशक को तो दुःख होगा ही हमें भी हार्दिक दुःख है। प्रथमांक में एवं बाद में भी जो २ त्रुटियां सम्पादन-संबंधी रही हुई पाठकों को ज्ञात हों उनके लिये हम सविनय क्षमा चाहते हैं।

प्रथम वर्ष के इन चार अंकों के हिन्दी-विभाग का जैसा भी कुछ हो सका सम्पादन कर अब यह कार्य किसी सुयोग्य-उत्साही विद्वान् के हाथों में दिये जाने के अभिप्राय से एवं अपनी परिस्थिति के कारण इस कार्य का त्यागपत्र सम्मेलन के अध्यक्ष महोदय की सेवा में हमने भेज दिया था और इसकी सूचना प्रधानमंत्रीजी को भी दे दी थी; परंतु उन्होंने इस्तीफ़ा मंजूर नहीं किया और गुजराती-काठियावाड़ी एवं राजस्थानी स्नेही-सज्जनों ने आग्रह किया कि अभी हम इस काम को न छोड़ें। अब तक हम उन मित्रों के कृपापूर्ण आग्रह को स्वीकार करने में

अपनी असमर्थता प्रकट करते रहे हैं, किन्तु सम्मेलन-पदाधिकारी लिखते हैं कि पत्र बंद हो जायगा अतएव हमको अपनी असुविधा एवं अयोग्यता की ओर दुर्लक्ष्य कर कुछ काल तक सम्पादन-कार्य करते रहने की आज्ञा मानने को विवश होना पड़ रहा है। इस परिस्थिति में आग्रहकर्त्ता महानुभावों से यदि हम यह आशा करें कि जो सज्जन इस कार्य में तन-मन से सहायता दे सकें वे लेखादि सामग्री शुद्ध सुंदर रूप में लिखकर समय पर भेजते रहें और जो धन से सहायता दे सकें वे पत्र को सर्वांग सुंदर बनाकर समय पर निकालने की व्यवस्था के लिये धन से सहायता करें, तो क़दाचित अनुचित न होगा। जो लोग इस कार्य के महत्त्व को जानते हैं, इस प्रकार सहायता देने को तय्यार न हों तो पत्र जैसा चाहिये वैसा और समय पर नहीं निकल सकेगा और इसका दोष आवेगा हम सम्पादकों के शिर पर। अतः सब सुयोग्य जाति-हितैषियों से सादर सविनय प्रार्थना है कि जिससे जैसी बन पड़े पत्र के लिये सहायता दें। इस प्रसंग पर हम यह भी सूचित कर देना उचित समझते हैं कि आगामी वर्ष से पत्र के नियमित एवं शुद्ध-सुंदर रूप में निकलते रहने का प्रेस से प्रबंध कर लिया है। अतः यदि इस समय हैं उतने भी ग्राहक बने रहें तो आशा है आगामी वर्ष से पत्र के अनियमित प्रकाशन की शिकायत न रहेगी और उसका सम्पादन भी सुचारु रूप से होगा।

इस प्रसंग पर हम अपने सुयोग्य एवं विद्वान् सहकारी श्री खेतसिंहजी सा० मिश्रण और श्री शुभकर्णजी सा० कविया एम्०ए०, एल्-एल्०बी० को हार्दिक धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। श्री खेतसिंहजी के तो हम अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने गुजराती-विभाग का इस प्रकार सुन्दर सम्पादन करने के साथ २ हमारे काम में भी प्रेमपूर्वक बहुत परिश्रम उठाया।

मारवाड़ राज़कार्य में चारणों का प्रतिनिधित्व

ज़माने की रफ्तार को देखकर हमारे नरेशगण भी प्रजा को राजकार्य में हिस्सा देने के लिये योजनायें बना रहे हैं। कई राज्यों में सलाहकार सभायें क़ायम हो चुकी हैं जिनमें प्रजा-प्रतिनिधियों को राजकाज में सीमित सलाहें देने का अधिकार दिया गया है।

जोधपुर के सेन्ट्रल एड्वाइज़री बोर्ड (केन्द्रीय सलाहकार सभा) में चारण माफ़ीदारों के प्रतिनिधि की हैसियत से श्री० शुकदेवजी किनिया, बी०ए०, एल्-एल्०बी०, को लिये जाने की ख़बर गतांक में प्रकाशित हो चुकी है। नीचे हम उन सज्जनों के नाम देते है जिनको श्री जोधपुर सरकार ने परगना-सलाहकार सभाओं में चारण माफ़ीदारों के प्रतिनिधि की हैसियत से चुना है---

प्रतिनिधि	परगना
श्रीमान् ठाकुर साहिब देवीसिंहजी बारहठ, मूँदियाड़	नागौर

श्री० लक्ष्मीदानजी सा० बारहठ, जोधपुर
मोरटूका
श्री० वर्दीदानजी सा० कविया, जैतारण
वासणी
श्री० शंकरदानजी सा० बोगसा, सीवाणा
सरवड़ी

उपरोक्त प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये हम श्री जोधपुर सरकार को धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि शेष परगनों में भी इसी प्रकार चारण-प्रतिनिधि लेने की कृपा की जायगी।

प्रतिनिधि महाशयों को उनकी नियुक्ति पर हम बधाई देते हुए आशा करते हैं कि वे राजा और प्रजा के हित को, जो हमारे विचार से अभिन्न है, ध्यान में रखते हुए इस प्रकार से कार्य करेंगे कि वे लोककल्याण-सम्पादन में अधिक से अधिक सहायक हो सकें।

—सह० सम्पादक

बधाई

बड़े ही हर्ष का विषय है कि अब राजस्थान में भी चारण छात्र उच्च शिक्षा की ओर बढ़ रहे हैं। इस वर्ष एम०ए० कक्षा से एन्ट्रेंस कक्षा तक जो चारण छात्र उत्तीर्ण हुए हैं उनके नाम नीचे प्रकाशित किये जाते हैं। इन छात्रों को उनकी सफलता पर हम हार्दिक बधाई देते हैं।

छात्र-नाम	कक्षा	श्रेणी
(१) श्री सत्यदेवजी आढ़ा, पांचेटिया (मारवाड़) बी०ए०, एल-एल०बी०, (काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय)	एम०ए० (इतिहास)	२
(२) श्री०अमरदानजी बारहठ, छोटा उदयपुर (किशनगढ़) (महाराजा कॉलेज, जयपुर)	बी०ए०	२
(३) श्री०शक्तिदानजी खड़िया, एकलगढ़ (सीतामऊ) (क्रिश्चियन कॉलेज, इन्दौर)	बी०ए०	३
(४) श्री०उदयसिंहजी दधिवाड़िया, बासणी (मारवाड़) (काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय)	एल-एल०बी० (प्रथम वर्ष)	२

(५) श्री० मोहनसिंहजी बारहठ, आंगदोस (मारवाड़) (जसवन्त कॉलेज, जोधपुर)	एफ़० ए०	२
(६) श्री० कैलाशदानजी उज्वल, ऊजळां (मारवाड़) (जसवन्त कॉलेज, जोधपुर)	एफ़० एस० सी०	२
(७) श्री० शुभकर्णजी आढा, पांचेटिया (मारवाड़) (जसवन्त कॉलेज, जोधपुर)	एफ़० ए०	३
(८) श्री फ़तहसिंहजी कविया, वासणी (मारवाड़)	एफ़० ए०	—
(हर्बर्ट कॉलेज, कोटा)		
(९) श्री० वी० डी० चारण	एफ़० ए०	२
(१०) श्री जोरावरसिंहजी सांदू, मिरगेसर (मारवाड़) (महाराणा कॉलेज, उदयपुर)	एन्ट्रेंस	२
(११) श्री० के० डी० देथा, एंग्लो वैदिक हाइस्कूल, जोबनेर (जयपुर)	एन्ट्रेंस	२
(१२) श्री० आर० डी० चारण, एंग्लो वैदिक हाइस्कूल, जोबनेर (जयपुर)	,,	२
(१३) श्री पाबूदानजी, एंग्लो वैदिक हाइस्कूल, जोबनेर (जयपुर)	,,	३
(१४) श्री० चण्डीदानजी दधिवाड़िया, वासणी (मारवाड़) (दरबार हाइस्कूल, जोधपुर)	,,	३
(१५) श्री० रामसिंहजी (दरबार हाइस्कूल, जोधपुर)	,,	३
(१६) श्री० पृथ्वीसिंहजी,	,,	३
(१७) श्री० एल० डी० चारण, (शार्दूल हाइस्कूल, बीकानेर,	,,	३
(१८) श्री० वी० डी० चारण, (मोहता मूलचन्द हाइस्कूल, बीकानेर)	,,	२
(१९) श्री० दूल्हेसिंहजी भादा, लसाड़िया (अजमेरा) (गवर्मेंट हाइस्कूल, अजमेर)	,,	३

उपरोक्त नामावलि में जोबनेर-हाइस्कूल से उत्तीर्ण छात्र, स्व० दानवीर ठा० बालावख्शाजी पाल्हावत(हणूतिया–जयपुर) की चारण छात्रों की शिक्षार्थ इस स्कूल को दी हुई दश हज़ार रुपयों की निधि के आभारी होंगे।

एन्ट्रेंस से नीचे की क्लासों में विविध विद्यालयों से उत्तीर्ण अनेकों चारण छात्रों में श्री भूपाल-चारण-छात्रालय, उदयपुर के विद्यार्थी श्री भवानीसिंहजी टापरिया भी बधाई के पात्र हैं जो अपनी क्लास के मेवाड़ भर के सब छात्रों में सर्व प्रथम उत्तीर्ण हुए हैं।*

—सह० सम्पादक

* इस वर्ष इतनी अधिक संख्या में हमारे राजस्थानी छात्र बंधु उच्च शिक्षा की विविध कक्षाओं में उत्तीर्ण हुए हैं, यह देखकर हम परप्रांतीय चारणों का हृदय भी मारे हर्ष के फूला नहीं समाता। परंतु उपर्युक्त नामावली में जिन बंधुओं ने अपने-अपने नाम के पीछे अपना-अपना गोत्र -अल्ल न लिखकर 'चारण' शब्द का व्यवहार किया है, उनका ध्यान हम इस ओर आकृष्ट करना चाहते है कि 'चारण' शब्द हमारा जातिबोधक है, परंतु अपने नाम के साथ उसका व्यवहार करना अपनी संस्कृति से अनभिज्ञता प्रकट करना बल्कि इससे आगे बढ़कर दुःखपूर्वक कहना होगा कि अपनी अक्ल का दिवाला फूँकना है। हमारी जाति का बोधक मानवाचक शब्द राजस्थान में 'बारहठ' एवं गुजरात-काठियावाड़ में 'गढवी' है, अतः जिनको अपने नाम के साथ अपना गोत्र लिखना पसंद न हो वे देशानुकूल 'बारहठ' या 'गढवी' शब्द का व्यवहार कर सकते हैं, परंतु 'चारण' शब्द लिखकर तो वे अपने-आपको तिरस्कृत करते हैं। अधिक दुःख तो इस बात का है कि, ये छात्र-बंधु ही नहीं, क्षात्रधर्म, क्षत्रियमित्र आदि पत्र-पत्रिकाओं में लेख-कविता लिखनेवाले हमारे कतिपय प्रतिष्ठित सजातीय बंधु भी अपने गोत्र या सारी जाति के मानवाचक 'बारहठ' शब्द से उकताकर अपने नाम के पीछे 'चारण' शब्द का पुछल्ला लगाते हैं और इस तरह राजपूतों को उनकी संस्कृति का बोध कराते हुए अपनी संस्कृति के बारे में अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हैं! आशा है, हमारे उपर्युक्त पढ़े-लिखे बंधु इस टिप्पणी को ध्यानपूर्वक पढ़कर आइंदे वैसी भूल न होने देंगे।

—सम्पादक, गुजराती विभाग

દેથાકુળ-ઉજાળક



સાધ્વી દેવી શ્રી આંબુબાઈ દેથા, મીઠી (થરપારકર)

શ્રી નીમરાજજી દેથા (ગઢડા) ના સૌજન્યથી]



સમય બોધ





(' રાજવી ઊગ્યાછે ભાણ, શક્તિને આંગણે. ' એ રાગ)

ચારણો ચતુર સુજાન, જાયા જગદંબના;
  પડી હાકલ ને થજો સાવધાન, જાયા જગદંબના. ટેક

હાકલ પડી છે માતા ભારતીના ભાવિની;
  મરદાઈથી આવજો મેદાન, જાયા જગદંબના.

કજિયા-કંકાસને જડમાંથી કાઢજો;
  ઐક્ય સાધી બનો બળવાન, જાયા જગદંબના.

ત્યાગ-ભાગને તમે આપશો તિલાંજલી;
  (તો) વધશે વડીલોથી માન, જાયા જગદંબાના.

વખત વિચારીને વ્યસનોને ત્યાગશો;
  (તો) બનશે પ્રજા બળવાન, જાયા જગદંબના.

પાપી પ્રથા તજી પ્રેત-ભોજનની;
  દેજો વિદ્યાલયમાં દાન, જાયા જગદંબના.

બિરુદ તમારું જો બંધુઓ વિચારશો;
  (તો) સ્વર્ગફૂલે થશે સન્માન, જાયા જગદંબના.

લોહીનાં આંસુ બાળવિધવાનાં લૂછીને;
  સુખનાં શોધજો સ્થાન, જાયા જગદંબના.

આવડ, ખોડલ, આઇ નાગલ, વરૂવડી;
  દેશે અભય વરદાન, જાયા જગદંબના.

અભેસિંહ રામભાઇ ખળેલ, કોંઢ

ચારણ-સાહિત્યમાં દુહાનું સ્થાન

અથવા

ચારણોની દુહા-વિદ્યા

લેખક :
શ્રી ખેતસિંહ નારાયણજી મિશ્રણ

કામણ કરે કમાલ, ખોડી ખાંભી ખળભળે;
પાણા કરે પ્રીતાળ, દુહો અમીણા દેશનો.

× × ×

સોરઠિયો દુહો ભલો, ભલી મરવણ રી બાત;
જોબન છાઇ ધણ ભલી, તારા છાઇ રાત.

જેના શબ્દોચ્ચારણમાં ઉર-વલોણાના ઘૂઘવાટાનો રવ જન્મે છે, જેની શબ્દ-થપાટે પ્રેમીઓના આતમ-પંખીની પાંખો ફડફડી ઊઠે છે, જેણે લૂખા ઉપદેશના બોલને પણ સોનેરી બનાવ્યા છે, જેના કથન-બાણે ભલભલાનાં માન મૂકાવ્યાં છે, જેના શબ્દ-નાદે હિંમત હારી બેઠેલા યોદ્ધાઓની કમ્મરે ફરી હથિયાર બંધાવ્યાં છે, જે છેલ્લાં એક હજાર વર્ષથી પશ્ચિમ હિંદુસ્તાનના લોક-સમાજના દિલ-ઓરતા વ્યક્ત કરી રહ્યો છે, એ દસમો વેદ ગણાયેલા દુહાને સાહિત્ય-સમુદ્રનું મંથન કરીને ઉપજાવી કાઢનાર ચારણો હતા. અને તેને લોકપ્રિય પણ તેમણે જ બનાવ્યો છે.

પ્રાચીન કાળથી ચારણ જાતિ ક્ષત્રિય-સમાજ સાથે ઘનિષ્ટ સંબંધ રાખતી આવી છે. કાળબળે ક્ષત્રિય શબ્દ વર્ણવાચક મટી જાતિ-વાચક બનતાં ક્ષત્રિય એટલે રાજપૂતઃ એવી માન્યતા આપણા દેશમાં દૃઢ બની, અને ચારણ જાતિનો સંબંધ પણ ક્ષત્રિય વર્ણમાં ગણાતી અન્ય લડાયક કોમોને બદલે તેના પશ્ચિમ હિંદુસ્તાનના વસવાટને લીધે ત્યાં વસતી ફક્ત રાજપૂત જાતિ સાથે ઘનિષ્ટ બન્યો.

રાજપૂત જાતિનો શૃંખલાબદ્ધ ઇતિહાસ સાતમી સદીથી શરૂ થાય છે. એ વખતે પશ્ચિમ હિંદુસ્તાનના લોકોનો ભિન્ન-ભિન્ન ભાષા

-ભાષા પરદેશી લોકો સાથે વ્યાપારિક, રાજનૈતિક તથા સામાજિક સંપર્ક વધતો જતો જોઈ પ્રાચીનતા-પ્રિય સંસ્કૃત ભાષાના વિદ્વાનોએ બીજી ભાષાઓના શબ્દોનો પ્રવેશ અટકાવવા સારૂ સંસ્કૃત ભાષાને વ્યાકરણોના ચોકઠામાં વધુ ને વધુ જકડી લીધી, તેથી તેનું સ્થાન લોક-હૃદયમાં જે કંઈ હતું તે ઓસરતું ચાલ્યું. બીજી બાજૂ લોક-સમુદાયની જે ભાષા હતી, તે ચારે તરફથી ઘેરાયેલા સરોવરને બદલે સ્વચ્છંદાચારિણી નદી જેવી હતી; તેથી તેણે આવશ્યકતાનુસાર પોતાની શબ્દ-સૃષ્ટિની વૃદ્ધિ કરી, અને એ રીતે એનો વિકાસ વધતો ચાલ્યો. એ ભાષા 'પ્રાકૃત' ના નામથી પ્રસિદ્ધ થઈ, એણે સંસ્કૃત ભાષાનાં સિંહાસન ડોલાવી મૂક્યાં.

જન-સમુદાયની બોલચાલની ભાષા હોવા ઉપરાંત સાહિત્યરચના માટે અધિક પ્રાચીન નહોતી છતાં, પ્રાકૃત ભાષાની રચના એની નૈસર્ગિક ઊર્મિમયતાને લીધે અગણિત અલંકારોથી દબાઇ ગયેલી સંસ્કૃત ભાષાની રચના કરતાં અધિક મધુર મનાવા લાગી. નવમી સદીનો અંત આવતાં તો સંસ્કૃત ભાષાના મહાકવિ યાયાવરીય (ચારણ) રાજશેખર જેવા ઉદ્‌ભટ વિદ્વાને પણ 'कर्पूर-मंजरी' માં એ વાત મુક્તકંઠે કબૂલ કરી:

परुसा सक्क अबंधा पाउ
अबंधो विहोइ सुउमारो।
पुरुस महिलाणं जेत्ति अमिहं,
अंतरं तेत्तिय मिमाणं॥

(સંસ્કૃતની રચના કઠોર અને પ્રાકૃતની રચના સુકુમાર હોય છે. એ બન્ને વચ્ચે પુરૂષ અને સ્ત્રી જેટલું અંતર છે.)

પરંતુ પ્રાકૃતનું પણ બધી જગ્યાએ એક જ રૂપ પ્રચલિત નહોતું. એટલે જ્યારે પ્રાકૃતમાં રચના થવા લાગી ત્યારે બોલચાલની ભાષામાં અને તેમાં ભેદ પડતો ચાલ્યો, અને એ રીતે પાછળથી વ્રજભૂમિથી લઈને રાજપૂતાના અને ગુજરાત સુધીની પશ્ચિમી બોલીનો આધાર રાખીને તથા બીજી ભાષાઓમાંથી થોડું ઘણું લઈને એક કાવ્યભાષા ચાલુ થઇ, તે ઘણા કાળ સુધી કેવળ 'અપભ્રંશ' યા 'ભાષા' નામથી ઓળખાતી રહી. આ કાવ્યભાષામાં પશ્ચિમી બોલીની પ્રધાનતા રહેવાનું કારણ એ છે કે કવિતા બહુધા રાજ્યાશ્રયે બનતી હતી, અને છેલ્લાં હજાર બારસો વર્ષથી રાજપૂતોની મોટી મોટી રાજધાનીઓ રાજપૂતાના, ગુજરાત, માળવા અને દિલ્લી આદિ પ્રાંતોમાં રહી છે. કલિકાલ-સર્વજ્ઞ હેમચંદ્રાચાર્યે જે અપભ્રંશ ભાષાનો ઉલ્લેખ પોતાના વ્યાકરણમાં કરેલો છે, તે પશ્ચિમી ભાષા છે, અને તેનો વ્યવહાર વ્રજમંડળથી લઇને રાજપૂતાના અને ગુજરાત સુધી હતો. એ વાતને એમણે "शेषं शौरसेनीवत्" કહીને સ્પષ્ટ કરી દીધી છે. અપભ્રંશના જે દુહા તેમણે તેમાં ઉદાહરણરૂપે આપ્યા છે, તે આ પશ્ચિમી ભાષાના છે.

રાજશેખર જેવા પોતાની કોમના જગન્માન્ય મહાકવિએ પણ બોલચાલની ભાષાનો આદર કર્યો તેથી અને વિજાતિઓના હુમલાથી પોતાના દેશને સુરક્ષિત રાખવાના ઉદ્દેશ્યથી નૈસર્ગિક કવયિત્રી મનાતી ચારણ કોમના કવિઓએ પોતાની જીવન-સંગિની રાજપૂત કોમના વીરોને પ્રોત્સાહિત કરનાર વીરરસપૂર્ણ

કવિતા પ્રચલિત દેશભાષાઓમાં કરવા માંડી.* કેમકે દેશના જે ભૂભાગમાં રાજકીય હલચલ મચી રહી હતી, ત્યાં જ આ બન્ને કોમોનો વસવાટ હતો, અને એ ભૂભાગમાં જ લગભગ એ સમયે ઉપર્યુક્ત અપભ્રંશ કે પશ્ચિમી બોલીમાંથી ઉત્પન્ન થઈને વ્રજ, ડિંગળ (રાજસ્થાની) અને જૂની ગુજરાતીનું સાહિત્ય પોતાનો શૈશવકાળ વ્યતીત કરી રહ્યું હતું. દેશની સ્થિતિ પ્રમાણે એ ભાષાઓના સાહિત્યનો વિકાસ થયો. ભીષણ હલચલના એ યુગમાં વીરગાથાઓની રચનાઓ સંભવિત હતી. સાહિત્યની સર્વતોમુખી ઉન્નતિ એ અશાંતિના કાળમાં થઈ શકે તેમ નહોતી. અને એ વાતથી પણ સૌ કોઇ વાકેફ છે કે, જે સમયે કોઇ દેશ લડાઇઓમાં ગ્રસ્ત હોય છે, તે વખતે યુદ્ધનો જ ધ્વનિ પ્રધાનરૂપે સંભળાય છે. એ કાળમાં વીરોલ્લાસિની કવિતાઓની ગૂંજ દેશભરમાં કાને પડે છે. એ સમયે અન્ય પ્રકારની જે કાંઇ રચનાઓ થાય છે, તે સુરક્ષિત ન રહેવાને લીધે જલ્દી નષ્ટપ્રાય બની જાય છે. દેશની રક્ષાનો અને યુદ્ધ કરવાનો ભાર રાજપૂત જાતિ પર હતો, એટલે તેની સાથીદાર ચારણ જાતિના કવિઓએ ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે તેમ, તેમને પ્રોત્સાહન આપવા માટે બહુધા વીરરસની કવિતા એ વખતે લખી હતી. અને તે માટે તેમણે માપમાં નાનો પરંતુ સામાને તત્કાળ યાદ રહી જાય, અને જેના

---

* પ્રચલિત લોકભાષામાં રચાયેલી ચારણોની કવિતાઓ અધિક સુબોધ અને હૃદયગ્રાહી હોવાથી સંસ્કૃત ભાષાના બ્રાહ્મણ કવિઓનો રાજદરબારોમાં ઓછો આદર થવા લાગ્યો, તેથી તેઓ ચારણોની નિંદા કરવા લાગ્યા હતા. હરિ નામક એક કવિએ 'સુભાષિત–હારાવલિ' નામક સુભાષિત શ્લોકોનો સંગ્રહ (પિટર્સન, બીજો રિપોર્ટ, પૃષ્ઠ ૫૭–૬૪) કરેલો છે, તેમાં મુરારિ કવિના નામથી એક શ્લોક છે:

> चर्चाभिश्चारणानां क्षिति रमण !
>   परां प्राप्य संमोदलीलं ।
> मा कीर्तेः सौविदल्लानव
>   गणय कविव्रातवाणीविलासान् ।
> गीतं ख्यातं न नाम्ना किमपि
>   रघुपतेरद्य यावत्प्रसादा–
> द्वाल्मीकेरेव धात्रीं धवलयति
>   यशोमुद्रया रामभद्र ॥

આશય: કોઈ રાજા ચારણોની લોકભાષાની કવિતાઓથી પ્રસન્ન થઇને સંસ્કૃત કવિઓનો અનાદર કરવા લાગ્યો, તેને આ કવિ કહે છે કે, હે મહીપાલ! ચારણોની ચર્ચાઓથી ઘણો આનંદ મેળવીને (સંસ્કૃત) કવિઓનો અનાદર ન કરો. કેમકે તેઓ જ કીર્તિરૂપી નાયિકાના રક્ષક અને રાજાઓ સાથે તેનો મેળાપ કરાવનાર છે. જુઓ, રામચંદ્રનું એક પણ 'ગીત' અથવા 'ખ્યાત' નથી. પરંતુ વાલ્મીકિની કૃપાથી જ રામચંદ્ર પોતાના યશની છાપદ્વારા પૃથ્વીને અલંકૃત કરી રહ્યા છે. અર્થાત્ ચારણોનાં (દેશભાષાનાં) 'ગીત' અને 'ખ્યાત' અસ્થાયી છે, અને સંસ્કૃત ભાષાના કવિઓનો સંસ્કૃત–વાણીવિલાસ અમર રહે છે.

મુરારિ કવિ પ્રસિદ્ધ 'अनर्घराघव' નાટકનો કર્તા છે. એનું ઉપનામ 'બાલ વાલ્મીકિ,' એના પિતાનું નામ વર્ધમાન ભટ્ટ અને માતાનું નામ તંતુમતી હતું. એનો સમય નવમી સદીનો ગણાય છે.

અપ્રતિમ શબ્દનાદને લીધે તેમાં સમાયેલા ઉપદેશની ઘણા કાળ સુધી અસર રહે, તેવા 'દુહા' છંદને પસંદ કર્યો હતો. કેમકે કોઈ પણ ભાષાનું શ્રુતિનિષ્ઠ સાહિત્ય જ્યારે લિપિબદ્ધ બની છંદોરચનાનું તત્ત્વ ધારણ કરે છે, ત્યારે તેમાં સર્વપ્રથમ નાનાં નાનાં વૃત્તો કે છંદો લખાય છે. એ રીતે વૈદિક કાળ પછીની સંસ્કૃત ભાષામાં પહેલવહેલો અનુષ્ટુભ્ સદૃશ નાનો શ્લોક વાલ્મીકિએ લખ્યો, અને એ શ્લોક સંસ્કૃત ભાષામાં જ્ઞાન, પ્રેમ, વહેવાર, સમજ આદિ પ્રત્યેક મનુષ્યના હૃદયને સ્પર્શે એવા ભાવોનાં ટુચકા ગીતોનો છંદ બન્યો. પ્રાકૃત ભાષામાં આર્યા છંદની ગાથાએ તથા દુહાએ અને અપભ્રંશમાં એકલા દુહાએ એ સ્થાન લીધું. દુહો એટલે અપભ્રંશ, વ્રજ, ડિંગળ (રાજસ્થાની) અને જૂની ગુજરાતી ભાષાનો ઊડતો કાવ્યમય લોકોદ્ગાર. દુહાનો પ્રભાવ દ્વારકાંથી વ્રજભૂમિ પર્યંત જ નહિ. પરંતુ ઠેઠ બંગાળા સુધી હતો. સ્વ૦ મહામહોપાધ્યાય હરપ્રસાદ શાસ્ત્રીના 'बौद्धगान ओ दोहा' માં બંગાળીની છાંટવાળા અપભ્રંશ દુહા મળી આવે છે. અને તેમના કહેવા મુજબ ઠેઠ નવમી, દશમી સદી અને તેથી યે જૂના કાળના એ છંદો છે.

'દુહા'નું નામ કોઇ સંસ્કૃત ભાષાના અભિમાનીએ 'દોધક' બનાવ્યું છે, પરંતુ તેમાં શાબ્દિક સમાનતા સિવાય બીજો કંઈ સાર જણાતો નથી. સંસ્કૃતમાં 'દોધક' નામનો એક જુદો જ છંદ છે. 'દુહા' પદની નિરૂક્તિ 'બે' સંખ્યા પરથી થાય છે. જેમ ચોપાઇ અને છપ્પય (ષટ્પદી) ની 'ચાર' અને 'છ' સંખ્યા છે, તેમ દો–પદ દો–પથ યા દો–ગાથા. મેરૂતુંગાચાર્યના 'प्रबंध-चिंतामणि' ગ્રંથમાં એક સ્થળે પ્રાકૃતનો 'દોધક' પણ આપ્યો છે, પરંતુ તે દુહા છંદમાં જ છેઃ

पहिली ताव न अनुहरइ,
गोरी मुह कमलस्स।
अदिट्ठि पुनि उन्नमई,
पडिपयली चंदस्स॥

દુહાનો પ્રાચીન પ્રયોગ હરિભદ્રસૂરિએ અને ધ્વન્યાલોકના રચયિતા આનંદવર્દ્ધને કરેલો છે. હરિભદ્રસૂરિનો સમય વિ૦ સં૦ ૭૫૭–૮૨૯ સુધીનો અને આનંદવર્દ્ધનનો સમય વિ૦ સં૦ ૯૧૧–૯૩૯ સુધીનો ગણાય છે. વિ૦ સં૦ ૯૯૦ માં દેવસેન નામક એક જૈન ગ્રંથકાર થઈ ગયા. તેમણે 'श्रावकाचार' નામક એક ગ્રંથ દુહાઓમાં બનાવ્યો હતો. તેની ભાષા અપભ્રંશની મર્યાદા બહારની અને ક્યાંક ક્યાંક પાછળથી કાવ્યભાષા તરીકે પ્રચલિત પશ્ચિમી બોલી સાથે બિલકુલ મળતી આવે છે. એક દુહો ઉદાહરણ તરીકે લઈએઃ

जो जिण-सासण भाषियउ
सो मइ कहियउ सारु।
जो पाले सइ भाउ करि
सो तरि पावइ पारु॥

ઉપર કહેવામાં આવ્યું છે તેમ દશમી સદી પછીના ચારણ કવિઓએ સંસ્કૃત ભાષાને બદલે સર્વાંશે પ્રચલિત લોકભાષાઓમાં કાવ્યો લખવા માંડયાં. એ કાવ્યોની ભાષા સાધારણ રીતે કેવી હશે, તેનું આ દોહાની ભાષા ઉપરથી અનુમાન કરી શકાય છે.

વિ૦ સં૦ ૧૦૩૬ માં મૂળરાજ સોલંકી (વિ૦ સં૦ ૧૦૧૭–૧૦૫૨) ને હાથે કંથકોટની લડાઇમાં વીરગતિ પામનાર કચ્છ દેશનો રાજા લાખો ફૂલાણી તેની અદ્વિતીય દાનશીલતા અને કાવ્યપ્રેમને માટે ચારણ-

સાહિત્યમાં ખૂબ પ્રસિદ્ધ છે. ચારણ કવિઓએ રચેલા એના પવાડા, ગીત, છંદ અને દુહા પ્રસિદ્ધ છે. પરંતુ તે કંઠોપકંઠે ઊતરી આવવાથી તેમનું અત્યારે ડિંગળ–સ્વરૂપ આવું થયું છે:

[illegible] पुत्र समुद्र का , फूल घरे अवतार।
पाखाँ मोती चुगे, लाखा रे दरवार ॥

× × ×

[illegible] हीरे जड़ी, सूरत पद्माँणी ।
[illegible] हँदा पातशा, लाखो फूलाँणी ॥

ચારણો પાસે પાદપૂર્તિઓ કરાવનાર અને તેમનાં હૃદયોર્મિથી રચાયેલ કાવ્યોનો રસ લૂંટનાર એ લાખો ફૂલાણી સ્વયં એક ઉત્તમ કવિ હતો. મૂળરાજ સાથેની લડાઈમાં કંથકોટના કિલ્લામાં ઘેરાઇ જતાં તેણે માનવજીવનના વિવિધ ભાવો વ્યક્ત કરતા અનેક અમોલ દુહા કહ્યા હતા. જૈનાચાર્ય મેરૂતુંગે સંવત ૧૩૬૧માં રચેલ 'प्रबंध–चिंतामणि' નામક સુપ્રસિદ્ધ ગ્રંથમાં લાખાએ તે વખતે કહેલ એક દુહો આવી ભાષામાં મળી આવે છે:

उग्या ताविउ जहिं न किउ,
लक्खउ भणइ निघट्ट।
गणिया लब्भइ दीहड़ा,
के दहक अहवा अट्ठ ॥

(કુશળ લાખો કહે છે કે, ઉદય પામતા શત્રુને જે તપાવ્યો (દબાવ્યો) નહિ તો (આપણને) ગણ્યાગાંઠ્યા દિવસો (જીવિત રહેવા માટે) મળે છે. કાં તો દશ અથવા આઠ.)

લાખાના એ દુહાઓને આજે કચ્છ અને કાઠિયાવાડમાં ચારણોને મોઢે આવા સ્વરૂપે સાંભળીએ છીએ:

પ્રથમ કચ્છી ભાષાની છાંટવાળા બે દુહા લઈએ:

જટે નમી વડ છાંય, અટે ખોડી ખંભ થિયાં;
લંબી કર કર બાંય, ચડે ચૂડાવારિયું.

× × ×

એક દિયે, દૂજી લિયે, (આંઉ) ફકરા ડિ' કઢાં;
અલ્લા ! એો ડિ' દે, લાખો બારક થિયાં.

હવે સોરઠી અને ડિંગળ ભાષાની શબ્દછાંટવાળા બે દુહા લઈએ:

લાખો કે' ગું બારિયો, લીસી છીપરિયાં;
હાથ હિલોળે પગ ઘસે, ગહુકે ગોરલિયાં.

× × ×

જેડા સખ સરાણિયાં, એડા નહિ રાણા;
એક તાણે બીજું ત્રાકવે, ઝડ લાગી નેણાં.

લાખા ફૂલાણી અને મૂળરાજ સોલંકીની એ લડાઈમાં લાખાના ભાણેજ અને મૂળરાજના ઓરમાન ભાઇ રાખાયશે ભાણેજ અને ભાઇનો અપ્રતિમ ધર્મ બજાવી મરતી વખતે પણ પોતાના મામાની આંખોને સમળીથી બચાવવા માટે કટાર કાઢવા કમ્મર પર હાથ નાંખ્યો, પરંતુ કટારને બદલે આંતરડાંનો લોચો હાથમાં આવ્યો; તે લઈ સમળી ઉપર ફેંક્યો. સમળી ભક્ષ્ય મળતાં ઊડી ગઈ; અને મામાની આંખો બચી ગઇ એ પ્રસંગને અમર કરતો તે કાળના કોઈ ચારણ કવિએ કહેલો એક દુહો અત્યારે આવા સ્વરૂપે સાંભળવામાં આવે છે:

કર ગો કાટારી, કર ગો કાચોળાં ભણી;
વગ કોઇ ના વણસી, રણ ભડતે રાખાશની.

ચૌદમી સદીમાં રચાયેલ 'प्रबंध–चिंतामणि' ગ્રંથમાંથી ઉદાહરણ રૂપે આપેલ

લાખા ફૂલાણીના દુહાને આધારે ઉપરના દુહા એ દુહાઓનું કંઠોપકંઠે ઊતરી આવેલું હાલનું સ્વરૂપ છે, એ વાતમાં સંદેહ રહેતો નથી.

રાજસ્થાની લોકસાહિત્યના પ્રસિદ્ધ કથાનક 'ઢોલા-મારૂ'નો નાયક ઢોલો, જયપુરના હાલના રાજવંશનો પૂર્વજ હતો. એનો સમય વિ૦સં૦ ૧૦૬૩થી ૧૦૯૩ સુધીનો માનવામાં આવે છે. એ કથાનકમાં પણ જ્યારે મારૂનો સંદેશો મળતાં તેને લેવા માટે ઢોલો નરવરથી પૂંગળ તરફ રવાના થાય છે; ત્યારે રસ્તામાં એક ચારણ મળે છેઃ તેને મારૂના સમાચાર પૂછતાં તેણે કહ્યું કે, ઢોલાજી, બહુ મોડા આવ્યા. મારૂ તો વૃદ્ધ થઇ ગઈ. એ સાંભળીને ઢોલાને બહુ દુઃખ થયું. આગળ ચાલતાં બીસૂ નામે એક બીજો ચારણ મળે છેઃ તેને મારૂના બૂઢાપા વિષે પૂછતાં તે જવાબ આપે છે કે—

डउढ वरस री मारुवी, त्रिहुँ वरसाँ रो कंत।
ऊणरउ जोवन वहि गयउ, तूँ किऊँ जोवनवंत?

(હે ઢોલા! જ્યારે વિવાહ થયો હતો, ત્યારે મારૂ દોઢ વર્ષની હતી; અને તેનો કંથ—તમે ત્રણ વર્ષના હતા. એનું જોબન વીતી ગયું, તો તમે કેવી રીતે યુવાન રહ્યા?)

પછી એ ચારણ મારૂની સુશીલતા, સુંદરતા અને સૌજન્યનું વર્ણન કરે છેઃ

गति गंगा, मति सुरसती, सीता सील सुभाइ।
महिलाँ सिरहर मारुवी, अवर न दूजी काइ॥

(મારૂ ગતિમાં ગંગા, બુદ્ધિમાં સરસ્વતી અને શીલ-સ્વભાવમાં સીતાના સમાન છે. મહિલાઓમાં શિરોમણિ મારૂની તુલનામાં આવે એવી બીજી કોઇ નથી.)

કાશી-નાગરી-પ્રચારિણી-સભાની 'બાલા-બક્ષ-રાજપૂત-ચારણ-પુસ્તકમાળા' માં પ્રસિદ્ધ થયેલા ઢોલા-મારૂ રા દૂહા નામક ગ્રંથના વિદ્વાન્ સંપાદકોએ ઉપરના દુહા પાંચસો વર્ષ જેટલા જૂના—પંદરમી સદી પછી પાઠાંતર પામ્યા સિવાયના—જણાવ્યા છે.

આ દુહાઓને આધારે દશમી અને અગિયારમી સદીના ચારણ કવિઓની ભાષા કેવી હશે, તેનો તો પૂર્ણ નિર્ધાર થઇ શકતો નથી; પરંતુ એ કાવ્યો બહુધા દુહાઓમાં જ હશે, એ નિર્વિવાદ છે.

મહાન્ વૈયાકરણ હેમચંદ્રાચાર્યના વખતમાં સિદ્ધરાજ સોલંકીના દરબારમાં કંકાળણ ભાટડીને હરાવનાર ચારણ કોમની પ્રસિદ્ધ કવિ-બેલડી આણંદ અને કરમાણંદ થઈ ગયા. એમની જોડલીમાં એક વિશિષ્ટતા હતીઃ દુહાની પહેલી પંક્તિ પ્રશ્ન રૂપે આણંદ રચે, અને બીજી પંક્તિમાં કરમાણંદ એનો ઉત્તર આપે. એમણે જ્ઞાન, નીતિ, પ્રેમ અને વહેવાર સમજ રૂપે કહેલા દુહાઓ આજે પણ ગુજરાત, કાઠિયાવાડ અને રાજપૂતાનામાં પ્રસિદ્ધ છે. પરંતુ તે પણ ચારણોની એ કાળની અન્ય રચનાઓની પેઠે લિપિબદ્ધ ન થવાથી આજે લગભગ આવું રૂપ ધરાવતા થયા છેઃ

આણંદ કહે કરમાણંદા! કાંટો વડો કે કરીર?
આશ વળૂંધી સુંદરી, સોંપી દિયો શરીર.

હેમચંદ્રાચાર્ય એમના પ્રાકૃત વ્યાકરણ (सिद्ध-हैम-शब्दानुशासनના આઠમા અધ્યાય) માં ઉદાહરણ તરીકે આપેલ ચારણોના દુહાઓ પૈકી નીચેનો દુહો એ કવિ-બેલડીનો હોય તેમ અનુમાન થાય છેઃ

विंबाहरि तणु रयणवणु,
　　किउ ठिउ सिरि आणंद!
निरुवम रसु पिएं पिअविजणु,
　　सेस हो दिण्णी मुद्द॥

(હે આણંદ ! બિંબ (ફળ) જેવા અધર ઉપર દાંતે કરેલો ઘા કેવો શોભે છે ! જાણે કે, પિયુએ નિરૂપમ રસ પીને બાકીના (રસ) ઉપર (બીજે કોઈ પી ન જાય તેટલા માટે) મહોર મારી છે !)

એ વ્યાકરણમાં ઉદાહરણ રૂપે ચારણ કવિઓના જ અધિકતર દુહાઓ લેવામાં આવ્યા છે. ઉદાહરણ તરીકેઃ

एइनि घोडा एह थलि,
  एइति निसिआ खग्ग।
एत्थ मुणीसिम जाणिअइ,
  जो न विवालइ वग्ग॥

(આ ઘોડા તે જ છે, સ્થળ પણ તે જ છે, અને મ્યાનમાંથી કાઢેલી આ નિસ્ત્રિંશ અથાત્ શત્રુઓનું રક્તપાન કરનાર તલવારો પણ તે જ છે. એવા આ યુદ્ધક્ષેત્રમાં જેમણે પોતાના ઘોડાઓની વાઘ ખેંચીને તેમને (શત્રુ પર હુમલો કરવા માટે) તેજ કર્યા નહિ; તેમને પહેલાંથી જ મૃતતુલ્ય સમજવા જોઇએ.)

આ દુહાને મળતો ભાવ ચારણોને મોંઢે બોલાતા નીચેના એક દુહામાં પણ જોવામાં આવે છેઃ

ભલ્લ ઘોડા વળ વંકડા, હલ્લ બાંધો હથિયાર;
ઝાઝાં ઘોડાંમાં ઝીંકવો, મરણો હકડી બાર.

महु कंतहो वे दोसड़ा,
  हेल्लि म झंखहि आलु।
देन्लहो हउं पर उव्वरिअ,
  जुज्झन्तओ करवालु॥

(હે સખી ! મારા પતિમાં બે દોષ છે. (સખી તેને તેમ કહેતાં રોકે છે કે, એવું) વૃથા (આળ) બોલીશ (ઝંખ) નહિ. (તે બે દોષ કયા ? એ સ્ત્રી જવાબ આપે છેઃ) તેના દેતાં દેતાં (દાન દેતાં) ફક્ત હું બચી (ઊગરી); અને યુદ્ધમાં લડાઇ લડતાં લડતાં (ઝૂઝતાં) કેવળ તલવાર બચવા પામી છે !)

એ વ્યાકરણમાં ઉદાહરણ તરીકે લીધેલ ચારણ કવિઓના કેટલાક દુહાઓ તો આજે પણ ચારણોને મોંઢે તેના વિકૃત રૂપે સાંભળીએ છીએ. ઉદાહરણ તરીકેઃ

भल्ला हुआ जु मारिआ,
  बहिणि महारा कंतु।
लज्जेजन्तु वयंसिअहु,
  जइ भग्गा घरु एंतु॥

(હે બહેન ! મારો પતિ યુદ્ધમાં કામ આવ્યો, તેને હું ભલું થયું સમજું છું. કેમકે જો તે રણાંગણમાંથી ભાગીને ઘેર પાછો આવત તો (તારા જેવી) સખીઓ મને (તે બદલ) મહેણું મારીને લજ્જિત કરત.)

આ દુહો આજે આવા રૂપે સાંભળવામાં આવે છેઃ

ભાગે તું મત કંથડા ! તું ભાગે મું ખોડ;
સરખા-સરખી સાહેલિયું, તાળી દે મુખ મોડ.

वायसु उड्डावन्तिअए
  पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय,
  अद्धा फुट्ट तड़त्ति॥

(એક વિયોગિની સ્ત્રી કાગડાને ઊડાડવા લાગી કે, મારો પિયુ આવતો હોય તો ઉડી

જા. એટલામાં તો તેણે અચાનક પિયુને દીઠો, એટલે હર્ષના આવેશમાં તેનું શરીર ફૂલતાં, તેના હાથની ચૂડી નંદવાઈ ગઇ. ચૂડીનો અડધો ભાગ હાથે વળગી રહ્યો તે અડધો તૂટીને નીચે પડયો.)

આ દુહો ચારણોને મોંઢે આજે આવા રૂપે સાંભળવામાં આવે છે:

कामन काग उडावती,
पियु आयो झवकां ।
आधी चूड़ी कर लगी
आधी गई तड़कां ॥

એક બીજો દુહો લઈએ:

पुत्तें जाएं कवणु गुणु, अवगुणु कवणु मुएण ।
जा वप्पी की भुंहड़ी, चंपिज्जइ अवरेण ॥
सि० है० ४–३९५

(એ પુત્રના જન્મથી શો લાભ અને મરણથી શી ખોટ કે જેના હોવા છતાં તેના બાપની ધરતી પર બીજાનો અધિકાર થાય!)

આ દુહો અત્યારે આવે સ્વરૂપે ચારણો બોલે છે:

बेटो जायां कवण गुण,
अवगुण कवण धियेण ।
जा ऊभां धर अप्पणी,
गंजीजै अवरेण ॥

(એ પુત્રના જન્મથી શો લાભ, અને તેના બદલે પુત્રી જન્મી હોત તો શો અવગુણ થાત કે જેના હોવા છતાં પણ તેની પોતાની (બાપીકી) જમીન પર બીજાનો અધિકાર થવા પામે છે !)

આ પ્રમાણે હેમચંદ્રાચાર્યનો સમય આવતાં દુહાનો પ્રયોગ સર્વમાન્ય અને સર્વ-પ્રિય બને છે. અને ઉપરનાં બીજાં પ્રમાણોથી તથા હેમચંદ્રાચાર્ય જેવા મહાન્ વિદ્વાને તેમના વ્યાકરણમાં ઉદાહરણ તરીકે અધિકતર ચારણોના જ દુહાઓ લેવાથી ચારણોની દુહારચનાની કુશળતાનો આપણને સહેજે ખ્યાલ આવે છે.

આપણી જાતિના સુપ્રસિદ્ધ વિદ્વાન સ્વ૦ ઠાકુર શ્રી કિશોરસિંહજી સોદા આ વિષે લખે છે કે:

"પિંગલ મુનિના છંદઃશાસ્ત્રમાં હજારો છંદો-નો ઉલ્લેખ હોવા છતાં ચારણોએ આજ દિન સુધી કેવળ દુહા, છપ્પા, અને ગીત નામક વર્ણ અને માત્રામેળ છંદોને પોતાના સાહિત્યમાં સ્થાન આપ્યું છે. બીજા છંદોમાં પણ તેમની કવિતાઓ મળે છે, પરંતુ તેની ગણત્રી આટામાં લૂણ બરાબર છે. અને એ પ્રકારે ચારણ જાતિની પ્રતિસ્પર્ધી ભાટ જાતિના કવિઓએ તેમનાં કાવ્યોમાં સવૈયા, ઘનાક્ષરી અને મનહર (કવિત) આદિ અક્ષરમેળ છંદોને જ સ્થાન આપ્યું છે. ગીતછંદ તો તેમના સાહિત્યમાં બહુધા નહિવત્ છે પરંતુ દુહાછંદ તેમના સાહિત્યમાં સ્થળે સ્થળે જોવામાં આવે છે, તે ચારણોના સાહિત્યમાંથી લેવામાં આવ્યો છે. દુહાછંદ એ ચારણોની જ રચના છે, તેના પ્રમાણમાં મેરૂતુંગાચાર્યે વિ૦ સં૦ ૧૩૬૧ માં રચેલ 'प्रबंध–चिंतामणि' ગ્રંથમાંથી ઉલ્લેખ મળે છે

સોરઠના બે ચારણ 'દુહાવિદ્યા'માં સ્પર્ધા કરતા (दूहाविद्यया स्पर्धमानौ) પાટણ આવ્યા. તેમની અરસપરસની શરત એવી

જતા કે, જેની રચનાની હેમચંદ્ર પ્રશંસા કરે તે બીજાને હારેલો સમજે. હેમચંદ્ર મળતાં તેમાંથી પહેલો ચારણ આ સોરઠો બોલ્યો:

> लच्छिवाणि मुहकाणि,
>
> एयइ भागी मुह भरउँ ।
>
> हेमसूरि अच्छीणी,
>
> जे ईसरते ते पंडिया ॥

(આ ભાગી (ભાગ્યશાળી હેમચંદ્ર) નું મુખ લક્ષ્મી અને સરસ્વતી બન્નેના મુખથી ભરેલું છે. અને એવા હેમસૂરિ જેના પર છાના છાના કંઈક પ્રેમ કરે છે, તે પંડિત બની જાય છે.)

પહેલો ચારણ તો આ દુહો બોલીને ઊભો રહ્યો. એવામાં આરતીનો વખત થવાથી કુમારપાળ-વિહારમાં મહારાજ કુમારપાળ પધાર્યા: અને તેમણે હેમચંદ્રને પ્રણામ કર્યાં, હેમચંદ્રે તેમની પીઠ પર હાથ રાખ્યો. એ દૃશ્ય જોઈ બીજો ચારણ બોલ્યો:

> हेम तुहाला कर भरउं जाँह अच्चंभू रिद्धि ।
>
> जेवं पह हिट्ठा मुहा, तांह ऊपहरि सिद्धि ॥

(હે હેમ ! તમારા હાથ જેના પર ભરો -રાખો, તેની તો આશ્ચર્યજનક રિદ્ધિ થાય છે. અને જેનું મોઢું નીચે હોય છે અથવા જે નીચે મોઢે આપના પગ દાબે છે, તેને આપે સિદ્ધિની ભેટ આપી છે. અને એ રીતે તેનું શિર ઊંચુ-સર્વોન્નત કર્યું છે.)

આ દુહામાં એ ચારણ કવિ કુમારપાળની આશ્ચર્ય પમાડે તેવી સંપત્તિને હેમચંદ્રનો તેમની પીઠ પર હાથ રાખવાના અને સિદ્ધિની ભેટને નીચા મોઢે પગમાં પ્રણામ કરવાના કારણરૂપે માને છે. તેની આ અનૂઠી ઉક્તિ પર મહારાજ કુમારપાળ પ્રસન્ન થયા. અને એ દુહો ફરી ફરી તેની પાસે બોલાવરાવ્યો. ત્રણ વાર બોલીને તેણે અધીરાઈથી કહ્યું કે, શું દરેક પાઠના લાખ લાખ રૂપિયા આપવાના છો, તેથી વારંવાર બોલાવરાવો છો ? રાજાએ તેને ત્રણ લાખ રૂપિયા આપ્યા.

આ પ્રબંધમાં પહેલો સોરઠો અને બીજો દુહો છે, પરંતુ બન્ને પ્રકારની રચનાને મેરૂતુંગાચાર્યે ‘दूहाविद्या’ ના નામથી જણાવી છે, એ ખાસ ધ્યાન દેવા જેવું છે. અને તેનો અભિપ્રાય એ વિદ્યા ફક્ત ચારણ જાતિમાં જ પ્રચલિત હતી, એમ જણાય છે.”

આ મતનું સ્વ૰ પં૰ ચંદ્રધર શર્મા ગુલેરી, શ્રી મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઈ આદિ ચારણેતર વિદ્વાનોએ પણ સમર્થન કરેલું છે. અને તે દ્વારા સિદ્ધ થાય છે કે, દુહાછંદ એ ચારણોની જ રચના છે.

આ ઉપરાંત પણ ‘प्रबंध-चिंतामणि’ માં ચારણ કવિઓએ દુહામાં રચેલી કવિતાનો એક વિશેષ પુરાવા મળી આવે છે:

સિદ્ધરાજ જયસિંહ સમુદ્રકિનારે ફરતો હતો, તે વખતે એક ચારણ કવિએ તેની પ્રશંસામાં કવિતા કરી હતી. તેમાં એક દોઢિયો દુહો છે—

> को जाणइ तुह नाह चित, तुहालेइ चक्कवइ लउ ।
>
> लंक हले वाह मग्गु, निहाळई करणउतु ॥

(સિદ્ધરાજને સમુદ્ર તરફ જોતો જોઇ કવિ કહે છે કે, હે નાથ! હે કર્ણના પુત્ર! તમારા ચિત્ત (ની વાત) ને કોણ જાણે છે? તું ચક્રવર્તી (પદ) લઉં એમ ચાલે છે—એવી ચેષ્ટા કરે છે; અને લંકાફળને (લેવા માટે) વહાણનો માર્ગ નિહાળે છે.)

આમાં करणउतु-કર્ણપુત્ર એ પિતાના નામના ગૌરવથી પુત્રને સંબોધન કરવાનું ચારણ-કવિતાનું પ્રસિદ્ધ લક્ષણ છે. અને તે પ્રયોગ કેટલો જૂનો છે, તે આ ઉપરથી સમજાય છે.

(૨) જ્યારે મહારાજ કુમારપાળ શત્રુંજય તીર્થમાં ગયા. ત્યારે ત્યાં એક ચારણને પ્રતિમા સમક્ષ નીચેનો સોરઠો નવ વખત બોલતાં તેમણે નવહજાર રૂપિયા આપ્યા હતા:

इक्कह फुल्लह माटि,
देअई सामी सिद्धि सुह।
तिणि सिउं केही साटि,
रे भोलिम जिणवरह॥

(એક જ ફૂલને માટે સ્વામી (મહાવીર સ્વામી) સિદ્ધિ-સુખ અથવા સર્વ સિદ્ધિ આપે છે, તે પ્રમાણે હે જિનવર! આપ શા માટે આટલા બધા ભોળા છો? એટલે કે, એક ફૂલના બદલામાં આટલી બધી સિદ્ધિનું સુખ શા માટે આપી દો છો?)

આજે પણ એ વાતનો સૌ કોઈ સ્વીકાર કરે છે કે, દુહા રચવાની અને દુહા બોલીને ઐતિહાસિક વાતોની જમાવટ કરવાની જેવી અદ્ભુત કળા ચારણ કોમે હાથ કરી છે, તેવી કળા બીજી કોઈ કોમે હજુ સુધી પ્રાપ્ત કરી નથી. અને ચારણોની એ કળાનું ઉપરનાં ઐતિહાસિક વિધાનો સમર્થન કરે છે. હેમચંદ્રાચાર્યે પણ તેમના વ્યાકરણમાં ચારણ કવિઓના દુહા ઉદાહરણ તરીકે એટલા માટે લીધા હોય તેમ અનુમાન થાય છે કે, મેરુતુંગાચાર્યે જણાવ્યું છે, તેમ દુહા રચવાની અને તેમને અપૂર્વ ઢંગે બોલવાની કળા ચારણોને જ સાધ્ય હતી; બલ્કે એ વિદ્યા માટે એ કાળે ચારણો જ પ્રસિદ્ધ હતા. અને તે દુહા મધુર, ઉત્તેજક અને સારગર્ભિત હોવાથી કોણ રાજા અને કોણ રંક, કોણ પંડિત અને કોણ અભણ, સૌને પ્રિય હતા. 'ગરથ ગાંઠે અને વિદ્યા પાઠે' એ કહેવત અનુસાર ચારણોમાં પોતાનાં કાવ્યો મુખ્યત્વે કંઠસ્થ રાખવાનો રિવાજ છે. કેમકે કોઇ પણ કાવ્ય મોઢેથી હાવભાવ સાથે બોલતાં જેટલી અસર કરે છે, તેટલી વાંચવાથી કરતું નથી. અને ચારણોને તો યુદ્ધની વચ્ચે રહીને પોતાનાં ઉદ્બોધક કાવ્યોદ્વારા રજપૂત વીરોને પ્રોત્સાહન આપવાનું હતું. એટલે તેઓ પોતાનાં મોટાં મોટાં કાવ્યો પણ આજ દિન સુધી બહુધા કંઠસ્થ રાખતા આવ્યા છે. અને તેમાં ય દુહાને તો મોંદે રાખવાનો જ રિવાજ છે. એટલે દશમીથી પંદરમી સદી સુધીમાં ચારણોએ લખેલાં દુહા-કાવ્યો લેખબદ્ધ મળી આવતાં નથી. જો કે તેમના છૂટક દુહાઓનો તો એ

કાળના જૈન વિદ્વાનોના ગ્રંથોમાં ઉપર પ્રમાણે ઘણે ઠેકાણે ઉલ્લેખ મળે છે, પરંતુ જૈન વિદ્વાનોમાં ઘણા કાળ સુધી દેશની પ્રચલિત ભાષાથી જૂની ભાષા લખવાનો રિવાજ રહ્યો છે, તેથી તેમણે જેવી ભાષામાં એ દુહા સંગૃહીત કરેલ છે, તેવી ભાષામાં જ એ દુહા ચારણ કવિઓએ લખ્યા હશે, કે કેમ તેનો સંદેહ રહે છે. પરંતુ તે સિવાય બીજો આધાર ન હોવાથી આપણે એ ઉલ્લેખો પર સંતોષ માનવો પડે છે. જો કે એ દુહાઓનાં પંદરમી સદી પછીનાં રૂપાંતરો તો વિપુલ સંખ્યામાં પ્રાપ્ત થાય છે, અને તેનાં થોડાંક ઉદાહરણ ઉપર આપવામાં પણ આવ્યાં છે.

હેમચંદ્રાચાર્યે તેમના પ્રાકૃત વ્યાકરણમાં ઉદાહરણ તરીકે ચારણ કવિઓના જે દુહા આપ્યા છે, તે બધા તેમનાં સમકાલીન કવિઓના નથી. કેમકે એ ઉદ્ધરણ માત્ર છે. અને ઉદ્ધરણ બહુધા પોતાનાથી પ્રાચીન લેખકો કે કવિઓની કૃતિઓમાંથી લેવામાં આવે છે. હેમચંદ્રાચાર્યના વ્યાકરણનો સમય બારમી સદી છે. ત્યાર પછી પણ 'ચારણો રો પીહર' નામથી પ્રસિદ્ધ કાઠિયાવાડ દેશમાં તો ચારણોનો વસવાટ ચાલુ રહ્યો. પરંતુ બારમી સદી પછી ચારણ જાતિનો અધિકાંશ બુદ્ધિમાન વર્ગ પોતાની આરાધ્યા દેવી આવડ માતાના દર્શન માટે કાઠિયાવાડ અને રાજપૂતાનાના બીજા ભાગોમાંથી નીકળી જેસળમેર રાજ્યમાં આવેલ એ માતાના આદિસ્થાન તેમડા પર્વતના માર્ગે પશ્ચિમ રાજપૂતાનામાં વસવા લાગ્યો. એટલે ત્યાં વસેલા ચારણ કવિઓ ત્યાંની જૂની રાજસ્થાની ભાષામાં કવિતા કરવા લાગ્યા.

એ વખતથી ચારણ કવિઓની કાવ્ય-ભાષાના દેશ-ભેદને લીધે બે વિભાગ પડ્યાઃ રાજપૂતાના, માળવા અને સિંધની પૂર્વ સરહદ પર વસનાર ચારણ કવિઓની ભાષા જૂની રાજસ્થાની કે ડિંગળને નામે, અને ગુજરાત કાઠિયાવાડના ચારણ કવિઓની કાવ્યભાષા સોરઠી કે ચારણ ભાષાને નામે ઓળખાવા લાગી. જો કે એ બન્ને ભાષાઓની પ્રકૃતિ એક જ છે, પરંતુ ડિંગળ ભાષા પર હિંદી ભાષાની અને સોરઠી-ચારણ ભાષા પર ગુજરાતી ભાષાની ખૂબ અસર છે, છતાં બન્ને ભાષાની કવિતાઓ એક જ પ્રકારનાં વૃત્તો કે જે 'ગીત' ને નામે ઓળખાય છે, તેમાં લખાય છે.

સોળમી સદી સુધીમાં તો એ બન્ને પ્રકારની ચારણોની કાવ્યભાષા પૂર્ણ ઉન્નત અવસ્થાએ પહોંચી; અને તેમાં તેનાં બોતેર પ્રકારનાં 'ગીતો' ના પિંગળના તથા શબ્દ-સંગ્રહના વિવિધ ગ્રંથો લખાયા. એ વખતે દુહાનું સ્વરૂપ વર્ણસગાઇ, ઝડઝમક અને અન્ય અલંકારોથી સુશોભિત બની પૂર્ણતાએ પહોંચ્યું. અને તેમાંથી નૈસર્ગિક ઉર્મિમયતા ઓછી થઇ, નાદ-વૈભવ વધ્યો.

સોળમી સદી પછીથી રાજપૂતાનામાં વસતી તમામ ચારણ જાતિ સંસ્કાર-ભેદે 'મારૂ' નામે ઓળખાવા લાગી. અને રાજપૂત જાતિને

સુખ-દુઃખમાં અપૂર્વ સહાય આપવાને લીધે તથા કાવ્ય-શક્તિને બળે એ તમામ મારૂ ચારણો સારી સારી જાગીરો ધરાવતા થયા. જાગીરોના મદમાતા એ ચારણોએ કવિતા, યુદ્ધ અને રાજકાર્યમાં સલાહ આપવા સિવાય બીજા ધંધાને તિલાંજલિ આપી. તેમની રચનાઓમાં પણ દુહાનું સ્થાન તો મોખરે રહ્યું. છતાં કવિતાના શાસ્ત્રીય અભ્યાસે અથવા વધુ આરાધને તેમણે 'ગીતો' અને અન્ય છંદો ઉપર વધુ હાથ અજમાવ્યો, અને એ ગીતોના તથા છંદોના રણકારે તેમનો દુહાનો નાદ કંઈક ઓછો કરી નાંખ્યો. પરંતુ કાઠિયાવાડમાં અને તેમાંય સોરઠ વિભાગમાં વસનાર 'સોરઠિયા' અને 'પરજિયા' નામથી સંસ્કાર અને દેશ-ભેદે ઓળખાતા ચારણોએ કવિતા દ્વારા માન અને જાગીરો મેળવવાને બદલે પોતાના પરાપૂર્વના પશુ-પાલનના ધંધાને વધુ મહત્ત્વ આપ્યું. અને તેને ચાલુ રાખ્યો. એટલે તેમનામાં પરાપૂર્વનો દુહા-પ્રેમ અખંડ ચાલુ રહ્યો. કારણ કે, ચારણજાતિ નૈસર્ગિક કવયિત્રી હોવાથી ગમે તે ધંધો કરવા છતાં અને વિદ્યાભ્યાસ સિવાય પણ તેની કાવ્ય-શક્તિ નષ્ટ થઇ નથી. કવિતા તો એના લોહીમાં મળી ગયેલી છે. અને તેથી જ કોઈ પણ ચારણ 'વણ પઢિયો વાતુ કરે' છે.

ચારણ જાતિને ઇશ્વરે કાવ્ય-શક્તિની સાથે મીઠા કંઠની પણ બક્ષીસ આપેલી છે. સોરઠ દેશની સ્ત્રીઓના કંઠની પ્રશંસા તો પાણિનિ જેવા ધુરંધર વિદ્વાને પણ પોતાના વ્યાકરણમાં કરી છે. એ દેશમાં સુરમ્ય કંઠવાળા ચારણોનો વસવાટઃ પછી પૂછવું જ શું? મેરૂતુંગાચાર્યે પણ દુહા-વિદ્યાની સ્પર્ધા કરતા ચારણોને સોરઠના જ ગણાવ્યા છે, એટલે હેમચંદ્રાચાર્યના વખતથી જ એ દેશના ચારણો દુહાની રચના તથા બોલવા માટે પ્રસિદ્ધ છે. અને ત્યાર પછી પણ ઉપર જણાવ્યું તેમ એમણે એ કળા સંઘરી રાખી છે. ચારણોના એક મુખેથી બીજે મુખે અને બીજેથી ત્રીજે એમ હજારો મુખે શૌર્યકથાઓ, પ્રેમકથાઓ, નીતિ-વાર્તાઓ અને જ્ઞાનઉપદેશના દુહાઓ રમતા ગયા. જેમ જેમ તેમની જીભની સરાણે એ દુહા ચડતા ગયા, તેમ તેમ કંઠસ્થ વૃત્તિને આવશ્યક તેનો નાદ-વૈભવ વધતો ગયો. એટલે કે, તેને મીઠી હલકથી બોલવા-ગાવાની અનુપમ કળા એ માલધારી ચારણોને સાધ્ય થઈ. અને તેથી જ દુહામાં પણ "સોરઠ રો દુહો ભલો" એ કહેવત પ્રચલિત બનવા પામી.

કાવ્યશાસ્ત્રના જ્ઞાતા ચારણ કવિઓ જેવું ગૌરવભર્યું સ્થાન શિષ્ટસમાજમાં ભોગવતા આવ્યા છે. તેવું સ્થાન આ માલધારી ચારણો, તેમના સંગી-સાથી કાઠી, આયર, રબારી, ભરવાડ અને મેર વગેરે માલધારી સામાન્ય લોક-સમાજમાં ભોગવતા આવ્યા છે. અને પોતાની કંઠસ્થ વાણીનું

(અનુસંધાન પૃષ્ઠ ૧૪ ઉપર)

દૈવીકુળ-ઉજાળક સાધ્વી દેવી શ્રી આંબુબાઈનો જીવન-પરિચય

ચારણ જાતિમાં સમય સમય પર દૈવી વિભૂતિસંપન્ન અનેક મહાશક્તિઓએ જન્મ લઇને તેને ગૌરવાન્વિત કરી છે. હિંદુસમાજની અન્ય જાતિઓને મુકાબલે ચારણ જાતિનો મહિલા-સમાજ બહુ તેજસ્વી લેખાયો છે. અને તેથી જ ચારણો દેવીપુત્ર કે દેવીના બાળકો ગણાય છે. આજે પણ મારવાડમાં ખુડદ ગ્રામ-નિવાસી દેવી શ્રી ઇંદિરાબાઇ રત્નુ તેમની દૈવી શક્તિ માટે સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ છે. અત્રે થરપારકર જેવા શુષ્ક પ્રદેશમાં ભક્તિની વેલિ સજીવન રાખનાર એવાં જ એક વિભૂતિસંપન્ન સાધ્વી ચારણ બાઇનો ટૂંક જીવન-પરિચય આપવા પ્રયત્ન કર્યો છે.

બહેન આંબુબાઈનાં પ્રથમ દર્શન મને ૩૨વર્ષ પૂર્વે તેમના ધર્મગુરૂ સ્વ૦ ભક્તરાજ શ્રી મઘારામજીની મંડળીમાં થયેલાં; અને ત્યાર બાદ સને ૧૯૦૭ની સાલથી મારી નોકરી ઉક્ત ભક્તારાજના દીપલા ગામે, અને પછી મીઠી ગામે—જ્યાં બાઇનો નિવાસ છે; ત્યાં થવાથી બહેન સાથે પરિચય વધતો ગયો. છેવટે સંજોગવશાત્ મારો નિવાસ પણ મીઠી-માં જ રહ્યો. અને બહેન સાથે તીર્થાટનમાં જતાં પરસ્પર ધર્મનાં ભાઇ-બહેનનો સંબંધ બંધાયો;જેથી તેઓ મારા કુટુંબ સાથે સગી બહેન જેવો સંબંધ સાચવે છે. વળી નિત્ય સત્સંગમાં આવવા-જવાથી અને કથાવાર્તામાં ભાગ લેવાથી, ભેળાં જ છીએ. આ બધું બનવામાં ઇષ્ટદેવની કૃપા અને નિમિત્ત કારણ બહેનની પ્રેરણા-શક્તિનું કહી શકાય.

(પૃષ્ઠ ૧૩નું અનુસંધાન)

એમને રસાસ્વાદન કરાવી એ લોકોને પણ તેમણે દુહા કંઠસ્થ રાખી બોલવાનો નાદ લગાડ્યો છે. છતાં મીઠી હલકથી દુહા બોલવા અને ગાવા એ તો ચારણના બાપનો છે. એ વાતની કોઇથી ના કહી શકાશે નહિ. દુહાને શું શૌર્યકથા કે શું પ્રેમકથા, શું નીતિ-ઉપદેશ કે શું ઉદ્‌બોધન રૂપે જનતાનો પ્રિય છંદ બનાવવાનું માન ચારણોને છે, અને રહેશે. *

* આ લેખ તૈયાર કરવામાં સ્વ૦ ઠાકુર કિશોરસિંહજી સોદાના 'चारणों का साहित्य,' પં૦ રામચંદ્ર શુક્લના 'काव्यभाषा,' શ્રીયુત ઝવેરચંદ મેઘાણીના 'સોરઠ અને તેનું સાહિત્ય,' શ્રીયુત મોહનલાલ દલીચંદ દેસાઇના 'જૂની ગુજરાતી ભાષાનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ' અને શ્રીયુત મધુસૂદન ચિમનલાલ મોદીના 'જૂના ગુજરાતી દુહા' આદિ લેખોની સહાયતા લેવામાં આવી છે. અને તે બદલ એ વિદ્વાનોનો હું ઉપકાર માનું છું. —લેખક]

ધન્ય મારા પ્રભુને ! ક્યાં મારો જન્મ વાવ-થરાદમાં ને બહેનનો ગડડા (થળ) માં ! કયો દેશ, કઇ જાતિ અને કયા જન્મના સંસ્કાર ! મને લખતાં આનંદ થાય છે, જાણે અમે સગાં ભાઇ-બહેન ન મળ્યાં હોઇએ ? કોણ જાણે કેટલાય જન્મોના વિખૂટા પડેલા ગહન સંબંધો તે આ રીતે પાછા જોડાયેલા અનુભવાય છે. વાહ પ્રભુ ! તમારી ગહન ગતિ છે.

બહેન સ્વભાવે માયાળુ હોવા ઉપરાંત પરોપકારવૃત્તિ,પોતાની જાતમાં અને અન્ય જાતમાં બિલકુલ ભેદભાવ ન રાખતાં आत्मवत् सर्व भूतेषु–સર્વપ્રાણીઓને પોતાની પેઠે જોવાં, सर्वभूत हितेरता–સૌનું હિત ચાહવું ઇત્યાદિ સદ્‌ગુણસંપન્ન છે.

પ્રાક્કથનમાં ઉલ્લિખિત ગુણોના આદર્શરૂપ આ બહેન થરપારકર પ્રદેશમા પોતાનો ધર્મ-મય શુદ્ધભક્તિનો પ્રભાવ પાડીને લોક-કલ્યાણની અહૈતુકી પ્રવૃત્તિ સેવી રહ્યાં છે તેમના ભક્તિમય જીવનની રૂપરેખા દોરવાનો સુઅવસર મારા હાથને પ્રાપ્ત થતાં સંતોષ અનુભવું છું.

જડવાદના આ જમાનામાં સાધુ-સંતો અને સન્નારીઓનાં જીવનવૃત્તાંતોના અભ્યાસની ખાસ અગત્ય છે. કેમકે તે વડે નિઃસ્વાર્થતા, ઉદારતા, નિષ્પ્રપંચતા આદિ સદ્‌ગુણો, જે તેમના જીવનમાં ઓતપ્રોત થયેલા હોય છે, તેનું અનુકરણ કરવામાં આપણને મદદ મળે છે. માટે તેવાં જીવન-ચરિત્રો જેમ વધુ આલેખાય અને તેનો વધુ અભ્યાસ થાય તો સંસારી જીવોને લાભપ્રદ અને ઉપયોગી નીવડે એ નિર્વિવાદ છે.

બહેન આંબુબાઇનો જન્મ વિ૦ સં૦ ૧૯૪૨ના ચૈત્ર વદિ ૧૦ ને દિને થળપ્રદેશ અંતર્ગત ગડડાગામમાં, પિતા મૂળચંદજી સ્વરૂપદાન દેથા અને માતા ત્રીજબાઇની કૂખેથી થયો છે. એમનાં માતુશ્રી હજુ હયાત છે. બહેનના એકમાત્ર ભાઈ નામે નીંબરાજ તે ગડડાની સ્કૂલમાં હેડમાસ્તર છે. ભાઇને ત્રણ પુત્રો–નામે ત્રિલોક, રણમલ અને ભમરદાન છે. બહેનનું સાસરું અને હાલમાં નિવાસ મીઠીમાં છે. તેમનું લગ્ન સં૦ ૧૯૫૧ના વૈશાખ સુદિ ૩ ના દિને થયેલું, પરંતુ ત્યાર પછી ત્રણ જ વર્ષે સં૦ ૧૯૫૪ ના શ્રાવણ સુદિ ૧૪ના દિને તેમને વૈધવ્ય પ્રાપ્ત થયું. એ રીતે ૧૨ વર્ષની વયમાં જ બહેનનો સંસાર-વ્યવહાર સમાપ્ત થઈ ગયો. એમ માનો કે બહેનને માટે સંસારનું સુખ નિર્માણ જ નહોતું. પૂર્વના કોઈ ઋણાનુબંધને લીધે જ લગ્નનો પ્રસંગ બન્યો હતો; અને પાછળથી સંસારની એ મોહજંજાળ છૂટવાથી તેમને ભક્તિમય જીવન પ્રાપ્ત થયું.

બહેનના પતિ ભાનીજી દયારોજી લુઅડ ગોત્રના ચારણ હતા. તેમના અવસાન બાદ બહેનના સાસરામાં વૃદ્ધ સાસુ, એક દિયર મેઘ-રાજી અને નણંદ જાનુબાઇ તથા નણંદનો

પુત્ર સારો એટલાં હતાં. આ કુટુંબ જીવિત હતું ત્યાં સુધી ઘરની સ્થિતિ ગરીબ હોવાથી બહેને કેટલાક વખત સુધી લોકોનાં દળણાં-પાણી કરીને પણ કુટુંબનો નિર્વાહ કરવો પડયો હતો. પરંતુ ઇશ્વરેચ્છાથી આ કષ્ટનો છેડો તરત જ આવી ગયો.

બહેનનો દિયર મહેરોજી સં૦ ૧૯૫૯માં, સાસુ ૧૯૬૦માં, નણંદ ૧૯૬૪માં અને નણંદનો દીકરો ૧૯૬૮માં ગુજરી ગયો. ઇશ્વરની ગહન ગતિ છે. ભક્તહૃદયને સરળ અને સાર્થક બનવા માટે કુટુંબજંજાળથી વહેલી છૂટી મળવાની જરૂર છે. ભક્તલોકો તો દુઃખ માગી લે છે. પરમભક્ત નરસિંહ મહેતાનો પુત્ર મરી ગયો, ત્યારે તેમણે એક પદમાં કહ્યું હતું:

“ભલું થયું ભાગી જંજાળ,
સુખે ભજીશું શ્રી ગોપાળ.”

બહેનને પણ કર્મસંયોગે કુટુંબજંજાળથી તરત જ છૂટકો મળ્યો; એટલે ભક્તિમય જીવન ગાળવાનો સુઅવસર અનાયાસે પ્રાપ્ત થઇ આવ્યો.

જેના મનમાં ભક્તિનો સાચો ભાવ હોય છે, તેમને પ્રભુ યોગ્ય ગુરૂ મેળવી આપ્યા વગર રહેતો નથી. બહેનની જાન મીઠી તરફ આવતી હતી ત્યારે જ રસ્તામાં એક મુકામ પર સ્વ૦ પૂજ્ય ભક્તરાજ મધારામજીનાં તેમને દર્શન થતાં, તેમણે સંકેતથી બહેનને માથે હાથ ફેરવી રડતાં છાનાં રાખીને પુત્રીવત્ વાત્સલ્યભાવ દર્શાવ્યો હતો.

ભક્તરાજ મધારામજીનું સાસરૂં મીઠીમાં હતું, તેથી તેઓ અવારનવાર ત્યાં આવતા. અને ઘણો વખત સત્સંગનો આનંદ-પ્રવાહ ચાલુ રહેતો. સં૦ ૧૯૫૫ની સાલથી બહેન આ સત્સંગમાં અન્ય બાઈઓની સાથે આવવા લાગ્યાં. જો કે બાળવિધવા હતાં, તેથી સત્સંગમાં આવતાં તેમના મનમાં કાંઇક સંકોચ રહેતો. પરંતુ આંતરિક શ્રદ્ધા અને આત્મબળ પૂર્ણ હોવા ઉપરાંત પૂર્વના સંસ્કાર સારા હતા; તેથી ધીરે ધીરે તેમનું મન, સત્સંગમાં જોડાતું ગયું. અને કુટુંબની જંજાળ મટતાં મિથ્યા સંકોચનું દુઃખ પણ મટી ગયું.

દુઃખ એ જ માણસ જાતની કસોટી છે. દુઃખથી જ મનુષ્ય પરમેશ્વરને પોતાના હૃદયમાં રાખી શકે છે. હજારો ભક્તો દુઃખથી જ આ મોહમાયારૂપી સંસાર તજી ભવસાગર તરી શક્યા છે; કારણ કે દુઃખમાં જ પ્રભુનું સ્મરણ સારૂં થાય છે. નરસિંહ મહેતા, મીરાંબાઈ, કબીર-સાહેબ વગેરે ભક્તોએ સંસાર છોડીને સંસાર-સાગર પાર કર્યો છે.

જ્યારે ભક્તની સાચી વૃત્તિ અને પ્રેમની લગની ઇશ્વરભજનમાં લાગે છે, ત્યારે સંસારની બાધાઓ આપોઆપ છૂટી જાય છે. મીરાંબાઇએ કહ્યું છે કે:—

મેરે તો ગિરધર ગોપાલ, દૂસરા ન કોઇ;
સંતસંગ બૈઠ બૈઠ, લોક-લાજ ખોઇ.
મેરે તો શ્રી કૃષ્ણલાલ, દૂસરા ન કોઈ.

સત્સંગ-મંડળમાં આવવાં જવાથી બહેનના મનની શંકાઓ પણ આપોઆપ ભાગતી ગઈ અને પ્રભુભજનમાં વૃત્તિ લાગતી ગઈ. એક ઈશ્વરનું શરણ જ સાચું છે, એવો નિશ્ચય-ભાવ થવા લાગ્યો.

એક દિવસ ખરા મધ્યાહ્ને તડકામાં પાણીનો ઘડો માથે લઇને તેમને જતાં જોઇ ભક્ત મઘારામજીનું કરુણાળુ હૃદય એકાએક દ્રવિભૂત થઇઆવ્યું. તે જ દિવસે સત્સંગમાં આવતાં તેમણે આદેશ કર્યો કે બહેન, તમારા કર્મોનો (કષ્ટોનો) અંત આવી ગયો છે. હવે લોકોની મજૂરી કરવી છોડી દઇ પ્રભુની સાચી મજૂરી કરો—પ્રભુનું ભજન કરો. શ્રદ્ધા રાખો, પ્રભુ દીનદયાળુ છે. આ પેટ તેણે આપ્યું છે માટે તેની ચિંતા તેને સોંપી, તમે નિશ્ચિંત રહો. તમારા પેટ માટે તો હવે ઘરમાં ચૂલો સળગાવવાની પ્રવૃત્તિ પણ કરવી નહિ. એ બોધવચનોના શ્રવણથી બહેનની અચળ શ્રદ્ધા બેઠી, અને ત્યારથી લોકોની મજૂરી કરવી છોડી દઈ, સદ્‌ગુરુવચન પ્રમાણે પ્રભુભજનમાં મગ્ન રહી શાંતિ-સંતોષમાં તેઓ સમય વ્યતીત કરે છે. તેઓ કોઇની પાસે યાચના કરતાં નથી. ઈશ્વરકૃપાથી ઘેર બેઠાં જે જોઇએ તે મળી આવે છે. મનના આવેશો મટી જવાથી નિર્વાહ માટે જરા પણ ચિંતા રહેતી નથી. ભોજન માટે પ્રાયઃ નિમંત્રણો આવ્યા કરે છે, અથવા ઘેર બેઠાં લોકો સીધાં પહોંચાડી જાય છે. ભાવિક જનોની સારી આવક હોવાથી તેઓ અતિથિ અને સાધુ-સંતોનો સેવા-સત્કાર ભોજન-પાણીથી કરે છે. અન્યનું ભોજન પોતાને ત્યાં હોય ત્યારે પોતે પણ સાથે જ જમે છે.

તીર્થાટન ઉપર તેમને બહુ પ્રેમ છે. કાંઇક પૈસા ભેગા થાય કે દરસાલ કોઇને કોઈ તીર્થ કરી આવે છે. સંગ્રહ રાખવાનો સ્વભાવ જ નથી.

આજ સુધીમાં નીચે પ્રમાણે તીર્થયાત્રાઓનો દાન-પુણ્ય સાથે લ્હાવો લીધો છે. અને તે પણ એકલાં જઇને નહિ પણ તેમનાં કેટલાંક સત્સંગી બાઇઓ અને ભાઇઓને સાથે લઈ જઈ, તેઓને પણ લાભ લેવરાવી કૃતાર્થ કર્યાં છે, અને કરતાં રહે છે. કેટલાંક તીર્થો તો એકથી વધુ ફેરા કર્યાં છે; જેનો આંકડો દરેકની સાથે આપ્યો છે— હરિદ્વાર-૧૪, ઋષિકેશ-૧૧, કાશી-૭, અયોધ્યા-૭, ગયાજી-૩, બદરીનારાયણ-૧, દ્વારકાં-૪, રામેશ્વર-૧, જગન્નાથ-૧, ડાકોરજી-૨, નર્મદાજી-૩, આબુરાજ-૭, સિદ્ધપુર-૭, વ્રજયાત્રા-૧૦, પુષ્કરરાજ-૬, લક્ષ્મી-૩, ગિરનાર-૩, સુદામાપુરી-૧, ચિત્રકોટ-૧, પ્રયાગ-૭, અમૃતસર-૪, ગોદાવરી-૨, બ્રહ્મકાંચી-૧, નિમિષારણ્ય-૧, સોરમઘાટ-૧ અને ધરણીધર-૨. આ સિવાય બીજાં નાનાં તીર્થો પણ ઘણાં કરેલાં છે.

વર્ષમાં તેઓ બે ફેરા-ચૈત્ર અને આસો મહીનામાં-નવરાત્રિના દિવસોમાં નવ-નવ અપવાસ કરે છે. જેથી તેમનું શરીર વધારે સુખી રહે છે. બીજાં વ્રતો પણ કરવાનો કાંઇક

નિયમ છે. નિરંતર ભજનમાં મગ્ન રહે છે. પોતે જ્ઞાન મેળવીને બીજી બાઇઓને જ્ઞાન મેળવવાની સગવડ કરતાં રહ્યાં છે. નાનાં પરમાર્થના કામો પણ કરે છે. તેમના ઉત્તમ ચારિત્ર્ય ઉપર લોકોનો વિશ્વાસ બેસી ગયો છે; જેને લીધે આવો સારો વહીવટ તેઓ ચલાવે છે. તેમનામાં કાર્યદક્ષતા, તીવ્રબુદ્ધિ અને આત્મબળ સાથે વ્યવહારકુશળતા હોવાથી તેમના સમાગમમાં આવનારાંઓને પણ તેઓ ઘણાં સહાયભૂત થઈ પડે છે. તેમનામાં વિશિષ્ટ ગુણ એ છે કે, તેઓ સાફ નિર્લોભી ને નિઃસ્પૃહી છે. ગૃહસ્થાશ્રમમાં હતાં તે જ કપડાંમાં હાલ રહે છે; પરંતુ અંતઃકરણ ભક્તિથી રંગાયેલું છે. કોઇ પણ શુભ વિચાર મનમાં ઊઠે તો તે પૂરો કરવામાં બનતાં લગી ઢીલ કરતાં નથી. નિરંતર પુરૂષાર્થ–પરાયણ રહે છે. લોકો તેમને પૂજ્યભાવથી માને છે. પ્રભુસ્મરણ સિવાય અન્ય પ્રવૃત્તિ તેમને ગમતી જ નથી. તેઓ ગુરૂસેવા-પૂજામાં અડગ શ્રદ્ધાળુ છે. ગુરૂનો પ્રતાપ માની તેમની જય બોલાવે છે. " મહાન પુરૂષની દયાથી કે પ્રભુના કૃપાકટાક્ષથી મનુષ્યને દુઃખની પાછળ ભક્તિરૂપી સુખ પ્રાપ્ત થાય છે. દુઃખ એ સુખની કસોટી છે. " તેનો આબેહૂબ આ દાખલો છે.

બહેનના સદ્‌ગુરૂ (ધર્મપિતા) ભકતરાજ મઘારામજી ભગવાનના અનન્ય ભક્ત હતા. આ દેશમાં ડંકાની ચોટે તેમની માન્યતા છે. તેમણે ગૃહસ્થાશ્રમમાં જ રહીને પોતાની અનન્ય ભકિત વડે ભગવાનનો સાક્ષાત્કાર કર્યો હતો. તેમના સ્વરૂપમાં પ્રભુએ આવીને તેમનું ઋણ ચૂકવી આપ્યું હતું અને અનેક પરચા પૂર્યા હતા. પૂર્વના પુણ્ય સંજોગે આવા સાચા સમર્થ સદ્‌ગુરૂ તેમને ઘેર બેઠાં જ મળ્યા હતા. શ્રી મઘારામજીનું શરીર સં૦ ૧૯૬૮ ની સાલમાં પંચત્વને પામ્યું. તે ઠેકાણે દીપલામાં દહેરી કરાવી ને તેમના તથા બહેનના ભાવિકજનો દરસાલે ત્યાં મેળો ભરી ઉત્સવ મનાવે છે. મીઠીમાં બહેનની જગ્યામાં તેમનો ફોટો સ્થાપિત કરીને તે જગ્યા ઉપર ' ભકત મઘારામની કુટિયા ' એવું નામ રખાવ્યું છે. ત્યાં ભકતરાજની આજ્ઞા પ્રમાણે બહેનના આધિપત્ય તળે અહર્નિશ ભજનવાણી, કથાકીર્તન, અને જ્ઞાનચર્ચા થાય છે. એ ભકતરાજ મઘારામજીનું જીવનચરિત્ર તેમની ભજનમાળા નામક પુસ્તકમાં છપાયેલું છે. બહેન પોતે ઘણું ભણેલાં નથી, પરંતુ ઘેર બેઠાં અભ્યાસ કરી ગીતાજીની ભાષાટીકા, હિંદી ભાષામાં શ્રીમદ્‌ ભાગવત, અને તુલસીકૃત રામાયણ ટીકા સહિત વગેરે સરળ ધર્મગ્રંથોની કથા કરી શકે છે.

ટૂંકમાં તેઓ સૌનાં શુભેચ્છક હોઈ, સર્વ સાધારણ પ્રત્યે આત્મભાવજન્ય નિર્મળ પ્રેમ રાખી, અતિથિ સત્કાર અને ગૌ-સંતની સેવામાં તત્પર રહે છે. અને પશુપક્ષીનું દાણા-ચારાથી પોષણ કરવામાં આનંદ માને છે. તેમનું જીવન સર્વદા આદર્શમય છે.

બહેનનો ધર્મભાઇ

પીતાંબરદાસ અર્જુનજી વારડ

નિવૃત્ત મામલતદાર, બ્રિટીશ ગવર્નમેન્ટ, મીઠી (થરપારકર)

 સેવા અને સંસ્થા 

લેખકઃ શ્રી જયમલ્લદાનજી શિવદાનજી પાયક, લોદ્રાણી (વાગડ-કચ્છ)

મહાત્મા ભર્તૃહરિએ કહે છેઃ— सेवाधर्मः परम गहनो योगीनामप्यगम्यम् । અર્થાત્ સેવાનો ધર્મ એટલો ગહન છે કે યોગીઓ પણ તેને પૂરેપૂરો જાણી શકતા નથી.

સંસારનાં સુખોને માનવકલ્યાણ દ્વારા-આત્મકલ્યાણ સાધવા માટે તૃણવત્ ગણી છોડી દેનાર યોગીઓ પણ સેવા-ધર્મને સંપૂર્ણ સમજી શકતા નથીઃ તો આપણા જેવા દુન્યવી લોકોની તો વાત જ શી કરવી? છતાંય આપણા જીવનવ્યવસાયો-માંથી સમય મેળવી જનસમાજનું, દરિદ્ર-નારાયણોનું કલ્યાણ થોડે ઘણે અંશે પણ આપણે જો કરી શકીએ તો જ માનવજીવનની સાર્થકતા. આપણો મનુષ્ય તરીકેનો અવતાર ફક્ત આપણી સુખ-સગવડો માટે નથી. આપણાં શાસ્ત્રોએ ત્યાગને મોટો ગણેલ છે. આપણે જે દેશમાં જન્મ્યા, જે જ્ઞાતિમાં કે કુટુંબમાં આપણો જન્મ થયો, તે દેશ, જ્ઞાતિ, કુટુંબ અને દરેક માનવી પ્રત્યે આપણી અમુક પ્રકારની ફરજ છે. સમાજરચનાની આજ ગુરુ ચાવી છે. મહાત્મા તુલસીદાસે "જીવ જીવ કે આસરે જીવ કરત હૈ રાજ" કહ્યું છે, તે પણ આવા જ અર્થમાં.

મનુષ્યોને કુદરતમાંથી પણ સેવામાર્ગનું સૂચન મળી રહે છે. એક કવિએ કહેલ છે કે—

> સરવર, તરુવર, સંતજન,
> ચોથો બરસે મેહ;
> પરમારથ કે કારણે,
> ચારોં ધરિયો દેહ.

આપણાં શાસ્ત્રો આવી નિઃસ્વાર્થ સેવાઓના દાખલાઓથી ભર્યાં પડ્યાં છે. પોતાના બલિદાનથી જગતનું કલ્યાણ થતું હોય તો બલિદાન આપતાં મામુસો અટકેલ નથી. મહાત્મા દધીચિની કથા સૌ જાણતા હશે. તે જ સાચી સેવા છે. જે સેવામાં જરા સરખી-પણ સ્વાર્થની ગંધ હોય તે સાચી સેવા કહી શકાય નહિ. આત્મભોગ આપ્યા સિવાય કોઈ પણ સેવા કરી શકાતી નથી. એક કવિએ કહેલ છે કેઃ—

> આત્મભોગ આપ્યા વિના,
> કદી ન સુધરે કામ;
> સળગે બળે દિવાસળી,
> પ્રગટે દીપક ધામ.

આજની આપણી સમાજરચનાના પાયામાં અનેક વીર પુરુષોનાં જીવન હોમાઈ ગયાં હશે. કોઈ રાષ્ટ્ર સ્વતંત્ર થાય તેટલા માટે

અનેક આશાભર્યા યુવાનોએ બલિદાન આપેલાં હોય છે. હિંદુસ્થાન સ્વતંત્ર થાય એટલી જ ભાવનાથી માબાપ, સ્ત્રી-પુત્ર, નાનાં ભાઈ-બહેનો, મિત્રો, સુખ-સગવડો છોડી ફક્ત અમારો દેશ સ્વતંત્ર થાય, અમારા ભાઈઓને, અમારી બહેનોને પૂરતી રોટી મળે તે માટે આંદામાનના જીવતા નરક સમાન કારાગૃહોમાં જીવન પર્યંત સડના, ફાંસીને માંચડે ચડી જતા યુવાનોનો સાચો આત્મત્યાગ છે. તે જ સાચી સેવા છે.

સેવાપંથના એ દીક્ષાધારીને પોતાનું કે પારકું હોતું નથી. તેને મન તો "સભી ભૂમિ ગોપાલ કી, સબ ઈશ્વર કે બાલ" એ ભાવના હોય છે. તેને મારૂ, સોરઠિયા, પરજિયાઓના ભેદોમાં અટવાવાનું હોતું નથી. અમુક કુળ ઊંચું કે અમુક કુળ નીચું, તે તરફ તેનું લક્ષ્ય પણ ન હોવું જોઈએ; "ચારણ એક ધારણ." કારણ કે

"ઈશ્વરે નરો ઉપાવિયો,
કૃષ્ણ ચોરાડો કીધ;
બ્રહ્મા ચુંવો નિપાવિયો,
શાખાં તીનૂં સિદ્ધ.

સમસ્ત ચારણ જ્ઞાતિના હિતમાં જ પોતાનું હિત સમજનાર, તે હિત સાધવા માટે નિઃસ્વાર્થભાવે સેવા કરનાર જ સાચો સેવક છે. તેની સેવાનો તેને બદલો ભલે ન મળે, તેની સેવા ફળદાતા કદાચ ન પણ થાય, પરંતુ તેને મન તો ગીતામાં ભગવાન્ શ્રીકૃષ્ણે કહેલ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन–ફક્ત કર્મ-કાર્ય કરવાનો જ પોતાનો અધિકાર છે; ફલદાતા ઈશ્વર છે એ વિચાર. આ પ્રમાણે "હું" ને ભૂલી સેવા કરનારા કેટલા ચારણો છે? આજે કહેવાય છે કે અમુક અમુક ભાઈઓને ચારણોની સેવાની લગની લાગી છે. તે લગની સાચી છે? સાચી લગની કેવી હોય તે બાબતમાં એક દુહો છે કેઃ

લગની લગની સબ કહે,
લગની કહાવૈ સોય;
'નારાયન' જેહિ લગનિ મેં,
તનમન ડારે ખોય.

આ પ્રમાણે આપણામાં છુપાઈ રહેલા અહંને આપણે ત્યાગી શકીએ, ચારણોના ઉત્કર્ષના પ્રશ્નોમાં અને ઉપાયોમાં તન્મય થઈ શકીએ, ત્યારે સાચી સેવા કરી કહી શકાય.

કેટલાક ચારણભાઈઓને ફંડ ઉઘરાવતાં કે જ્ઞાતિસેવાનાં બીજાં કાર્યો કરવામાં પોતાની જાત હલકી થઈ જતી હોય તેમ લાગે છે. સેવામાર્ગીને ગમે તેવું હલકું કાર્ય કરતાં શરમ ન આવવી જોઈએ. અલબત તે આપણી નીતિ કે ચારિત્ર્યને બાધક ન હોવું જોઈએ. કલકત્તા-કોંગ્રેસમાં મહાત્મા ગાંધીજીએ પાયખાનાં સાફ કરવાનું, અને એઠવાડો સાફ કરવાનું કાર્ય કર્યું હતું. આથી મહાત્માજી હલકા બની ગયા નથી. આજે સમસ્ત વિશ્વમાં તેમના પ્રત્યે માનની લાગણીથી જોવાય છે.

આપણા હિંદુઓના ઇશ્વર મનાતા ભગવાન શ્રી કૃષ્ણે પણ મહારાજા યુધિષ્ઠરના રાજસૂય યજ્ઞ પ્રસંગે એઠવાડનાં પત્રાળાં એકઠાં કરી ઉકરડે નાંખવાનું કાર્ય માથે લીધું હતું.

સેવાનું કાર્ય શીખવા માટે પરદેશ જવાનું નથી, તેના માટે કોઇ શાળા કે કૉલેજ નથી. આપણે માણસ છીએ તેથી બીજાં આપણાં ભાઇ બહેનો પ્રત્યે આપણી ફરજ છે. એ ભાવની જાગૃતિ થવી અને તે ફરજ બજાવવા પ્રયત્ન કરવો તે જ સેવાનું શિક્ષણ છે.

આપણો આધુનિક સમાજ કેવો બની ગયેલ છે. તેનો આપણે વિચાર કરવો જોઇએ. સેવા માટે આ ક્ષેત્ર નાનું નથી. આપણા બીજા બંધુઓના દુ:ખમાં ભાગ લઈ, તેઓનાં દુ:ખ-દર્દો મટાડવા આપણાથી બનતું બધું કરવું જોઇએ. સેવા કરવાથી બીજાઓ સાથે આપણું પણ હિત સધાય છે. કેમકે:

સેવા કીધે સાંપડે,
પરમ મોક્ષનો પાસ;
સેવા કરીએ સ્નેહથી,
દાની થઈને (જેમલ) દાસ.

ઘણી વખત એવું બને છે કે, સેવા કરવા ઇચ્છતા, સેવાયજ્ઞમાં પોતાનો યોગ્ય ફાળો આપવા ધારતા ભાઇ કે બહેનને યોગ્ય ક્ષેત્ર મળી શકતું નથી. પરંતુ હવે આપણે તેમ કહી શકીએ તેમ નથી. છેલ્લાં ચાર પાંચ વર્ષથી આપણી શ્રી ચારણ-હિત-વર્ધક સભાની અને તેના ફળ-સ્વરૂપ શ્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલયની સ્થાપના થયેલ છે. દરેક સુજ્ઞ ચારણ ભાઈ-બહેનની ફરજ છે કે 'ફુલ નહિ તો ફૂલની પાંખડી' આપણી આ સંસ્થા પ્રત્યે. બૃહદ્ ગુજરાતની આપણી આ બની સંસ્થાને પગભર કરવા અને કાયમ કરવા માટે તે યથાશક્તિ મદદ કરે. જે ભાઇઓ બીજી સેવા ન કરી શકે તે પોતાથી બની શકે તેટલી આર્થિક મદદ કરે અને બીજાઓને મદદ કરતાં કરે તો તે પણ સાચી સેવા ગણાશે. બૃહદ્ ગુજરાતમાં આપણાં પાંચ હજાર ઘર છે. ઘર દીઠ જો વાર્ષિક એક એક રૂપિયો મળે, તો પણ વાર્ષિક પાંચ હજાર રૂપિયા સંસ્થાને મળે. આ પ્રમાણે થાય તો આપણી આ બે સંસ્થાને અત્યારે જે આર્થિક મુશ્કેલીઓનો સામનો કરવો પડે છે, તેનો થોડે ઘણે અંશે ઉકેલ થાય. અને તેટલી રાહત અને સમય મળતાં આપણા સમાજજીવનમાં પેઠેલા સડાઓ દૂર કરી ભવ્ય ઇમારત ચણવાનો આપણને સુઅવસર સાંપડે. છેવટે આ ગરીબ સેવકની અરજ છે કે:

પદ

રાગ કલાઇડો

(શ્રીમંતો વખત વિચારો એ રાગ)

ચારણ-હિત-સભાને સારો રે, સેવાનો આપજો ફાળો. ટેક
તન-મન-ધનને વચન થકી, નેન અમીએ ન્યાળો;
ઊગરવાનો એ જ છે આરો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૧

પ્રેતભોજનને પોસ્ત પરવાના કામથી પરવારો;

ભૂંડપનો ફેંકી દ્યો ભારો, ચારણ–હિત-સભાને સારો. ૨

કન્યાવિક્રયનો ત્યાગ કરીને, સધવા સુધારો;

વિધવાનાં દુઃખ વિચારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૩

બોર્ડિંગ ખુલી ભણાવો બાળક, નીચતા નિવારો;

પોતાની મહત્તા પાળો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૪

શંકર, જશકર્ણ, રામદાન શોભે, ઠારણ દિલઠારો;

ફૂલો જ્ઞાતિ--દુઃખ દમનારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૫

જીવણ, નારણ, ખેતસિંહજી, મેરૂ માયાળો;

પાયકજીને પંથ છે પ્યારો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૬

સાહ્ય કરો ને કાર્ય સુધારો, 'જેમલ'ના યારો;

આવ્યો હવે નજીકમાં આરો, ચારણ-હિત-સભાને સારો. ૭



'ચારણ'નો સત્કાર

ચારણ-સાહિત્યના મર્મજ્ઞ શ્રી ઝવેરચંદ મેઘાણીના તંત્રીપદે પ્રગટ થતું પ્રસિદ્ધ રાજસ્થાની પત્ર 'ફૂલછાબ' તેના તા. ૨૯–૯–૩૯ના અંકમાં લખે છે કે—

ચારણ કોમ વારસાને હાથ ધરે છે

'ચારણ' ત્રૈમાસિકનો મોડો મોડો પણ ત્રીજો અંક હાથમાં આવે છે, અનિયમિતતા માટે દુઃખ થાય છે; પણ પાનાં ફરે છે અને દુઃખ ભુલાવે છે.

ચારણ તો આજના વ્યવસ્થિત લેખન સંપ્રદાયની–સાહિત્યોપજીવી જનતાની આદિ કોમ. સાહિત્ય પર જીવેલી, આગળ વધેલી અને એને ભૂલી જતાં પાછી પડેલી. એ ચારણ કોમનું આ ત્રૈમાસિક અત્યારના સાહિત્ય જગતમાં પોતાનો એકડો નોંધાવવા આવેછે. એનો વર્તમાન ઇતિહાસ ઓછો છે; જ્ઞાતિને અત્યારના સાહિત્યિક જગતમાં આગળ

પડતું સ્થાન આપે તેવો નથી. પણ ભૂતકાલીન વારસો તો ગર્વ લેવા જેવો છે. જેની અત્યારના સાહિત્ય અને જીવન પર આછી ઘેરી છાપ પડી છે.

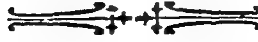
એ વિશિષ્ટ વારસાને આ ત્રૈમાસિક ઉખેળતું આવે છે, એના પર ચડી ગયેલી ધૂળને ઝંઝેડતું એવું શુદ્ધિકરણ કરી પ્રગટ કરતું આવે છે. કોમમાં થઇ ગયેલા અને અત્યારે પણ આથે ખૂણે પડેલા સાહિત્યજીવી અને શુદ્ધ સાહિત્યોપાસકોનાં–શ્રી. ઓપાજીઆઢા, શ્રી. બાંકીદાસજી આસિયા, શ્રી. કેસરીસિંહજી બારહટ. શ્રી. સૂર્યમલ્લજી મિશ્રણ વગેરેનાં કાવ્યો આ અંકમાં રજૂ થયાં છે, સંગ્રહાયાં છે. એ ઉપરાંત આ વખતના અંકમાં તો વાઘા કોટડિયા જેવી ઐતિહાસિક વાર્તાનું પણ સંસ્કરણ થયું છે. કાવ્યો–લેખો સિવાય આગળ પડતા ચારણ કવિઓ, લેખકોના ટુંકા ટુંકા પરિચય પણ અપાયા છે.

હિંદી સાથે ગુજરાતી વિભાગ પણ છે. હિંદી તેમ જ ગુજરાતી વિભાગમાં જ્ઞાતિની અવદશા. તેનાં કારણો, તેનું નિવારણ–વગેરે માટે ઘણા લેખો છે. પણ 'ચારણ' ની વિશિષ્ટતા તો એના કેટલાંઈ જૂના અમોલા વારસાનું સંસ્કરણ કરીને સંગ્રહી લેવામાં છે. એ વારસો અનેક વિભાગોમાં, અને અનેક પ્રદેશોમાં પડ્યો છે. એ પ્રદેશને હાથ ધરી કોમમાં અંધારખૂણે એટેલ સાહિત્ય સમૃદ્ધિ। 'ચારણ' બહાર લાવશે, એ દ્વારા વારસાથી વિભૂષિત ચારણોની સાહિત્યશકિતને માર્ગ અને વેગ આપતો 'ચારણ' એ કોઇ જ્ઞાતિનું મુખપત્ર નહિ રહે, એ તો થઇ રહેશે સાહિત્ય જગતના એક વિભાગનું શાસ્ત્રીય સંપાદન. જેનું સ્થાન આધુનિક સાહિત્યસમાજમાં પણ વિશિષ્ટ રહેશે અને આધુનિક સાહિત્ય સમાજને પણ એને યોગ્ય સત્કાર આપવો જ પડશે.

છેલ્લા અંકમાં ચારણ જ્ઞાતિના ઈતિહાસ માટે થતી તૈયારી જ્ઞાતિના ઈતિહાસ સાથે એમાં ભૂતકાળમાં સાહિત્યોપજીવી સંસ્થાનો પરિચય બની રહેશે. અત્યારની સાહિત્યોપજીવી સંસ્થાને પણ એમાંથી કાંઈક નવીનતા મળે એ રીતે એ ઇતિહાસ લખાય તો એ એક સાહિત્ય જગતમાં નવી જ ભાત પાડી જશે.



તંત્રી–નોંધ



મેઘરાજા મનાયા—

ચાલુ વર્ષે ચોમાસું બેસતાં ખેડૂત અને માલધારી લોકો વરસાદની સારી આશા સેવી રહ્યા હતા. પણ અધિક શ્રાવણને લઇને કે ગમે તે કારણસર વરસાદે મોડી શરૂઆત કરી. લોકોની ચિંતા થોડા વખત માટે દૂર થઇ, અને વાવણીના કામે લાગી ગયા. વાવેતર પણ ઠીક ઊગી નીકળ્યાં. પરંતુ ફરી પાછા મેઘરાજા રીસાયા અને પૂરા દોઢ મહીના સુધી સમસ્ત પશ્ચિમ હિંદુસ્તાનમાં વચમાં લગારે મહેરબાની કરી નહિ. દિવસે પવન અને રાત્રે તારા જોઈ લોકો ભારે મૂંઝવણમાં પડી ગયા.

અધિક શ્રાવણ આખો કોરો ગયો, એટલે લોકોને વરસાદની ઓછી આશા રહેવા લાગી. સુખી ખેડૂતોએ ઘરમાંથી દાણો કાઢવો અને ઘાસ–ચારો વેચવો બંધ કર્યો. સાધનવિહાણા ગરીબ ખેડૂતો અને માલધારીઓની સ્થિતિ ભયંકર થઇ પડી, ટકે ટકે ઢોર વેચાઇ ગયાં. માણસો મજૂરી માટે અમદાવાદ જેવાં મોટાં શહેરો તરફ ભાગવા લાગ્યાં. ચારણજાતિ પણ બૃહદ ગુજરાતમાં તો મુખ્યત્વે ખેડૂત અને માલધારી હોવાથી ગુજરાત અને કાઠિયાવાડનાં કેટલાંક ચારણ–કુટુંબો મુશ્કેલીમાં મૂકાઈ ગયાનું અખબારોમાં આવેલું. પરંતુ આખરે મરતી મેદનીને બચાવવા માટે સાચા રાજા–મેઘરાજાએ પુનઃ પધરામણી કરી સૌની ચિંતા હાલ તરત તો મટાડી દીધી છે. જો કે જે લોકોનાં ઢોર–ઢાંખર તારાજ થઈ ગયાં, તેમને તો કોરો કાળ જ રહ્યો છે. છતાં સૌ મહેનત–મજૂર કરીને પણ પોતપોતાના માળામાં જરૂર રહી શકશે.

ઉપરા છાપરી આવાં નબળાં વર્ષો આવતાં હોવાથી માલધારી ચારણ બંધુઓએ તો ખૂબ ચેતીને ચાલવાનું છે. પોતાના ગજા ઉપરાંત ઢોર ન રાખતાં ખેતી જેવો બીજો જોડિયો ધંધો કરતાં શીખવું જોઈએ. નહિ તો પછી કોઇ વખત

મેશું માગ ન દેતીયું, રૂંધતીયું આરા;
જળ જંખૂર તણાં, માણો મછિયારા ?

જેવા દુઃખદ પ્રસંગ ઊભો થઇ ખભેથી લાકડી હેઠી મૂકવી પડશે ! જે બંધુઓ ખેતી કરે છે, તેમણે પૂરા શ્રમશીલ બનવું જોઇએ. વાવણી ટાણે મહેમાન બની વાતોમાં

રોકાવાનું કે લણણી ટાણે કોઇ રાજપૂતને ત્યાં લગ્ન સાંભળી વગર નોંતર્યે ત્યાગ લેવા દોડી જવાનું છોડી દેવું જોઇએ. 'નથી સ્વાદ પરાધીન થાળ મહીં', જેવો સ્વાદ છે મેંનતના કણમાં, એ શ્રી દૂલા ભગતનાં વચન હમેશાં લક્ષ્યમાં રાખી મર્દની જેમ જીવતાં શીખવું જોઈએ. ભિક્ષુકવૃત્તિ કે પરાશ્રિત જીવન કરતાં માલધારી અને ખેડૂત તરીકેનું જીવન ઘણું આદરણીય છે. પરંતુ તેને જીવી જાણતાં આવડવું જોઇએ. "વા અને વરસાદ કોઇના નથી" નહિતો !

ગ્રાહક બંધુઓને—

આ વર્ષે પ્રતિકૂળ સંજોગોને લીધે 'ચારણ' અનિયમિત, અશુદ્ધ અને જાતીય પ્રશ્નોની છણાવટ રજૂ કરતા લેખો વિનાનું લૂખું નીકળ્યું છે. છતાં આપે તેના ગ્રાહક બની અમને જે સાથ આપ્યો છે, તે બદલ અમે આપનો જેટલો આભાર માનીએ તેટલો થોડો છે. છતાં આપણા આ પત્રને સર્વાંગ સુંદર અને નિયમિત નીકળતું કરવા માટે ઓછામાં ઓછા પાંચસો ગ્રાહકો હોવાની જરૂર છે. એટલે આપ સૌ આવતે વર્ષે વધુ નહિતો એક એક ગ્રાહક વધારી આપો તો યે સહેજે બસો જેટલા ગ્રાહકો વધે. અલવરથી ભરૂચ અને ભોપાળથી દ્વારકાં સુધી પથરાએલી આપણી વિશાળ જાતિ માટે આ માગણી મોટી ન કહેવાય. પરંતુ તે પૂરી થવી આપ સૌના સાથ ઉપર અવલંબિત છે. બીજા બંધુઓને આપ સમજાવી શકો છો કે, પાંચ મહેમાન આવે છે તો યે આપણે બે રૂપિયા ખર્ચ કરી નાંખીએ છીએ. દર વર્ષે 'રાવળ-વેરા'ના પણ ઓછામાં ઓછા બે રૂપિયા આપણે આપવા પડે છે. તો ઘેરબેઠાં આપણને નાતની નવા-જૂની સાથે આપણા અતીત અને ગૌરવ અને સાહિત્યનો પરિચય કરાવી સમસ્ત જાતિને એક સાંકળે જોડનાર આપણા આ પત્રના લવાજમના બે રૂપિયા ખટકે તેમ નથી. તેની સાથે લખી વાંચી જાણનાર બંધુઓ વધુ નહિંતો આપણા ગઢવાડાંના સમાચાર પણ લખી મોકલતા રહે તો સમસ્ત જાતિને એક સૂત્રમાં બાંધવના અમારા મનોરથ પૂરા થઇ, આપણા પુરાતન આદર્શ 'ચારણ એક ધારણ'ની નજીક આપણે પહોંચી શકીએ. કોઇ પણ દેશ અથવા જાતિની જાગૃત્તિમાં પત્રોનો કેટલો હિસ્સો છે, તે આપનાથી અજાણ્યું નથી. વળી જાતીયતાની રક્ષા કરવા માટે પણ હવે પંચ-પ્રથા નાબુદ થવાથી આવા જાતીય પત્રની ખાસ અગત્ય છે. ધારો કે, કોઇ ગઢવાડામાં કોઈ બંધુ એવું ખૂરું કામ કરવા ઊભો થાય કે જેથી સમસ્ત જાતિને નીચું ઘાલવું પડે તેમ હોય, તો તેને તેમ કરતો રોકવા માટે કાયદાની દૃષ્ટિએ આપણે કાંઇ પણ ન કરી શકીએ. પરંતુ તેને મનુષ્યોચિત શરમમાં નાંખી રસ્તે ચઢાવવામાં આપણા આ મુખપત્રને સબળ

સાધન તરીકે જરૂર પૂરવાર કરી શકીશું. તેની સાથે જાતિને આદર્શ રૂપ નીવડે તેવા કાર્યના સમાચાર પણ આપણે એ દ્વારા ફેલાવી શકીશું.

ત્રીજા અંકમાં જણાવ્યા મુજબ અમે અમારા પદનું રાજીનામું આપ્યું હતું. પરંતુ આપણા નેતાઓનો આગ્રહ થયો કે ગુજરાતી વિભાગ બંધ થઈ જશે. તેથી અગવડ વેઠીને પણ અમે સહકારી તંત્રી તરીકે ચાલુ રહેવું ઉચિત માન્યું છે. આવતા વર્ષથી 'ચારણ' સચિત્ર નીકળશે. તેનો પ્રથમાંક આપણા સળગતા જાતીય પ્રશ્નોની છણાવટ રજૂ કરતા કુલીન-શાહી, પ્રેતભોજનની પારાયણ, રખડુની રોજનિશી જેવા અભ્યાસપૂર્ણ લેખોથી સર્વાંગ સુંદર બની વિજયાદશમી પર સમયસર પ્રકટ થશે. તો આપ સૌ આવતા વર્ષે ગ્રાહક તરીકે ચાલુ રહી આપનું લવાજમ આ ચોથો અંક મળે કે તરતજ મનીઑર્ડરથી 'ચારણ'ના મેનેજર પર મોકલી આપશો, એવી આશા છે. વી૦ પી૦ થી નાહક ચાર આના આપને વધુ આપવા પડશે, તે અમને કે આપને કોઇ રીતે હિતાવહ નથી. વળી આપના ઉપર મોકલેલું વી૦પી૦ આપ પાછું વાળો તે પણ આપને શોભાસ્પદ નથી. વધુ શું ?



સમાચાર-સંગ્રહ



ચાલુ સાલે મુંબઈ યુનિવર્સિટી તરફથી લેવાયેલી ઈંટર આર્ટ્સની પરીક્ષામાં વાળા-વડવાળા શ્રી અજીતસિંહ રામસિંહ દેથા અને મોજીદડવાળા શ્રી પ્રતાપસિંહ તેજમાલ દેથા તથા મેટ્રિકની પરીક્ષામાં ચરાડાવાળા શ્રી કાળિદાસભાઇ બાટીના સુપુત્ર શ્રી શિવપ્રસાદ અને શિયોરવાળા શ્રી ચંદુલાલ દાદાભાઇ વરસડા પસાર થયા છે. એ ચારે બંધુઓને તેમણે મેળવેલી ફતેહ બદલ અમારાં અભિનંદન.

ચરાડાવાળા શ્રી કાળિદાસ હાલાભાઇ બાટીની ચાણસ્મા તાલુકા સ્કૂલના હેડમાસ્તર પદેથી કડી મહાલ શાળાધિકારી તરીકે બદલી થઈ, ત્યાંથી પાછા વિજાપુર મહાલ ગોઝારિયા વિભાગ શાળાધિકારી તરીકે તેઓ બદલાયા છે.

સિંધાવદરવાળા શ્રી નારણભાઇ મેકરણભાઇ રોહડિયા, બી૦એ૦ની કલોલની વખારિયા

-હાઈસ્કૂલમાં અધ્યાપક તરીકે નિમણુંક થઈ છે.

તા૦ ૧-૬-૩૯ના રોજ ના૦ જામ સાહેબ શ્રી દિગ્વિજયસિંહજી ધ્રોળ પધારતાં 'હરધોળ-ગરાસિયા-સમાજ' તરફથી ધ્રોળનરેશને પ્રમુખપદે તેમને માનપત્ર આપવાનો મેળાવડો થયેલો, તે પ્રસંગે કાળાવડવાળા શ્રી માવદાનજી રતનુંને "કચ્છ-કાઠિયાવાડ-ગુજરાત-ગરાસિયા એસોશિએશન" તરફથી જામ સાહેબને હસ્તે, તેમણે બજાવેલી ક્ષત્રિય સમાજની સેવા બદલ સુવર્ણચંદ્રક અપાયો હતો. અને ના૦ ધ્રોળનરેશ તરફથી ૨૦૧) રૂપિયાનું વર્ષાસન બાંધી આપવામાં આવ્યું છે.

શ્રી માવદાનજીને અમારાં અભિનંદન. તેમની કદરમાં અમે સમસ્ત ચારણજાતિની કદર સમજીએ છીએ. પરંતુ તેઓ આ કદરનો ઉપયોગ પ્રિય જીવન-સંગી રાજપૂત જાતિના રાજવીઓ અને ગિરાસદારોને ચડાવી મારવામાં ન કરતાં સાચો ચારણધર્મ બજાવી તેમની પ્રજાનાં સુખદુઃખ જણાવવામાં કરશે, એવી આશા છે. રંગ રાજા! રંગ બાદશાહ! એવી મિથ્યાપ્રશંસાનો યુગ હવે આથમ્યો છે. નવયુગના ક્ષત્રિયો અને ચારણોને તેની સૂગ પેદા થઈ છે. એ વાતથી તેઓ અજાણ્યુ તો નહિ હોય. તેમના કેટલાક વ્યક્તિગત વિચારો સમસ્ત ચારણ જાતિના વિચારો, તરીકે રજૂ થતા હોવાનો જનતાને ખ્યાલ બંધાયો હોવાનું અમારા જાણવામાં આવ્યું છે તે ખાતે તેમને વિનંતિ કે, ચારણ જાતિની પ્રતિષ્ઠાને ખાતર તેઓ ભવિષ્યમાં એવું ન કરે.

ગ્રાહક બંધુઓને સૂચના

આવતા વર્ષે 'ચારણ'ના ગ્રાહક તરીકે ચાલુ રહેવા માટે અત્યંત વિનંતિ કરવામાં આવી છે. છતાં જે ભાઈઓને ગ્રાહક તરીકે ન રહેવું હોય તેમણે આ ચોથો અંક મળે કે તરતજ અમને એક કાર્ડ લખી તેની સૂચના આપવી. નહિ તો બીજા વર્ષનો પહેલો અંક તેમના ઉપર વી૦ પી૦ થી મોકલવામાં આવશે. અને પછી તેઓ વી૦પી૦ નહિ સ્વીકારે તો તેમનાં નામ અમારે દિલગીરીપૂર્વક 'ચારણ'માં જાહેર કરવાં પડશે.

મેનેજર "ચારણ"

[illegible] કલોલ ([illegible] ગુજરાત)

इस अङ्क की 'पूर्ति'—

"चारण" के प्रथम वर्ष के ग्राहकों की नामावली



[प्रथम वर्ष के प्रारंभ से ता० १-९-'३९ तक बने हुए ग्राहकों की]



१—राजपूताना-मालवा-विभाग

क्र० नाम-निवास

१ श्री कृष्णसिंहजी बारहठ, अलवर
२ श्री बलवंतसिंहजी बारहठ, अलवर
३ श्री अमरदानजी बारहठ, अलवर
४ श्री रामचंद्रजी बारहठ, अलवर
५ श्री अक्षयसिंहजी रत्नू, अलवर
६ श्री रामसिंहजी बारहठ, अलवर
७ श्री भारतदानजी बारहठ, जोधपुर
८ डॉ० श्री शिवदत्तजी उज्वल, जोधपुर
९ श्री मोतीसिंहजी बारहठ, बी०ए०, जोधपुर
१० श्री शंकरदानजी आढा, झुंझनूँ
११ श्री व्यवस्थापक,
उम्मेद-चारण-छात्रालय, जोधपुर
१२ श्री लादूसिंहजी बारहठ, कामदार, घाणेराव
१३–१६ श्री प्रतापसिंहजी महियारिया,
(चार प्रति) टींटोड़ा
१७ श्री मुरारिदानजी सा० कविया, जयपुर
१८ श्री चैनदानजी बारहठ, वकील, जोधपुर
१९ श्री तेजकरणजी, जोधपुर
२० श्री मुरारिदानजी बारहठ, अलवर
२१ श्री गणपतसिंहजी बारहठ, अलवर
२२ ,, ईश्वरदानजी आढा, मंडावर
२३ ,, बनखंडीदानजी बारहठ, नगला
२४ ,, जयकरणजी बारहठ, वकील, बी०ए०,
एल्-एल्०बी०, सोजत
२५ ,, शुकदेवजी किनिया, वकील,
बी०ए०, एल्-एल्०बी०, जोधपुर
२६ महंत श्री हीरादासजी, जोधपुर
२७ ,, विजयसिंहजी बारहठ, बलदेवपुरा
२८ ,, रिड़मलदानजी बीठू, बीकानेर
२९ ,, उदयराजजी उज्वल, जोधपुर
३० ,, नारायणसिंहजी, नागौर
३१ ,, बदरीदानजी कविया, वकील, जोधपुर
३२ ,, फतहकरणजी, जोधपुर
३३ ,, बादूरामजी, सेदरिया
३४ स्व० श्री आईदानजी बारहठ, बी०ए०,
एल्-एल्०बी०, जोधपुर
३५ श्री अक्षयराजजी, जोधपुर

३६ श्री रामदानजी, जोधपुर
३७ ,, लालजी चौबे, मथुरा
३८ ,, सुमेरदानजी वणसूर, पारलाउ
३९ ,, अंबादानजी रत्नू, जोधपुर
४० ,, जयकरणानजी, डीडवाना
४१ ,, सुमेरदानजी बारहठ, बाड़मेर
४२ ,, मुरारिदानजी कविया, बी०ए०, जोधपुर
४३ कविराजा सा० श्री दुर्गादानजी
महियारिया, कोटड़ी
४४ श्री दौलतसिंहजी महडू, कोटड़ी
४५ ,, हेतुदानजी सा० उज्वल, एम०ए०,
एल-एल०बी०, सोजत
४६ ,, भारतदानजी बारहठ, ईंटदड़ा
४७ ,, रानकरणजी, साचोर
४८ ,, हरलालजी, डेगाना
४९ ,, आशकरणजी बारहठ, ईंटदड़ा
५० ,, कल्याणसिंहजी हवलदार, बेंगलोर
(दक्षिण भारत)
५१ ,, भूरदानजी बारहठ, बड़ी खारी
५२ ,, कविराजा सा० तेजसिंहजी आशिया, जोधपुर
५३ ,, शंभुदानजी, सेवाणा
५४ ,, अर्जुनसिंहजी, बी०ए०, एल-एल०बी०,
सोजत
५५ ,, महेंद्रसिंहजी सा० राणावत, बी०ए०, बूँदी
५६ ,, सबलदानजी, सोजतरोड
५७ ,, जेतदानजी उज्वल, जोधपुर
५८ ,, गंगाविशनजी, मारवाड़ जंक्शन
५९ ,, पाबूदानजी, भीनमाल
६० श्री हणूंतदानजी, चारणवास
६१ ,, जोरावरसिंहजी महडू, बूँदी
६२ ,, मूलकरणजी वणसूर, पारलाउ
६३ ,, मदनसिंहजी महडू, बूँदी
६४ ,, श्रीमती इंद्रबाई सा० रत्नू, [illegible]
६५ स्व० श्री शंकरदानजी वणसूर, पारलाउ
६६ श्री अमरदानजी पालावत, छंगुलिया
६७ ,, सत्यदेवजी आढा, एम०ए०,
एल-एल०बी०, जोधपुर
६८ ,, [illegible]दानजी बारहठ, तुरकियावास
६९ ,, शंभुसिंहजी, जयपुर
७० ,, चालावरसाजी बारहठ, रतनपुरा
७१ ,, गुमानसिंहजी, सोनाणा
७२ रा० ब० ठा० सा० श्री फतहसिंहजी
कूंपावत, आसोप
७३ श्री प्रतापसिंहजी, पूंछाली
७४ ,, अमरदानजी बारहठ, टेला
७५ ,, धनसिंहजी, विलाड़ा
७६ ,, शंकरसिंहजी बारहठ, राजगढ़
७७ ,, रणवीरसिंहजी, लूणी जंक्शन
७८ ,, पनेदानजी, गढ़ारोड़
७९ ,, मोमदानजी, मिरगेसर
८० ,, दुर्गादानजी महियारिया, राजपुर
८१ ,, रामसिंहजी भादा, सरवाणिया
८२ ठा० सा० श्री देवीसिंहजी बारहठ,
मूँदियाड
८३ श्री भैरूँसिंहजी दधिवाडिया, जोधपुर
८४ ,, पीरदानजी महडू, मऊ

८५ श्री लालचंदजी कामदार, पाँचेटिया
८६ ,, जोधसिंहजी उज्वल, नपासर
८७ ,, श्यामलदानजी उज्वल, एम्० ए०, जोधपुर
८८ ,, अंबादानजी सुरताणिया, खारची
८९ ठा० सा० श्री शिवसिंहजी चौहान, महुवा
९० श्री मनोहरसिंहजी वारहठ, करंड़िया
९१ ,, जवाहरदानजी, कंटालिया
९२ ,, प्रतापसिंहजी, सरवडी
९३ ,, सुमेरदानजी, भैंसवाडा
९४ कविवर श्री केसरीसिंहजी सा० रौदा. सोन्याणा
९५ सर्वश्री साँदू सरदारान, भंडारा
९६ श्री नाहरसिंहजी, वछवास
९७ ,, चैनसिंहजी, थानेदार, भीनमाळ
९८ ,, फतहकरणजी पाल्हावत, हणूँतिया
९९ ,, गंगाविशनजी, झूँडली
१०० ,, गणेशदानजी, शेरगढ
१०१ ,, चमनसिंहजी, जोधपुर
१०२ ,, किशनदानजी महडू, शिवपुरी
१०३ ,, भवानीदानजी, रेंदड़ी
१०४ ,, अंबादानजी सा० सिंडायच, बी०ए०, किसनगढ
१०५ ,, वाघदानजी आशिया, वड़दला
१०६ ,, माधोसिंहजी सा० चाँपावत, बनारस (युक्तप्रांत)
१०७ ,, जयसेनजी महियारिया, कोटडी
१०८ ,, सहस्रकिरणजी महियारिया, कोटा
१०९ श्री जशकरणजी खिड़िया, जैतपुरा
११० ,, रामलालजी महडू, अलवर
१११ ,, श्रीदानजी आशिया, मेंगटिया
११२ ,, गुलाबदानजी, अजमेर
११३ ,, दूल्हेसिंहजी भादा, अजमेर
११४ ,, रामदानजी पुष्करगुरु, पुष्कर
११५ ठा० सा० श्री गोविंदसिंहजी उदावत, रायपुर
११६ मुंशी श्री प्रतापदानजी, कालूँदी
११७ राजराणा सा० श्री खुमाणसिंहजी झाला, देलवाड़ा
११८ ठा० सा० श्री खुमाणसिंहजी झाला, झालों की मंदार
११९ सर्व श्री० देवकरणजी, श्री शिवकरणजी एवं ओपजी आदि, इंदोकली
१२० श्री छगनलालजी व्यास, बुकसेलर, वड़ीसादड़ी
१२१ ,, देवीसिंहजी कविया, उदयपुर
१२२ श्री लक्ष्मीदानजी सा० साँदू, बी०ए०, जोधपुर
१२३ कविराजा श्री कालूदानजी मिश्रण, बूँदी
१२४–१२५ श्री रूपसिंहजी वारहठ (दो प्रति) उदयपुर
१२६ श्री उदयकरणजी आढा, नागोर
१२७ ,, जोरावरसिंहजी, उदयपुर
१२८ ,, गंगादानजी वारहठ, नोखामड़ी
१२९ ,, रामदयालजी, वीठू, देशणोक
१३० ,, देवीदानजी, बीकानेर
१३१ ,, मुरारिदानजी वीठू, बीकानेर
१३२ ,, श्यामलदानजी, बीकानेर

१३३ श्री श्यामलदानजी, फलौ

१३४ ,, रामदयालजी मिश्रण, हरणां

१३५ बारहठजी सा० चालकदानजी सौदा, उदयपुर

१३६ श्री गुलाबसिंहजी महडू, भाणपुर

१३७ कविराजा श्री शक्तिदानजी सा० दधिवाड़िया, जयसिंहपुरा

१३८ महाराजा सा० श्री प्रतापसिंहजी हाडा, बूंदी

१३९ श्री रघुनाथप्रसादजी सिंहानिया, मंत्री—रा०रि० सोसाइटी, कलकत्ता

१४० ,, जोरावरसिंहजी, दलखेड़ी

१४१ बारहठजी सा० श्री हरिसिंहजी, वापचिया

१४२ श्री तख्तसिंहजी महियारिया, पीपली

१४३ ,, देवीलालजी सांदा, उदयपुर

१४४ ,, हमीरसिंहजी सौदा, करणपुर

१४५ ,, [illegible] सिंढायच, [illegible]

१४६ ,, भवानीसिंहजी महियारिया, [illegible]

१४७ ,, उदयसिंहजी देवल, एम्० ए० (प्रीवि०), बनारस

१४८ ,, बालब्रह्मचारी लालजी महाराज, जोधपुर

१४९ ,, कुँवर सा०, सिरियारी, जोधपुर

१५० सर्व श्री कविया सरदारान, [illegible]

२ – બૃહદ્ ગુજરાત-વિભાગ

—०—

*१५१ શ્રી મેરૂભા લીલા, છત્રાવા

*१५२ ,, ખેતસિંહજી મિશ્રણ, મુંદ્રેશ

*१५३ ,, પિંગળશીભાઈ પાયક, ભાવનગર

*१५४ ,, કેશરભાઈ ખાટી, કલોલ

१५५ ,, ગોવિંદભાઈ ડાકરિયા, ખંખુડા

१५६ ,, કરસનભાઈ પાલિયા, ,,

१५७ ,, કરસનભાઈ ડાકરિયા, ,,

१५८ ,, હરદાસભાઈ લાંબા, ,,

१५९ ,, લાખાભાઈ લાંબા, ,,

१६० ,, જીવાભાઈ ડાકરિયા, ,,

१६१ ,, મયાજળભાઈ ડાકરિયા ,,

१६२ ,, રામાભાઈ લાંબા ,,

૧૬૩ શ્રી પિંગળશીભાઈ પાયક, સોદ્રાણા

૧૬૪ ,, [illegible] નાંધુ, [illegible]

૧૬૫ ,, અનેસિંહજી ખાટી, મોસમ

૧૬૬ કવિ શ્રી માવદાનજી રત્નુ, કાગાવદ

૧૬૭ કવિ શ્રી ઇશ્વરદાનજી સુરતાણિયા, મોરઝર

૧૬૮ કવિ શ્રી કારણભાઈ મહેડુ, ચણા

૧૬૯ શ્રી દાદાભાઈ પાંચરશિંગા, ચારણુગી

૧૭૦ ભક્તકવિ શ્રી દુલાભાઈ કાગ, મજાદર

૧૭૧ શ્રી સમર્થદાનજી ગઢિયા, ચમારડી

૧૭૨ કવિ શ્રી રેવાજી રત્નુ, મોડવદર

૧૭૩ ,, દેવીદાનજી બારહટ, રાજકોટ

૧૭૪ ,, બાલુભાઈ લાંબા, રાજકોટ

---

* नं० १५१ से १५४ तक के ग्राहक बंधुओं ने अ०भा०चा० सम्मेलन के जोधपुर-अधिवेशन में ग्राहक होकर वहीं मूल्य के पैसे श्री प्रधानमंत्रीजी को दे दिए थे। —मैनेजर

૧૭૫ શ્રી કાળાભાઈ સાંદિયા, વાંકાનેર
૧૭૬ ,, લાલસિંગજી રોહડિયા, સિંધાવદર
૧૭૭ ,, રવાભાઈ બારટ ધુનાનું, ગામ
૧૭૮ ,, જીવાભાઈ શામળ, ગાંગડ
૧૭૯ ,, દાજીભાઈ લાળસ, કરાંચી
૧૮૦ ,, જબરદાનજી, કાળાવડ
૧૮૧ ,, પ્રતાપસિંહજી નાંધુ, નરસંડા
૧૮૨ ,, ભલુભાઈ ફૂનડા, કનીપુર
૧૮૩ ,, જીવણલાલજી વરસડા ભાદરવા
૧૮૪ ,, કાળિદાસભાઈ બાટી, ચરાડા
૧૮૫ ,, ભગવતીદાનજી રોહડિયા, શેરડી
૧૮૬ ,, કાળિદાસજી બારટ, રાવળ
૧૮૭ ,, અમરસિંહજી બાટી, ધિવાવ
૧૮૮ ,, ચકુભાઈ બારટ, સચાણા
૧૮૯ ,, નારણભાઈ, ભોગાત
૧૯૦ ,, નારણભાઈ બાલિયા, જામનગર
૧૯૧ ,, અભેરાજજી દેથા, બાબિયા
૧૯૨ ,, મૂળુભાઈ મૂબિયા, રાજકોટ
૧૯૩ ,, ફૂલસિંહજી મહેડુ, કાસિંદ્રા
૧૯૪ ,, મંત્રી કૃષ્ણકુમાર-ચારણ-વિદ્યાલય, ભાવનગર
૧૯૫ ,, ઉદયરામજી શામળ, મુંબઈ
૧૯૬ ,, ગોપાળજી રોહડિયા, મુંબઈ
૧૯૭ ,, શક્તિદાનજી શામળ, ગદકા
૧૯૮ ,, પથાભાઈ બોગસા, મૂળી
૧૯૯ ,, ધનરાજજી લાંબા, ભાડલા
૨૦૦ ,, જીવાભાઈ પાંડરશિંગા, પોલીસ સબઈન્સ્પેક્ટર વીરમગામ,
૨૦૧ દરબાર શ્રી ગોપાળસિંહજી સા૦ જાડેજા ગણોદ
૨૦૨ કવિશ્રી રામદાનજી ટાપરિયા, વાવડી
૨૦૩ શ્રી હરદાનભાઈ નરેલા, ભાવનગર
૨૦૪ બોરાણાના ચારણ ડાયરા સમસ્ત, હા૦ શ્રી રામરવભાઈ રાબા, બોરાણા
૨૦૫ શ્રી શિવલાલજી બ્રહ્મભટ્ટ, મહેસાણા
૨૦૬ ,, જીવાભાઈ બારટ, વીરવદરકા
૨૦૭ ,, ગગુભાઈ બારટ, વીરવદરકા
૨૦૮ ,, મૂળુભાઈ બાદાણી, અમદાવાદ
૨૦૯ ,, ઝાંબડી ગામના ચારણ જાગીરદારો, હા૦ શ્રી મૂળુભાઈ રત્નુ, ઝાંબડી
૨૧૦ શ્રી ઉમાભાઈ ટાપરિયા, વઢવાણ
૨૧૧ ,, કેશરદાનજી ગાટી, દેદાલ
૨૧૨ ના૦ રાણા યુવરાજશ્રી ઇંદ્રસિંહજી સા૦ ઝાલા; લખતર
૨૧૩ ,, શ્રી જશકરણજી રત્નુ, પોરબંદર
૨૧૩ ,, મૂળજીભાઈ વેદ, અમરેલી
૨૧૪ ,, કાનજીભાઈ લીલા, વડીયા
૨૧૬ ,, મોંઘાભાઈ લાંગાવદરા, ઘાટકોપર
૨૧૭ ,, અંબાદાનજી મોડ. રાણેસર
૨૧૮ ,, પૂંજાભાઈ મોડ, રાણેસર
૨૧૯ ,, મોડભાઈ મોડ, રાણેસર
૨૨૦ ,, રૂંખડભાઈ બારટ, સરી
૨૨૧ ,, જેઠીભાઈ મહેડુ, કોચરિયા
૨૨૨ ,, રૂપશીભાઈ ચાટયકા; બાવળા

૨૨૩ શ્રી ગોકળભાઈ ગોઢ, સરી
૨૨૪ ,, ત્રિકમલાલજી ભાટી, અમદાવાદ
૨૨૫ ,, અદાભાઈ ગોઢ, અમદાવાદ
૨૨૬ ,, નાનુભાઈ ભાટી, કલોલ
૨૨૭ ,, પ્રતાપસિંહજી ભાટી, કલોલ
૨૨૮ ,, રૂપશીભાઈ ભાટી, કલોલ
૨૨૯ ,, તેજમાલજી ભાટી, કલોલ
૨૩૦ ,, તેજમાલજી કેસરિયા, અરણેજ
૨૩૧ ,, અભેસિંહજી બબેલ, કોટ
૨૩૨ ,, પ્રતાપદાનજી નાંધુ, વરસોળા
૨૩૩ ,, છગનભાઈ નાંધુ, વરસોળા
૨૩૪ ,, ઈશ્વરદાનજી સંદાયચ, દેવગાણુ
૨૩૫ ,, દેશળસિંહજી કાપલ, અમદાવાદ
૨૩૬ ,, અજીતસિંહજી દેથા, વાજોવડ
૨૩૭ ,, દાજીભાઈ ભાટી, કલોલ
૨૩૮ લે૦ કર્નલ શ્રી સરદારસિંહજી સા૦ ગોહિલ, ભાવનગર
૨૩૯ ના૦ દરબાર શ્રી રામવાળા સા૦, બગસરા
૨૪૦ લે૦ કર્નલ શ્રી કેશવસિંહજી સા૦ ગોહિલ, દિવાન, પન્ના (બુંદેલખંડ)
૨૪૧ રાણા શ્રી ચંદ્રસિંહજી સા૦, રાજપુર
૨૪૨ શ્રી મંગલદાનજી રતનુ, વિજયનગર ([illegible])
૨૪૩ ,, મુરારીદાનજી, ચોટીલા
૨૪૪ ,, ઈશ્વરદાનજી દેથા, ભીમુવાસ
૨૪૫ ,, હમાભાઈ ભાટી, ભાલવડા
૨૪૬ ,, નારણભાઈ રોહડિયા, પી૦ઓ૦, સિંધાવદર
૨૪૭ ,, કાનજી ભોજરાજજી, નાગપુર રોડ

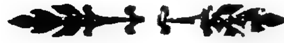
इस तरह प्रारंभ से लेकर ता० १-१०-'३९ तक कुल २४७ ग्राहक हुए हैं, जिनके नाम उपर दिए गए हैं। उपर्युक्त नामावली में गलती से किसी सज्जन का नाम, गौत्र या निवास-स्थान अशुद्ध दिया गया हो तो कृपया वे इसकी हमें सूचना दें। इस विषय में एक शिकायत है कि 'बारहठ' उपाधि हमारी समस्त जाति की मानबोधक होने पर भी, जहाँ तक हमको मालूम है, अपने नाम के साथ तो इसका उपयोग सिर्फ़ 'सौदा' एवं 'रोहड़िया' गोत्र के चारण ही कर सकते हैं। इस हालत में इनसे अन्य गोत्र के कई सजातीय ग्राहक बंधु अपने नाम के साथ अपना गोत्र न लिखकर 'बारहठ' उपाधि लिखते हैं, यह अनुचित है। यही नहीं, कई तो केवल अपना नाम ही लिखते हैं, इससे यह समझना भी कठिन होता है कि वे चारण हैं या राजपूत। यही कारण है कि ऊपर कई नाम विवशतया हमको गिरे ही देने पड़े हैं। आशा है, आगे ग्राहक होनेवाले सजातीय बंधु अपने नाम के साथ अपना गोत्र-खाँप भी लिखने की कृपा करेंगे।

निवेदक

मैनेजर, "चारण"

अ० भा० चारण-संमेलन के राजकोट-अधिवेशन में अमुक संख्या ग्राहक बना देने की प्रतिज्ञा करनेवाले सज्जनों की

नामावली



१ श्री करसनभाई पालिया, जाँबूड़ा, ५० ग्राहक
* २ श्री खेतसिंहजी मिश्रण, मुढेरा, २० ,,
३ श्री प्रतापसिंहजी महियारिया, टीटोडा ५० ,,

(मेवाड प्रांत से)

४ स्व० श्री आईदानजी बारहठ, मथाणिया, १०० ,,

(मारवाड प्रांत से)

५ श्री नारणदानजी मीसण, मोरबी, १० ,,
६ श्री लाखणसीभाई पाँचाळिया, भेंसाण, १० ,,
* ७ श्री पिंगलसीभाई पायक, भावनगर, ५ ,,
८ श्री नारणभाई रोहड़िया, सिंधावदर, १० ,,
९ श्री धनराजजी लाँबा, भाडला, १० ,,
१० श्री मावदानजी रत्नू, काळावड़, २५ ,,

(हालार चौवीसी से)

११ भँवर शुभकर्ण कविया, जोधपुर, २५ ,,

शुभकर्ण कविया, एम०ए०, एल्-एल०बी०,
प्रधानमंत्री-अ०भा०चारण-संमेलन, जोधपुर

* इन दोनों सज्जनों ने अपनी-अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ग्राहक बना दिए हैं। खेद है कि, श्री नारणदानजी मीसण एवं श्री लाखणसीभाई पाँचाळिया तो उनकी प्रतिज्ञाओं की बात दूर रही, खुद ही ग्राहक नहीं हुए हैं! अतएव आशा है, अन्य महाशय भी अपनी प्रतिज्ञायें अपूर्ण रखकर मिथ्याभाषी नहीं बनेंगे।

—प्रधानमंत्री

——०——

श्री किशोर-स्मारक-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

(१) अ०भा०चारण-सम्मेलन के राजकोट-अधिवेशन में प्राप्त चंदा—

(१) श्री जीवणलालजी बरगडा, भादरवा, ३०)
(२) ,, प्रतापसिंहजी महियारिया, टींटोडा, २०)
(३) ,, सत्यदेवजी आढा, सांचिटिया, ५)
(४) ,, शुभकर्ण कविया, जोधपुर, २)
(५) ,, किशनदानजी, बीकानेर, ५)

६२)

(२) श्री खेतसिंहजी मिश्रण (मुंदेरा) द्वारा प्राप्त चंदा—

१ श्री खेतसिंहजी मिश्रण, मुंदेरा, ४)
२ ,, केसरभाई वाटी, कलोल, २॥)
३ ,, दाजीभाई वाटी, कलोल, २॥)
४ ,, रूपसीभाई वाटी, कलोल, २॥)
५ ,, तेजमालजी वाटी, कलोल, २॥)
६ ,, अमेसिंहजी कलोल, मोड, १)

१५)

(३) अ०भा० चारण-सम्मेलन के राजकोट-अधिवेशन में किए गए वादे—

[आशा है, निम्नोक्त सज्जनों में जिनके वादे की रकमें अभी तक बाकी हैं, वे शीघ्र ही निम्नोक्त पते पर भेजने की कृपा करेंगे।]

१ श्री लादूसिंहजी बारहठ, ईंटदड़ा, ११)
२ ,, मानीसिंहजी बारहठ, मोरटूका, ५)
३ ,, जयकर्णजी बारहठ, सोजत, ५)
४ स्व० श्री आईदानजी बारहठ, मथाणिया, ५)
५ श्री प्रतापसिंहजी महियारिया, टींटोडा, २५)

५१)

शुभकर्ण कविया, एम०ए०, एल-एल०बी०,
सम्पादक, 'श्री किशोर-स्मारक-श्रद्धांजलि-ग्रंथ'
रोचपुर की हवेली, **जोधपुर**

—०—

ज़रा इस ओर ध्यान दें

राष्ट्रभाव को जागृत करने के लिये बंगालियों ने बंगला भाषा के प्रसिद्ध कवि श्री विजयलालजी की अध्यक्षता में एक 'चारण-दल' स्थापित किया है। हमारे जन्मजात चारणबंधु इसका रहस्य समझकर नवयुग के चारण-धर्म को कब समझने लगेंगे!

डा० सा० श्री किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य की असामयिक मृत्यु के कारण उनके संपादकत्व में निकलनेवाला 'राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी' (कलकत्ता) का त्रैमासिक मुखपत्र 'राजस्थान' बंद हो गया था वह विगत जुलाई मास से 'राजस्थानी' नाम से ४) रुपया वार्षिक मूल्य पर पुनः बड़ी सजधज के साथ निकलने लगा है। राजस्थान के इतिहास, संस्कृति, कला एवं साहित्य –डिंगल-साहित्य से प्रेम रखनेवाले प्रत्येक चारण बंधु से हम साग्रह अनुरोध करते हैं कि वह इसका ग्राहक बनकर उसके संपादक-प्रकाशक का उत्साह बढ़ावे। पता–मंत्री, राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी, ७३ ए, चासाधोबापाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता।

राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी (कलकत्ता) की ओर से 'राजस्थान के लोकगीत' नामक अपूर्व संग्रह-ग्रंथ का प्रथम भाग (पूर्वार्द्ध–उत्तरार्द्ध) प्रसिद्ध हुआ है।

ग्राहक बंधुओं से

आखिर लज्जापूर्वक यह निवेदन करना पड़ता है कि, 'चारण' के दूसरे एवं तीसरे अंक की छपाई के लिये हममें से गुजराती विभाग के संपादक के कई। में कि जहाँ इस समय 'चारण' छपता है, २५ दिन ठहरकर परिश्रम करने पर भी तीसरे अंक में दी हुई सूचना के अनुसार यह चौथा अंक समयसर प्रसिद्ध न हो सका! इसके उपरांत लड़ाई के कारण कागज़ खूब महँगे हो जाने से दूसरे वर्ष की छपाई के कुछ दिन पूर्व निश्चित किए हुए रेट के बारे में कुछ झगड़ा उठा था और अब दीवाली पर प्रेस-मालिक एक सप्ताह तक बाहर जा रहे हैं इससे दूसरे वर्ष के प्रेमांक का छपना दीवाली के दूसरे दिन से शुरू होगा और एक मास में वह ग्राहकों की सेवा में पहुँच जायगा। **कागज़ खूब महँगे हो जाने से दूसरे वर्ष से 'चारण' का मूल्य विवशतया २॥) रुपया रखना पड़ा है। अतएव म०ऑ० से वार्षिक मूल्य भेजनेवाले ग्राहकबंधु २॥) रुपया ही निम्न पते पर भेजें।**

मैनेजर, 'चारण' पो० कलोल
J. B. C. I. Ry (उत्तर गुजरात)

"चारण" के नियम



१ 'चारण' वर्ष में चार बार विजयादशमी, वसंतपंचमी, अक्षयतृतीया और रक्षाबंधन पर प्रकाशित होगा।

२ चारण जाति की सर्वांगीण उन्नति के साधक लेखादि के साथ समयानुकूल अन्य विषयों के लेखादि को भी 'चारण' में स्थान होगा।

३ 'चारण' में छपने के लेखादि का सदा काफ़ी हाशिया छोड़कर काग़ज़ के एक ही ओर शुद्ध एवं स्पष्ट लिखा होना जरूरी है। दो लाइनों के बीच में भी जगह काफ़ी होनी चाहिये, ताकि करेक्शन आदि किया जा सके।

४ 'चारण' में छपने के हिंदी भाषा के लेखादि ठा० ईश्वरदान आशिया, ग्राम-मेंगटिया, डा० नाथद्वारा (मेवाड़-राजपूताना) के एवं गुजराती भाषा के लेखादि श्री खेतसिंह नारायणजी मिश्रण (गढवी) ग्राम-मुटेरा, पो० वडावली (उत्तर गुजरात) के पते पर भेजने चाहिये।

५ प्राप्त लेखादि तभी वापस किये जायँगे जब इसके लिये डाक-व्यय प्राप्त होगा।

६ बिना नाम के लेखादि नहीं छापे जायँगे, परंतु कोई अपना नाम न छपवाना चाहें तो वैसा लिख दें।

७ वार्षिक मूल्य दो रुपये होगा और वह सर्वथा अग्रिम लिया जायगा। ग्राहक वी० पी० से 'चारण' न मँगायें, क्योंकि उसमें डाकमहसूल ज्यादा लग जाता है और रुपये मिलने में भी देर होती है। वार्षिक मूल्य सीधे मनीऑर्डर से भेज देने पर ग्राहकों की भी बचत होती है और हम लोगों को भी सुविधा होती है।

८ 'चारण' के ग्राहक बनने एवं वार्षिक मूल्य भेजने आदि प्रबंध-संबंधी लिखापढ़ी आइंदे श्री नारणभाई रोहड़िया, अध्यापक-वखारिया-हाईस्कूल, पो० कलोल (उत्तर गुजरात) के पते पर करनी चाहिये और किसी अंक के न मिलने पर भी उन्हें लिखना चाहिये। इस विषय में प्रकाशक से बिल्कुल लिखापढ़ी न करनी चाहिये।

९ पत्र-व्यवहार के समय ग्राहकों को अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये और जवाब के लिये टिकट भेजना चाहिये।

श्री किशोर-स्मारक-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

विद्वद्वर्य स्व० ठाकुर किशोरसिंहजी वार्हस्पत्य, स्टेट हिस्टोरियन-पटियाला गवर्नमेंट, चारण जाति के समुज्ज्वल रत्न थे। आपने संमेलन के मुखपत्र 'चारण' का कुशल संपादन करके चारण जाति ही नहीं, इतिहास-संसार की भी महान् सेवा की है। आप सार्वदेशिक ख्याति के व्यक्ति और इतिहास के उद्भट विद्वान् थे। आपके राजपूत-इतिहास संबंधी सर्वथा मौलिक, गवेषणापूर्ण एवं चिंतनीय विचारों पर भारतीय और विदेशी इतिहासकार मंत्रमुग्ध हैं।

आपका हिन्दी, गुजराती, अपभ्रंश, संस्कृत, पाली, प्राकृत, मागधी आदि भाषाओं पर अद्वितीय अधिकार था। आप अंग्रेजी एवं इतर भाषाओं के विद्वान ही नहीं, डिंगळ भाषा और साहित्य के विशेषज्ञ और उत्कृष्ट कवि थे। आपके स्वर्गवास से चारण जाति ही नहीं, राजस्थान की महान् हानि हुई है, जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में होनी कठिन है। चारण जाति के सभ्यों तथा राजस्थानियों का कर्तव्य है कि स्व० विभूति की स्मृति चिर-स्थायी बनाने के लिये वे कुछ ठोस कार्य करें। अतः, अखिल भारतीय चारण-संमेलन और राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी (कलकत्ता) ने निश्चय किया है कि सम्मिलित रूप से उनकी पुण्य स्मृति में एक स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय। उस ग्रन्थ में उनके संस्मरण और विविध लेखों तथा कविताओं का संग्रह भी रहे।

ठाकुर साहब के परिचितों, मित्रों और गुणानुरागियों से निवेदन है कि वे उनके संबंध में अपने संस्मरण, श्रद्धांजलियाँ तथा लेख-कविता आदि निम्नलिखित किसी एक पते पर शीघ्र भेजने की कृपा करें।

उक्त निश्चय को सफल बनाने के लिये प्रत्येक चारण और चारणेतर सभ्य से विनम्र प्रार्थना है कि वह इस पुनीत कार्य के लिये यथायोग्य ...त्र आर्थिक सहायता भी करें। ता० १-६-'३९

भवदीय

शुभकर्ण कविया	रघुनाथप्रसाद सिंहानिया
मं०-अ० भा० चा०-संमेलन	मंत्री—राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी
रावपुर की हवेली, जोधपुर	७३ ए, चासाधोबा पाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता